CORE
Metadata, citation and similar papers at core.ac.uk
Provided by Etheses - A Saurashtra University Library Service

Saurashtra University

Re – Accredited Grade 'B' by NAAC
(CGPA 2.93)

Patel, Komal V., 2011, "*मुक्तिबोध का काव्य : एक अनुशीलन*", thesis PhD, Saurashtra University

http://etheses.saurashtrauniversity.edu/id/eprint/695

Copyright and moral rights for this thesis are retained by the author

A copy can be downloaded for personal non-commercial research or study, without prior permission or charge.

This thesis cannot be reproduced or quoted extensively from without first obtaining permission in writing from the Author.

The content must not be changed in any way or sold commercially in any format or medium without the formal permission of the Author

When referring to this work, full bibliographic details including the author, title, awarding institution and date of the thesis must be given.

Saurashtra University Theses Service
http://etheses.saurashtrauniversity.edu
repository@sauuni.ernet.in

© The Author

“मुक्तिबोध का काव्य : एक अनुशीलन”

सौराष्ट्र विश्वविद्यालय की विद्यावाचस्पति (पीएच.डी.) की

पदवी हेतु प्रस्तुत

शोध-प्रबंध

प्रस्तुतकर्त्ती

पटेल कोमल वी.

मार्गदर्शक

डॉ.मनहरभाई के. गोस्वामी

गुरुकुल महिला कॉलेज

पोरबंदर

सन्

अध्याय-1

गजानन माधव 'मुक्तिबोध' का जीवन तथा साहित्यिक परिचय

❒ प्रस्तावना

1.1 जीवन परिचय

1.1.1 जन्म एवं बचपन

1.1.2 शिक्षा-दीक्षा

1.1.3 विवाह

1.1.4 नौकरी के लिए संघर्ष

1.1.5 मृत्यु

1.1.6 व्यक्तित्व

1.2 कृतित्व

1.2.1 पद्य साहित्य

1.2.1.1 तार सप्तक

1.2.1.2 चाँद का मुँह टेढ़ा है

1.2.1.3 भूरी भूरी खाक धूल

1.2.2 गद्य साहित्य

1.2.2.1 नयी कविता का आत्मसंघर्ष एवं अन्य निबंध (निबंध संग्रह)

1.2.2.2 समीक्षा की समस्याएँ (आलोचनात्मक निबंध)

1.2.2.3 एक साहित्यिक डायरी (डायरी)

1.2.2.4 कामायनी : एक पुनर्विचार (समीक्षा)

1.2.2.5 नये साहित्य का सौंदर्यशास्त्र (निबंध)

1.2.2.6 काठ का सपना (कहानी संग्रह)

1.2.2.7 सतह से उठता हुआ आदमी (कहानी संग्रह)

1.2.2.8 विपात्र (उपन्यास)

1.2.2.9 भारत : इतिहास और संस्कृति (इतिहास)

❒ उपसंहार

अध्याय-1

गजानन माधव 'मुक्तिबोध' का जीवन तथा साहित्यिक परिचय

प्रस्तावना :

प्रत्येक व्यक्ति अपने जीवन की परिस्थितियों और सामाजिक परिवेश से प्रभावित होता है । साहित्य सर्जक इन स्रोतों से विशेष प्रभाव ग्रहण करता है और उनको अपनी रचना प्रक्रिया में लाता है । मुक्तिबोध जैसे जागरूक और सचेतन साहित्यकार के संबंध में यह बात और भी सच है जिसने जीवन की परिस्थितियों को चुनौतियों के रूप में स्वीकार किया है । उनके साथ जूझने का संकल्प किया हो और जिसने सामाजिक परिवेश से अनुभव प्राप्त करके उसे क्रान्तिकारी विचारों के रूप में पकाया हो । इस प्रकार के साहसी, संकल्पशील और जुझारू साहित्यकार के जीवन और परिवेश को विशेष रूप से देखा जाना चाहिए क्योंकि बिना इसके सम्यक् विश्लेषण के उनके सर्जन के प्रति पूर्ण न्याय नहीं हो सकता । मुक्तिबोध वस्तुतः एक ऐसे साहित्यकार हैं जिनके जीवन, व्यक्तित्व परिवेश और सृजन को परस्पर अलग करना प्रायः असंभव है ।

1.1 जीवन परिचय :

1.1.1 जन्म एवं बचपन :

नवलेखन के प्रमुख हस्ताक्षर के धनी गजानन माधव मुक्तिबोध का जन्म 13 नवम्बर 1917 ई. में ग्वालियर (मध्यप्रदेश) राज्य के मुरैना जिले में श्योपुर नामक गाँव में एक महाराष्ट्रीयन परिवार में हुआ । मुक्तिबोध के परदादा वासुदेव जलगाँव (खान्देश) से नौकरी के लिए ग्वालियर राज्य आये और फिर यहीं बस गये ।

मुक्तिबोध के दादा टोंक (राजस्थान) में दफ्तरदार थे और अपने फारसी ज्ञान के कारण मुन्शीजी के नाम से प्रसिद्ध थे । मुक्तिबोध के पिताश्री माधवराव गोपालराव मुक्तिबोध ग्वालियर स्टेट में सब इन्स्पेक्टर थे । कई स्थानों में थानेदार रहने के उपरांत वे उज्जैन में सब इन्स्पेक्टर पुलिस नियुक्त हुए और इसी पद से सन् 1939 ई. में रिटायर हुए । मुक्तिबोध की माता श्रीमती पार्वतीबाई बुंदेलखंड में ईसागढ के एक किसान परिवार से थी । पार्वती नियमित रूप से पूजा-पाठ करनेवाली एक धर्म परायण महिला थीं ।

गजानन माधव मुक्तिबोध के वंश का नाम मुक्तिबोध कैसे पड़ा, इसके विषय में प्रामाणिक रूप से कुछ भी नहीं कहा जा सकता । यद्यपि श्री शमशेर बहादूरसिंह ने लिखा है - "ऋग्वेदी कुलकर्णी ब्राह्मणों में से उनके किसी पूर्वज ने मुग्धबोध नामका कोई आध्यात्मिक ग्रंथ संभवतः खिल्जी काल में लिखा था । जैसे दास बोध है । कालान्तर में उसी पर मुक्तिबोध वंश का नाम चल पड़ा ।"[1] मुक्तिबोध के पिता बहुत कर्तव्यनिष्ठ और ईमानदार व्यक्ति थे, वे दृढ़ और दबंग पुलिस अधिकारी थे । शमशेरजी लिखते है - "पूजापाठी, न्यायनिष्ठ मगर बहुत दबंग और निर्भिक, ड्यूटी के कठोरता से पाबंद रामभक्त, खासी धाक, रिश्वत नहीं ली, न पैसा जमा किया, अपनी आन पर जिये ।"[2]

मुक्तिबोध के पिता इन्स्पेक्टर सम्मानित पद पर थे पर ईमानदार पुलिस अधिकारी होने के कारण उनकी आय अच्छी नहीं थी, अतः परिवार के सदस्यों का भरणपोषण या लालन-पालन मुक्तिबोध के पिता की छोटी आय से कठिनाई से ही हो पाता था । डॉ. माचवे कहते है - "मुक्तिबोध के पिता पुलिस इन्स्पेक्टर थे, सीबा अच्छा था, पर आय अच्छी नहीं थी । घर में कई सदस्य थे । आज भी उनकी माँ का एक चित्र सामने आता है - हाथ में माला लिये, ईधन के लिए बबूल की लकड़ियाँ बीनते हुए ।"[3]

मुक्तिबोध के चार भाई थे - गजानन माधव मुक्तिबोध, वसन्त मुक्तिबोध तथा चन्द्रकान्त मुक्तिबोध और शरतचन्द्र मुक्तिबोध । इनमें श्री शरतचन्द्र मुक्तिबोध मराठी के सुप्रसिद्ध साहित्यकार हैं । सब भाईयों में बड़े होने के कारण मुक्तिबोध का लालन पालन विशेष लाड़ प्यार में हुआ था । माता-पिता के अतिरिक्त मुक्तिबोध पर दादाजी की स्नेहदृष्टि थी; क्योंकि मुक्तिबोधजी के पूर्व दो भाईयों की मृत्यु होने के कारण मुक्तिबोधजी माता-पिता तथा दादा को प्रिय थे । मुक्तिबोध के अनूज जी शरतचन्द्रजी मुक्तिबोध के बचपन का चित्र इन शब्दों में दोहराते हैं - "बड़े भैया बहुत लाड़ प्यार में पले थे । पहले दो लड़के

---

1. चाँद का मूँह टेढ़ा है, मुक्तिबोध, पृ.12
2. वही, पृ.12-13
3. मुक्तिबोध : व्यक्तित्व एवं कृतित्व, जनक शर्मा, पृ.3

गुजर जाने से माता-पिता उनको आँखों से ओझल नहीं होने देते थे । माँ का एक स्मरण यहाँ जोड़ रहा हूँ । तब भाई साहब चार-पाँच साल के थे, पिताजी सब इन्स्पेक्टर पुलिस थे । भाई साहब को थाने के बरामदे में बिठा दिया जाता । एक सिपाही दूसरे सिपाही को पीटने का बहाना करता । दूसरा मानों डरा हुआ भाई साहब की शरण में आता और कहता देखो रज्जन भैया हमें मारा और झूठ-मूठ रोने लगता । भैया फौरन कुर्सी से नीचे कूद पड़ते और पिताजी की छड़ी उठाकर मारनेवाले सिपाही के पिछे दौड पड़ते । वह सिपाही छिपता-फिरता, फिर पकड़ में आ जाता, उनकी मार खाता । वर्दी में लैस पिताजी वह देख अपनी घनी-घनी मूँछों में हँसते रहते ।"[1]

श्री शरतचन्द्रजी मुक्तिबोध आगे लिखते है कि - "बड़े भाई जिद्दी बन गये थे और रोया करते थे, बाहर अर्दली (चपरासी) संभालते और घर पर नानी । रज्जत की गैया आव आव कहकर वह उन्हें घंटो डुलाती रहती । शाम को बैलगाड़ी में बैठाकर उन्हें हवाखोरी के लिए भेजा जाता । सातवें आठवें साल तक उन्हें अर्दली कपड़े पहनाया करते । पिताजी रियासती पुलिस सब इन्स्पेक्टर थे यानी गाँव के राजा थे । इसलिए भाई साहब की खुशामद हर जगह होती थी । जब वे कुछ बड़े हुए तब उन्हें बाबु साहब कहकर पुकारने की माँ ने आज्ञा दे दी । हम लोग भी उन्हें इसी नाम से पुकारते थे । हालाँकि यह 'साहब' नाम मैंने कभी पसंद नहीं किया, लेकिन बड़े होकर भाई साहब ने मेरे नाम के साथ भी 'साहब' जोड़ दिया । हमारे बाबा की (प्रपिता की) अपने पोते पर असीम कृपा थी । उनकी हर छोटी जिद वे पुकी करते थे । बाबा की नौकरी जिस गाँव में होती, वहीं बड़े भैया महीने दो महीने रहने जाया करते और मेवा-मिठाई से उनकी पूजा किये बगैर कभी प्रसन्न नहीं होते थे ।"[2]

1.1.2 शिक्षा-दीक्षा :

"मुक्तिबोध की आरंभिक शिक्षा उज्जैन, विदिशा, अमझरा, सरदारपुर आदि स्थानों पर हुई । पिता के पुलिस सब इन्स्पेक्टर होने के कारण मुक्तिबोध

1. राष्ट्रवाणी : मुक्तिबोध विशेषांक जनवरी-फरवरी, 1965, पृ.288
2. वही ।

की पढाई का सिलसिला टूटता-जूड़ता रहा, फलतः 1930 में उज्जैन में मिड़िल परीक्षा में असफलता मिली जिसे कवि अपने जीवन की पहली महत्त्वपूर्ण घटना मानते है ।"[1] यह परीक्षा बाद में अर्थात् अगले वर्ष उत्तीर्ण करने के कारण मुक्तिबोध प्रशंसा के पात्र बन गये थे । इस प्रशंसा की स्थिति का चित्रण मुक्तिबोध के अनुज श्री शरतचन्द्र मुक्तिबोध ने इस प्रकार किया है - "जब भाई साहब ग्वालियर स्टेट की मिडिल परीक्षा पास हुए तब तो उनकी प्रशंसा करते माता-पिता और आस-पडोस के लोग नहीं थकते थे । मेट्रिक और इंटर तक पहूँचने पर तो पूरे परिवार की प्रशंसा के वे केन्द्रबिंदु बन गये थे । हमारे घर के वे पहले पढ़े लिखे आदमी थे । उनकी सब जरूरत पूरी की जाती थी । हम छोटे भाइयों का अस्तित्व उनके लिये नहीं के बराबर था । भाई साहब अत्यंत भावुक, अंतर्मुख प्रकृति के सरल और उदार थे । उतने ही वे एकदम आत्मकेन्द्री और अपनी हर जिद पर कायम रहनेवाली बन गये थे ।"[2]

मुक्तिबोध बचपने से ही जिज्ञासू थे, राष्ट्र में व्याप्त अव्यवस्था एवं विसंगतियों से वे बैचेन थे । आसपास का वातावरण युवक मुक्तिबोध को अधिक जिज्ञासु बनाता जा रहा था । ये वे दिन थे जब अंग्रेजों के आतंकपूर्ण शासन से युवक वर्ग सजग हो उठा था । एक तरफ क्रान्तिकारी दल थे तो दूसरी ओर गाँधीजी का विचार प्रवाह था । इस स्थिति में मुक्तिबोधजी घुमक्कड़ की भाँति अपने मित्र शांताराम क्षीरसागर के साथ रात को शहर की घुमक्कड़ी को निकल जाते । "बीड़ी का चस्का शायद तभी से लगा । रात का सन्नाटा, पुलिस की सीटियाँ, एक अकूत रहस्य का वातावरण सामंती और उसकी आड़ में कहीं छिपा बन्दूक संभाले, गोरशाही का आतंक । जुर्मो, भीषण अत्याचारों, जधन्य कृत्यों और सजाओं की कहानियाँ उसकी जिज्ञासा को प्रखर करतीं ।"[3]

आगे पढ़ने के मुक्तिबोध इन्दौर आ गये । इन्दौर में मुक्तिबोध का संपर्क प्रभाकर माचवे से हुआ । माचवेजी बतलाते हैं - "एक विशेष प्रवृत्ति थी

1. तार सप्तक, मुक्तिबोध, पृ.39
2. राष्ट्रवाणी : मुक्तिबोध विशेषांक जनवरी-फरवरी, 1965, पृ.288
3. चाँद का मूँह टेढ़ा है, मुक्तिबोध, पृ.12

उनकी जो मुझे बहुत खलती थी, वह थी उनके चित-विचलन की प्रवृत्ति । बात करते-करते एकाएक कह उठते 'अच्छा माचवेजी, हम चल दिये और चल देते थे । जब तक हम उन्हें आवाज दें...दें वे बहुत दुर निकल जाते थे । वे कहीं टिक नहीं पाते थे । चित्त–विचलन की अपनी इस प्रवृत्ति को मुक्तिबोध स्वयं 'स्थानान्तरगामी प्रवृत्ति' (Migration Instict) कहते थे ।"[1]

मुक्तिबोध कॉलेज जीवन से ही साहित्य के अध्ययन में रस लेने लगे, परिणामतः उनकी रचनाएँ पत्रिकाओं में छपने लगीं । किन्तु पिता की चाह कुछ और ही थी । इस विषय में शमशेर बहादुरसिंह का कथन है - "पिता चाहते थे कि बेटा वकील बने, बड़े-बड़े मुकदमें हाथ में ले, खुब कमायें और सामाजिक प्रतिष्ठा में उनसे भी ऊपर उठे । मगर उनकी जिज्ञासाएँ तो उसे शीघ्र ही बौद्धिक हलचलों में खींच ले गयीं - ये तीसरे दशक के अंतिम वर्ष थे, राष्ट्रीय और सांस्कृतिक ऊहापोह के वर्ष । अस्तु, वह कमाना चाहता था ज्ञान धन नहीं, खोज रहा था - सम्मानों की रूढ़ियाँ नहीं, नयीं दृष्टि और अनुभव, नये युग के अनुभव और काव्य की विलक्षण अनुभूतियाँ ।"[2]

1.1.3 विवाह :

मुक्तिबोध के जीवन में अचानक प्रेम अवतरीत हुआ । शमशेर बहादुर सिंह लिखते है - "बीस इक्कीस साल का यह सरल भावुक और जिज्ञासु युवक एक ढहती परंपरा और आनेवाले युग के बीच खड़ा अपने चारों और देख रहा था । उपेक्षितों - दलितों के लिये उसकी सहानुभूति तेजी से बढ़ रही थी कि उसे आमूल हिलाता अचानक उसके जीवन में आया प्रेम । एक जनून गहरा और सुदर और स्थायी ।"[3] मुक्तिबोध के पिता अभिजात स्वभाव के थे । वर्गभेद को बहुत महत्त्व देते थे । शान्ताबाई गरीब परिवार से होने के कारण यही वर्गभेद विरोध का कारण बना । माचवेजी के शब्दों में - "पर मुक्तिबोध ऐसे मनस्वी व्यक्ति थे कि बिना टिकट ही शान्ताबाई से मिलने महू पहूँच जाते । ऐसा करते

---

1. गजानन माधव मुक्तिबोध : व्य. एवं कृति, जनक शर्मा, पृ.8
2. चाँद का मूँह टेढ़ा है, मुक्तिबोध, पृ.13
3. वही ।

हुए सामने आनेवाली कठिनाइयों की कभी चिंता नहीं करते थे । परिवार के निरंतर विरोध से परेशान होकर वे मेरे यहाँ आ गये और एक महीने तक मेरे ही घर पर रहे । माता-पिता इनकी खोज में परेशान होते रहे, फिर बड़ी कठिनाई से समझा-बुझाकर उन्हें वापस घरभेजा गया और आखिर माँ-पिता को यह सम्बन्ध स्वीकार करना पड़ा ।"[1]

मुक्तिबोध के स्वेच्छापूर्वक विवाह के पश्चात जीवन में संघर्ष का सिलसिला प्रारंभ हुआ और अंतिम क्षण तक चलता रहा । श्रीकान्त वर्मा के शब्दों में - "मुक्तिबोध के पिता अभिजात-स्वभाव के थे और मुक्तिबोध ने विवाह किया था अपने घर में काम करनेवाली लड़की के साथ जातिगत भेद न होते हुए वर्गगत भेद का आधिक्य परिवारका मुक्तिबोध के विरुद्ध होने का बहुत बड़ा कारण था ।"[2] 1939 में पिता के नौकरी से रिटायर होने पर विपन्नता का साम्राज्य छा गया; क्योंकि रिटायर होने के बाद की व्यवस्था उन्होंने कुछ नहीं की थी ।

श्री शरतचंद्र मुक्तिबोध के शब्दों में - "इस मामले में वे बड़े भाई साहब पर निर्भर थे । पिताजी के रिटायर होते ही हम महलनुमा क्वार्टर को छोड़कर किराये के छोटे मकान में आ गये । फर्नीचर आदि सब गायब हो गया । अर्दली बगैरह सब चले गये । हम बाकी के तीनों छोटे भाई पढ़ ही रहे थे कि पढ़ाई छोड़ने का मौका आ गया । तनख्वाह बन्द हो गयी । थोड़ी सी पेन्शन थी जो मिलने के लिए काफी समय था । पिताजी छोटी सी जागीर में नौकरी करने चले गये । हम सब लोग भाई साहब की ओर देखने लगे ।"[3]

मुक्तिबोधजी ने अपने 47 वर्ष के जीवन में जमकर संघर्ष किया । क. प. सारथि ने लिखा है - "मुक्तिबोध क्यों अपनी जिन्दगी के अँधेरे पक्ष से ही ग्रस्त थे, संभवतः वह निपट गरीबी थी जो शादी के तुरंत बाद उनके पल्ले पड़ी । गरीबी की इसी छाया ने मुक्तिबोध का मृत्यु तक पिछा किया । नौकरी मुक्तिबोध के लिए भटकाव का रूप लेकर आई थी ।"[4]

---

1. गजानन माधव मुक्तिबोध : व्य. एवं कृति, जनक शर्मा, पृ.6
2. वही, पृ.9
3. राष्ट्रवाणी : मुक्तिबोध विशेषांक जनवरी-फरवरी, 1965, पृ.289
4. गजानन माधव मुक्तिबोध, सं. लक्ष्मणदत्त गौतम, पृ.58

1.1.4 नौकरी के लिए संघर्ष :

मुक्तिबोध के पिता के रिटायर हो जाने के पश्चात परिवार की संपूर्ण जिम्मेदारी उन्हीं पर निर्भर हो गयी । इससे पूर्व ही उन्होंने जुलाई 1938 में मध्यप्रदेश में ही बड़नगर के एक मिडिल स्कूल में अध्यापन कार्य प्रारंभ किया । मुक्तिबोध जी ने चार मास भी कार्य नहीं किया था कि डॉ. नारायण विष्णु जोशी, डॉ. प्रभाकर माचवे से उनका परिचय हुआ । डॉ. नारायण विष्णु जोशी ने उन दिनों गाँधी के प्रेरक विचारों से शुजालपुर में 'शारदा शिक्षा-सदन' की नींव रखी । इस संस्था का वातावरण राष्ट्रीय देशभक्तियुक्त था । इस कार्य के लिए कर्मठ सहयोगी की आवश्यकता थी, मुक्तिबोधजी ने हर्षित मन से, वेतन की चिंता न करते हुए यह कार्य स्वीकार किया । इस सम्बन्ध में जोशीजी लिखते है - "माचवेजी ने जब उन्हें मेरा अधिक परिचय दिया तो मुक्तिबोधजी बहुत प्रसन्न हुए । वे तुरन्त मेरे साथ ही शुजालपुर मंडी चलने को तैयार हो गये । मैंने उनसे कहा कि फिलहाल उन्हें माइवार तीस रुपया से अधिक वेतन नहीं दिया जा सकता और वह भी मंडी की व्यवस्थापिका कमेटी उसे मंजूर कर ले तब; किन्तु मुक्तिबोधजी का मुझ पर कुछ ऐसा विश्वास हो गया था कि उन्होंने इन बातों पर कतई ध्यान नहीं दिया और उसी रात सामान भरकर मेरे साथ हो लिये ।"[1]

कुछ दिनों बाद मुक्तिबोध को शुजालपुर मंडी छीड़कर उज्जैन जाना पड़ा; क्योंकि विवाह हो गया था और घर के लोग नव-विवाहित वधू को घर रखना चाहते थे । अतः मुक्तिबोध ने अगस्त 1939 में उज्जैन में दोलतगंज मिडिल स्कूल में नौकरी शुरु की । लेकिन साल भर बाद फिर अक्टूबर 1941 की एक सुबह डॉ. नारायण विष्णु जोशी के पासे शुजालपुर पहूँचे और वहीं नौकरी के प्रस्ताव पर डॉ. नारायण विष्णु जोशी धर्म संकट में पडे क्योंकि मुक्तिबोध के स्थान पर नेमीचंद जैन आ गये थे । डॉ. नारायण विष्णु जोशी लिखते है - "....एक दिन सुबह अचानक कवि मुक्तिबोध हाथ में सूटकेश लटकाये मेरे सामने आ खड़े हुए । बालकों जैसी सरलता से कहने लगे, मैं अब फिर यहीं रहना चाहता हूँ । मुझे पाठशाला में नियुक्त कीजिए । पाठशाला की आर्थिक

1. राष्ट्रवाणी : मुक्तिबोध विशेषांक जनवरी-फरवरी, 1965, पृ.294

स्थिति उस समय बहुत कमजोर थी । अतः यद्यपि मुक्तिबोधजी के आ जाने से हम सबको हर्ष हुआ, तथापि मुक्तिबोधजी के आ जाने से हम सबको हर्ष हुआ, तथापि उनकी विमुक्ति प्रस्ताव ने मुझे उलझन में डाल दिया । नेमी बाबू का भी अनुरोध था कि किसी प्रकार मुक्तिबोधजी को शुजालपुर मंडी में ही रखा जाये । मुक्तिबोधजी को सब जानते थे तो थी ही । अतः जब मैंने कमेटी के सदस्यों के सामने कवि की नियुक्ति का प्रस्ताव रखा, तब बिना किसी हिचकिचाहट के उन्होंने तुरंत उसे मंजूर कर लिया ।"[1]

सन् 1942 के आंदोलन में सब एकाएक समाप्त हो गया । विरोधियों ने 'शारदा शिक्षा सदन' पर हमला किया । राजनैतिक कारणों से स्कूल बंद कर दिया । संस्था बंद होने से कवि - मित्रों का संगठन बिखर गया । मुक्तिबोध उज्जैन चले गये । नेमीचंद जैन के कलकता जाने पर मुक्तिबोध की कठिनाई भारतभूषण अग्रवाल की मालूम हुई । अतः उन्होंने मुक्तिबोध को बुला लिया । भारतभूषण अग्रवाल कहते है - "मुक्तिबोधजी एक महिने तक उनके साथ कलकत्ता रहे, लेकिन उनके साथ कठिनाई यह थी कि या तो वे अध्यापक बने या संपादक, व्यावसायिक संस्था में कार्य करना उन्हें पसंद नहीं था और कलकत्ता की स्थिति उन दिनों अध्यापक या संपादन कार्य के लिए अनुकूल नहीं थी ।"[2] अतः मुक्तिबोध उज्जैन लौट आये ।

सितम्बर 1942 में मुक्तिबोध उज्जैन मिडिल हाइस्कूल में अध्यापक ही गये । अध्यापन कार्य के साथ ही साथ मुक्तिबोधजी ने सन् 1942 के मध्य में उज्जैन में प्रगतिशील संघ की स्थापना की । सन् 1944 के अंत में मुक्तिबोध ने इन्दौर में राहुलजी की अध्यक्षता में फोसिस्ट विरोधी लेखक कोन्फ्रेन्स का भी आयोजन किया ।

1945 के मध्य में वायुसेना में भर्ती होने के लिए बेंग्लोर गये, लेकिन एक महीने बाद ही वहाँ से वापस लौट आये । 1945 में ही उज्जैन से बनारस गये और वहाँ 'हँस' के संपादन में लगे । उनकी काशी प्रवास सुखद नहीं रहा ।

1. राष्ट्रवाणी : मुक्तिबोध विशेषांक जनवरी-फरवरी, 1965, पृ.294
2. गजानन माधव मुक्तिबोध : व्यक्तित्त्व एवं कृति, जनक शर्मा, पृ.6

इसका संकेत उनके अपने मित्र श्री जगदीश नारायण वोरा के लिखे पत्र से मिलता है - "....मेरा व्यक्तिगत प्रभाव यदि है तो लेखक की हैसियत से हो सकता है । संपादकीय विभाग से मेरा सम्बन्ध नहीं सा है । दूसरी भी अन्य बाधाएँ हैं । मुख्य बाधा संपादकों की ही समझिये । मेरी चीजें अब भी नहीं छपती हैं और उनके अनुकूल चीजें लिखकर रूपये कमाना नहीं चाहता ।"[1] परिस्थितियों से विवश होकर मुक्तिबोध बनारस से जबलपुर आ गये । नवम्बर 1964 से डी. एन. जैन हाईस्कूल में अध्यापक हो गये । मुक्तिबोधजी ने दैनिक 'जय-हिन्दी' में भी कुछ समय तक काम किया । फिर भी स्थिति कुछ जम नहीं सकी और अन्ततः उनको जबलपुर छोड़ना पड़ा ।

अक्टूबर 1948 में मुक्तिबोध जबलपुर छोड़कर नागपुर आ गये । यहाँ यह सचिवालय के सूचना और प्रकाशन विभाग में नियुक्ति पा गये । कुछ समय पश्चात् यह नौकरी भी छोड़नी पड़ी । डॉ. प्रभाकर माचवे के प्रयत्न से मुक्तिबोध की नागपुर रेड़ियो स्टेशन के समाचार विभाग में न्यूज रीडर के रूप में नियुक्ति हो गई; किन्तु उनका ट्रान्सफर भोपाल रेडियो स्टेशन होने पर उन्होंने विरोध किया, परिणामतः यह हुआ कि रेड़ियो के अधिकारियों से उनका झगड़ा हो गया, जिसके कारण उन्हें नौकरी छोड़नी पड़ी । श्री भरतभूषण अग्रवाल के शब्दों में इस घटना का उल्लेख इस प्रकार है - "सन् 1954 में मुक्तिबोध नागपुर आकाशवाणी में न्यूज रीडर के रूप में नियुक्त हुए । भोपाल राजधानी बनने पर न्यूज युनिट को भी नागपुर से भोपाल ट्रान्सफर के आदेश दे दिये गये । मुक्तिबोध नागपुर नहीं छोड़ना चाहते थे - इसलिए आरंभ में उन्होंने इस ट्रांसफर का विरोध किया । इस बात पर रेडियो के अधिकारियों से उनका झगड़ा हो गया जिसके कारण अंत में उन्हें रेडियो की नौकरी छोड़नी पड़ी ।"[2]

1956 में मुक्तिबोधजी 'नया खून' का संपादन कार्य करने लगे । यहीं से उनका पत्रकार जीवन आरंभ हुआ । 'नया खून' में अधिक काम और बहुत अधिक श्रम ने मुक्तिबोध का स्वास्थ्य चौपट कर दिया । वे किसी अच्छी नौकरी

---

1. राष्ट्रवाणी : मुक्तिबोध विशेषांक जनवरी-फरवरी, 1965, पृ.282
2. गजानन माधव मुक्तिबोध : व्यक्तित्त्व एवं कृति, जनक शर्मा, पृ.19-20

के तलाश में थे । इससे पूर्व ही उन्होंने एम.ए. बड़ी कठिनाईयों से उत्तीर्ण दिया था ।

जुलाई, 1958 में श्री शरद कोठारी, अटल बिहारी दूबे तथा प्रमोदकुमार वर्मा के सहयोग से राजानंद गाँव के 'दिग्विजय कॉलेज' में प्राध्यापक के रूप में मुक्तिबोध की नियुक्ति हो गई । इस प्रकार मुक्तिबोध को नागपुर के जीवन से मुक्ति मिली क्योंकि नागपुर का जीवन विपदा में व्यतीत हुआ था । इसका जिक्र उन्होंने अपने मित्र श्रीकान्त वर्मा को लिखे पत्र में किया है - "वैसे मैं नागपुर एकदम कैसे छोड़ूँ ? बाल बच्चेदार आदमी होने के अलावा मेरे माता-पिता भी हैं और मुख्यतः कर्ज लदा है । इस कर्ज को अदा कैसे करू - इसी की धुन में रहता हूँ । पठानों से कर्ज लेते लेते जब हिन्दुओं से लेने लगा तो पाया कि वे पठानों से भी बुरे होते हैं । बड़े पाजी, कुछ न पूछो । रेडियो की नौकरी की लगभग एक चौथाई रकम ब्याज में जाती थी । अभी मैंने सिर्फ सो रूपयें चुकाये हैं । कुछ ही महीनों में और दूँगा । आगे चलकर मैं इन लोगों पर उपन्यास लिखुँगा ।"[1]

सन् 1958 में प्राध्यापक पद पर नियुक्त होने पर जो आराम मिला या सुखद वातावरण का लाभ हुआ उसका जिक्र मुक्तिबोध ने अपने मित्र श्री वीरेन्द्रकुमार जैन को करते हुए लिखा है - "जिन्दगी में काफी ठुकाई-पिटाई के बाद, अब राजानांद गाँव आ पहूंचा हूँ । यहाँ का कॉलेज नया-नया है । सभी लोग सहयोग की भावना से प्रेरित है । काफी आराम से हूँ । पिछली कशमकश और मानसिक तनाव अब यहाँ नहीं है इसलिए यहँ का वातावरण सुखद है । सोचता हूँ राजानाँद गाँव मुझे लाभप्रद होगा ।"[2] मुक्तिबोधजी ने राजानंद गाँव में ही 'ब्रह्मराक्षस', 'अंधेरे में' जैसी महत्वपूर्ण कविताओं की रचना की है । मूल रूप से मुक्तिबोध को हिलाने का कार्य उनकी 'भारत इतिहास और संस्कृति' पुस्तक ने किया । उक्त पुस्तक के लिए मुक्तिबोध ने कड़ी मेहनत की थी । बड़े अफसोस से कहना पड़ रहा है कि इसे सरकार द्वारा गैरकानूनी घोषित किया गया । 20 सितम्बर 1962 में पुस्तक पर प्रतिबंध का समाचार छापा गया ।

---

1. गजानन माधव मुक्तिबोध : व्यक्तित्त्व एवं कृति, जनक शर्मा, पृ.24
2. राष्ट्रवाणी : मुक्तिबोध विशेषांक जनवरी-फरवरी, 1965, पृ.281

1.1.5 मृत्यु :

वैसे मुक्तिबोध का स्वास्थ्य तो नागपुर से ही बिगड़ गया था । निरंतर संघर्षों से जूझते हुए वे आगे बढ़ रहे थे कि 7 फरवरी, 1964 को एकाएक गिर पड़े और पक्षघात का शिकार हो गये । मुक्तिबोध की स्थिति में सुधार न देख उनके साहित्यिक मित्रों हरिशंकर परसाई, ज्ञान प्रमोद वर्मा आदि ने अपने स्तर पर कार्य किया । इसके पश्चात् साहित्यिक वर्ग द्वारा मध्यप्रदेश के मुख्यमंत्री को तार भेजकर मुक्तिबोध की चिकित्सा शासकीय स्तर पर करवाई गई । अंततः साहित्यिक मित्रगण प्रधानमंत्री की चिकित्सा का प्रबंध दिल्ली में हो गया । स्थिति में कुछ सुधार दिखाई दिया लेकिन स्थिति सुधरी नहीं बिगड़ती ही गयी और डॉक्टरों ने जवाब दे दिया । जैसे जीवन के साथ वे संघर्ष करते रहे वैसे ही मृत्यु के साथ भी लगातार सात महीने संघर्ष करते, जूझते हुए, असाध्य कष्ट भोगते रहे । अंत में अचेतनावस्था में 11 सितम्बर, 1964 को रात के 9 बजकर 5 मिनिट पर तूफानों को हँसते हुए झेलनेवाला पुरूष मृत्यु से हार गया । मुक्तिबोध भूलोक को छोड़ चले गये, बंधु, रिश्तेदार, मित्रगण देखते रह गये ।

1.1.6 व्यक्तित्त्व :

मुक्तिबोध असाधारण प्रतिभा के धनी थे । उनका व्यक्तित्व सरल था । मुक्तिबोध के व्यक्तित्त्व की थाइ लेना, समझना, आकलन करना सरल नहीं है । वैसे व्यक्तित्त्व का साँचा वह है जिसमें रचनाकार का संपूर्ण जीवन ढलता है । व्यक्तित्त्व निर्धारण की प्रक्रिया निरंतर चलती रहती है । उसके अंतर्गत बचपन के संस्कार की छाप पारिवारिक संस्कार, नैतिक मूल्य का मूल्यांकन होता है । मुक्तिबोध के बाहरी व्यक्तित्त्व की झाँकी निम्न रूप से है -

“लम्बा ड़ील, दुबला शरीर । हड्डी की प्रधानता से माँस का भाग दबा-दबा हाथ की अंगुलियाँ और हथेली बिल्कुल सी लचीली और मुलायम । छाती में इतने बाल की जंगल । चेहरे में सूची भेद, आँखे बड़ी-बड़ी जिनमें भावुकता और भावावेश का टूर्नामेन्ट । माथा खूब फैला हुआ भाग्यवान के साइनबोर्ड जैसा । सांवली छवि में त्वचा स्वभावतः रंग व्यक्त होने के साथ मानव की छाती पर पड़नेवाली चोटों का व्यापक रंग चढ़ा था । समुन्दर का गर्जन साथ में सिमटा-

सिमटा था, जो तब मालूम होता जब अनाचार, अशोभन और असंस्कृत के प्रति उनके नथुने फड़क उठते थे ।"[1] यह है कि मुक्तिबोध का बाहरी व्यक्तित्त्व जो सौन्दर्य की परिभाषा में नहीं आता किन्तु उन्होंने अपनी पुरानी डायरी के पृष्ठ पर सौन्दर्य पर विचार करते हुए एक स्थान पर प्रसंगवश लिखा है - "I am not beautiful and hansome." बाह्य स्थिति से शुष्क दिखाई देनेवाले मुक्तिबोध का आंतरिक व्यक्नितत्व आश्चर्यचकित कर देनेवाला था ।

मुक्तिबोध स्वयं लिखते है - "मन एक रहस्यमय लोक है । उसमें अंधेरा है । अंधेरे में सीढ़ियाँ गीली है । सबसे निचली सीढ़ी पानी में डूबी हुई है । वहाँ अथाह काला जल है । उस अथाह जल में स्वयं को ही डर लगता है । इस अथाह जल में कोई बैठा है । वह शायद मैं ही हूँ । अथाह और एकदम स्याह-अंधेरे पानी की सतह पर चाँदनी का चमकदार पट्टा फैला हुआ है, जिसमें मेरी ही आँखे चमक रही हैं मानों दो नीले मूँगियाँ पत्थर से उदीप्त हो उठे हों ।"[2]

अतः हम यह कह सकते है कि मुक्तिबोध के व्यक्तित्त्व से अनजान रहकर हम उनके काव्य से आत्मीय संबंध स्थापित नहीं कर सकते । मुक्तिबोध का जीवन अत्यंत निष्कपट, निश्चल एवं सुगम था किन्तु उनका व्यक्तित्त्व उनकी रचनाओं की तरह बहुआयामी था । एक-एक पर्त को हटाकर प्रवेश करने पर एक-एक को पार करने पर हम एक ऐसे लोक में पहूँचेगे जहाँ सहजता, सुगमता तो है किन्तु कोरी भावुकता नहीं । यह संपूर्ण बोध मुक्तिबोध के व्यक्तित्त्व का उनकी कविताओं के झरोखें से स्पष्ट होता है । व्यक्तित्त्व निर्धारण में बाल्यकाल एवं पारिवारिक परिवेश का भी महत्त्व होता है । बालक मुक्तिबोध के व्यक्तित्त्व निर्माण में पारिवारिक संस्कारों का भी अत्यधिक महत्त्व है, इस संबंध में भी ध्यान देना आवश्यक है । स्वयं मुक्तिबोध के शब्दों में -

"जो परिवार के मूल्य होंगे वे जीवन में होंगे ही और वे साहित्य में भी उतरेंगे । हाँ यह सही है कि साहित्य में आकर उनकी रूपरेखा बदल जायेगी

1. वीणा, नवम्बर, दिसम्बर 1964 श्री गौरीशंकर लहरी, पृ.6
2. एक साहित्यिक की डायरी, मुक्तिबोध, साँतवाँ, पृ.4

किन्तु उनके तत्व कैसे बदलेंगे जिन्दगी के जो रूप है, रवैये है, जो एटीट्यूज हैं वे साहित्य में अवश्य प्रकट होंगे ।"[1]

मुक्तिबोध का जीवन संघर्षों का एक अटूट सिलसिला था । वे निरंतर आंतरिक और बाह्य स्तर पर संघर्षो से जूझते रहते थे, चाहते तो जीवन के इन संघर्षो से ऊबर सकते थे, पर इसके लिए उन्हें अपने सिद्धांतों की हत्या करनी पड़ती जो उन्हें कभी स्वीकार्य नहीं थी । वे अपने सिद्धांतो पर चट्टान की तरह अटल थे । इसी कारण मुक्तिबोध को संघर्ष हिला नहीं पाया । तोड़ नहीं सका, बल्कि इसने उन्हें और अधिक मजबूत और दृढ़ बना दिया जिससे कि वे निरंतर आघात झेलते रह सकें, इसीलिए तो उनका व्यक्तित्त्व किसी मजबूत किले सा है - "कई लड़ाइयों के निशान उस पर हैं । गोलों के निशान हैं, परस्तर उखड़ गया है, रंग समय ने धो दिया है मगर जिसकी दिवारें गहरी नींव में जमी हैं और वह सिर ताने गरिमा के साथ खड़ा है ।"[2]

मुक्तिबोध स्वाभिमानी थे । इतना ही नहीं मुक्तिबोध में बहुत अधिक मानवीयता थी । वे प्रत्येक मनुके पुत्र पर विश्वास करना चाहते थे । प्रत्येक को ही सलाम, राम-राम करने की इच्छा उनकी थी उन्हें भ्रम होता कि प्रत्येक पत्थर में चमकता हीरा है, हर छाती में आत्मा अधीरा है... प्रत्येक वाणी में महाकाव्य पीड़ा है, और मुक्तिबोध पलभर में सबसे गुजरना चाहते हैं, प्रत्येक उर में तिरना चाहते हैं और इस तरह स्वयं को ही दिये-दिये फिरते है :

मुक्तिबोध स्वाभिमानी थे । इतना ही नहीं मुक्तिबोध में बहुत अधिक मानवीयता थी । वे प्रत्येक मनु के पुत्र पर विश्वास करना चाहते थे । प्रत्येक को ही सलाम, राम-राम करने की इच्छा उनकी थी उन्हें भ्रम होता कि प्रत्येक पत्थर के चमकता हीरा है, हर छाती में आत्मा अधीरा है... प्रत्येक वाणी में महाकाव्य पीड़ा है, और मुक्तिबोध पलभर में सबसे गुजरना चाहते हैं, प्रत्येक उर में विरना चाहते हैं और इस तरह स्वयं की ही दिये-दिये फिरते है :

---

1. एक साहित्यिक की डायरी, मुक्तिबोध, साँतवाँ, पृ.88
2. धर्मयुग, 8 नवम्बर 1964, पृ.33

"धुँधल के में खोये इस रास्ते पर आते जाते दिखते हैं । लटधारी बुढ़े से पटेलबाबा । ऊँचे से किसानदादा, वे दाढ़ीधारी देहाती मुसलमान चाचा और बझा उठाते हुए बहनें बेटियाँ... । सबको ही सलाम करने की इच्छा होती है । सबको राम-राम करने को चाहता है जी । आँसुओं से तर होकर प्यार के । (सबका प्यारा पुत्र बन) सभी ही का गीला-गीला, मीठा-मीठा आशीर्वाद पाने के लिए होती अकुलाहट ।"[1]

मुक्तिबोध में मानवीय आस्था और करुणा फूट-फूटकर भरी है । उन्होंने जन-जन की पीड़ा को समझा और निकट से अनुभव किया है - इसलिए उन्होंने अपनी पीड़ा को एक व्यापक स्तर पर भोगा और अनुभव किया है । अपनी व्यथा में जन-जन की व्यथा को जिया है । उन्होंने अनुभव किया और भोगा वैसा ही अपनी संपूर्ण ईमानदारी के साथ उसे अपनी कविताओं में व्यक्त किया हैं ।

मुक्तिबोध को कष्टभरी जिन्दगी ही अधिक प्रिय थी । उसको सुविधाजनक बनाने के लिए किसी प्रकार की शर्त उन्हें बिल्कुल स्वीकार नहीं थी -

"नामंजूर । उसको जिन्दगी की शर्म की सी शर्त ।
नामंजूर ।
हठ इनकार का सिरतान... खुद मुखतार ।"[2]

मुक्तिबोध का व्यक्तित्त्व एक ब्रह्मराक्षस का व्यक्तित्त्व है, जो निरंतर अपनी देह घिसता है लेकिन फिर भी मैल-फिर मैल रह जाता है -

"घिस रहा है देह ।
हाथ के पंजे, बराबर ।
बाँह छाती मुँह ।
छपाछप । खूब करते साफ । फिर भी मैला फिर भी मैला ।"[3]

---

1. चाँद का मुँह टेढ़ा है, मुक्तिबोध, पृ.98
2. वही, पृ.30
3. वही, पृ.36

वास्तव में मुक्तिबोध की ब्रह्मराक्षस कविता उनके व्यक्तित्त्व एवं जीवन को सही रूप में व्यक्त करती है । मुक्तिबोध का यह प्रतीक उनके व्यक्तित्त्व एवं जीवन का प्रतीक है । यह एक सशक्त व्यक्तित्त्व था जो परिस्थितियों के सामने झुका नहीं, टूट भले ही गया ।

मुक्तिबोध ने असफलता, निराशा, उपेक्षा और कटूता का जीवन जिया है । वे जहाँ भी जिस भी क्षेत्र में गये इनते अतिरिक्त उन्हें कुछ नहीं मिला, उनका क्षोभ बढ़ता गया । परिवार से निर्वासन, साहित्यिक क्षेत्र में निर्वासन, उसका जीवन 'आत्मनिर्वासन' का पर्याय बन गया । यद्यपि मुक्तिबोध सफलता के रास्ते से परिचित थे, लेकिन उन रास्तों पर चलना उनके लिए संभव नहीं हो सका । वे जीवन की सीधी-सीधी पटरी चलते थे जबकि सफलता प्राप्त करने के लिए चक्करदार, घुमावदार जीनों पर चढ़ना पड़ता था -

"असफलता का धूल कचरा ओढ़े हूँ ।
इसलिए कि वह चक्करदार जीनों पर मिलता है ।
छल-छद्‌म धनकी ।
किंतु मैं सीधी-सीधी पटरी-पटरी दौड़ा हूँ ।
जीवन की ।"[1]

मुक्तिबोध के कृतित्व में अभिव्यक्त जीवन के अध्ययन से दृष्टिगोचर होता है कि रचनाकार का व्यक्तित्त्व उसके कृतित्व में घूल मिल गया है, अतः रचनाकार के व्यक्तित्त्व निर्माण की प्रक्रिया को जाने-समझे बिना उसके कृतित्व को परखने का कार्य अंधो की भांति होगा । प्रभाकर माचवे ने ठीक ही कहा है - "मुक्तिबोध का व्यक्तित्त्व इतना शक्तिशाली था कि पागल कर देनेवाली सभी परिस्थितियों के होते हुए भी वह पागल नहीं हुआ और अपने निजी कष्ट की बात को किसी भी मित्र से चर्चा तक नहीं की ।"[2]

---

1. चाँद का मुँह टेढ़ा है, मुक्तिबोध, पृ.121
2. गजानन माधव मुक्तिबोध : व्य. एवं कृति, जनक शर्मा, पृ.66

1.2 कृतित्व :

मुक्तिबोधजी का साहित्य अधिक न होते हुए भी हिन्दी साहित्य जगत के लिए अधिक तथा अनंत है । मुक्तिबोध ने सन् 1935 से नियमित रूप से काव्य रचना आरंभ कर दी थी । विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में जैसे - 'वाणी', 'धर्मयुग', 'हिन्दुस्तान', 'कर्मवीर', 'वसुधा', 'समता', 'कमला' आदि में उनकी रचनाएँ प्रकाशित होने लगी थीं । अतः उनका काव्य रचनाकाल 1935 से ही आरंभ होता है, जो मृत्युपर्यंत निरंतर चलता रहा । मुक्तिबोध का लेखनकाल 1935 से होने के कारण हिन्दी साहित्य के इतिहास में यह काल अत्यंत महत्वपूर्ण काल था । मुख्य रूप से 1935-40 तक छायावाद का उत्कर्ष का काल था । इस समय छायावाद प्रगति की चरम सीमा पर था । इसी समय छायावादी कवियों की श्रेष्ठतम कृतियाँ साहित्य जगत के सम्मुख आयी । जयशंकर प्रसाद की 'कामायनी', 'पंत की गुंजन' और 'ज्योत्सना', निराला की 'अनामिका' और 'गीतिका' तथा महादेवी वर्मा के 'सान्ध्य गीत', 'रश्मि', 'नीरजा' आदि काव्य संग्रह इसी काल में प्रकाशित हुए ।

1935 का काल, छायावाद की उत्कर्षावस्था का समय था, किन्तु दुसरी ओर इस काव्य के विरूद्ध प्रतिक्रियात्मक स्वर भी उठने लगे थे । छायावादी काव्य वास्तविक जीवन से विमुख होता जा रहा था - एक प्रकार से कविता जीवन के यथार्थ से विच्छिन्न हो गयी थी । इस प्रकार मुक्तिबोध की रचना की शुरुआत 'संधिस्थल' से ही प्रारंभ होती है । अर्थात् एक ओर छायावादी काव्य परंपरा का संत और दूसरी ओर प्रगतिशील काव्य परंपरा का आरंभ हो रहा था। स्वयं मुक्तिबोध 'तार सप्तक' के वक्तव्य में लिखते है - "मालवा के विस्तीर्ण मनोहर मैदानों से घूमती हुई क्षिप्रा की रक्त-भव्य आँखे और विविध-रूप वृक्षों की छायाएँ मेरे किशोर कवि की आद्य सौन्दर्य-प्रेरणा थी । उज्जैन नगर के बाहर का यह विस्तीरण निसर्ग लोक उस व्यक्ति के लिए उसकी मनोरचना में रंगीन आवेग ही प्राथमिक है, अत्यंत आत्मीय था ।"[1]

---

1. तार सप्तक, मुक्तिबोध (वक्तव्य) पृ.5

मुक्तिबोध का स्वर भी छायावादी रोमानी स्वर सा लगता है । छायावादी परंपरा व्यक्तिवाद और कल्पना को लेकर चल रही थी । मुक्तिबोध की कवितओं में छायावादी संस्कार की स्पष्ट झलक मिलती है, किन्तु आगे हमें मुक्तिबोध की कविता में कल्पना के स्थान पर जीवन के यथार्थ को व्यक्त किया हुआ दृष्टिगोचर होता है । मुक्तिबोध प्रगतिवादी परंपरा से प्रभावित हुए दिखाई देते हैं ।

अतः सन् 40-41 के आस-पास मुक्तिबोध के काव्य का स्वर बदलने लगा । छायावाद का कुहासा मस्तिष्क से हटने लगा और इसका स्थान एक वैज्ञानिक और तेजस्वी दृष्टिगोचर ने ले लिया । यह दृष्टिकोण था मार्क्सवाद का, सन् 40 के पश्चात् हमें उनकी कविताओं में मार्क्सवादी स्वर सुनाई देता है । मुक्तिबोध छायावादी पथ से हटकर मार्क्स के विकास पथ पर अग्रसर होते हैं । अंततः मुक्तिबोध के जीवन के अंतिम समय में गहन चिन्ताधारा दृष्टिगोचर होती है । उनकी कविताएँ दीर्घ से दीर्घतर होती चली गयी है । छायावादी और प्रगतिवादी इन दोनों के बीच के द्वन्द्व से मुक्तिबोध की कविता बनती है ।

मुक्तिबोध की प्रकाशित रचनाओं का विवरण निम्नलिखित है :

1.2.1 पद्य साहित्य :

मुक्तिबोध मूलतः जनवादी कवि थे । उन्होंने अपने जीवन में अधिक कविताएँ ही लिखी किन्तु उनकी सभी रचनाएँ प्रकाशित नहीं हुई । इतना ही नहीं उनकी कुछ रचनाएँ नष्ट भी हो गयीं । प्रथमतः मुक्तिबोधजी 'तार सप्तक' के कवि के रूप में हिन्दी साहित्य में प्रविष्ट हुए । इस प्रकार हिन्दी साहित्य जगत मुक्तिबोध को जानने लगा । इसके पश्चात 'धर्मयुग', 'हिन्दुस्तान', 'कर्मवीर', 'समता' आदि पत्रिकाओं में मुक्तिबोधजी की कविताएँ प्रकाशित हुई । किन्तु बड़े खेद के साथ कहना पड़ रहा है कि उनके सम्मुख उनका कोई काव्यसंग्रह प्रकाशित न हो सका । उनकी मृत्यु के पश्चात् श्रीकान्त वर्मा ने सन् 1964 में मुक्तिबोध की रचनाओं का संग्रह कर 'चाँद का मुँह टेढ़ा है' नामक शीर्षक से प्रकाशित किया । इन संग्रहों के अतिरिक्त उनकी हस्तलिखित कविताएँ, पांडुलिपियाँ भी मिली जो पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हुई, कुछ शेष रह गयीं । इन्हीं का संग्रह हमें 'भूरी-भूरी खाक धूल' के अंतर्गत 1980 में संकलित किया

हुआ दिखाई देता है । समूचे आधुनिक हिन्दी काव्य के इतिहास में मुक्तिबोध ही अकेले ऐसे कवि हैं जिन्होंने कविता को नया आयाम और सैद्धांतिक दृष्टि प्रदान की है । इसी कारण वे अपने समकालीन कवियों से पृथक व्यक्तित्व के रूप में दृष्टिगोचर होते हैं । साथ ही साथ उनकी कविताएँ, लंबी और दुरुह होने के पश्चात् भी पाठकों के लिए आत्मसात होती है ।

- तार सप्तक
- चाँद का मुँह टेढ़ा है
- भूरी- भूरी खाक धूल

1.2.1.1 तार सप्तक :

मुक्तिबोध सचेत, सजग तथा मानवीय कवि हैं, साथ ही साथ वे आलोचक भी है । सन् 1935 से 40 तक की उनकी कविताएँ छायावाद और प्रगतिवाद की संधिरेखा की कविताएँ हैं इसी कारण मुक्तिबोध का छायावादी काव्य परंपरा के प्रति झुकाव दिखाई पड़ता हैं । इसे हमें स्वीकार करना ही पड़ता है । मुक्तिबोध रोमांटिक प्रकृति के थे और रोमान्स को वह मनुष्य का प्राकृत गुण मानते थे । साहित्य के दृष्टिकोण नामक एक लेख या निबंध में उन्होंने लिखा है - "मनुष्य के स्वभाव में क्या रोमान्स का स्थान नहीं है ? रोमान्स तो प्रवाहमान जीवनधारा का Self assertion है । जिस तरह वसंत ऋतु वृक्षों के अंदर तरुण ओज फूल पत्तियों का सृजन करता है वैसे ही तरुण ओज स्त्री पुरूष के अंतर्जगत में रोमान्स उत्पन्न करता है, उनके स्वास्थ शरीर में वह नवजीवन बनकर बहने लगता है ।"[1]

'तार सप्तक' में मुक्तिबोधजी की अठारह कविताएँ संकलित है । इन कविताओं को देखने के पश्चात् स्पष्ट हो जाता है कि मुक्तिबोधजी पर छायावादी काव्य परंपरा का गहरा प्रभाव है । छायावाद के सौन्दर्य एवं प्रेमपक्ष के साथ ही कल्पना उनके भी अपनी रचना में महत्व दिया है । इन प्रारंभिक कविताओं में उनके अन्वेषी मन का संकेत मिलता है । उनकी तार सप्तक के अंतर्गत संकलित महत्वपूर्ण कविताएँ निम्नलिखित हैं -

---

1. एक साहित्यिक की डायरी, मुक्तिबोध, पृ.33

'आत्मा के मित्र मेरे', 'दूरतारा', 'खोल आँखे', 'अशक्त', 'मेरे अंतर', 'मृत्यु और कवि', 'नूतन अहं', 'विहार', 'पूंजीवादी समाज के प्रति', 'नाश देवता', 'सृजन क्षण', 'अन्तर्दर्शन', 'आत्म-संवाद', 'व्यक्तित्व और खंडहर', 'मैं उनका ही होता', 'हे महान', 'एक आत्म-वक्तव्य' आदि कविताओं में कवि का अन्तद्वन्द्व मुखरित हुआ दिखाई देता है ।

1.2.1.2 चाँद का मुँह टेढ़ा है :

सन् 1964 में श्रीकान्त वर्माजी के यत्न से मुक्तिबोध का प्रथम संकलन प्रकाशित हुआ जिसके अंतर्गत मुक्तिबोध की परिपक्व तथा प्रौढ़ रचनाएँ दृष्टिगोचर होती है । इस काव्यसंग्रह में मुक्तिबोध की अट्ठाईस कविताएँ संग्रहीत की गई है । मुक्तिबोध ने जीवन के ठोस यथार्थ को चित्रित कर अँधेरे पक्ष को उजागर किया है ।

श्रीकान्त वर्मा के शब्दों में - "किसी ओर कवि की कविताएँ उसका इतिहास हैं । जो इन कविताओं को समझेंगे उन्हें मुक्तिबोध को किसी रूप को समझने की जरूरत नहीं पड़ेगी ।"[1] मुक्तिबोध ने समकालीन स्थिति को अपने काव्य में प्रतीक रूप में स्पष्ट किया है ।

मुक्तिबोध और उनकी कविता के बारे में आलोचकों-कवियों के अलग-अलग मत है । डॉ. कान्तिकुमार ने लिखा है कि - "मुक्तिबोध के कवि-कर्म की तुलना हम लोहार की उस लोहशाला से कर सकते हैं जहाँ भट्ठी में भरे अंगारे दहक रहे है; चिनगारियाँ उड़ रही हैं, धौकनी चल रही है, निहाई पर दहकता हुआ लोहखंड संडसी से पकड़कर हथौड़ी से पीटा जा रहा है और निश्चित आकार में ढाला जा रहा है । मुक्तिबोध कविता के लुहार है और उनका कविता संसार जीवन की लोहारशाला है ।"[2]

शमशेर बहादुर सिंह का मत है कि - "मुक्तिबोध की कविताओं में सदैव एक साथीपन का भाव है । सबसे बड़ी बात उनमें यह है कि उनके अंदर 'मस्तिष्कहीन कोरी भावुकता' नहीं है । उनके भावों के ज्वार के पीछे विचारों को

1. नये साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र, मुक्तिबोध, पृ.110
2. चाँद का मुँह टेढ़ा है, श्रीकान्त वर्मा, पृ.7

दीर्घ दोहन है ।”[1] डॉ. नामवर सिंह का मत है कि - “मुक्तिबोध का संसार कुल मिलाकर निषेध का निषेध है ।”[2] गंगाप्रसाद विमल के शब्दों में - “मुक्तिबोध का काव्य जिस संसार की रचना करता है वह एक भीतरी संसार है ।”[3]

मुक्तिबोध की कविताएँ फैण्टेसियाँ या चित्रात्मकता शैली में व्यक्त होने के कारण इन चित्रों में बिंबो, प्रतीकों और रूपकों की भरमार होती है । यह प्रायः अद्‌भुत और विलक्षण दिखाई देते है । कहीं एकालाप है, कही वार्तालाप है तो कहीं कवि-कथन है । सुन्दर की तुलना में असुन्दर उपमानों के प्रति इनका झुकाव अधिक है । चाँद की खोपड़ी इन्हीं गंजी दिखाई देती है । ‘चाँद का मुँह टेढ़ा है’ के अंतर्गत अधिकतर कविताएँ लम्बी है, इसके अतिरिक्त जो कविताएँ इस संकलन में नहीं आ सकी हैं - उनमें भी अधिकतर कविताएँ लम्बी है, इसके अतिरिक्त जो कविताएँ इस संकलन में नहीं आ सकी हैं - उनमें भी अधिकतर लम्बी कविताएँ ही हैं । ‘तारसप्तक’ में एक आत्म वक्तव्य के पूर्व ‘पुनश्च’ में स्वयं मुक्तिबोध ने लिखा है - “इससे और छोटी रचनाएँ शायद मैं अब लिख नहीं सकता ।”[4]

‘चाँद का मुँह टेढ़ा है’ इस संकलन के संबंध में ओमप्रकाश अग्रवाल लिखते है - “सामाजिक जीवन में गतिमान द्वन्द्वात्मक विभेदों के चुभते हुए अस्तित्व को सहकर और संघर्षो के आघातों को पूर्णतया झेलकर गठित होनेवाले प्रतिनिधिक व्यक्तित्त्व का समुचित आभास हमें मिलता है । उन्हें स्पष्ट रूप से निम्न कविताओं में दृष्टिगोचर कर सकते है । संकलन में आत्मचेतना की खोज पर प्रकाश डाला गया है । ‘भूल-गलती’, ‘ब्रह्मराक्षस’, ‘दिमागी गुहान्धकार का ओराँग-उटांग’, ‘लकड़ी का घना रावण’, ‘चाँद का मुँह टेढ़ा है’, ‘एक भूतपूर्व विद्रोही का आत्म-कथन’, ‘एक अरूप शून्य के प्रति’, ‘काव्यात्मन फणिधर’, ‘चकमक की चिनगारियाँ’, ‘जब प्रश्नचिन्ह बोखला उठे’, ‘एक स्वप्न कथा’,

1. चाँद का मुँह टेढ़ा है, श्रीकान्त वर्मा, पृ.11
2. वही, पृ.21
3. कविता के नये प्रतिमान, डॉ. नामवर सिंह, पृ.239
4. मुक्तिबोध का रचना संसार, गंगाप्रसाद विमल, पृ.72

'चम्बल की घाटी में,', 'अंधेरे में' आदि कविताओं का लक्ष्य आत्मसंघर्ष है, जिसे फैण्टेसी के प्रयोग से जिये और भोगे गये वास्तविक जीवन-चित्र को कल्पना के रंगों से प्रस्तुत किया है ।

1.2.1.3 भूरी-भूरी खाक धूल :

मुक्तिबोध के प्रथम संकलन के लगभग पन्द्रह वर्ष पश्चात् 'भूरी-भूरी खाक धूल' का प्रकाशन अशोक बाजपेयी के संपादन में हुआ । मुक्तिबोध की कविताओं का यह द्वितीय संकलन है, जिसमें संकलित कविताओं का रचनाकाल 1948 से लेकर 1964 तक फैला हुआ है । प्रस्तुत संकलन के अंतर्गत 46 कविताएँ संकलित की गई है । भूमिका में स्वयं अशोक बाजपेयी ने लिखा है - "एक समय कविता में निराला की जो केन्द्रीयता थी वह अब मुक्तिबोध की है । अपनी सारी दुरूहता उबड़-खाबड़पन के बावजूद मुक्तिबोध आज की कविताओं की उग्रता, सामाजिक-चेतना, सर्जनात्मकता, साहस और वैचारिक प्रतिश्रुति के उद्‌गम कवि हैं ।"[1]

प्रस्तुत संकलन की कविताओं में भी चित्रात्मकता है एवं स्वप्नचित्रों को उजागर किया गया है । ये स्वप्नचित्र मुक्तिबोध की अभिव्यक्ति के मुख्य साधन है । जनता के संवेदन सत्यों के चित्रों के मुक्तिबोध ने इस संकलन में रखा है । डॉ. संतोषकुमार तिवारी के शब्दों में - "इनमें घनीभूत रात की स्याह के घेरे में प्रकाश का शतदल है । यदि इनमें मुक्तिकामी पैरों की मोच का स्वर है तो ईमान की गरम फूंक और संघर्ष की श्वास भी है । एक जन साधारण का टूटा फाउन्टेन पेन कुल मिलाकर यही लिख सकते हैं कि जो कुछ मेरा है, वह तुम्हें प्यारा है ।"[2]

डॉ. प्रेमशंकर ने इस संकलन की समीक्षा करते हुए लिखा है - "मुक्तिबोध की कविताओं के लिए कोई शीर्षक चुनने की बाध्यता हो तो हम उन्हें रचना का आत्म संघर्ष अथवा समय के द्वन्द्व की पहचान कहकर संबोधित करना चाहेगे - विचारों को जीवन स्थितियों से सम्बद्ध करके देखना और उन्हें जिन्दगी से ही पाये

1. तार सप्तक, पृ.38
2. भूरी-भूरी थाक धूल, अशोक बाजपेयी, पृ.2

गये सार्थक बिंबों के माध्यम से प्रेक्षेपित कर सकने का मुदा मुक्तिबोध में भरपूर है और इसीलिए वे वक्तव्यों के कवि बनकर नहीं रह जाते ।"[1]

'भूरी-भूरी खाक धूल' के अंतर्गत संकलित कविताएँ निम्न है - 'एक रंग का राग', 'ओ मसिहा', 'इसी बैलगाड़ी को', 'ओ प्रस्तुत श्रोता', 'देख कीर्ति के नितम्ब इठलाते', 'मेरे युवजन मेरे परिजन', 'बारह बजे रात के', 'हर चीज जब अपनी', 'भूरी-भूरी खाक धूल', 'गलत फिलोसोफी', 'उलटपुलट शब्द', 'कहने दो उहें जो कहते है', 'एक मित्र के प्रति', 'एक प्रदीर्घ कविता कविता का प्रास्ताविक', 'सूरज के वंशधर', 'जिन्दगी का रास्ता', 'मुक्तिकामी पैरों की मोच की चीख', 'पीत दलती हुई साँझ', 'साँझ रंगी ऊँची लहरों में' आदि कविताएँ संकलित है । इन कविताओं के द्वारा मुक्तिबोध ने जीवन की जटिलता, दुरूहता, भयावहता, द्विधाग्रस्तता के चित्रों को सामने लाने का सफल प्रयास किया है । डॉ. संतोषकुमार तिवारी शब्दों में - निःसंदेह अनुभूति की तीव्रता, सघनता और वैचारिक सुस्पष्टता मुक्तिबोध के जीवन की जटिलता, भयावहता और द्विघाग्रस्तता के बीच मानवीयता की उष्मा और जिजीविषा से उपजी उर्जा प्रदान करती है, जिसकी वजह से वे भविष्य की संभावनाओं की विराट कल्पनाएँ हमें दे सकें ।"[2]

1.2.2 गद्य साहित्य :

मुक्तिबोध कवि होने के साथ ही साथ गद्यकार भी हैं । वैसे मुक्तिबोध कवि पहले है, उनकी रूचि काव्य में ही अधिक थी । गद्य लेखन तो एक परिस्थिति की मांग थी । अधिक दीर्घ से दीर्घतर होने के कारण उनकी कविताओं को कोई भी संपादक अपनी पत्रिका में स्थान नहीं देता था । घर की स्थिति तथा मित्रों के अनुरोध ने ही सही अर्थ में मुक्तिबोध को गद्य लिखने के लिए प्रेरित किया था; किन्तु मुक्तिबोध को गद्य लिखना एक ट्रेजड़ के समान लगता है । एक जगह वे स्पष्ट कथन करते है कि - "मैंने सोचा कि मैं हर कविता पर एक कहानी लिखूँ । क्या यह असंभव है ? साफ बता दूँ कि मैंने सोचा है कि मैंने

1. नये कवि एक अध्ययन, डॉ. संतोषकुमार तिवारी, पृ.213
2. नयी दुनिया, इन्दौर, डॉ. प्रेमशंकर

वैसा कभी-भी करके नहीं देखा है । फिर भी सोचता हूँ कि वैसा करूँ । क्यों ? अब क्या बताऊँ कि इस तरह मुझे गद्य लिखने की आदत तो पड़ जायेगी लेकिन उससे भी बड़ी बात यह होगी कि अगर कविता नहीं तो कविता की आत्मा को कहानी के रूप में ही क्यों न सही, मान्यता प्रदान करा सकूँगा । यह मेरी अभिलाषा है ।"[1]

मुक्तिबोध का गद्य साहित्य भले ही किसी भी कारण से सृजन किया गया हो, लेकिन वह अत्यंत उच्चकोटि का है । निःसंदेह कह सकते हैं कि मुक्तिबोध गद्य में आलोचक , कहानीकार, उपन्यासकार, डायरीलेखक तथा इतिहासकार आदि के रूप में दृष्टिगोचर होते है । उनकी गद्य कृतियाँ निम्नांकित हैं -

1) नयी कविता का आत्मसंघर्ष एवं अन्य निबंध (निबंधसंग्रह)
2) समीक्षा की समस्याएँ (आलोचनात्मक निबंध)
3) एक साहित्यिक डायरी (डायरी)
4) कामायनी : एक पुनर्विचार (समीक्षा)
5) नये साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र (निबंध)
6) काठ का सपना (कहानी संग्रह)
7) सतह से उठता हुआ आदमी (कहानी संग्रह)
8) विपात्र (उपन्यास)
9) भारत : इतिहास और संस्कृति (इतिहास) आदि ।

1.2.2.1 नयी कविता का आत्मसंघर्ष एवं अन्य निबंध :

मुक्तिबोध ने मूलतः कवि होते हुए भी गद्य साहित्य का सृजन किया । उनकी सहज रूचि काव्य की ओर होने के कारण उन्होंने नयी कविता का आत्मसंघर्ष एवं अन्य निबंध में 'नयी कविता के' को दृष्टि में रखकर अपने काव्य सिद्धांतो का प्रतिपादन किया है । लेकिन "आज का युग ऐसा है जिसमें विभिन्न विषयों पर कवि को मनोमंथन करना पड़ता है ।"[2] इस कथन की

1. नये कवि एक अध्ययन, डॉ. संतोषकुमार तिवारी, पृ.214
2. नयी कविता का आत्मसंघर्ष एवं अन्य निबंध, मुक्तिबोध, पृ.9

सार्थकता उनके जीवन में स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होती है । 'नयी कविता का आत्मसंघर्ष एवं अन्य निबंध' यह तेरह निबंधों का संग्रह हैं । इसमें कवि ने अपने युग की नूतन काव्यधारा में आत्मसंघर्ष उजागर किया है ।

"काव्य में तत्त्व-समृद्धि तथा तत्व परिष्कर के लिए भी वास्तविक जीवन के विविध जीवनानुभवों से संपन्न होंगे तथा इस विक्षुब्ध उत्पीड़ित मानवता के(वायवीय नहीं, पूर्ण) आदर्शो से एकात्म होंगे । इसके बिना तत्त्व-समृद्धि और तत्त्व परिष्कार की समस्या अधूरी रह जायेगी ।"[1]

"मुक्तिबोध की काव्यरना एक सांस्कृतिक प्रक्रिया है और फिर भी वह एक आत्मिक प्रयास है । उसमें जो सांस्कृतिक मूल्य परिलक्षित होते हैं, वे व्यक्ति की अपनी देन नहीं, समाज की या वर्ग की देन हैं ।"[2]

मुक्तिबोध आज के कवि को तीन क्षेत्रों में एक साथ संघर्ष करने के लिए प्रोत्साहित करते है - "तत्त्व के लिए संघर्ष, अभिव्यक्ति सक्षम बनाने के लिए संघर्ष और दृष्टि विकास के लिए संघर्ष ।"[3] कवि को इन तीनों स्थितियों को पार करते हुए अपनी प्रतिभा का परिचय देना पड़ता है ।

नयी कविता में लेखकों के दो वर्ग दृष्टिगोचर होते हैं । एक वर्ग वह है जो समाज के शोषकों एवं उत्पीड़कों के विरूद्ध है और गरीब मध्यमवर्गीय जनता से उनका लगाव है और कुछ ऐसे भी जो राजनैतिक रूप से सचेत कवि हैं, जो लेखकों को समाज के उत्पीड़को के विरूद्ध आवाज उठाते नहीं देते अथवा उन्हें ऐसे कार्य में हतोत्साहित करते रहते है । फिर भी प्रथम वर्ग के लेखकों के माध्यम से नयी कविता में प्रगतिशील परंपरा की कुछ कविता अछूती नहीं रह सकती - "दिवासानुदिवस, समाज और सभ्यता के प्रश्न विकट हो रहे हैं नयी कविता उन प्रश्नों से बच नहीं सकती, न वह बची ही है । नयी कविता के क्षेत्र में असंदिग्ध रूप से, प्रगतिशील परंपरा की एक लीक चली आयी है । प्रश्न इस परंपरा को बढ़ाने का है ।"[4]

1. नयी कविता का आत्मसंघर्ष एवं अन्य निबंध, मुक्तिबोध, पृ.19
2. वही, पृ.21
3. वही, पृ.13
4. वही ।

आज की कविता में जीवन के मूल तथ्यों के चित्रण का अभाव है, कवि मानव-समस्याओं के प्रति उदासीन है । मुक्तिबोध इसके मूल में समाज में फैली अवसरवादी प्रवृत्ति को देखते हैं - "आज शिक्षित मध्य वर्ग में जो भयानक अवसरवाद छाया हुआ है आत्म स्वातंत्र्य के नाम पर जो स्वहित, स्वार्थ, स्वकल्याण की जो भागदौड़ मची हुई है, मारो-खाओ हाथ मत आओ का जो सिद्धांत सक्रिय हो उठा है उसके कारण कवियों का ध्यान केवल निर्ज मन पर ही केन्द्रित हो जाता है । आज की कविता, वस्तुतः पर्सनल सिच्युएशन की, स्व-स्थिति की, स्व-दशा की कविता है, किन्तु अब जिन्दगी का यह तकाजा है कि वह अपनी इस निजी समस्या को वर्तमान युग की मानव समस्याओं के रूप में देखे और चित्रित करे ।"[1]

मुक्तिबोध मानवीय साहित्य के आग्रही है । वे मानव संघर्ष के बुनियादी लक्ष्य की स्थापना के लिए यत्नशील है । "मानव-समस्याओं की संतुलित या सांगोपांग स्थापना नहीं हो पाती, मानव-संघर्ष के मूल लक्ष्य स्थापित नहीं हो पाते। मैं उन कवियों की उपलब्धियों की अवहेलना नहीं कर रहा हूँ वरन् अधिक मानवीय साहित्य का आग्रही हूँ ।"[2]

साहित्यकार सामाजिक दृष्टिकोण से जनता की सेवा के लिए साहित्य का निर्माण करे अथवा सौन्दर्य प्रतीति के लिए दोनों भले ही असंगत हो फिर भी मुक्तिबोध इन दोनों में आंतरिक एकता को मानते है - "जिस समााज में, सौन्दर्य प्रतीति और सामाजिक दृष्टि में परस्पर विरोध माना जाता है अथवा दूसरे शब्दों में इन दो के भीतर किसी आंतरिक गहरी एकता का अस्तित्व नहीं मान जाता वह समाज भी खुब है, और वे दार्शनिक या विचारक भी खूब हैं जो इन मान्यताओं को लेकर चलते हैं । आजकल की कृत्रिम विभाजक-बुद्धि का ही यह सबूत है ।"[3]

---

1. नयी कविता का आत्मसंघर्ष एवं अन्य निबंध, मुक्तिबोध, पृ.35-36
2. वही, पृ.43
3. वही, पृ.55

मुक्तिबोध साहित्य के सही विवेचन के लिए गतिमान सामाजिक शक्तियों से बनानेवाले सांस्कृतिक इतिहास को जानना आवश्यक समझते हैं - "किसी भी साहित्य का वास्तविक विश्लेषण हम तब तक नहीं कर सकते जब तक कि हम उन गतिमान सामाजिक शक्तियों को नहीं समझते । कबीर, तुलसीदास आदि संतों के अध्ययन के लिए यह सर्वाधिक आवश्यक है । मैं इस ओर प्रगतिवादी क्षेत्रों का ध्यान आकर्षित करना चाहता हूँ ।"[1]

साहित्य जीवन का प्रतिबिम्ब है । जितना कलाकार जीवन की यथार्थता से परिचित होगा उतना ही महत्व कृति की समीक्षा के जानने के लिए अनिवार्य है । जीवन समीक्षा की समीक्षा वही समीक्षक कर सकता है, जो जीवन सत्यों से लेखक से परिचित होता है और और ऐसे ही समीक्षक से लेखक को सहायता प्राप्त होती है ।

रूप की आलोचना से तत्त्व की आलोचना महत्वपूर्ण होती है क्योंकि "महत्त्वपूर्ण बात यह है कि रूप अपनी स्थिति के लिए तत्व पर ही अवलंबित होता है । तत्व अपने प्रकट होने की प्रक्रिया में रूप निर्धारित और विकसित करता है । इसीलिए तत्व की आलोचना, रूप की आलोचना से अधिक मूलभूत है ।"[2]

समीक्षक यथार्थ जिन्दगी से कोसों दूर है । वे मध्यवर्गीया जनसाधारण की भावक्षेत्र से भी निकट नहीं है । प्रगतिवादी तथा आदर्शवादी समालोचक पूरी नयी काव्यशैली के विरोधी इसलिए है कि - "वास्तविक और विविध नवीन साहित्य प्रवृत्तियों तथा विविध साहित्य कृतियों का मार्मिक विश्लेषण तथा मूल्यांकन करना उन्हें अभीष्ट नहीं । सच तो यह है कि अपने सिद्धांतों की तर्क व्यवस्था के उँचे आयावरी टावर पर बैठे हुए, बनते हुए साहित्य को देखते हैं । वहाँ से उन्हें आदमी छोटा नजर आता है । इसलिए वे अरूचि और विरक्ति से अपना मुँह फेर लेते है ।"[3]

---

1. नयी कविता का आत्मसंघर्ष एवं अन्य निबंध, मुक्तिबोध, पृ.97
2. वही, पृ.104
3. वही, पृ.125

समालोचक अपनी प्रगाढ़ जीवनानुभूति, अन्य विविध अनुभव तथा मार्मिकता से किसी भी कलाकृति को सांगोपांग समझकर उसका मार्मिक विश्लेषण कर सकता है । नई कविता में प्रगतिवादी आलोचक के सम्बन्ध में मुक्तिबोध लिखते है कि - "साहित्य क्षेत्र में किसी भी समीक्षक का प्रभाव उसकी कला समीक्षात्मक उपलब्धियों से ईमानदार, वैज्ञानिक, नैतिक, निर्भय, तटस्थ, आत्मनिरपेक्ष लेकिन सच्चे दिल से और अनुरागपूर्ण मन से किये गये मानवीय ज्ञान संवेदनात्मक और संवेदन ज्ञानात्मक समीक्षा प्रयासों से और ऐसे ही तात्त्विक विश्लेषणों से होता है ।"[1]

साहित्य के प्रश्न मूलतः जीवन के प्रश्न है - अन्य शब्दों में लेखक अपने जीवन यथार्थ को ही संवेदनात्मक रूप से साहित्य में व्यक्त करता है । उन्हीं के शब्दों में - "यदि साहित्य-सृजन का एक संघर्ष है अभिव्यक्ति के मार्ग का संघर्ष है तो समीक्षा एक प्रेमदर्शन है, ऐसा प्रेमदर्शन जो आवश्यक पड़ने पर अतिशय कठोर होता है, किन्तु सामान्यतः उदार और कोमल रहता है । ऐसी समीक्षा यदि समीक्षक करें तो यह निश्चित है कि वह नेतृत्व कर सकता है ।"[2]

मुक्तिबोध ने अपने आलोचनात्मक निबंधों में एक ओर नयी कविता की न्यूनताओं का उल्लेख किया है तो दूसरी ओर नयी कविता का विरोध करनेवाले पुरातनवादी की संचुकित जीवन-दृष्टि की कड़ी आलोचना की है । मुक्तिबोध साहित्य के साथ-साथ साहित्यकार के जीवन के सर्वांगीण अध्ययन का आग्रह करते हैं और कृति मनोवैज्ञानिक विश्लेषण पर बल देते है । उनकी आस्था प्रगतिशील भावधारा की परंपरा में है जिसकी एक लीक नयी कविता में चली आयी है । दूसरे शब्दों में हम कह सकते है कि उनकी आलोचना का आधार मार्क्स की द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद की धारणा पर आधारित है ।

1.2.2.2 समीक्षा की समस्याएँ :

गजानन माधव मुक्तिबोध हिन्दी साहित्य में न सिर्फ कवि बल्कि वे एक समीक्षक, चिन्तन के रूप में भी अनन्य साधारण महत्त्व रखते हैं । प्रस्तुत पुस्तक

1. नयी कविता का आत्मसंघर्ष एवं अन्य निबंध, मुक्तिबोध, पृ.142
2. वही, पृ.151

में संकलित निबंध इससे पूर्व पत्र पत्रिकाओं में प्रकाशित हुए थे, ततपश्चात मुक्तिबोध रचनावली में संकलित हुए । सन् 1982 में रमेश मुक्तिबोध ने 'राजकमल प्रकाशन' से इस कृति को प्रकाश में लाने का महत्त्वपूर्ण कार्य किया है । इस संकलन में संग्रहित निबंध सन् 1946 से 1964 तक के अर्थात् उनके अंतिम समय तक के निबंध है । 'समीक्षा की समस्याएँ' उक्त पुस्तक के पूर्व यह निबंध 'नया खून', 'सारथी', 'राष्ट्रभारती', 'ज्ञानोदय', 'वसुधा', 'आलोचना', 'कल्पना', 'माध्यम' आदि पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हुए हैं ।

मुक्तिबोध ने अपनी काव्यधारा को बरकरार रखने के लिए समीक्षा के क्षेत्र में अपनी पैनी दृष्टि से उल्लेखनीय कार्य किया है । अपने ज्वलंत काव्य व्यक्तित्व को रचनारत रखते हुए उन्होंने अपनी पैनी आलोचनात्मक दृष्टि से आलोचना-साहित्य को उसका उल्लेखनीय हिस्सा इस पुस्तक में सम्मिलित है ।

समकालीन साहित्य के प्रति मुक्तिबोध का लगाव दृष्टिगोचर होता है । रमेश मुक्तिबोध के शब्दों में "समसामयिक साहित्य में मुक्तिबोध की कितनी रुचि थी और उसके समुचित आलोचना मूल्यांकन की वे कितनी जरूरत महसूस करते थे यह इस पुस्तक से स्पष्ट होगा ।"[1]

गजानन माधव मुक्तिबोध के 'समीक्षा की समस्याएँ' के अंतर्गत 'अन्धायुगः एक समीक्षा' यह अत्यंत महत्वपूर्ण आलोचनात्मक निबंध है उक्त निबंध में निबंधकार ने सामाजिक पक्ष पर प्रकाश डाला है । सामाजिक ह्रास आज के युग की एक महत्वपूर्ण वास्तविकता है । इस वास्तविकता को भारतीजी ने सभ्यता की आलोचना की; किन्तु समाजशास्त्रीय अभाव में । स्वयं मुक्तिबोध के शब्दों में - "सभ्यता या समाज अनेक श्रेणियों में सूत्रबद्ध मानव का इतिहास है । इस इतिहास में एक विकाससूत्र है । एक विकास सूत्र के कुछ नियम हैं । इन नियमों के प्रति सच्ची समाजशास्त्रीय जिज्ञासा आवश्यक है ।"[2]

'जो कुछ भी देखता हूँ : एक समीक्षा' इस आलोचनात्मक निबंध के अंतर्गत मुक्तिबोधजी ने एक विशेष जीवन-दशा के अंतर्गत अनेक जटिल क्षणों

1. समीक्षा की समस्याएँ, दो शब्द - रमेश मुक्तिबोध, पृ.11
2. वही, पृ.135-136

के रेखाचित्र उपस्थित किए हैं । साथ ही साथ महत्वपूर्ण चीज के रूप में काव्य में खरेपन को उजागर किया है । स्वयं मुक्तिबोध कहते है कि - "ज्यों-ज्यों पाठक समग्र के निकट आता जाता है, उसके अंतःकरण में जाईयाँ बढ़ने लगती है और वे आगे-आगे अधिकाधिक आकर्षक होकर झलमलाने लगती है तथा अंत में पाठक उनकी सहायता से कवि के पूर्ण अंर्तव्यक्तित्व का एक स्व-कल्पित मस्तिष्क चित्र बनाने में सफल हो जाता है ।"[1]

'लूसुन की कहानियाँ' नामक आलोचनात्मक निबंध में मुक्तिबोध ने लूसुन की कुछ कहानियों की समीक्षा की है । लूसुन चीन के नये युग के वाल्मीकि माने जाते हैं । उन्होंने अपनी मातृभूमि के ऐतिहासिक विकास के साथ-साथ सांस्कृतिक साहित्य विकास का स्वर बदल दिया । उनकी सबकी पहली कहानी 1918 में लिखी हुई 'पागल आदमी की डायरी' ने खलबली मचा दी थी । मांचू साम्राज्य के सामती जीवन-मूल्यों के प्रति यह कहना आघात था । स्वयं मुक्तिबोध इस कथा के संबंध में मत व्यक्त करते हैं - "कथा का मुख्य आघात तो उन जीवन-मूल्यों पर है जो अन्याय और शोषण को सामाजिक नियम या कानून का जामा पहना देते है ।"[2]

'लूसुन की दवा', 'मेरा पुराना मकान', 'नये साल का बलिदान', 'कुंग-इ-चि', 'शराब की दुकान' और 'मनुष्य द्वेषी' आदि कहानियाँ महत्त्वपूर्ण कहानियाँ है किन्तु 'मनुष्य-द्वेषी' कहानी कुछ बुद्धिवादी की अँधेरे-भरी जिन्दगी की कहानी है जो आज हमारे भारतीय बुद्धिवादी की वास्तविकता के अत्यंत निकटतम दृष्टिगोचर होती है । 'मनुष्य-द्वेषी' कहानी के अंतर्गत बुद्धिवादी की 'चिंघाड' को प्रतीकात्मक रूप में स्पष्ट करने का सफल प्रयास किया है । "मैं कदम तेजी से बढ़ाने लगा । मानों मैं एक भीत को, एक व्यवधान को, तोड़ने जा रहा हूँ; किन्तु मैंने इस कार्य को असंभव पाया । मेरे कानों में शब्द गूँजने लगे और फिर एक लम्बे समय बाद वे घनघोर होकर फूट पड़े । एक सुदीर्घ चीखभरी चिंधाड़ थी । एक ऐसे घाव भरे भेडिये की चिंगाड़ जो रात के वीरान सुनसान भरे अंधेरे में चीख रही हो और उसकी चिंघाड़ में वेदना, दुःख और भयानक क्रोध हो ।"[3]

1. समीक्षा की समस्याएँ, दो शब्द - रमेश मुक्तिबोध, पृ.153
2. वही, पृ.100
3. वही, पृ.101

अंततः हम कह सकते हैं कि मुक्तिबोध के कवि रूप के साथ ही साथ समीक्षक रूप का अनोखा रूप उनके समीक्षात्मक लेखों से दृष्टिगोचर होता है । सचमुच इस दिशा में मुक्तिबोध उच्च कोटि के समीक्षक के रूप मे में अपना स्थान बनाये हुए दिखाई देते हैं । यह कृति इस दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण है ।

1.2.2.3 एक साहित्यिक की डायरी :

गजानन माधव मुक्तिबोध की सर्वाधिक चर्चित कृति 'एक साहित्यिक की डायरी' है । इसके अंतर्गत मुक्तिबोध के चिन्तन-मनन का प्रतिबिंब दृष्टिगोचर होता है । सर्वप्रथम यह "जबलपुर से प्रकाशित होनेवाली 'वसुधा' में सन् 57, 58 और 60 में प्रकाशित हुई थी ।"[1] 'वसुधा' पत्रिका में 'एक साहित्यिक की डायरी' के नाम से एक स्तंभ चलता था जिसके अंतर्गत मुक्तिबोध ने अपने विचार प्रकट किये, उन्हीं का संकलन इस कृति के अंतर्गत है ।

श्रीकान्त वर्मा लिखते है - "डायरी शब्द एक भ्रम पैदा करता है और यह गलतफहमी भी हो सकती है कि मुक्तिबोध की ये डायरियाँ होंगी । लेकिन वास्तविकता यह है कि 'एक साहित्यिक की डायरी' केवल उस स्तंभ का नाम था । जिसके अंतर्गत समय-समय पर मुक्तिबोध को अनेक प्रश्नों पर विचार करने की छूट न केवल संपादक की ओर से बल्कि स्वयं अपनी ओर से भी होती थी ।"[2] डॉ. नामवरसिंह का कथन है कि - "कुछ लोगों का भ्रम है अथवा वे जानबूझकर यह भ्रम फैलाना चाहते हैं कि 'एक साहित्यिक की डायरी' वस्तुतः रचना प्रक्रिया की पाठ्यपुस्तक है । आगे चलकर वे लिखते है कि - "एक साहित्यिक की डायरी एक व्यापक अर्थ में रचना प्रक्रिया का ग्राफ चित्र भले ही हो वस्तुतः उतरशती की जटिल जीवन प्रक्रिया का जीवंत दस्तावेज है ।"[3]

'एक साहित्यिक की डायरी' इस कृति की उपलब्धि के प्रति डॉ. शिवकुमार मिश्र ने भी अपना मत प्रकट किया है । इसे युग जीवन का ज्वलंत साहित्यिक दस्तावेज कहा है । मिश्रजी लिखते हैं - "यह कृति अपनी विचार

---

1. एक साहित्यिक की डायरी
2. वही ।
3. माध्यम - नवम्बर, 1964, पृ.101

संपति में अपने कन्टैन्ट में आज की जटिल जीवंत परिस्थितियों में सृजन करनेवाले एक साहित्यिक के प्रखर यथार्थ बोध तथा अनुभूत जीवन वास्तव का बड़ा साफ सच्चा चित्र है । अपने रचनाकार, विचारक, चिन्तक की मूलभूत ईमानदारी तथा दायित्व चेतना की साहसपूर्ण खरी अभिव्यक्ति है ।"[1]

श्रीकांत वर्माजी का मत है कि 'एक साहित्यिक की डायरी' एक नये सौन्दर्यशास्त्र की तलाश है - "वे उस समय नये सौन्दर्यशास्त्र की तलाश कर रहे थे । यह हिन्दी का अपना अनोखा ढंग है ।"[2] 'एक साहित्यिक की डायरी' इस विषय पर शमशेरजी की प्रतिक्रिया निम्न रूप से दृष्टिगोचर होती है - "मुक्तिबोधजी में गहरी ईमानदारी के साथ समस्या को सहज ढंग से प्रस्तुत करने की अद्‌भूत क्षमता थी । वे अपने बचाव या किसी के भी बचाव की बात नहीं करते थे । कविताओं में दुरूह से दुरूह परिकल्पना को चित्रकार की भाँति मूर्तिमान करने की कला में अद्वितीय थे ।"[3]

अन्ततः हमें स्वयं मुक्तिबोध के मत से उसकी इस कृति के व्यक्तिगत ईमानदारी का सबूत मिलता है । मुक्तिबोध के प्रबुद्ध साहित्यकार मन-मस्तिष्क में युग, जीवन, समाज, साहित्य और साहित्यकार को लेकरजो अनेकानेक प्रश्न उठते है, वैचारिक द्वन्द्व और बहस चलती रही है, उसीका व्यक्ति रूप है 'एक साहित्यिक की डायरी' । मुक्तिबोध ने कला के तीन वर्गो की चर्चा की है - प्रथम क्षण है अनुभूति का, द्वितीय क्षण है चिन्तन का एवं तृतीय क्षण है अभिव्यक्ति का । इन तीनों क्षणों का सम्यक् परिपाक अत्यावश्यक है । स्वयं मुक्तिबोधजी के शब्दों में "कला का पहला क्षण है जीवन का उत्कृष्ट तीव्र अनुभव क्षण । दूसरा क्षण है इस अनुभव का अपने कसकते-दुखते मूलों से पृथक हो जाना और ऐसी फैन्टेसी का रूप धारण कर लेना मानों वह फैन्टेसी अपनी आँखो के सामने खड़ी हो । तीसरा ओर अंतिम क्षण है इस फैन्टेसी के शब्दबद्ध होने की प्रक्रिया का आरंभ और उस प्रक्रिया की परिपूर्णावस्था तक की गतिमानता ।"[4]

1. आधुनिक कविता और युगदृष्टि, डॉ. शिवकुमार मिश्र, पृ.249
2. मुक्तिबोध व्य. एवं कृति, जनक शर्मा, पृ.310
3. माध्यम, नवम्बर, 1964, पृ.88
4. एक साहित्यिक की डायरी, मुक्तिबोध, पृ.18

गजानन माधव मुक्तिबोध ने आज के अर्थात् वर्तमान स्थिति के लेखकों की जिन्दगी और उनके लक्ष्य को सटीक शब्दों में प्रकट किया है - "आज के साहित्यकार का आयुष्य क्रम क्या है ? विद्यार्जन, डिग्री और इसी बीच साहित्यिक प्रयास, विवाह, घर, सोफासेट, एरिस्ट्रसे क्रेटिकलिविंग, महानों से व्यक्तिगत संपर्क, श्रेष्ठ प्रकाशनों द्वारा अपनी पुस्तकों का प्रकाशन, सरकारी पुरस्कार अथवा ऐसी ही कोई विशेष उपलब्धि और चालीसवें वर्ष के आसपास अमरीका या रुस जाने की तैयारी, किसी व्यक्ति या संस्था की सहायता से अपनी कृतियों का अंग्रेजी या रूसी में अनुवाद : किसी बड़े भारी सेठ के यहाँ या सरकार के यहाँ ऊँचे किस्म की नौकरी । अब मुझे बताइए कि यह वर्ग क्या यथार्थवाद प्रस्तुत करेगा औरक्या आदर्शवाद ।"[1]

मुक्तिबोध में वर्गचेतना की अधिकता दिखाई देती है, वे साहित्यकार का वर्ग चेतना होना आवश्यक समझते थे । इसलिए उन्होंने 'एक साहित्यिक की डायरी' में अपनी वर्गीय भावनाओं को ईमानदारी से अभिव्यक्त किया है । मुक्तिबोध ने आज के साहित्य तथा साहित्यकारों के जीवन को सुक्ष्म विश्लेषण किया है । 'एक साहित्यिक की डायरी' पढ़ते हुए लगता है कि उनकी प्रखर दृष्टि से कुछ भी छिपा नहीं रह सका है । उन्होंने अपनी पैनी लेखनी से सबकी वास्तविकताओं को उतार कर रख दिया है । इस कृति की एक प्रमुख विशेषता व्यंग्य शैली है ।

आज के युग में वास्तविक जीवन कला क्या है, मुक्तिबोध के शब्दों में "सफलता के लिए सामर्थ्य नहीं समर्थन लगता है । समर्थन ही सामर्थ्य है - इस महान सत्य को भूलकर जो लोग काम करते है वे अंधी दीवार से टकराते हैं । आजकल व्यक्तिगत पुरूषार्थ और क्या जरूरी नहीं है ? बुद्धिमानी इसमें है कि दरारें देखों और उनमें चुपचाप रंग जाओं और रेंगते हुए उँची सतह पर पहुँचो । यह है वास्तविक जीवन कला । समझे ?"[2] इस कृति से ऐसे अनेको उदाहरण दिये जा सकते हैं जो मुक्तिबोध के शक्तिशाली व्यंग्यकार को उभारकर सामने

1. एक साहित्यिक की डायरी, मुक्तिबोध, पृ.36
2. वही, पृ.107

लाते है । मुक्तिबोध ने साहित्य के लिए साहित्य निर्वाचन जरूरी माना है । वे कहते है - "जो व्यक्ति साहित्यिक दुनिया से जितना दूर रहेगा; उसमें अच्छा साहित्यिक बनने की संभावना उतनी ही ज्यादा बढ जायेगी । साहित्य के लिए साहित्य से निर्वासन आवश्यक है ।"[1]

निष्कर्ष रूप में 'एक साहित्यिक की डायरी' के विषय में कहा जा सकता है कि यह मुक्तिबोध की एक अमूल्य कृति है । इसमें युग के यथार्थ के समस्त बोध सामने लाये हुए स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होते है । आज की समूची जीवन व्यवस्था पर प्रकाश पड़ता है । इसमें मुक्तिबोध की वैचारिक प्रतिभा, सूक्ष्म विश्लेषण दृष्टि, सामाजिक परिवेश एवं परिस्थितियों का गहन ज्ञान, साहित्य के प्रति उनकी आस्था और ईमानदारी, चिन्तन-मनन आदि मुक्तिबोध को आधुनिक साहित्य के अंतर्गत एक प्रशस्त एवं अलग स्थान प्रदान करते हैं । इस कृति के आधार पर ही मुक्तिबोध की वैचारिकता का पता चलता है । कुल मिलाकर हिन्दी साहित्य की दृष्टि से यह एक उल्लेखनीय कृति है ।

1.2.2.4 कामायनी : एक पुनर्विचार :

समीक्षात्मक क्षेत्र में गजानन माधव मुक्तिबोध की 'कामायनी : एक पुनर्विचार' यह कृति अत्यंत महत्त्वपूर्ण है । छायावाद की श्रेष्ठ कृति 'कामायनी' की मुक्तिबोध ने एक पृथक दृष्टि से आलोचना की है ।

'कामायनी' के संबंध में मुक्तिबोध के कुछ निबंध 'हंस' मासिक पत्रिका तथा 'आलोचना' में प्रकाशित हुए थे । सन् 1950 के बाद पुस्तक 'कामायनी : एक अध्ययन' नाम से मुद्रित तो हुई लेकिन प्रकाशित न हो सकी । मुक्तिबोध के ही शब्दों में - "ज्ञान और शिक्षा के क्षेत्र में कार्य करनेवाले एक प्रकाशक महोदय की सज्जनता के फलस्वरूप मुद्रित होकर भी पुस्तक प्रकाशित न हो सकी ।"[2] मुक्तिबोध की जो पुस्तक 'कामायनी : एक अध्ययन' नाम से मुद्रित हुई थी, उसी का संशोधन प्रकाशित रूप है 'कामायनी : एक पुनर्विचार ।'

'कामायनी : एक पुनर्विचार' को कुल तेरह अध्यायों में लिखकर अन्ततः

1. एक साहित्यिक की डायरी, मुक्तिबोध, पृ.59
2. कामायनी : एक पुनर्विचार दो शब्द, पृ.2-3

लेखक अपने विचारों द्वारा उपसंहार किया है । मुक्तिबोधजी ने 'कामायनी' के विवेचन-विश्लेषण को चुनौती देकर 'कामायनी' को प्रसाद के संबंधी बतलाकर अपनी वैज्ञानिक दृष्टि का परिचय दिया है । साथ ही साथ फैण्टसी के माध्यम से विवेचन को उजागर किया है । मुक्तिबोध स्वयं लिखते है कि - " 'कामायनी' का जो विश्लेषण मैंने किया है वह एक ओर प्रसाद का युग तो दूसरी ओर उनका व्यक्तित्व इन दोनों की परस्पर क्रिया-प्रतिक्रियाओं के संबंधित योग को ध्यान में रखकर की । 'कामायनी' क्या केवल एक फैण्टेसी है ? जिस प्रकार एक फैण्टेसी में मन की निगूढ़ वृत्तियों का अनुभूति जीवन समस्याओं का इच्छित विश्वासों और इच्छित जीवन स्थितियों का प्रक्षेप होता है, उसी प्रकार कामायनी में भी हुआ है ।"[1]

वस्तुतः मुक्तिबोध ने कामायनी का मार्क्सवादी दृष्टि से विवेचन किया है । मुक्तिबोध ने मनु को मानव मात्र को, मन का प्रतीक न मानकर प्रसाद के मन का प्रतीक माना है । जिस प्रकार मनु की स्थिति ध्वस्त हुई देव सभ्यता एवं उसके स्तान पर उदाय होती हुई मानव सभ्यता के बीच में है उसी प्रकार के एक और ध्वस्त साम्यवादी व्यवस्था है और दूसरी ओर पूंजीवादी व्यवस्था का अभ्युदय है । मनु देव सभ्यता के पुत्र है, जिसमें विलासिता, उच्छृंखलता, अहंकार आदि की प्रधानता थी और प्रसाद सामंतवादी वर्ग के हैं, जो ऐसे ही गुणों पर आधारित है । मुक्तिबोध प्रसाद तथा मनु की उपर्युक्त जीवन स्थिति के कारण ही दोनों में अद्‌भूत साम्य पाते है, इसलिए वे मनु को प्रसाद से पृथक नहीं किन्तु उसका ही प्रतीक मानते तथा देव सभ्यता को सामंती सभ्यता का ही प्रतिरूप मानते है ।

मुक्तिबोध 'कामायनी' की केवल मनोवैज्ञानिक व्याख्या ही पर्याप्त नहीं समझते, बल्कि उसके भीतर की शक्तियों को भी समझते है, जिनके कारण भाववाद, आदर्शवाद की विचारधारा का प्रणयन किया है क्योंकि मनोवैज्ञानिक यथार्थवाद के कारण ही प्रसाद जीवन तथ्यों को तर्कसंगत स्तर पर उपस्थित करते हैं और "वह स्तर एक युग विशेष की काल विश्व की अर्थात् वर्ग-विशेष की प्रवृतियों का परिचायक हैं ।"[2]

1. कामायनी : एक पुनर्विचार दो शब्द, पृ.2-3
2. वही, पृ.92

मुक्तिबोध ने प्रसाद के जीवनदर्शन को वो 'कामायनी' में उपस्थित किया है एकदम जनविरोधी और प्रतिक्रियावादी मानते है - "वह जीवनदर्शन जो कामायनी में सोदाहरण दृष्टांत सहित उपस्थित किया गया है । वह एकदम जन-विरोधी और प्रतिक्रियावादी है ।"[1]

मुक्तिबोध ने 'कामायनी' में प्रतिपादित की श्रद्धा पर तीव्र प्रहार किया है । मुक्तिबोध श्रद्धा को प्रसाद सुपर-इंगो कहते है । "श्रद्धा आदि से अंत प्राइवेट-इन्डिविजुअल है - भले ही प्रसाद जी उसे आदर्श स्वरूप मान लें । उसमें मानवतावादी सामाजिक प्रेरणा का नितांत अभाव है । श्रद्धा के व्यक्तित्व में कर्म सौन्दर्य का अभाव है ।"[2]

इडा को भी मुक्तिबोध बुद्धिवादी का प्रतीक न मानकर पूंजीवादी की प्रतिनिधि कहते है - "इड़ा वर्ग वैषम्य ग्रस्त शोषक-मूलक उस पूंजीवाद की प्रतिनिधि है, जिस पूँजीवाद ने यदि एक और क्रान्तिकारी कदम बढ़ाकर राष्ट्रवाद और नयी समाज-व्यवस्था का निर्माण करके मानवजीवन क्षेत्र को अत्याधिक विस्तृत और व्यापक बना दिया है तो दूसरी ओर उन समाज के अन्तर्द्वन्द्वो को भी अधिक घनीभूत और विस्तृत कर दिया है । इड़ा बुद्धिवाद की प्रतीक नहीं, पूँजीवाद की प्रतिनिधि है ।"[3]

मुक्तिबोध 'कामायनी' के रहस्यवादी भावधारा के दर्शन को उसकी सबसे बड़ी ट्रेजड़ी मानते हैं तथा प्रसाद को महान कलाकार के रूप में स्वीकार नहीं करते क्योंकि - "उनकी कामायनी मनुष्यता के वास्तविक उद्धार-लक्ष्यों की ओर पहुँचने का न मार्ग बतलाती है, न सामाजिक वास्तविकताओं का, इस प्रकार विश्लेषण करती है कि जिससे हम इस उदार लक्ष्यों की ओर ले जानेवाले मार्गो की रूपरेखा नियत कर सकें और उसकी ओर अग्रसर हो सके ।"[4]

---

1. कामायनी : एक पुनर्विचार दो शब्द, पृ.100
2. वही, पृ.157
3. वही, पृ.163
4. वही, पृ.152

मुक्तिबोध 'कामायनी' को आदि-मानव के कथा या ऐतिहासिक काव्य न समझकर आधुनिक काव्य मानते है - " 'कामायनी' आदिमानव की कथा है ही नहीं । वह एक आधुनिक काव्य है, जिसमें आधुनिक समस्या है, जिसको एक कथा फैण्टेसी के विशाल चित्र-फलक में अंकित किया गया है ।"[1]

मुक्तिबोध 'कामायनी' को अपनी युग का अर्थवैज्ञानिक, असंस्कृत तथा अपरिष्कृत प्रतिबिम्ब मानते है क्योंकि - "यदि वह सुपरिष्कृत प्रतिबिम्ब होता तो तत्कालीन समस्याओं का यथार्थ हल भी प्रस्तुत किया जाता । उसमें जनता का पक्ष भी ऊँचा उठता तथा अधिक मानवीय जनतंत्रीय धरातल पर कक्षा की समाप्ति होगी ।"[2]

'कामायनी' एक पुनर्विचार इस कृति पर डॉ. प्रेमशंकर, डॉ. चन्द्रभूषण तथा डॉ. नामवर सिंह आदि ने भी मत प्रकट किये है, किन्तु डॉ. नामवरसिंह द्वारा 'कामायनी : एक पुनर्विचार' पर प्रकट किया हुआ मत अत्यंत महत्वपूर्ण है । उन्होंने नये मूल्यों का ऐतिहासिक दस्तावेज कहा है । उन्हीं के शब्दों में "मुक्तिबोध की 'कामायनी : एक पुनर्विचार' समकालीन साहित्य में पुर्नमूल्यांकन के बहाने नये मूल्यों का ऐतिहासिक दस्तावेज है जो समकालीन साहित्य के मूल्यांकन के साथ ही समकालीन संदर्भ में अपनी पूरी परंपरा का पुनर्मूल्यांकन करने की दृष्टि देता है ।"[3]

निष्कर्षतः मुक्तिबोध का विवेचन-विश्लेषण कामायनी के अद्यतन विवेचन विश्लेषण के लिए एक चुनौती के रूप में सामने आया दिखाई देता है । जो हिन्दी समीक्षा-क्षेत्र में अपना एक नया निराला अस्तित्व सृजन करता है । इस समीक्षा के कारण हिन्दी समीक्षा को एक नयी दृष्टि प्राप्त हुई है । कवि ने परंपरागत मूल्यों को छोड़कर एक नयी दृष्टि के आधार पर 'कामायनी' का मूल्यांकन प्रस्तुत किया है । मुक्तिबोध में समीक्षा की पहुँच कहाँ तक है, इसको दिखानेवाली यह कृति है । कवि ने जन समाज की उपयोगिता की दृष्टि से इस

1. कामायनी : एक पुनर्विचार दो शब्द, पृ.100
2. वही, पृ.151
3. वही, पृ.79

कृति का मूल्यांकन किया है । इससे यह स्पष्ट होता है कि - कब साहित्य की किसी भी धारा में अपने विचार प्रकट करता है । उनमें उनका जनता-जनार्दन का संबंध दिखाई देता है । कुल मिलाकर हम कह सकते हैं कि कवि के समीक्षक रूप को मौलिकता के साथ प्रकट करनेवाली यह एक महत्वपूर्ण कृति है ।

1.2.2.5 नये साहित्य का सौंदर्यशास्त्र :

'नये साहित्य का सौंदर्यशास्त्र' इस निबंध संग्रह का प्रकाशन सन् 1971 में रमेश गजानन मुक्तिबोध के यत्न से हुआ । स्वयं रमेश गजानन मुक्तिबोध के शब्दों में "स्वर्गीय पिताजी की अप्रकाशित रचनाओं को प्रकाशित करवाने के लिए अनेक साहित्यकारों ने बार-बार मुझे प्रेरित किया । उनके समकालीन साहित्यकारों तथा अनेक युवा लेखकों से समय-समय पर उनकी प्रकाशित, अप्रकाशित, पूर्ण-अपूर्ण रचनाओं पर चर्चा होती रही । फलतः तमाम रचनाओं की खोज की एक योजना बनायी गयी ।"[1]

इस संग्रह में संग्रहीत निबंधो का रचनाकाल लगभग पच्चीस वर्षो में फैला हुआ है । इसलिए इस संग्रह के निबंधों में भाषा तथा कथ्य की दृष्टि से अधिक मात्रा में अंतर दिखाई देता है । संग्रह में अधिकांश निबंधो के अंतर्गत रचना प्रक्रिया के साथ ही साथ नये साहित्य में उपलब्ध जीवन विषयक दृष्टिकोण, जीवनमूल्य, समाज और साहित्य, यथार्थता, कलात्मकता, मानवता आदि प्रश्नों पर लेखक ने गहन चिन्तन-मनन में विचार व्यक्त किये हैं किन्तु सौन्दर्यशास्त्र की दृष्टि का निर्वाह सफल नहीं हुआ है ।

मुक्तिबोध की दृष्टि मे जीवन मूल्य और कलात्मक साहित्यिक मूल्य का स्तर मानक है । इन्हें विकसित करने का साहस, दृष्टि और निष्पक्ष विचारधारा के लिए उनका यत्न है । इस पुस्तक में पन्द्रह निबंध संग्रहित है । 'रचना का मानवतावाद' यह एक उत्तेजक, प्रौढ़ किस्म का निबंध है । साथ ही साथ छायावाद और नयी कविता शीर्षक से दो लघु लेख है । वस्तुतः इनमें नयी कविता के रूप में विधान, कथ्य बोध और प्रकृति को स्पष्ट रूप से उजागर किया है । इनमें ईमानदारी के साथ साहित्य के स्वरूप को स्पष्ट किया गया है ।

---

1. नये साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र, दो शब्द

इस प्रकार हम देखते है कि मुक्तिबोध ने इस रचना में कृति तथा कृतिकार के संबंध में नये दृष्टिकोण विचार किया है । इस रचना की सबसे उल्लेखनीय विशेषता यह है कि लेखक ने इस कृति के आधार पर रचना प्रक्रिया के संबंध में मौलिक विचार प्रकट किए है । मुक्तिबोध ने रचना का जीवन के साथ कितना अटूट संबंध होता है इसको अनेक निबंधों में स्वानुभूति के आधार पर विवेचित किया है । वैचारिकता से भरी हुई यह कृति मुक्तिबोध के व्यक्तित्व एवं कृतित्व को समझने की दृष्टि से अत्यंत महत्त्वपूर्ण है ।

1.2.2.6 काठ का सपना :

गजानन माधव मुक्तिबोध की मृत्यु के पश्चात् उनके दो कहानी-संग्रह प्रकाशित हुए है जिसमें भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन द्वारा 1967 में 'काठ का सपना' कहानी संग्रह प्रकाशित हुआ । जिसकी कहानियाँ उनके जीवनकाल में ही विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुकी थीं । कुल मिलाकर ग्यारह कहानियों का संकलन है । मुक्तिबोध की कहानियों में काव्य संवेदना को ही विस्तार मिला है । सं. नेमिचंद जैन के शब्दों में - "जिस तरह उनकी कविताओं में कथाकार की सूक्ष्म कहानियों में दृष्टि बार-बार प्रकट होती है । उसी तरह उनकी कहानियों में भी एक कवि का स्वर अक्सर उभर आता है । यहाँ तक कि संवेदना के स्तर पर कई बार उनकी कविता और कहानी के अंतर कहना कठिन होता है ।"[1]

मुक्तिबोध का नैतिक मूल्यों के प्रति आग्रह रहा है । 'काठ का सपना' इसी दृष्टि को उजागर करनेवाली मार्मिक कहानी है । जीवन के कठिन संघर्ष ने पति-पत्नी दोनों को काठ सा निष्प्राण बना दिया है । इन दोनों के बीच एक नन्हीं बालिका सरोज है । जो उनके संग संग सहारे चल रही है । इस बोध के होते ही पुरूष अपने कर्तव्य के प्रति सचेत हो उठता है - सरोज की उस बालमूर्ति की रक्षा करनी ही होगी । उन दो निष्प्राण काठ लठ्ठो का यही कर्तव्य है । वस्तुतः यह नन्ही बाल मूर्ति जीवन के आत्मज सत्य का प्रतीक है, जिसका उल्लेख मुक्तिबोध ने किया है ।

---

1. मुक्तिबोध का अध्ययन, डॉ. ललित अरोड़ा, पृ.96-97

निष्कर्षतः मुक्तिबोध की कहानियाँ उनके जीवन संघर्ष और निजी अनुभव से निर्मित है । इन कहानियों में वास्तविक जीवन के अनेक कटु सत्य होने के कारण ये कहानियाँ प्रभाव की दृष्टि से अत्यंत सफल बनी है ।

1.2.2.7 सतह से उठता हुआ आदमी :

यह मुक्तिबोध का दूसरा महत्त्वपूर्ण कहानी संग्रह है । उनकी मृत्यु के पश्चात यह कहानी संग्रह प्रकाशित हुआ । इस कहानी संग्रह की कहानियाँ प्रायः शीर्षक विहीन थी, स्वयं मुक्तिबोध ने शीर्षक नहीं दिये बल्कि संपादकों ने विषयानुरूप शीर्षक दिये है । कुल मिलाकर नौ कहानियाँ है । वस्तुतः मुक्तिबोध की कहानियाँ का रचनाविधान प्रचलित कहानियों से पृथक है । शमशेरजी के शब्दों में - "हर एक कहानी एक ऐसे घाव को, एक ऐसी पीड़ा को हमारे सामने लाती है, जिसे हम देखकर अनदेखा और सुनकर अनसुना कर जाते रहे है । एक बार इन कहानियों को पढ़ने के बाद पाठक के लिए ऐसा करना असंभव हो जाता है । लगता है, जैसे इन कहानियों में बहुआयामी अर्थ छिपे हों । इन्हें पढ़ने पर हर बार ऐसा कुछ शेष रह जाता है जो इन्हें फिर फिर पढ़ने को आमंत्रित करता है ।"[1]

मुक्तिबोध ने मध्यवर्ग की पीड़ाओं उनके वास्तविक जीवन को गहराई से समझकर ईमानदारी से अभिव्यक्त किया है । उनकी अधिकांश कहानियों में मध्यवर्ग की छटपटाहट, असंतोष, कुंठा, निराशा, घुटन, पीड़ा का मार्मिक चित्रण हुआ है ।

सामाजिक विद्रुपता के चित्रण को मुक्तिबोध ने 'सतह से उठता आदमी' में कृष्ण स्वरूप के मध्यम से प्रस्तुत किया है । पहले पहल कृष्ण स्वरूप कहता था कि - त्याग और आत्मदान ही जीने का एकमात्र उपाय है । क्यों ? इसलिए कि पैर उतने ही पसारो, जितनी चादर हैं यह सिद्धांत था उसका । सिद्धांत अपनी जगह सही था लेकिन इसके औचित्य के लिए यह फिलौसाफी लाता था । वह कहा करता था चाहिए, चाहिए, चाहिए ने सत्यता को विकृत कर डाला है, मनुष्य

1. सतह से उठता हुआ आदमी, मुक्तिबोध, पृ.5

संबंध विकृत कर दिये है । तृष्णा बुरी चीज है । हमारा जीवन कुरुक्षेत्र है । पहले यही कृष्ण स्वरूप जीवन की सतह से बहुत नीचे थे । घर में यदि किसी ने अपार की एक फाक तक ज्यादा ले ली तो यह भड़कता था किन्तु अब यह खुशहाल है । क्योंकि वह बदल गया ढ़ाई सो रूपये का सुट पहनता है । इनकम टैक्स की नौकरी करता है किन्तु यह सब हुआ कैसे ? यह हुआ रामनारायण की धनदौलत की देखरेख के कारण और उसमें से चोरी करके ? यही कारण है कि वह रामनारायण से आँख मिलाकर बात नहीं कर पाता । आर्थिक उन्नति में उसके व्यक्तित्त्व अधःपतन हुआ है । आज जो सतह से उपर उठे हुए दिखाई दे रहे है उनके जीवन की कथा कृष्ण स्वरूप जीवन की ही कथा है ।

2.2.8 विपात्र :

विपात्र को एक लघु उपन्यास, लंबी कहानी डायरी का अंश, लंबा रम्य गद्य अथवा एक चौकानेवाला विशेष प्रयोग कहा गया है; किन्तु मुक्तिबोध की इस रचना को उपन्यास न कहकर एक लंबी कहानी के अंतर्गत भी रख सकते है । वैसे तो 'विपात्र' की कल्पना मुक्तिबोध ने उपन्यास के रूप में की थी । सच्चाई यह है कि 'विपात्र' कहानी या उपन्यास दोनों में से कुछ भी न होने के बावजूद दोनों ही है ।

'विपात्र' के संदर्भ में यह कथन है कि नैतिक जगत की अभिव्यक्ति है । बुद्धिजीवियों के संकट की अभिव्यक्ति है । यह संकट दोहरा है । प्रथम अभिव्यक्ति का संकट और द्वितीय अभिव्यक्ति न कर पाने का संकट । अभिव्यक्ति का संकट इसलिए कि इसका प्रमुख पात्र बोस सारे बुद्धिजीवियों को अपना क्रीतदास समजता है - बौद्धिक वर्ग क्रीतदास किराये के विचारों का उद्‌भास । क्रीतदास से मुक्तिबोध का आशय है - उन्हें दूसरों की निंदा करने का तो अधिकार है या वे बातें करने की उन्हें स्वतंत्रता है जिससे स्वामी प्रसन्न हो पर वे बाते नहीं जिनके कारण उनका स्वयं का दम घुट रहा है, इस दमघोंटु वातावरण में भी जीविका के कारण वे उसे अपने बौद्धिक जीवन की नियति मानकर जी रहे है और जिनमें विरोध करने की तनिक शक्ति नहीं है । इसे ही मुक्तिबोध 'ऐलीबाई' कहते है अर्थात् नपुसंक बुद्धिवादिता । दुसरा संकट है कि

इन सारी चीजों की अभिव्यक्ति यदि की जाये तो किस प्रकार ? मुक्तिबोध स्वयं इस संकट के शिकार है और वे रात्रि के एकान्त वातावरण में ये सारी प्रतिक्रियाएँ लिपिबद्ध करते है । इस तरह 'विपात्र' एक मुक्तिभोगी की प्रतिक्रिया है । जिसके कारण यह कृति अधिक तेज और मार्मिक बन गई है ।

सामाजिक विषमता को बतलाते हुए अवसरवादी समझौतावादी नीति का मार्मिक विश्लेषण विवेचन दिया है । जिससे प्रतीत होता है कि संपूर्ण बौद्धिकता को कुंठित किया गया है - "आज कल मजाक चल पड़ा है । दरबारी लोग कहे हैं कि हमारे 'खाविंद' है, और हम सब उनकी नौजवान रखेल हैं । हाँ, इसमें सीनियर - जुनियर रखेल भी है और इन रखेलों में स्वभावतः ईर्ष्या-द्वेष भी है । लेकिन उनमें से किसी में यह ताव नहीं हैं कि पूरी हालत मालिक को समझा दे ।"[1] इससे अधिक ट्रेजेडी और बौद्धिकता क्या होगी ।

निष्कर्ष रूप में कह सकते है कि 'विपात्र' के अंतर्गत मुक्तिबोध ने समाजवादी समाज रचना को मध्य नजर रखकर जगत के असंतोष, घुटन, संत्रास बोध को उजागर किया है । बौद्धिकता की कुंठाग्रस्तता को सामने रखकर मुक्तिबोध ने 'विपात्र' को प्रतीकात्मकता के धरातल पर से अपने विचारों को व्यक्त किया है ।

2.2.9 भारत : इतिहास और संस्कृति :

गजानन माधव मुक्तिबोध की 'भारत : इतिहास और संस्कृति' यह कृति कला निकेतन मंदिर, जनकगंज, लश्कर, ग्वालियर से जुलाई 1962 में प्रकाशित हुई थी । यह पुस्तक लोकप्रियता की सीमा पार करने के कारण प्रथम संस्करण लगभग 35000 प्रतियों का समाप्त होकर द्वितीय संस्करण भी प्रकाशित हुआ ।

इस पुस्तक को मध्यप्रदेश शासन के शिक्षा विभाग द्वारा सेकेन्डरी स्कूलों की उच्च कक्षाओं के लिए स्वीकृत किया गया । इसमें मुक्तिबोध ने सिंधु सभ्यता की प्रारंभिक अवस्था से भारत की स्वाधीनता और उसके भी बाद तक के विकास-काल को संक्षिप्त रूप में चित्रित किया है । मुक्तिबोध ने इस रचना के

1. मुक्तिबोध व्यक्ति एवं पात्र, डॉ. गणेश खरे, पृ.69

ऐतिहासिकता पर बल देते हुए नहीं बल्कि सामाजिक और सांस्कृतिक विकास की जानकारी किशोरों के लिए बहुत आवश्यक है । इससे वे इस देश की परंपरा को सही ढंग से समझ सकेंगे । अपने इस अति प्राचीन समाज के मर्म को समझना बहुत जरूरी है । मैंने इस पुस्तक में ही प्रयत्न किया है । युद्धों और राजवंशो के विवरण में अटककर मैंने अपने समाज और उसकी संस्कृति के विकास पथ को अंकित किया है ।"[1]

संक्षेप में मुक्तिबोध ने इस कृति के लिए बहुत कठिन परिश्रम किया था, किन्तु उनके पुस्तक पर पाबंदी लगायी गयी उससे ये उतेजित हो उठे किन्तु उनकी आशा थी कि यह पुस्तक पाठ्यपुस्तक के रूप में न रहकर सामान्य पुस्तक के रूप में भी यदि बनी रहती तब भी उन्हें अधिक दुःख न होता ।

निष्कर्ष :

इस प्रकार हम देखते है कि गद्य लेखन में भी मुक्तिबोध ने बहुत अधिक योगदान दिया है । उनका गद्यलेखन काल्पनिक नहीं, वास्तविक है । जीवन की अनेक कटू बातों का उन्होंने अपने गद्य साहित्य में अंकित किया है । इस गद्य-साहित्य में तत्कालीन जीवन की अनेक घटनाएँ साकार रूप में चित्रित है । मुक्तिबोध का व्यक्तित्व एवं कृतित्व समझने के लिए उनके गद्य-साहित्य का अध्ययन करना आवश्यक है । निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि मुक्तिबोध का साहित्य अनेक दृष्टियों से महत्वपूर्ण हैं ।

---

1. भारत : इतिहास और संस्कृति, पृ.6

अध्याय-2

मूल्यचेतना : मूल्य की अवधारणा

- प्रस्तावना

2.1 मूल्य का अर्थ

2.2 मूल्य की परिभाषा

2.3 मानव मूल्य की अवधारणा

2.4 मूल्य वर्गीकरण

2.4.1 आर्थिक मूल्य

2.4.2 सामाजिक मूल्य

2.4.3 व्यक्तिगत मूल्य

2.4.4 नैतिक मूल्य

2.4.5 राजनीतिक मूल्य

2.4.6 सौन्दर्यपरक मूल्य

2.4.7 दार्शनिक मूल्य

2.4.8 धार्मिक मूल्य

मूल्यचेतना : चेतना की अवधारणा

- प्रस्तावना

2.5 चेतना का अर्थ

2.6 चेतना की परिभाषा

2.7 चेतना का स्वरूप निरूपण

2.8 चेतना का वर्गीकरण

2.8.1 सामाजिक चेतना

2.8.2 धार्मिक चेतना

2.8.3 राजनीतिक चेतना

2.8.4 आर्थिक चेतना

मुक्तिबोध के काव्य में मूल्यचेतना

- प्रस्तावना

2.9 मुक्तिबोध के काव्य में मूल्यचेतना

2.9.1 मूल्यचेतना : वैयक्तिक पक्ष

2.9.2 मूल्यचेतना : सामाजिक पक्ष

2.9.3 मूल्यचेतना : राजनीतिक पक्ष

2.9.4 मूल्यचेतना : सांस्कृतिक पक्ष

2.9.5 मूल्यचेतना : बौद्धिक पक्ष

2.9.6 मूल्यचेतना : सौन्दर्यात्मक पक्ष

- उपसंहार

अध्याय-2

मूल्यचेतना : मूल्य की अवधारणा

'मूल्य' शब्द वस्तुतः नीतिशास्त्रीय वैल्यू का पर्यायवाची है । अर्थशास्त्र में वह 'बाज़ार पर' अर्थ विनिमय के आवश्यक प्रतिमान के अर्थ में प्रयुक्त होता है । 'मूल्य' शब्द के अर्थ में विस्तार हुआ है तथा अब यह मान, प्रतिमान, मानदंड के अर्थ की अभिव्यक्ति करता है ।

2.1 मूल्य का अर्थ :

'मूल्य' शब्द की चर्चा आज बड़े ही व्यापक स्तर पर हो रही है । 'मूल्य' अंग्रेजी के 'value' शब्द का हिन्दी पर्याय है, जो यूनानी शब्द 'एक्सियस' से बना है जिसका अर्थ होता है, मूल्य या किंमत ।"[1] विभिन्न शब्दकोशों में 'मूल्य' शब्द भाववाचक संज्ञा, विशेषण और क्रिया के रूप में प्रयुक्त हुआ है ।

'ओक्सफोर्ड इंग्लिश डिक्शनरी' में मूल्य का संज्ञावाचक अर्थ - महत्त्व, योग्यता, उपयोगिता, विनिमय में निर्धारित किया हुआ मान, किसी का समान धर्मो तत्वों या किसी के हेतु प्रयुक्त प्रतीक आदि है । उदाहरण स्वरूप - वक्तव्यों का कोई मूल्य न होना, अनुशासन के मूल्य के समझना, समय को पर्याप्त मूल्य देना, बाजार मूल्य जानना, अपनाो मूल्य से कम पर बेचना, विभिन्न मूल्यों वाले शब्दों का व्यवहार करने की भूल करना, किसी संख्या का मूल्य निकालना आदि । दूसरी क्रिया के रूप में अर्थ होता है - निर्धारण करना, महत्व देना, उचित सम्मति रखना इत्यादि । इसी शब्द की भाववाचक संज्ञा मूल्यांकन है, जिससे मूल्य का धर्म - कर्म तय होता है ।

संस्कृत भाषा में 'मूल्य' शब्द की उत्पति 'मूल' धातु से यत् प्रत्यय (मूल + यत्) लगाने से हुई है । संस्कृत हिन्दी कोश में मूल्य (मूल + यत्) के अर्थ हैं उखाड़ देने योग्य, मोल लेने योग्य, कीमत, मोल, लागत । संस्कृत में ही 'मान' शब्द को मूल्य का पर्याय स्वीकार किया गया है जिसके अर्थ नाप, गर्व, नारी, अभिमान तथा आधिपत्य दिए गए है । मूल्य का अर्थ दाम, परिश्रमिक किराया

1. हिन्दी विश्वकोश (खंड-2), रामप्रसाद त्रिपाठी, पृ.365

या कोई कीत्र वस्तु भी है । मानक हिन्दी कोश में मूल्य का अर्थ इस प्रकार है - "मूल्य मुद्रा के रूप में उतना धन जो कोई चीज क्रय करने के लिए उसके बदले में किसी को देना पड़ता है, हर दर या भाव जिस पर कोई चीज बिकती हो । अर्थशास्त्र के अनुसार वह किसी वस्तु की मांग और होनेवाली पूर्ति की मात्रा के आधार पर स्थिर होता है, वह गुण या तत्व जिसके आधार पर किसी का महत्व या मान होता है । वह जो कुछ किसी कारणवशात् झेलना, भुगतना या बलिदान करना पड़ता है । जैसे अत्यधिक परिश्रम का मूल्य स्वास्थ्य हानि के रूप में चुकाना पड़ता है ।"[1]

जब हम मूल्य की बात करते हैं तो नीतिशास्त्र (Ethics) में भी प्रवेश कर जाते हैं, क्योंकि "यह शब्द नीतिशास्त्र के 'वैल्यू' का पर्यायवाची है । मानवीय क्रियाओं के आचार-व्यवहार में अच्छाई या शिवत्व का मूल्य क्या हे, उस पर नीतिशास्त्र ने बहुत विचार किया है । कुछ लोगों के अनुसार समाज में सर्वसम्मत, सर्वव्यापक मूल्यों का निर्धारण असंभव होता है । प्रत्येक समाज की अपनी-अपनी अलग मान्यताएँ, विचारधाराएँ और परंपराएँ होती हैं, जिनसे मूल्यों का निर्माण होता है । कहीं पतिव्रत धर्म की महिमा है तो कहीं पत्नीव्रत की, कहीं एक पत्नीत्व की, कहीं बहुपत्नीत्व की और कहीं केवल क्षणिक स्त्री-पुरूषों के सम्बन्धों की । ऐसी स्थिति में कुछ नीतिशास्त्री जैसे मिल और जोन्स ने उपयोगीतावादी कसोटी 'अधिकों का हीत' (बहुजन हिताय) प्रस्तुत किया । कांट ने नैतिक क्रिया के मूल में जो हेतु या कारण सरणी है, उसकी मीमांसा करके सोदेश्य कर्म में ही मानव को अपने में साध्य यानि उसे श्रेष्ठतम और नैतिक कर्म माना, आदर्शवादी नीति को अंतिम मूल्य मानव कल्याण और उसकी अधिकाधिक अनासक्ति को ही मानते रहे (बुद्ध, ग्रीन, गांधी) । नीतिशास्त्र में तो उपनिषदों के श्रेय-प्रेय विवेचन से या सुकरात के सत्य के लिए जहर पीने से लेकर, आज तक यह प्रश्न बार-बार उठा है और कई बार इसके कई उत्तर दिए जा चुके है ।"[2]

अर्थशास्त्र में इस शब्द का प्रयोग किसी वस्तु की मानवीय आवश्यकता और इच्छा पूर्ति की क्षमता के अनुरूप किया जाता है - "अर्थशास्त्र में वह

1. द ओक्सफोर्ड इंग्लिश डिक्शनरी, वी. रिडबर, 1970
2. हिन्दी साहित्य कोश (भाग-1), सं. डॉ. धीरेन्द्र वर्मा, पृ.659

(मूल्य) बाजार दर के अर्थनियम के एक आवश्यक प्रतिमान के अर्थ में प्रयुक्त होता है ।"[1] किसी वस्तु का मूल्य उसकी आवश्यकताओं की प्राप्ति पर बहुत निर्भर करता है । किसी भी वस्तु के आसानी से मिलाने पर उसकी उतनी महत्ता नहीं रहती, उसका मूल्य कम हो जाता है । दूसरे, वस्तु का मूल्य उसकी आवश्यकता, मानवीय जीवन में उसके महत्त्व पर निर्भर रहता है - हमें मूल्य मान में नहीं बल्कि उससे उद्भूत इच्छाओं और उनकी पूर्ति के रूप में देखना होगा ।

'मूल्य' को साहित्य के संदर्भ में देखते हुए हिन्दी साहित्य कोश में लिखा गया है - "साहित्य शास्त्र में 'मूल्य' शब्द समाज कल्याण या मानवहित वाले व्यापक अर्थ तक सीमित नहीं है, अन्यथा समस्त धर्मग्रंथ ही सर्वश्रेष्ठ साहित्य माने जाते । कई बार साहित्य में वर्णित आचरण घटना या व्यक्ति नीति-सम्मत नहीं होते फिर भी उसका अपना मूल्य होता है । यही सत्य, शिव और सुन्दर तीनों मूल्यों को ही अंतिम मूल्य समझकर चलते हैं । नीति प्रचारक शिव को और वैज्ञानिक या वास्तववादी (यथार्थवादी) सत्य को ।"[2]

सारांश यह है कि 'मूल्य' शब्द पहले नीतिशास्त्र में प्रयुक्त हुआ, उसके बाद अर्थशास्त्र में, फिर मानवीय संवेदनाओं से जुड़ने पर यह साहित्य, दर्शन और सौन्दर्यशास्त्र में विविध अर्थो में प्रयुक्त होने लगा ।

2.2 मूल्य की परिभाषा :

'मूल्य' अपने आप में एक अमूर्त धारणा या अनुभव है, जिसको परिभाषा में बांधना बड़ा ही मुश्किल है । इसका सीधा-सा संबंध मानव जीवन से है । 'मूल्य' की कोई भी स्थिति सार्वभौमिक नहीं मानी जा सकती क्योंकि संदर्भ, स्थान, स्थिति के अनुसार इसका अर्थ बदलता रहता है । परिभाषा में बांधकर इसको संकुचित नहीं किया जा सकता, फिर भी उसे समझने के लिए कुछ निश्चित शब्दों में बांधना तो पडेगा ही । पहले मूल्य की कुछ प्रसिद्ध परिभाषाओं का अवलोकन करें ।

---

1. हिन्दी साहित्य कोश (भाग-1), सं. डॉ. धीरेन्द्र वर्मा, पृ.658

2. वही ।

डॉ. नगेन्द्र 'मूल्य' को पारिभाषित करते हुए लिखते है - "मूल्य उस समवाय का नाम है, जो किसी पदार्थ की अपने लिए, प्रमाता के लिए अथवा अपने परिवेश के लिए, सार्थकता का निर्धारण करता है । पदार्थ का गुण होने के कारण मूल्य की सत्ता वस्तुपरक है, किन्तु प्रमातृ सापेक्ष होने के कारण वह व्यक्तिपरक है ।"[1] यहाँ डॉ. नगेन्द्र ने पदार्थ की सार्थकता और उसके परिवेश के लिए महत्व रखता हो ।

जीवन की सक्रियता में मूल्यों का महत्व स्वीकार करते हुए अरबन लिखते हैं - "ऐसी कोई भी वस्तु मूल्य हो सकती है । जो जीवन को आगे बढ़ाती है और सुरक्षित करती है ।"[2]

वी.आई. लेनिन के अनुसार "प्राथमिक रूप से एक वस्तु मानव की आवश्यकता को संतुष्ट करती है, गौण रूप में एक वस्तु को दूसरी वस्तु के लिए बदला जा सकता है । एक वस्तु की उपयोगिता ही उपयोगी मूल्य का निर्माण करती है ।"[3] लेनिन यहाँ साम्यवादी विचारधारा के अनुसार 'मूल्य' को वस्तु की आवश्यकता और उपयोगिता में देखते है, वह भी मानव के संदर्भ में ।

पोल हान्ले फर्म ने वस्तु की आवश्यकता पर बल देते हुए लिखा है - "किसी वस्तु की मानवीय आकांक्षाओं को पूरी करनेवाली विश्वस्त योग्यता, किसी वस्तु का यह गुण जो व्यक्ति अथवा व्यक्ति के समूह के लिए उसे रूचिकर बनाता है ।"[4]

डॉ. रमेशकुन्तल मेघ 'मूल्य' के संबंध में लिखते है - "मूल्यः साधारणतया तथा तत्क्षण प्रदतगुण (शब्द-स्पर्श-रूप-रस-गंध) नहीं, बुनियादी प्रपत्तियाँ है । मूल्य इन्द्रियगम्य संघटनाएं न होकर 'प्रपतिमूलक धारणाएँ' है जिनको हम घटनाओं की तुलना द्वारा या अनुभव द्वारा प्राप्त करते है ।"[5]

1. भारतीय सौंदर्यशास्त्र की भूमिका, डॉ. नगेन्द्र, पृ.160
2. Fundamental of Ethics, P.16
3. Marx Engles - Marxism, P.16
4. पाल हर्ले फर्म, अनुवादक - समाजशास्त्र का क्षेत्र एवं पद्धति, हरिश्चंद्र, पृ.82
5. सौन्दर्य मूल्य और मूल्यांकन, पृ.4

गोविन्दचंद्र पांडे अपने ग्रंथ 'मूल्य-मीमांसा' में मूल्य के संदर्भ में कहते है - "यदि विवेक गर्भ पर्येषणा को मानव-विकास एवं संस्कृति का मूल माना जाए तो पर्यषणीयता को मूल्य का लक्षम कहा जा सकता है । जिस विषय को खोज का विषय होने पर विवेक का समर्थन प्राप्त हो जाता है वही मूल्य है ।"[1]

उपर्युक्त परिभाषाओं के अध्ययन के पश्चात् हम देखते हैं कि आम तौर पर सभी विद्वानों ने वस्तु की मानव के लिए उपयोगिता तथा उसके आंतरिक गुण को महत्व दिया है । इस तरह मूल्य के संबंध में कह सकते हैं कि जो वस्तु व्यक्ति के मन को शांति दे, उसकी प्रेरणा बने वह अपने आप में सार्थक महत्त्व रखती है । वह मूल्यवान है, यानि किसी वस्तु की केन्द्रीय गुणवत्ता और मानव-जीवन के लिए उसकी उपयोगिता ही मूल्य है ।

2.3 मानव-मूल्य की अवधारणा :

सृष्टि के आरंभ से मानवीय जीवन को सुविधापूर्वक बनाने के लिए कुछ नियमों का निर्धारण किया जाता है, जो सार्वभौमिक और सार्वकालिक होते है किन्तु इनमें समयानुसार थोड़ा बहुत परिवर्तन होता रहता है । इनका विकास, विभिन्न परिवेश, परिस्थितियों में होता है, इसलिए प्रत्येक देश के धर्म, दर्शन, संस्कृति में भिन्नता दिखाई पड़ती है किन्तु सर्वत्र ही मूल्यों के निर्धारण में मानव के उत्थान, पतन और कल्याण की भावना मूल में रहती है, जैसा कि प्रसिद्ध समाजशास्त्री वुड्स ने लिखा है - "'मूल्य' दैनिक जीवन में व्यवहार को नियंत्रित करने के सामान्य सिद्धान्त है । मूल्य न केवल मानव व्यवहार को दिशा प्रदान करते है, बल्कि वे अपने आप में आदर्श और उद्देश्य भी है ।"[2]

सभी प्रकार के मूल्य मानव-जीवन से संबंधित है इसलिए मूल्यों को मानव जीवन से अलग रखकर नहीं देखा जा सकता है, क्योंकि समाज के साथ ही मूल्यों का आविर्भाव और विकास होता है । अतः जितना पुराना समाज होता है, मूल्य भी उतने ही पुराने होते है । कहने का आशय है कि सभी मूल्य मानव द्वारा निर्मित होते है और समयानुसार उसी के द्वारा उनको अस्वीकार भी कर

1. मूल्य मिमांसा, डॉ. गोविन्दचन्द्र पांडे, पृ.31

2. समाजशास्त्र का विधान, नरेन्द्रकुमार एवं सुधाकर गोस्वामी, पृ.29

दिया जाता है । मानव ही सभी प्रकार के मूल्यों के केन्द्र में होता है इसलिए सभी मूल्यों को हम मानव-मूल्य मान सकते है ।

आम तौर पर सभी चिंतकों ने मानव-मूल्यों का आधार विवेक माना है, जिससे वह अच्छाई-बुराई को समझ सकता है । आरंभ से ही मूल्य समयानुसार परिवर्तित होते रहे है । जो समाज के विकास में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते है । पश्चिमी विचारकों ने 18वीं शती में मानव-मूल्यों पर काफी विचार किया । जिनमें अरबन, मूर, प्यू विशेष रूप से उल्लेखनीय है । इनके चिंतन, विचारधारा, विज्ञान की उत्पति और विकास ने दार्शनिक, धार्मिक, प्रेम विनय और नैतिकता के मूल्यों को नकार दिया ।

भारतीय चिंतको ने व्यवस्थित जीवन यापन के लिए चार पुरूषार्थो धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की कल्पना की, जिनसे ऐसी कसौटियाँ बनाई गयी जो व्यक्ति की आंतरिक और बाहरी आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकें । बाबू गुलाबराय मानते हैं कि सारे मानव मूल्य इन्हीं पुरूषार्थो में समा जाते हैं - "धर्म में सामाजिक और नैतिक मूल्य आ जाते है, अर्थ का संबंध भौतिक मूल्यों से है, काम में सौन्दर्य और कला संबंधी सभी मूल्य सम्मिलित है और मोक्ष में आध्यात्मिक मूल्य आ जाते है । आध्यात्मिक मूल्य भौतिक मूल्यों से ऊँचे अवश्य है किन्तु उनकी उपेक्षा नहीं करते । भौतिक सोपानों द्वारा ही आध्यात्मिकता की प्राप्ति होती है ।"[1]

कुछ विद्वान मानव-मूल्यों में लोकहित को सर्वश्रेष्ठ मूल्य मानते हैं । इस बात की पुष्टि अरबन के इस कथन से होती है - "मानव मूल्य की उचित कल्पना आत्मानुभूति तथा आत्मसिध्दि के प्रत्यय को सम्मिलित किए बिना नहीं हो सकती है ।"[2] पश्चिमी विचारक तो किसी न किसी शास्त्र के आधार पर मानव मूल्यों को स्पष्ट करते है और ज्यादातर संस्कृति का सहारा होते हैं, क्योंकि मानव मूल्यों की पहचान संस्कृति द्वारा सहज रूप में की जा सकती है । कुछ विद्वान तो इन्हें एक दूसरे के बिना अधूरा मानते है, क्योंकि सामाजिक परंपराएँ,

1. अध्ययन और आस्वाद, गुलाबराय, पृ.6-7

2. Fundamental of Ethics, P.16

पर्वोत्सव, रूढ़ियाँ, विवाह, सामाजिक स्थितियाँ, व्यवसाय आदि संस्कृति के परंपरागत मूल्य है । जिन्हें हम बाह्य मूल्य की संज्ञा भी दे सकते है ।

इस प्रकार मूल्य के अंतर्गत व्यक्तिगत मूल्य, आर्थिक मूल्य, राजनीतिक मूल्य, दार्शनिक मूल्य, धार्मिक मूल्य, नैतिक मूल्य और सौन्दर्यपरक मूल्यों की गणना की जा सकती है ।

2.4 मूल्य वर्गीकरण :

सामान्यतः व्यक्ति और समाज के आधार पर मूल्यों को दो भागों में बाँटा जा सकता है - व्यक्तिगत मूल्य और सामाजिक मूल्य । व्यक्तिगत मूल्य इन्द्रिय बोध से संबंधित और भावात्मक होते है । जो व्यक्ति विशेष तक सीमित रहते है । सामाजिक मूल्यों में रूढ़ियों, सामाजिक स्थितियाँ, सामाजिक परंपराएँ, उत्सव आदि आते है ।

भारतीय और पाश्चात्य चिंतकों ने मूल्यों को कोई दृष्टिकोणों से देखा और सुविधानुसार उनका वर्गीकरण किया है । पाश्चात्य चिंतक अरबन ने स्थूल रूप में मूल्यों को आठ भागों में बाँटा है -

शारीरिक मूल्य आर्थिक मूल्य मनोरंजनात्मक मूल्य	शरीर विषयक मूल्य
सामाजिक मूल्य चरित्रात्मक मूल्य	सामाजिक मूल्य
सौन्दर्य मूल्य बौद्धिक मूल्य धार्मिक एवं इश्वर विषयक मूल्य	अध्यात्मिक मूल्य

अरबन ने शारीरिक और आर्थिक मूल्यों को ज्यादा महत्वपूर्ण माना है और सबसे पहले शारीरिक मूल्यों को स्थान दिया है, क्योंकि मानव शरीर ही तो सभी मूल्यों का आधार है, जिसको पालने के लिए ही अर्थ की आवश्यकता पड़ती है, इसलिए शरीर को सबका आधार मानकर, उसको पुष्ट करने के लिए

अर्थ को क्रमशः उसके बाद स्थान दिया । अरबन ने इसके बाद मनोरंजनात्मक मूल्यों को स्थान दिया है, क्योंकि ये सभी व्यक्ति की शारीरिक और मानसिक जरूरतों को पूरा करते हैं । व्यक्ति को समाज में रहना पडता है जिनके लिए अच्छे चरित्र की आवश्यकता पड़ती है । अच्छे चरित्रवाला व्यक्ति ही समाज में प्रतिष्ठा को प्राप्त करता है । अरबन ने शारीरिक और सामाजिक मूल्यों के साथ आध्यात्मिक मूल्यों को भी स्वीकार किया है किन्तु गौण रूप में । लेखक ने पहले तीन मूल्यों (शारीरिक, आर्थिक और मनोरंजनात्मक) को शारीरिक मूल्य का नाम दिया है । उसके बाद सामाजिक और चरित्रात्मक मूल्यों को सामाजिक मूल्य और अंतिम तीन सौंदर्यपरक, बौद्धिक और धार्मिक को आध्यात्मिक मूल्यों का नाम दिया ।

अरबन द्वारा शारीरिक मूल्यों को महत्व दिये जाने के पीछे कारण यह हो सकता है, कि वे पाश्चात्य चिंतक है और भौतिकवाद के ज्यादा नजदीक है, जिससे वे आत्मा और आध्यात्मिकता की बजाय भौतिकता पर ज्यादा बल देते है क्योंकि पश्चिम के लोग आत्मा को तत्व न मानकर एक धारणा के रूप में स्वीकार करते हैं इसलिए वे शरीर को महत्त्व देते है जो हर चीज का आधार है । उनके लिए आध्यात्मिकता गौण है । अरबन के मूल्य विभाजन से एक बात तो साफ है कि उन्होंने आध्यात्मिक और धार्मिक मूल्यों को माना जरूर है किन्तु गौण रूप में ।

हर विचारक अपने ढंग से मूल्यों को दो भागों में बाँटता है । कोई उन्हें बाह्य और आंतरिक मूल्य का नाम देता है, तो कोई साधनात्मक मूल्य और साध्यात्मक मूल्य, कोई व्यक्तिगत और सामाजिक मूल्य कहता है तो कोई नैतिक और अनैतिक मूल्य का नाम देता है ।

भारतीय चिंतको ने धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष ऐसे मूल्य माने है, जिनमें आम तौर पर सभी मूल्य मा जाते है । भारतीय मोक्ष को सर्वश्रेष्ठ मूल्य मानते है । भारतीय मान्यता के अनुसार मोक्ष के पश्चात् व्यक्ति किसी भी वस्तु की इच्छा नहीं करता । वह सांसारिकता से परे हो जाता है । जीवन के दुःखों से मुक्त हो जाता है । मोक्ष साधन नहीं है, अपितु वह अपने आप में साध्य है और सर्वश्रेष्ठ मूल्य है ।

भारतीय और पाश्चात्य चिंतको में भौतिकता और आध्यात्मिकता को लेकर मतभेद हैं क्योंकि पश्चिमी लोग भौतिकता को ज्यादा महत्व देते हैं और भारतीय आध्यात्मिकता को । पाश्चात्य चिंतक प्यू ने मूल्यों को समय, आवश्यकता और स्थिति के अनुसार श्रेष्ठ या गौण माना है, और मानव के निर्णय, व्यवहार और बौद्धिक विकास को मूल माना है । उनका मूल्यों का वर्गीकरण कुछ इस प्रकार है -

1. स्वनिष्ठ मूल्य अथवा शारीरिक मूल्य (सैल्फिश वेल्यूज) (Selfish Value)
2. सामाजिक मूल्य (सोश्यल वेल्यूज) (Social Value)
3. बौद्धिक मूल्य (इंटेलैक्युअल वेल्यूज) (Infellectual Value)

भारतीय और पाश्चात्य विचारकों का अध्ययन एवं मनन कर डॉ. धर्मवीर भारती नवीन मूल्यों में मानव स्वतंत्रता की चरम सत्ता मानते हुए मूल्यों में परिवर्तनशीलता को रेखांकित करते है, जबकि डॉ. गोविन्दचन्द्र पांडे ने मूल्यों को उपयोगिता आदर्श और नीति के आधार पर समझने का प्रयत्न किया है । डॉ. रमेश कुंतल मेघ ने कलीबाई मूल्यों के साथ मार्क्सवादी चिंतन को ग्रहण कर सौंदर्य बोधात्मक मूल्यों को श्रेष्ठ माना है ।

डॉ. रमेश कुंतल मेघ मार्क्सवादी चिंतन से ज्यादा प्रभावित है और वाद विशेष से प्रभावित होकर वे नैतिक और दार्शनिक मूल्यों का आधार आर्थिक मूल्यों को मानते हुए उसे सर्वश्रेष्ठ भी मानते है । डॉ. मेघ ने मूल्यों को दो भागों में बाँटा है, प्रकृत तथा साधन मूल्य । प्रकृत मूल्य अपने ही कारण मूल्यवान होते है । इन्हें ये साध्य या प्रकृत मूल्य अथवा सार्वभौम प्रणीत निर्विकल्प भी मानते है । इनमें समस्त आदर्श श्रेष्ठता महत्वपूर्ण है । डॉ. मेघ के शब्दों में “जब मनुष्य अपने सामाजिक अहम की तृप्ति के साथ-साथ ही अपने आदर्शों तथा आत्म की पूर्ति में संलग्न हो जाते है, तब साध्य मूल्यों की प्रतिष्ठा हो जाती है ।”[1] मानव जब अपना विकास करता है, तो उसकी दृष्टि व्यापक हो जाती है, और वह मूल्यों के अर्थ को अपनी उसी व्यापक दृष्टि से अलग-अलग (आर्थिक, दार्शनिक, नैतिक, सौन्दर्यपरक, धार्मिक-राजनीतिक) देखता, समझता है और उनकी सोची-समजी विभिन्न दृष्टियों (अर्थ) मूल्यों की अनेक श्रेणियों में

1. सौन्दर्य मूल्य और मूल्यांकन, पृ.45

परिवर्तित हो जाती है । तथा मूल्यों के विभिन्न वर्ग बन जाते है । डॉ. मेघ मानते है - "इस वर्गीकरण में हम कोई कठोर लक्ष्मणरेखा नहीं खींच सकते क्योंकि इनकी अंतर्यात्राएँ हो सकती है ।"[1]

कहने का आशय यह है कि मूल्यों का स्थायी वर्गीकरण नहीं हो सकता ।

डॉ. मेघ साधन मूल्यों के संबंध में कहते है - "जो अपने साधनों के द्वारा एवं परिणामों के कारण मूल्यवान होते है, उन्हें साधन मूल्य कहा जाता है । साधन-मूल्यों के आधार पर मनुष्य (स्त्री-पुरूष) प्रकृति और समाज है । साधन-मूल्यों की स्थिति अपेक्षाकृत सुलभ है । भोजन, संपति आदि साधन मूल्य है ।"[2] उनके अनुसार अभिमान, गर्व, साहस, कबीलों के प्रति वफादारी ही कलीबाई मूल्य है । प्राचीन परंपराएँ पुनर्जन्म, बहुदेववाद आदि इन्हीं के प्रतीक है । डॉ. मेघ के शब्दों में - "महाभारत में वर्णित द्रोपदी के पांच पति, कुन्ती का सूर्य द्वारा गर्भवती होना, प्लेटों के साम्यवाद में प्रतिपादित स्त्रियों के सामूहिक विवाह, प्रजापति का अपनी कन्या से संबंध, रोमांटिको और रूसों द्वारा वर्णित प्राकृतिक अवस्था के समाज और सौन्दर्य की 'शुद्ध पूर्ण स्वतंत्र' पूर्ण समान और 'सरल' अवस्था की आकांक्षा आदि उस काल के कबीले के मूल्यों के अचीन्हें अवशेष है ।"[3]

डॉ. धर्मवीर भारती ने मानवीय मूल्यों और साहित्य का काफी गहराई से चिंतन और मनन किया है, किन्तु उनको वर्गो में नहीं बाँटा । वे अस्तित्ववादी दर्शन से काफी प्रभावित रहे है, जिससे वे मर्यादा, विश्वास, आस्था और विवेक के साथ वर्तमान युग के अविश्वास, अनास्था, संशय की चर्चा भी करते है, जिसमें आदर्शवाद के साथ-साथ युग-बोध को भी स्वीकार किया गया है । उन्होंने मानव-मूल्यों और साहित्य को तीन भागों में बाँट कर देखा है । पहले भाग में मानवीय तत्वों का विघटन है । दूसरे भाग में नयी मर्यादा का उदय है और अंतिम भाग में नए मूल्य और विविध संदर्भ है । उन्होंने साहित्य में मनुष्य की स्वतंत्रता को विशेष स्थान दिया है क्योंकि स्वतंत्रता से मानव में दायित्व की भावना पनपती है, जिससे वह नए मूल्यों की खोज करता है । उन्होंने अंतरमर्यादा और नैतिक प्रेरणा को मानव-मूल्यों का आधार माना है ।

1. सौन्दर्य मूल्य और मूल्यांकन, पृ.41
2. वही ।
3. वही, पृ.46

डॉ. गोविन्द चंद्र पांडे सापेक्ष और निरपेक्ष के माध्यम में उपयोगिता के आधार पर मूल्यों को विभाजित करते है । उन्होंने व्यवहारिक मूल्य, आदर्श मूल्य तथा परमार्थिक मूल्यों के पश्चात राजनीतिक मूल्य, सात्विक मूल्य और नैतिक मूल्यों को लिया है । लेखक ने अपने राय देते सतत व्यवहार, उपयोगिता और तार्किकता को आधार माना है । व्यवहारिक मूल्य और राजनीतिक मूल्य के संदर्भ में राज्य को मानवीय संबंध का व्यवस्थापक माना है । इनमें शक्तिसंग्रह, व्यवस्था सुधार, समानता, स्वतंत्रता जैसे मूल्यों की बात की है ।

उपर्युक्त विश्लेषण के बाद हम कह सकते है कि 'मूल्य' एक ऐसी धारणा है, जिसका निर्माता और ध्वंस करनेवाला स्वयं मानव है । प्रत्येक मूल्य मानव के चिंतन-मनन का परिणाम है । इसलिए मानव मूल्य महत्वपूर्ण है । ये सभी 'मूल्य' मानव-मूल्य तो कहलायेंगे ही, किन्तु इसके वर्गीकरण का कोई निश्चित मापदंड नहीं है क्योंकि इनकी सत्ता अमूर्त है । उपर अरबन, प्यू, धर्मवीर भारती, डॉ. गोविन्दचंद्र पांडे, डॉ. रमेश कुंतल मेघ आदि के वर्गीकरण के संबंध में विचार दिये गये है । उन्हीं का अध्ययन करने के बाद हम मूल्यों को वर्गीकृत करते हैं -

(1) आर्थिक मूल्य
(2) सामाजिक मूल्य
(3) राजनीतिक मूल्य
(4) व्यक्तिगत मूल्य
(5) नैतिक मूल्य
(6) सौन्दर्यपरक मूल्य
(7) दार्शनिक मूल्य
(8) धार्मिक मूल्य

2.4.1 आर्थिक मूल्य :

आर्थिक मूल्यों का आशय है, धन संबंधी मूल्य । इस शताब्दी में मानव-जीवन आध्यात्मिकता, दार्शनिकता, सामाजिकता, नैतिकता से अलग होकर अर्थ केन्द्रित हो गया है, तभी तो मनुष्य आर्थिक मूल्यों को ज्यादा महत्व देने लगा है । पहले आत्म-संतुष्टि को सबसे बड़ा मूल्य माना जाता था, किन्तु वर्तमान समय में संतोषी व्यक्ति को लोग कुछ मानते ही नहीं । इसलिए लोगों में अर्थ को प्राप्त करने के लिए आपाधापी मची हुई है ।

आर्थिक मूल्यों पर सर्वप्रथम सर्वाधिक बल कार्ल मार्क्स ने दिया । इससे विश्व की आर्थिक समस्याओं को नया मोड़ मिला । हमेशा से पीड़ित, आर्थिक दृष्टि से कमजोर लोगों को एक नयी दृष्टि मिली और उनमें आशा का नवीन संचार हुआ, जिससे समाज में शोषक और शोषित का संघर्ष आरंभ हुआ । आर्थिक मूल्यों का मानव के साथ बड़ा गहरा अटूट संबंध है । इन्हीं के कारण मनुष्य को गरीबी से छुटकारा मिल सकता है । उसे सामाजिक स्तर पर समानता और बराबरी का स्थान मिल सकता है, और मानव का कल्याण हो सकता है । आज के सभी आर्थिक मूल्यों को मार्क्स की विचारधारा से प्रभावित माना जा सकता है । भारतीय चिंतकों ने पुरूषार्थ (मूल्यों) की धारणा प्रस्तुत कर धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की महत्ता स्थापित की है । ये मूल्य बड़े ही व्यवस्थित क्रम से है । जीवन को सुचारू रूप से चलाने के लिए उनकी बड़ी आवश्यकता रहती है । हमारे पुरूषार्थो में सभी प्रकार के मूल्य समाहित है । हम पुरूषार्थों में चरम मूल्य 'मोक्ष' को माना जाता है ।

पाश्चात्य चिंतकों ने भौतिक जीवन को महत्त्व दिया है । इन लोगों ने आध्यात्मिकता और दर्शन को गौण माना है । ये लोग जो दिखाई देता है, प्रत्यक्ष है, यथार्थ है, उसी को अंतिम सत्य मानते है । इसलिए इन्होंने भौतिक शरीर के साथ-साथ धर्म (धन) को भी बहुत महत्त्व दिया है । कार्ल-मार्क्स लिखते है - "राजनीति, बौद्धिक, दार्शनिक, धार्मिक, साहित्यिक और कलात्मक आदि का विकास आर्थिक विकास पर ही निर्भर है, किन्तु इनकी एक दूसरे पर और आर्थिक आधार पर भी प्रतिक्रिया होती है । वास्तव में आर्थिक आवश्यकता के आधार पर आपस में एकदूसरे पर प्रतिक्रिया होती है, और अंततः यही प्रतिक्रिया सबसे अधिक प्रभावशाली हो जाती है ।"[1]

कार्ल मार्क्स ने आर्थिक आवश्यकता को आधार माना है । जिसकी प्रतिक्रिया दर्शन, धर्म, साहित्य, राजनीति और कला आदि पर भी होती है । अगर मानव आर्थिक रूप से संपन्न है तो उसके संदर्भ में सारे मूल्य बदल जाते है, क्योंकि व्यक्ति सर्वप्रथम आत्मरक्षा की बात सोचता है, और सबसे पहले शरीर रक्षा की बात की जाती है । व्यक्ति को अपना पेट भरने के लिए तथा

1. कलैक्टेड वर्क्स ओफ मार्क्स, पृ.391-392

अन्य शारीरिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए अर्थ की जरूरत पड़ती है । समाज में 'अर्थ' के कारण ही शोषक और शोषित वर्ग बन गए है । ये सभी 'अर्थ' के कारण ही हो रहा है । अगर शोषितों के पास भी अर्थ हो जाए तो वे क्यों किसी का अत्याचार और अन्याय सहन करेंगे । सामाजिक और पारिवारिक विघटन आदि समस्याएँ भी 'अर्थ' के उपर टिकी हुई है । अगर व्यक्ति, राष्ट्र, राज्य आर्थिक रूप से शक्ति संपन्न है तो कोई समस्या नहीं रहती । अगर होती भी है तो उसका समाधान हो सकता है । आज इमानदारी, सेवा, दया, त्याग जैसे मूल्यों का हल हो रहा है जिसका प्रत्यक्ष कारण 'अर्थ' ही है, क्योंकि जैसा अर्थतंत्र होगा बाकी मूल्य भी उसी के अनुरूप होंगे । भौतिक जीवन में अर्थ के महत्व को नकारा नहीं जा सकता, अगर व्यक्ति की आर्थिक स्थिति कमजोर है तो वह दूसरों की क्या मदद करेगा ? एक भूखा और कमजोर आदमी दूसरे भूखे और कमजोर आदमी की कैसे मदद करेगा ? झूठी तसल्ली देकर जबकि वह स्वयं भी भूखा है । वर्तमान समय में स्त्री-पुरूष के संबंधों को भी आर्थिक मूल्यों ने काफी हद तक प्रभावित किया है । सामाजिक एवं पारिवारिक तनाव और द्वंद्व का भी एक कारण अर्थ है । आज पारिवारिक खर्च बढ़ गया है । अतः स्त्रियों ने भी धनार्जन के लिए घर से बाहर निकलना आरंभ कर दिया है । नारी अपने को पूर्ण स्वतंत्र मानने लगी है और पति-पत्नी के संबंधों में अविश्वास और तनाव की स्थिति आ गई है । आम तौर पर इसकी परिणती तलाक के रूप में होती है ।

अंततः कह सकते हैं कि 'अर्थ' संबंधी मूल्य हमारे सभी पक्षों (राजनीतिक, सामाजिक, पारिवारिक, व्यक्तिगत, धार्मिक, दार्शनिक) को प्रभावित करते है । अगर हमारे पास धन है तो हमारे संदर्भ में हर चीज का अर्थ, समीकरण बदल जाता है और बाकी मूल्य भी उसीके अनुरूप होंगे ।

2.4.2 सामाजिक मूल्य :

सामाजिक मूल्यों का संबंध सामाजिक जीवन से होता है । ये मूल्य आम तौर पर काल और परिस्थितियों में परिवर्तित होते हैं । मार्क्स ने आर्थिक मूल्यों को समाज का आधार माना है । ये मूल्य व्यक्तिगत होते हुए भी व्यक्तिगत नहीं होते बल्कि सामुहिक/सामाजिक होते है । ये मूल्य व्यक्ति की संवेदनाओं, संकल्पों,

प्रतिमानों, आदर्शो, आचरणों से संबंधित होते है । सामाजिक मूल्यों के अंतर्गत प्रेम, समाज-सेवा-भाव, लोक-कल्याण, मानवता, त्याग, मैत्री की भावना आदि आते है । ये मूल्य हमें सामाजिक जीवन पद्धति, परंपरा, रीति-रिवाज तथा भावना से प्राप्त होते है । व्यक्ति समाज से ही शिष्टाचार और सामाजिक मान्यताओं को प्राप्त करता है, और दायित्व संभालता है । समाज से वह प्रेम, दया, सद्‌भाव, मानवता, त्याग, अहिंसा, सत्य, ईमानदारी, कल्याण की भावना आदि सामाजिक मूल्यों को ग्रहण करता है । व्यक्ति परिवार से दाम्पत्य की भावना, आज्ञा-पालन, प्रेम, आदर, वात्सल्य भावना, सेवा, ममता, पवित्रता, मर्यादा आदि शाश्वत मूल्यों को ग्रहण करता है । सामाजिक मूल्य ऐसे मानदंड होते है, जो समाज के प्राणियों की इच्छाओं, संवेदनाओं, आवश्यकताओं एवं अभिरूचियों को प्रमाणित करते है ।

मूल्य और समाज में गहरा संबंध है, क्योंकि मूल्य एक विशिष्ट सामाजिक बनावट में पैदा होते और पनपते है । जब समाज में उनकी महत्ता कम होने लगती है और समाज में परिवर्तन आने लगते है, तब नए सामाजिक विकास में ही नए मूल्यों का विकास होता है । हमारे चिंतकों ने समाज और जन-कल्याण हेतु ही मूल्यों का निर्माण किया है, किन्तु जब ये मूल्यसत्ता के प्रति अपनी उपादेयता खो देते है, तब नवीन मूल्यों का उदय होता है । समाज अपने विषयों, मर्यादाओं से व्यक्ति को नियंत्रित करता है और जब समाज व्यक्ति के लिए कल्याणकारी नहीं होता, तब वह समाज के सामने खड़ा हो जाता है और उससे विद्रोह करता है, उसके मूल्यों को ललकारता है । सामाजिक मूल्यों के संदर्भ में राधाकृष्ण मुखर्जी की मान्यता है - "मूल्य अनिवार्य सामाजिक देन है, साथ ही व्यक्ति के सामाजिक संदर्भो एवं सामान्य लक्ष्यों को जो कि व्यक्ति का एक अभिन्न अंग बन गए है, इंगित करते है ।"[1]

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है । उसे अपनी हर इच्छा के लिए समाज पर आधारित रहना पड़ता है । उसकी शारीरिक आवश्यकताओं की पूर्ति भी समाज द्वारा नियंत्रित होती है । सामाजिक मूल्यों को व्यापक दृष्टिकोण से देखते हुए डॉ. गोविन्द चंद्र पांडे ने लिखा है - "समाज का व्यक्तियों से पृथक हित नहीं होता । व्यक्तियों के हितों की सामान्य व्यवस्था ही समाज कहलाती है ।

1. मुक्तिबोध की काव्यचेतना और मूल्य संकल्प, पृ.102

सामाजिक मूल्यों का अर्थ है ऐसे मूल्य, जो एकाधिक मूल्यान्वेषियों के पारस्परिक संबंधों पर आश्रित है ।"[1]

व्यक्ति के चारित्रिक, शारीरिक और मानसिक विकास के लिए सामाजिक मूल्य अनिवार्य माने गए है । व्यक्ति समाज से कट कर नहीं रह सकता, समाज में रहने के कारण उससे सहानुभूति, भाई-चारा, प्रेम-त्याग की प्रवृत्तियाँ दृष्टिगत होती है और सामाजिकता के लिए व्यक्ति द्वारा स्वर्थो को त्यागना पड़ता है । राष्ट्रप्रेम, समाज-प्रेम, मानवता, अहिंसा, त्याग, दया, क्रांति आदि सामाजिक मूल्य ही है ।

निष्कर्षतः कह सकते है कि सामाजिक मूल्य आदर्शों, आचरण और संवेदनाओं से संबंधित होते है । इसके अंतर्गत राष्ट्रप्रेम, समाजसेवा, मानवता, लोककल्याण, त्याग-दया, क्रांति-विद्रोह, मैत्रीभाव आदि आते है जो हमें सामाजिक जीवन, पद्धति, परंपरा और व्यवस्था से धरोहर के रूप में मिलते हैं ।

2.4.3 व्यक्तिगत मूल्य :

व्यक्तिगत मूल्य व्यक्ति और समाज के विकास के लिए अत्यंत आवश्यक है । व्यक्ति के विकास के साथ समाज के विकास में भी ये महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाकर सदाचार, मर्यादा-नियम-पालन, सत्य, स्वाभिमान आदि को बनाए रखते हैं । व्यक्तिगत मूल्य को आत्मनिष्ठा के मूल्य स्वीकार करते हुए डॉ. रमेश कुंतल मेघ ने लिखा है - "व्यक्तिगत मूल्यों की स्थापना समाज में व्यक्ति की विशिष्ट रूचियों अथवा व्यक्तित्व की आत्मान्वेषी श्रद्धाओं, संपर्कों, व्यवहारों, स्मृतियों और प्रतीतियों द्वारा होती है । व्यक्तिगत मूल्य इन्द्रिय बोध, भावनात्मक विकास एवं जीवन संघर्ष का परिणाम है, जो समाज पर या तो सीधे प्रभाव डालते है या केवल व्यक्ति विशेष तक ही सीमित रहते है ।"[2] डॉ. मेघ के कथन से स्पष्ट है कि व्यक्तिगत मूल्यों का विकास भी समाज में रहकर ही हो सकता है, समाज से बाहर नहीं । यही मूल्य समाज पर प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष अपना प्रभाव डालते है, या व्यक्ति विशेष तक रहकर प्रायः जड़ हो जाते है । जैसे कि कोई रचनाकार अपनी रचनाओं में कुछ व्यक्तिगत मूल्य, आदर्श सामाजिक चिंतन, भावात्मक सोच को चित्रित कर व्यक्तिगत मूल्यों की स्थापना करता है ।

1. मूल्य मीमांसा, गोविन्द पांडे, पृ.83
2. सौन्दर्य मूल्य और मूल्यांकन, डॉ. रमेश कुंतल मेघ, पृ.46

डॉ. पांडे व्यक्तिगत मूल्यों को व्यावहारिक मूल्यों के रूप में स्वीकार करते हुए लिखते है - "जब आवश्यकताओं में उत्पन्न होकर व्यवहारिक मूल्य, आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक मूल्यों में विकास लाभ करते है ।"[1] व्यक्तिवादी मूल्य ही व्यक्ति के कर्म और चेतना को प्रभावित करते है । यदि कर्म और चेतना आगे चलकर समाज के विकास या पतन में अपना योगदान देते हैं । व्यक्तिगत मूल्यों में इच्छा और आवश्यकता को ज्यादा महत्त्व दिया गया है । किन्तु हमें इनको उदात रूप में देखना पड़ेगा । जैसा कि पांडे ने लिखा है - "भोगवादी दृष्टि ज्ञान को साधन और इच्छापूर्ति को लक्ष्य मानकर भोग्य पदार्थो के मुक्त उत्पादन, संग्रह और विवरण पर जोर देती है ।"[2] यहाँ हम देखते है कि ये 'मूल्य' व्यक्ति की सहज इच्छाओं और भोगवादी दृष्टि को नियंत्रित भी करते है । इसलिए ये मूल्य भोगवादी दृष्टि पर आधारित होते हुए भी सामाजिकता को आत्मसात किए रहते हैं ।

निष्कर्षतः कह सकते है कि स्वाभिमान, सदाचार, व्यक्तिगत स्वतंत्रता, मर्यादा, सत्य, ईमानदारी, आत्मपीड़ा आदि ऐसे व्यक्तिगत मूल्य हैं जो प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष समाज पर अपना प्रभाव डालते है, या व्यक्ति विशेष तक सीमित रह जाते हैं ।

2.4.4 नैतिक मूल्य :

'नैतिक' शब्द मुख्यतः कर्म और शील के विषय में सत् और असत् का विवेचन ही है, क्योंकि सत् और असत् की पहचान नैतिकता से होती है । प्रत्येक व्यक्ति की नैतिकता का आधार अलग-अलग होता है । अच्छे और बुरे कर्म ही नैतिकता की व्याख्या करते हैं और ये स्वरूप और परिणाम पर नहीं बल्कि संकल्प पर आधारित होते है । डॉ. गोविन्द चंद्र पांडे ने नैतिकता को चरम मूल्य माना है ।

नैतिक और अनैतिक का निर्णय करना आसान नहीं है । कुछ विद्वान मानते है कि मानव कल्याण नैतिक है इसके संदर्भ में यदि कोई कुछ कार्य करता

---

1. सौन्दर्य मूल्य और मूल्यांकन, डॉ. रमेश कुंतल मेघ, पृ.46
2. मूल्य मीमांसा, गोविन्द पांडे, पृ.95

है, तो एक वर्ग उसे नैतिक मानता है, दूसरा अनैतिक । अब फैसला कैसे हो कि क्या नैतिक और क्या अनैतिक ? 'नैतिकता' के संबंध में हम इतना कह सकते है कि किसी बात को स्थान, स्थिति और परिवेश के अनुसार नैतिक और अनैतिक कहा जा सकता है । आदि समय में लोगों ने इश्वर को ही नैतिकता का आधार माना था । फिर उनके प्रतिनिधि धर्माचार्यो को । धीरे-धीरे मानवतावाद पनपा और मानव को नैतिकता का आधार माना जाने लगा । डॉ. धर्मवीर भारती ने लिखा है - "मानवतावाद के उदय में ईश्वर जैसी किसी मानवोपरि सत्ता या उसके प्रतिनिधि धर्माचार्यों को नैतिक मूल्यों का अधिनायक न मानकर मनुष्य को ही इन मूल्यों का विधायक मानने की प्रवृत्ति विकसित हुई ।"[1]

'नैतिक मूल्य' मानव जीवन को श्रेष्ठ बनाने में मदद करते है इसी कारण इन मूल्यों में शुभ, सुख और अच्छाई का समावेश होता है । इन सभी सद्‌गुणों में यही मूल्य निहित होते है । राग-द्वेष, लोभ, प्रेम, अहिंसा, करूणा, अच्छाई, पवित्रता, कर्तव्य-बोध, उत्तरदायित्व आदि सभी नैतिक मूल्यों के अंतर्गत आते है । ये सभी मूल्य व्यक्ति के क्रियाशील जीवन से जुडे होते है और ये व्यवहारिक नैतिकता और आदर्श नैतिकता के रूप में मिलते है । व्यवहारिक नैतिकता में राग-द्वेष, लोभ, करूणा, प्रेम, अहिंसा आदि भाव होते हैं । आदर्श नैतिकता में प्रेम, करूणा और अहिंसा के भाव आते हैं । नैतिकता भी उच्च स्तर की होती है । जिसमें मानवीय स्वतंत्रता और समाज कल्याण की भावना प्रमुख रहती है । नीति में उचित एवं उदात विचार अपनी पराकाष्ठा पर होते हैं । उसमें औचित्य की महत्ता मुख्य है ।

प्लेटों ने सबसे पहले काव्य में नैतिक मूल्यों की प्रतिष्ठा की और आनंदवादी मूल्यों का निषेध किया । उन्होंने अपने चिंतन का आधार ही नैतिक मूल्यों को बनाया । अरस्तु ने नैतिक मूल्यों में औचित्य को स्वीकार करते हुए कहा है - "पुरूष में एक प्रकार का शौर्य होता है परंतु नारी-चरित्र में शौर्य का नैतिक-विवेक शून्य चातुर्य का समावेश अनुचित होगा ।"[2] प्लेटों को नैतिक मूल्य बड़े प्रिय थे । वे मात्र नैतिक मूल्यों की प्रतिष्ठा करते है - यदि साधन रूप में

1. मानव मूल्य और साहित्य, डॉ. धर्मवीर भारती, पृ.21
2. अरस्तु का काव्यशास्त्र, नगेन्द्र (भूमिका), पृ.110

या आनुषंगिक रूप में आनन्दसिद्धि भी हो जाए तो काव्य ही है । लोंजाइनस भी नैतिक मूल्यों में औचित्य पर बल देते हैं, किन्तु रूढ़ अर्थ में नहीं । होरेस ने नैतिक शिक्षा और आनंद को साहित्य का उद्देश्य माना है । मैथ्यू आर्नल्ड मानते है नैतिक मूल्यों के प्रति विद्रोही काव्य-जीवन के प्रति विद्रोही है । नैतिक मूल्यों के प्रति पराङ्मुख काव्य जीवन के प्रति पराङ्मुख है । नैतिकता के संबंध में टालस्टाय मानते है - जो रचना मनुष्यों की पारस्परिक एकता के आनंद को प्रकाशित करने में योग दे, वही नैतिक है, सत् है । भारतीय चिंतको ने नैतिक मूल्यों को धर्म के अंतर्गत माना है, और उन्हें अलग रखने की आवश्यकता नहीं मानी । इनके अनुसार नैतिक मूल्य ही जीवन को सार्थक और उपयोगी बनाते है ।

निष्कर्षतः कह सकते हैं कि नैतिक मूल्यों के अंतर्गत राग-द्वेष, लोभ-प्रेम, करूणा, अच्छाई-बुराई, हिंसा-अहिंसा, पवित्रता, कर्तव्य-बोध और उत्तरदायित्व की भावना आदि आते हैं ।

2.4.5 राजनीतिक मूल्य :

राजनीतिक मूल्य से आशय राज्य के संचालक उन मूल्यों से है जो नैतिक, सामाजिक और धर्मानुरूप हों । इनके अंतर्गत स्वतंत्रता, समानता और शांति आते है । व्यक्तित्त्व के विकास के लिए स्वतंत्रता परम आवश्यक है, किन्तु यह स्वतंत्रता दूसरे के अधिकारों का हनन न करती हो, दूसरे को किसी भी प्रकार की हानि न पहुँचाती हो, इसके विपरित जो स्वतंत्रता है, वह दंडनीय है । व्यक्ति की यह नैतिक जिम्मेदारी है, कि वह अपने अधिकारों के साथ-साथ कर्तव्यों का भी निर्वाह करे । ये कर्तव्य देश, समाज और अन्य व्यक्तियों के प्रति होते है । मनुष्य को अपना सर्वांगीण विकास करने के लिए स्वतंत्रता की आवश्यकता पड़ती है । यह स्वतंत्रता बाहरी ही नहीं, आंतरिक भी होती है, जैसे एक व्यक्ति रात में घूमना चाहता है तो घूमे, यहाँ तक तो ठीक है किन्तु यदि वह धर्म या तो नैतिकता के विपरीत काम करता है, तो उसकी स्वतंत्रता पर अंकुश लग सकता है, उसे हवालात में बंद किया जा सकता है और उसे सजा भी दी जा सकती है । यही बात आंतरिक स्वतंत्रता के संबंध में भी लागू होती है । समानता को भी हम व्यापक परिप्रेक्ष्य में देखें, तो पाते है कि हर व्यक्ति को अपना चर्तुमुखी विकास करने के लिए समानता का अधिकार चाहिए । इन

सबके मूल में शान्ति होनी चाहिए । व्यक्ति की स्वतंत्रता और समानता से देश की शांति भंग नहीं होनी चाहिए, वरना व्यक्ति की स्वतंत्रता और समानता पर अंकुश लगाना पडेगा ।

वर्तमान समय में राजनीति के संदर्भ और अर्थ में व्यापक परिवर्तन आ गया है । आज हम राजनीति को राजनेता तक सीमित मानकर चलते है और देखते हैं कि देश को चलाने वाले क्या करते है ? उनका आचरण कैसा है ? और कैसा होना चाहिए ? ये सब राजनीतिक मूल्यों के अंतर्गत आते हैं ।

निष्कर्षतः कह सकते हैं कि देश और राष्ट्र को चलाने के लिए राजनीतिक मूल्यों की आवश्यकता पड़ती है । जिसके अंतर्गत स्वतंत्रता, समानता, अधिकार, कर्तव्यबोध, चुनाव-व्यवस्था, प्रशासन चलाने की क्षमता, राजनीति और राजनेताओं से संबंधित मूल्य आते हैं ।

2.4.6 सौन्दर्यपरक मूल्य :

मनुष्य प्रारंभ से ही सौन्दर्य के प्रति आकृष्ट रहा है । यह सौन्दर्य वस्तु में स्थित रहता है तो वस्तुगत कहलाता है पर वस्तु को सौन्दर्य मनुष्य प्रदान करता है इसलिए सौन्दर्य प्रेषणीय होता है । डॉ. रमेश कुंतल मेघ ने इस संबंध में लिखा है - "मानवीय पूर्णता का बोध करानेवाली वस्तु सुन्दर होती है ।"[1]

सौन्दर्य को भी कुछ विद्वान बाह्य और आंतरिक मानते हैं । सौन्दर्य के संबंध में पोप का कहना है - "कुछ सौंदर्य ऐसा होता है, जो आज भी अनिर्वचनीय है, क्योंकि उसमें आहलाद भी होता है, विषाद भी है ।"[2] व्यक्ति को सौन्दर्यपरक मूल्यों द्वारा शिव और आनंद की प्राप्ति होती हैं । डॉ. मेघ मानते है कि - "सौन्दर्यात्मक मूल्यों की अभिव्यक्ति का माध्यम कला है और ये मूल्य काल, जन और परिस्थिति सापेक्ष होते हैं । इसलिए हम इनके लिए कोई आध सूत्र या आप्त वाक्य नहीं कह सकते ।"[3]

चर्निशेवस्की ने सौन्दर्य भावना को स्मृतिमूलक माना है जो भावों का

---

1. सौन्दर्य मूल्य और मूल्यांकन, डॉ. रमेश कुंतल मेघ, पृ.64
2. एन. एस. आन क्रिटिसिज्म, एलैग्जेंडर पोप, पृ.1
3. सौन्दर्य मूल्य और मूल्यांकन, डॉ. रमेश कुंतल मेघ, पृ.64

उद्‌बोधन कराती है और सुन्दर लगती है । इस संबंध में वे कहते है - "सुन्दर ही जीवन है । सुन्दर वह वस्तु है, जिसमें जीवन को हम उस रूप में देखते हैं - जिसमें हमारी मान्यताओं के अनुरूप उसे होना चाहिए ।"[1] सौन्दर्य के बारे में मूल्य मीमांसा ग्रंथ में लिखा गया है - "सामान्य भाषा में सौन्दर्य को दर्शनीय नयन सुलभ आदि माना जाता है न कि स्पर्शनीय भोग्य आदि । सौन्दर्य आँखों को और मन वेग को थकावा है । तरसता है । यह तरसाना किसी अन्य शारीरिक क्रिया के लिए उकसाना नहीं है । यह सिर्फ मन को सौन्दर्य दर्शन से अधाना है ।"[2]

अंततः कह सकते है कि सौन्दर्यपरक मूल्य परिस्थिति और काल सापेक्ष होते हैं । इनके द्वारा शिव और आनंद प्राप्त होते है । जब मानव को किसी विशेष प्रकार के आनंद की अनुभूति होती है और जिससे वह अपनाो अहम् को भूल उसी अनुभूति में खो जाता है, वहीं उसे वास्तविक सौन्दर्य देखने को और महसूस करने को मिलता है ।

2.4.7 दार्शनिक मूल्य (आध्यात्मिक मूल्य) :

दर्शन का आशय किसी वर्ग, समुदाय, समाज विशेष की विचारधारा से होता है । जिसमें उनके आत्मा, परमात्मा, जीवन-मृत्यु, जगत संबंधी विचार होते है । कहने का आशय यह है कि जब हम आत्मा, परमात्मा मन जीवन के संबंध में चिंतन-मनन करते हैं और किन्हीं निष्कर्षों पर पहुँचते है तो वही चिंतन, निष्कर्ष हमारा दर्शन कहलाता है । इन मूल्यों को आध्यात्मिक मूल्य भी कह सकते हैं । इसे 'आध्यात्मिक मूल्य' कहते हुए रमेशचन्द्र लुवानिया लिखते है - "(दार्शनिक) आध्यात्मिक मूल्य से तात्पर्य मानव की उन अंतरंग अभिवृत्तियों से है । जो मन, आत्मा और परमात्मा से संबंधित होती है । भारत वर्ष में मोक्ष को चरम मूल्य के रूप में स्वीकार किया गया है । चतुर्वर्ग (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) में से अंतिम और चरम 'मोक्ष' ही है ।"[3]

---

1. कला का वास्तविक से सौंदर्यात्मक संबंध, पृ.185
2. हिन्दी कहानी में जीवन, डॉ. लुवाणिया, पृ.1
3. वही, पृ.3

'मोक्ष' का आशय है जीवन के सुख-दुःख से मुक्ति । मोक्ष प्राप्ति के बाद किसी भी प्रकार की कामना या इच्छा नहीं रहती, बल्कि व्यक्ति इन सबसे उपर उठ जाता है । मोक्ष हमारे यहा सर्वश्रेष्ठ मूल्य माना जाता है । बाकी मूल्य 'मोक्ष' की प्राप्ति में सहायक होते हैं यानि साध्य मोक्ष है और धर्म, अर्थ, काम साधन है । डॉ. हुकमचंद्र राजपाल इस संबंध में लिखते है - "ये (आध्यात्मिक मूल्य) सदैव विकसित होते है अर्थात् इनका सदैव सृजन होता है, ह्रास कदापि नहीं होता । ये मूल्य स्वलक्ष्य होते हुए शाश्वत एवं व्यापक भी है । इन्हें किसी प्रकार से देशकाल की सीमा में नहीं बांधा जा सकता ।"[1]

डॉ. राजपाल की बातों से स्पष्ट होता है कि ये मूल्य शाश्वत और चिरस्थायी होते है, जो देश और काल की सीमा से परे होते हैं । भारतीय दार्शनिक, चिंतक मानते हैं कि मोक्ष ही इन मूल्यों का आधार है, इसलिए ये लोग मोक्ष को अंतिम और साध्य मूल्य मानते हैं । भारतीय दर्शन के अतिरिक्त की गई सर्वप्रथम मानवीय अस्तित्व और उनकी स्वतंत्र व्यक्तित्वता के आधार पर अस्तित्ववादी दर्शन (विचारधारा) का सूत्रपात किया । उनके अतिरिक्त नीत्शे, हेडेगर, ज्यों पाल सार्त्र एवं अलेवर कामू काफी महत्वपूर्ण रहे है, इनके लिए व्यक्ति स्वतंत्रता और लक्ष्य ही सर्वोपरी होता है । व्यक्तिगत स्वतंत्रता के लिए मानव किसी धर्म, ईश्वर, दर्शन, नैतिकता में विश्वास करने के लिए विवश नहीं है ।

मार्क्सवाद ने राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक पक्षों को काफी प्रभावित किया है, इसका मूल आधार द्वंद्वात्मक भौतिकवाद है । वे मानते हैं कि दो वस्तुओं के संघर्ष से तीसरी वस्तु का निर्माण होता है । दो भौतिक शक्तियों के द्वंद्व से सृष्टि का विकास होता है । वे ईश्वरीय सत्ता में सृष्टि का विकास होता है । वे ईश्वरीय सत्ता में विश्वास नहीं करते तथा मानते हैं कि दो विरोधी शक्तियों शोषक और शोषित के संघर्ष से तीसरी वस्तु (क्रांति) का उदय होता है । मार्क्सवादी दर्शन मानता है कि पूँजीवादी समाज में उत्पादक शक्तियों की विसंगतियों के कारण वर्ग संघर्ष और अव्यवस्था फैलती है । यह दर्शन सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था के परिवर्तन के लिए क्रांति में विश्वास रखता है । उन्होंने आर्थिक विषमता को समाज से दूर करने के लिए वर्गहीन समाज को स्वीकार

1. हिन्दी कहानी में जीवन, डॉ. लुवाणिया, पृ.3

किया है, यह दर्शन आत्मा, परमात्मा, धर्म आदि को अस्वीकार कर भौतिकता पर आधारित है । इसने राजनीति, समाज और अर्थव्यवस्था को दूर तक प्रभावित किया है । वे मानते हैं कि समाज में फैले अत्याचार, अन्याय, शोषण के लिए पूंजीपति वर्ग और आर्थिक विषमताएँ ही उत्तरदायी है । इनसे मुक्ति के लिए समाज में वर्ग-भेद को दूर करने के लिए मजदूरों और श्रमिकों का जागरूक होना आवश्यक हैं ।

अंततः कह सकते है कि दार्शनिक मूल्यों में आत्मा, परमात्मा, मन, मोक्ष की चर्चा की जाती है । भारतीय दार्शनिकों ने मोक्ष को सर्वश्रेष्ठ मूल्य माना है, जबकि मार्क्सवादी दर्शन का मूलाधार द्वंद्वात्मक भौतिकवाद है ।

2.4.8 धार्मिक मूल्य :

प्राचीन काल से ही धर्म और ईश्वर को बड़ा महत्त्व दिया जाता है । धर्म और ईश्वर के प्रति आस्था-अनास्था भावनाओं पर आधारित होती थी । धर्म का संबंध मानवीय आचरण से रहा है, जो मानव मात्र का कल्याण कर सके । वर्तमान समय में विज्ञान के उदय से मानव का विश्वास उस परंपरागत धर्म और धार्मिक मूल्यों से उठ गया है, जो कभी उसके जीवन का केन्द्र थे । विज्ञान के प्रभाव से मानव धर्म को तर्क और बौद्धिकता की कसौटी पर कसता है । वर्तमान युग में धार्मिक स्थलों से विश्वास उठता जा रहा है । मार्क्सवादी और फ्रायडीय विचारधारा के अनुसार कोई भी व्यक्ति धर्म और ईश्वर के प्रति आस्था रखने के लिए बाध्य नहीं है, धार्मिक मूल्य कहीं तो अपने उसी परंपरागत संस्कारों और अंधविश्वासपूर्ण भावना के रूप में उभरें, कहीं विज्ञान, वर्तमान शिक्षा से प्रभावित होकर मानव-मूल्यों के रूप में उभरे । आज की युवा पीढ़ी पर परंपरागत रूढ़ धार्मिक मूल्यों के प्रति नकारात्मक विद्रोही दृष्टिकोण है । उन रूढ़ मूल्यों से जुड़े लोग उनके उत्साह को समाप्त करने की कोशिश करते हैं ।

निष्कर्षतः कह सकते हैं कि किसी भी समुदाय के धर्म, ईश्वर से संबंधित मूल्य (पूजा-अर्चना, भक्ति-भाव, पूजास्थल) धार्मिक मूल्य कहलाते है ।

उपर्युक्त आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक, व्यक्तिगत, नैतिक, सौन्दर्यपरक, दार्शनिक एवं धार्मिक मूल्य मानव से संबंधित है इसलिए ये सभी मूल्य, मानव-मूल्य कहलाएँगे जिससे मानव और मानवता का सर्वांगीण विकास संभव है ।

मूल्य चेतना : चेतना की अवधारणा

प्रस्तावना :

'चेतना' संस्कृत शब्द 'चेतन' में 'आ' प्रत्यय जोड़कर बनाया गया शब्द है । 'चेतन' शब्द "चित् + युच् + अन" के संयोग से बना है ।"[1] अतः चेतना का शाब्दिक अर्थ है चित्त का विशेष भाव या चित्त की विशेष अनुभूति ।

2.5 चेतना का अर्थ :

'चेतना' शब्द की चर्चा आज बड़े ही व्यापक स्तर पर हो रही है । अंग्रेजी भाषा में चेतना शब्द का समानार्थी शब्द 'कांशसनेस', 'सेन्स', 'अण्डरस्टेंडिंग', 'इंटेलिजेंस' आदि कहा जाता है ।"[2] 'बृहद हिन्दी कोश' में 'चेतना' का अर्थ 'चैतन्य', 'बुद्धि', 'ज्ञान', 'मनोवृत्ति', 'स्मृति', 'जीवनी-शक्ति', 'होश', 'याद', 'जीवन', 'समझना एवं विचारना' आदि दिए गए है ।"[3]

'चेतना' अपने सामान्यार्थ में वस्तुओं, विषयों और दूसरे द्वारा किये जानेवाले कार्यों के प्रति सचेतता है, पर अपने विशेषार्थ में यह मन की वह वृत्ति या शक्ति है जिससे जीवन या प्राणी की आंतरिक (अनुभूतियों, भावों, विचारों आदि) और बाह्य (घटनाओं) तत्वों या बातों का अनुभव होता है । इसके अतिरिक्त दर्शनशास्त्र, मनोविज्ञान और कोशों में इसे भिन्न-भिन्न अथो में निरूपित किया गया है ।

चेतना का दार्शनिक अर्थ :

"'चेतना' को दर्शन-शास्त्र में स्वयं प्रकाश तत्त्व माना गया है ।"[4]

चेतना का मनोवैज्ञानिक अर्थ :

मनोविज्ञान का संबंध 'चेतना' शब्द से है । मनोविज्ञान के अनुसार चेतन मानस की प्रमुख चेतना है । अर्थात् वस्तुओं, विषयों तथा व्यवहारों का ज्ञान ।

---

1. मानक हिन्दी कोश, रामचन्द्र वर्मा, पृ.179
2. हिन्दी-अंग्रेजी शब्दकोश, डॉ. हरदेव बाहरी
3. मानक हिन्दी कोश, रामचन्द्र वर्मा, पृ.274
4. हिन्दी विश्वकोश, रामप्रसाद त्रिपाठी, पृ.282

मनोविश्लेषम में 'चेतना' मन के अवचेतन भागों के विपरित उस भाग का निर्देश करता है जिसकी अवस्थाओं का व्यक्ति को स्पष्ट बोध हो ।"[1]

चेतना का सामान्य कोशीय अर्थ :

"कोशों में 'चेतना' के लिए 'होश में आना', 'बुद्धि-विवेक से काम होना', 'सावधान होना, सोचना, विचारना, ज्ञान, होश, याद, बुद्धि, जीवन शक्ति, मनोवृत्ति, संज्ञा से युक्त, होशियार होना, सोच-समझकर किसी बात की ओर ध्यान देना, चैतन्य, संवेदनशील, दृष्टा, आत्मा, चेतस आदि अनेक अर्थ निर्दिष्ट किये गये है ।"[2]

2.6 चेतना की परिभाषा :

विचारकों ने अपने-अपने दृष्टिकोण से 'चेतना' को परिभाषित करने का प्रयास किया है -

बोध-मूल्यांकन परिभाषा :

"चेतना स्वयं को और अपने आसपास के वातावरण को समझने तथा उसकी बातों का मूल्यांकन करने की शक्ति का नाम है ।"[3]

समष्टिपरक परिभाषा :

"कभी-कभी चेतना संकल्प, भाव और ज्ञान की समष्टि को भी कहा जाता है ।"[4] चेतना वह तत्त्व है जिसमें ज्ञान की, भाव की और क्रियाशीलता की अनुभूति है ।

मनोवैज्ञानिक परिभाषा :

"मनोविज्ञान में चेतना के तीन स्तर माने जाते है - चेतन, अवचेतन और अचेतन । चेतन स्तर पर वे सभी बातें रहती है जिनके द्वारा हम सोचते-समझते और कार्य करते है । चेतना में ही मनुष्य का अहंभाव रहता है और

1. मानविकी परिभाषा कोश, नगेन्द्र, पृ.50
2. हिन्दी शब्द सागर, श्याम सुन्दर दास, पृ.1576
3. मानविकी परिभाषा कोश, नगेन्द्र, पृ.50
4. हिन्दी विश्वकोश, रामप्रसाद त्रिपाठी, पृ.282

विचारों का संगठन होता है ।"[1] चेतना वह अनुभूति है जो मस्तिष्क में पहुँचनेवाले अभिगामी आवेगों से उत्पन्न होती है । इन आवेगों का अर्थ तुरंत अथवा बाद में लगाया जाता है ।

वैचारिक परिभाषा :

"चेतन विचारशील है, तर्कयुक्त है और नीति-अनीति का भाव इसमें बना रहता है । इसकी इच्छाएँ, आकांक्षाएँ, अनुभूतियाँ विचारगम्य होती है । तर्क द्वारा समर्थन किया जा सकता है । यह वास्तविक सिद्धांत से संचालित होता है ।"[2]

उपरोक्त परिभाषाओं के आधार पर हम कह सकते है कि चेतना मानव मस्तिष्क में प्रवाहमान वह शक्ति है जो मनुष्य को निरंतर चैतन्य प्रदान करती रहती है । दूसरें शब्दों में बोधगम्य शक्तियों को ही चेतना कहते हैं ।

2.7 चेतना का स्वरूप निरूपण :

विद्वानों द्वारा की गई चेतना की परिभाषाओं को स्वरूपित विश्लेषित करने के उपरांत चेतना का निम्नलिखित स्वरूप स्पष्ट होता है ।

चेतना मनुष्य का समुचित मार्गदर्शन करनेवाली वह शक्ति है जो मानव को उसकी निजी जीवन, आचार-विचार, रहन-सहन और वस्तुओं के बोध के साथ-साथ बाहरी परिस्थितियों तथा वातावरण के विषय में उसका ज्ञानवर्धन करती है ।

मानवीय चेतना की तीन विशेषताएँ है - ज्ञानात्मक, भावात्मक और क्रियात्मक । चेतना में इन तीनों का अनुभव कर सकते है । इस तरह चेतना व्यक्ति के ज्ञान को और उसकी क्रियाशीलता को उजागर करनेवाली शक्ति है । चेतना की विशेषता गति है, जिसके कारण उसमें परिवर्तनशीलता विद्यमान रहती है ।

वैज्ञानिक दृष्टिकोण के अनुसार चेतना वैसी अनुभूति है जिसके कारण मानव मस्तिष्क में उठते-तैरते विचारों का ज्ञान हमें तुरंत अथवा कुछ समय बाद हो जाता है ।

मनोविज्ञान में 'चेतना' का प्रयोग मन के संदर्भ में किया जाता है ।

---

1. हिन्दी विश्वकोश, रामप्रसाद त्रिपाठी, पृ.282
2. मानविकी परिभाषा कोश, नगेन्द्र, पृ.75

चेतनता मन की ही एक विशेषता है । मन के तीन स्तर है - "चेतन, अवचेतन और अचेतन ।"[1] चेतन स्तर पर वे सभी बातें रहती है, जिसके द्वारा हम सोचते-समझते है और कार्य करते है । अवचेतन में वह सभी बातें रहती है जिनका हमें ज्ञान नहीं रहता, जिन्हें हमें भूल चुके होते है और जो यत्न करने पर भी याद नहीं आती है । जो अनुभूतियों एक बार चेतना में आई रहती है वे भी कभी अवचेतना और कभी अचेतन में चली जाती है । वे अनुभूतियाँ निष्क्रिय नहीं वरन् अनजाने ही मानव को प्रभावित करती रहती है ।

अवचेतन अथवा उपचेतन की प्रतिकूल मानसिक स्थिति का नाम चेतना है । सामान्यतया चेतना अपरिभाषेय है । यह केवल सचेतन क्रियाओं की अन्तर्मुखी अनुभूति द्वारा ही ज्ञेय है । चेतना को जो समझते हैं या जैसा अनुभव करते है, बिना किसी उलझन के साफ-साफ नहीं बता सकते क्योंकि सभी प्रकार के ज्ञान के मूल में चेतना प्रधान होती है । लेड़ द्वारा बताई हुई चेतना की यह परिभाषा स्पष्ट रूप से उन्हीं स्थितियों की ओर संकेत करती है जिनमें इसका प्रत्यक्ष अनुभव होता है । उन्होंने कहा है - "हम जागृति की स्थिति में जो कुछ कहें, गहरी और स्वप्नहीन निद्रा के प्रतिकूल वही चेतना की स्थिति है ।"[2]

चेतना निर्जीव या जड़ पदार्थो में नहीं होती, इसलिए चेतना विहीन मानव जड़ माना जाता, पर चेतना मानव को ऐसी जीवन शक्ति प्रदान करती है जिससे वह निर्जीव या जड़ पदार्थो की कोटि में नहीं आती ।

चेतना से दो वस्तुओं का अंतर स्पष्ट हो पाता है - दर्शन या अध्यात्म के क्षेत्र में आत्म-बोध ही चेतना है । वहाँ इसे ईश्वरीय या अलौकिक देन के रूप में स्वीकार किया गया है । चेतना का विकास मानव मस्तिष्क में धीरे-धीरे होता है । ज्यों-ज्यों मनुष्य का संपर्क बढ़ता जाता है त्यों-त्यों उसकी चेतना भी बढ़ती जाती है । आदमी अपने पारिवारिक और सामाजिक वातावरण से नित नयी-नयी जानकारीयाँ हाँसिल करता है । जिससे उसका विवेक और ज्ञान परिपुष्ट होता है । चेतना के विकास के कारण ही मानवीय बुद्धि और ज्ञान की परिपक्वता प्राप्त होती है ।

---

1. हिन्दी साहित्य : सामाजिक चेतना, डॉ. रत्नाकर पाण्डेय, पृ.158
2. वही, पृ.159

मानव मस्तिष्क में विद्यमान चेतना मानवीय व्यवहार में परिवर्तन पैदा कर देती है । मनुष्य का परिवार, समाज, वातावरण, समय और परिस्थितियों के अनुरूप अपने-आप पर नियंत्रण नहीं होता । वह जैसा चाहते है वैसा व्यवहार करते हैं । मनुष्य में चेतना का प्रादुर्भाव होने के कारण ही वह हर कार्य को सोच-विचारकर कर सकता है । अतः चेतना मानव को पशु से उच्चतर स्थान की अधिकारिणी बनाती है ।

चेतना उन मानवीय भावों का नाम है जिनके कारण मानव अपने निर्णय के अनुरूप या विपरित कार्य करता है । यही नहीं कि वह अपने किये गये कार्यो का निरीक्षण भी करता है । चेतना का अपना स्वतंत्र अस्तित्व है । अनुभव के आधार पर केवल चेतना का बाहरी स्वरूप निर्धारण ही हो सकता है, क्योंकि भिन्न-भिन्न उपकरणों की चेतना भिन्न-भिन्न होती है ।

चेतना के अभाव में गति विहीनता आती है । इससे विश्व का संपूर्ण संचालन स्वयं ही अवरूद्ध हो जाता है । इस प्रकार चेतना ही जीवन है । चेतना के प्रभाव-स्वरूप मनुष्य उचित-अनुचित, उपयोगी-अनुपयोगी, नैतिकता-अनैतिकता के विषय में ज्ञान हांसिल करता है ।

चेतना द्वारा अनेक प्रकार की अनुभूतियाँ प्राप्त होती है । इसके अभाव में मानव जीवन निरर्थक हो जाता है । मानव द्वारा अनुभावित सुख-दुःख की अनुभूतियाँ चेतना आधारित ही होती है । चेतना वह आधारभूमि है जिस पर मानव-चरित्र निर्मित होता है ।

2.8 चेतना का वर्गीकरण :

चेतना को हम निम्न रूप से वर्गीकृत कर सकते है ।

(1) सामाजिक चेतना

(2) धार्मिक चेतना

(3) राजनीतिक चेतना

(4) आर्थिक चेतना

2.8.1 सामाजिक चेतना :

पशुओं से भिन्न अर्थात् जनसमूह अथवा जनसमाज की ज्ञानात्मक

मनोवृत्ति का नाम सामाजिक चेतना है । समाज पशुओं से भिन्न लोगों के संघ या समूह का नाम है । हेमचन्द्र ने इसका नाम 'सभा' किया है । डॉ. जंकशन के अनुसार "समाज मनुष्यों की मैत्री या कम से कम शान्ति की दशा का नाम है ।"[1] व्यक्तियों के समूह को समाज कहते हैं पर जनता के आकस्मिक जमाबड़े को समाज नहीं कहा जाता । एकत्रित व्यक्तियों का सार्वजनिक उद्देश्य रहता है, यही उद्देश्य उन्हें संगठित रखता है और उन्हें पारस्परिक सहायता और सहयोग की आवश्यकता का अनुभव करता है । समाज के व्यक्तियों का पारस्परिक संबंध एकता या शांति पर निर्भर करता है । समाज निर्माण के लिए व्यक्तियों की अधिक संख्या होना अनिवार्य है और उनका सार्वजनिक उद्देश्य लक्ष्य साधन के लिए शांतिपूर्वक मिलकर काम करना है ।

सामाजिक चेतना अभावात्मक या नकारात्मक नहीं होती । व्यक्ति मात्र में चेतन्य मूर्त है, परंतु रूढ़ि अशिक्षा और अभावों के कारण दुष्प्रभावित या कुंठित हो जाती है । इस दुष्प्रभाव से मुक्त रहना और कुंठा को अपनी अंतर्वत्ति से तिरोहित बनाये रखना ही सामाजिक चेतना है । सामाजिक चेतना के आनयन के लिए जीवन का उत्सर्ग करना पड़ता है, तभी रूढ़िबद्ध आध्यात्मिकता के स्थान पर नई आध्यात्मिकता नवसंस्कृति को जन्म देती हैं । सामान्यतः सामाजिक चेतना से हम किसी देश एवं काल विशेष से संबंधित मानव समाज में अभिव्यक्त परिवर्तनशील जागृति समझते है । यह प्रतिक्रियात्मक भी हो सकती है । जन-जीवन में लक्षित यह जागृति या सामाजिक चेतना तत्कालीन जीवन में उत्पन्न अप्रत्याशित गतिरोध एवं गतिशीलता से उत्पन्न होती है । इसके पीछे सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक आदि परिस्थितियाँ प्रेरणात्मक हो सकती है । मनुष्य विचारशील प्राणी है । अपनी विवेकबुद्धि का उपयोग यह निरन्तर करता रहता है । ऐसा न होगा तो अस्तित्व और प्रगति के लिए चलनेवाले संघर्ष में वह कृतकार्य न होता । तथापि उसकी परंपराप्रियता कुछ विषयों में इतनी जड़भूत हो जाती है कि वह कुछ करना, बंधी लकीर से इधर-उधर हटना नहीं चाहता । परंपरागत प्रतिष्ठा संकेतों को ठुकराकर समाज की सुप्त विवेक-शक्ति को जागृत करना साहित्य का उद्देश्य है । समाज में निहित विवेकशक्ति का जागरण साहित्य

1. हिन्दी साहित्य : सामाजिक चेतना, डॉ. रत्नाकर पाण्डेय, पृ.157

का लक्ष्य, प्रेरणा, हेतु है । समाज और व्यक्ति की क्रियाशीलता अथवा मानव में श्रद्धा रखना साहित्य का परम पुनीत कर्तव्य है । परंपरा के बंधन टूटने के कारण निराशा और बेकारी, आवारापन, बुरी से बुरी भावना और कुदृष्टि समाज को नास्तिक बनाती है और अश्रद्धा की भूमिका रचती है । इस नास्तिकता को लेकर परंपरा नहीं पन सकती । मानव जीवन की संजीवनी प्रतिभा होती है । वह किसी शब्द की दास्ता से परे है । जहाँ प्रतिभा है वहाँ मात्र शब्द का तेज नहीं । जिस हृदय में शब्द का प्रमाण अनुप्राणित होता है, वह सच्ची प्रतिभा युग साहित्य के आयाम में सामाजिक चेतना की सत्य सृष्टि करता है, समाज को दृष्टि और जीवन देता है ।

सामाजिक चेतना की परिभाषा के उपरांत निम्न बातें विचारणीय है :

"(1) सामाजिक चेतना का आशय

(2) सामाजिक चेतना का संदर्भ

(3) सामाजिक चेतना का अन्य संबंध ।"[1]

जब कभी समाज विशेष की परंपरागत मूल्य धारणाओं में किन्हीं कारणों से परिवर्तन होता है तब उन्हीं विचारधाराओं के आधार पर यह कहा जाता है कि अमुक समाज में एक नवीन चेतना है । रूढ़िगत विचारों को छोड़कर किसी नई दशा में जब समाज प्रवृत्त होता है और अपनी उन्नति की ओर अग्रसर होता है तो यह कहा जाता है कि इस समाज में जागृति उत्पन्न हुई है । सामाजिक चेतना के दो अंतरंग तत्व है : (1) सामाजिक जागृति (2) सामाजिक चेतना ।"[2]

"जब कोई नूतन विचारधारा समाज में प्रविष्ट होती है और निश्चित लक्ष्य की ओर बढ़ती है तो सामाजिक विचारधारा जाग्रत होती है । इसी जागृति को सामाजिक चेतना कहा जाता है । सामाजिक चेतना के अर्थ, राजनीति, धर्म आदि विविध तत्व है ।"[3]

सामाजिक चेतना का विशेषण मुख्यतः दो दिशाओं में होता है । चेतना

1. हिन्दी साहित्य : सामाजिक चेतना, डॉ. रत्नाकर पाण्डेय, पृ.157
2. वही ।
3. वही ।

की क्रिया और चेतना की विषयवस्तु में स्पष्ट अंतर है और कुछ चिंतकों ने क्रिया और विषयवस्तु के चेतना के दो भिन्न तत्त्व मान लिया है । लाक, रोड तथा अन्य विचारकों ने चिंतन प्रक्रिया को 'चेतना' कहा है, किन्तु यह विचार किसी व्यापक प्रक्रिया में सहायक नहीं । समाज की पूर्ण चेतना की परिभाषा करते हुए रविन्द्रनाथ ठाकुर ने कहा है - "यदि हम विश्व को सत्तावन वस्तुओं का सर्वयोग मान समझते है, एक नियम, नियंत्रित व्यवस्था भर मानते हैं तो हमारी चेतना अपूर्ण है । किन्तु यदि हमारी चेतना यह जान लेती है कि समस्त वस्तुएँ आत्मिक रूप से जुड़ी हुई और इसीलिए आनंददायी है तो हमारी चेतना परिपूर्ण है । इस विश्व का चरम प्रयोजन यह है कि हम अपनी सहानुभूति को विस्तृत करके इस विश्व में अपना साक्षात्कार करें, अपने को विश्व से अलग करके ऊपर हावी होने की बजाय उसे समझें और उसके साथ अपने को पूर्णतः एकाकार कर ले ।"[1] सामाजिक चेतना वह अपरिभाषेय वस्तु है जो अपने से भिन्न अन्य पदार्थो का ज्ञान या संवेदन करा सके । निखिल दृष्टि के समस्त पदार्थ या तो जड़ रूप में लक्षित होते है या चेतन रूप में । जो जड़ है उसमें संवेदना है, ईच्छा है और सजग क्रिया है । भाववादी या आत्मवादी पदार्थ जगत् को चेतनाजन्य मानते हैं । चेतना ही सारी सृष्टि का आधार है । भौतिकवादी चेतना को जड़ तत्वों के परमाश की विशिष्ट जातियों की परिगति मानते हैं । सार्त्र ने चेतना प्रवाहवाद को साहित्य में महत्वपूर्ण स्थान दिया है ।

आत्मा अथवा चैतन्य वह सत्य है जिसका ज्ञान मनुष्य को पशु जगत से भिन्न कराता है । सामाजिक चेतना का धर्म समस्त मानव का एक संबल है । सामाजिक चेतना मनुष्यों की आत्मिक एवं सत्तात्मक एकता का धर्म है । यह चेतना सभी में है, इसीलिए संपूर्ण मानवता उस मूल चेतना का सूचक है । आत्मज्ञान से दीप्त जीवन की चेतना का धर्म है । जीवन सत्य और सौन्दर्य की वाणी है । चैतन्य का बोध उस ज्ञान की प्राप्ति है जो अज्ञान से अनिश्चित है, उस आनंद का बोध है जिसे दुःख की छाया घूमिल नहीं कर सकती । चेतना का धर्म आत्मिक एकता का धर्म है । चेतना जीवन में सदैव प्रवाहित होती रहती है । सत्य सामाजिक चेतना द्वारा मानवी को पशुत्व के ऊपर उठाकर दिव्यत्व की

1. हिन्दी साहित्य : सामाजिक चेतना, डॉ. रत्नाकर पाण्डेय, पृ.159

प्राप्ति कराता है । कुव्यवस्था, अनौचित्यक एवं चेतना के विरोधी जीवन के बिना किसी प्रतिक्रिया और विप्लव के सहनेवाला व्यक्ति सुखी नहीं रह सकता, उसकी भौतिक निःस्पृहता में छिपा अंतर अशांत रहता है ।

इन परिभाषाओं का मनन करते हुए कहा जा सकता है कि आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक एवं अंतरराष्ट्रीय शक्तियों तथा समाज में प्रचलित परंपरागत मूल्यों के परस्पर संघात से जो नयी-नयी परिस्थितियाँ उत्पन्न होती है, उनकी समझ और विश्लेषणात्मक शक्ति 'सामाजिक चेतना' है । सामाजिक चेतना केवल समझ ही नहीं देती, अपितु वह सामाजिक उद्देश्यों को पूर्ण करने के लिए आगे बढ़ने की प्रेरणा भी देती है और सामाजिक आयामों के विस्तार के साथ-साथ विकसित भी होती है । परंपरा से चली आ रही मान्यताओं, रूढ़ियों और संस्कारों के कारण कुंठाग्रस्त जनता के जीवन में आशा, प्रेरणा, आस्था एवं स्फूर्ति जाग्रत कर इन्हें एक सूत्र में पिरोना सामाजिक चेतना का कार्य है । सामाजिक भिन्नता के कारण सामाजिक चेतना भी विभिन्न हो सकती है, किंतु मूलतः इसमें समाज-सुधार, सामाजिक प्रगति अथवा समाजोत्थान का ही प्राधान्य रहता है, यही इनके मुख्य प्रेरणास्त्रोत हैं ।

2.8.2 धार्मिक चेतना :

समाज में विभिन्न वर्गो, जातियों और समुदायों के बीच समन्वय एवं संतुलन बनाये रखने के लिए धर्म की भूमिका महत्वपूर्म है । अतः धर्म समाज का अभिन्न पहलु है । कोई भी सभ्य समाज बिना अपने स्वरूप का विकास नहीं करता । "धर्म वह कच्चा अदृश्य धागा है जो समाज को उसकी सीमाओं के बाहर नहीं जाने देता । धर्म की भावना सबके हित की भावना से जुड़ी हुई है ।"[1]

धार्मिक चेतना में मानव का कल्याण होता है । धार्मिक मनुष्य केवल स्वार्थ का गुलाम नहीं होता उसका चित निर्मल हो जाता है । वह छोटे-छोटे स्वार्थो से भटक नहीं जाता । धर्माचरण मनुष्य को उदार बनाता है, उसे समाज के प्रति उत्तरदायी होने की प्रेरणा देता है ।

धार्मिक चेतना में धर्म के लिए लोगों को जागृत करना है और सब

1. सामाजिक चेतना और श्रीलाल शुक्ल का पहला पडाव, कौशल्या, पृ.33

अपने-अपने धर्म को समझकर अपने धर्म के प्रति आदर रखे । उसमें व्यक्ति को सत्य बोलना, दूसरों के लिए कष्ट सहना, जो कमजोर है उनकी सहायता करना, भीतर और बाहर से पवित्र बने रहने को प्रोत्साहित करना सच्चा धर्म है, वह सच्ची धार्मिक चेतना है । इसके संदर्भ में गोस्वामी तुलसीदास ने कहा है कि -

"परहित सरिस धर्म नहीं भाई ।
पर पीड़ा सम नहीं अधर्माइ ।।"[1]

सबसे बड़ा धर्म है दूसरों की भलाई करना और सबसे बड़ा अधर्म है दूसरों को कष्ट पहुँचाना ।

मानव जीवन की समस्याओं को सुलझाने और चित्तवृत्तियों का परिष्कार करने के लिए तथा विश्व शक्ति की स्थापना के लिए समय-समय पर अवतरित महापुरूषों और पैगम्बरों ने अपने-अपने मतों की स्थापना की है जो धर्म कहलाते है । इनमें यद्यपि बाह्याडम्बर सम्बन्धी भेद पाये जाते है तो भी इनके आधारभूत सिद्धांत प्रायः समाज है जो सत्य, अहिंसा, प्रेम, शांति जैसे शाश्वत मूल्यों पर अधिष्ठित है । इन्हीं मूल्यों की स्थापना की प्रेरणा देने की प्रवृत्ति धार्मिक चेतना मानी जा सकती है ।

2.8.3 राजनीतिक चेतना :

धर्मवीर भारती के अनुसार "यह चिंता की बात है - कुछ दिन पहलें तक राजनीतिक समाज सेवक था । उसके सामने उसके समाज के जीते-जागते व्यक्तियों की वास्तविक समस्याएँ रहती थी । अब वह केवल वोट-संग्राहक रह गया हैं । उसके सामने मतदाताओं की सूची रहती है । राजनीतिज्ञ का अपने मतदाता से आत्मीयताभरा रिश्ता टूट रहा है ।"[2]

राजनीतिक अस्थिरता के कारण 18वीं सदी के आसपास पूरे भारत का राजतंत्र पतन की स्थिति में पहुँच गया था । राजनीतिक दृष्टि से सन् 1930 से लेकर सन् 1947 तक का समय अंतरराष्ट्रीय एवं राष्ट्रीय स्तर पर बहुत महत्त्वपूर्ण रहा ।

---

1. हजारीप्रसाद द्विवेदी का सर्जनात्मक साहित्य एवं सांस्कृतिक मूल्यों का निष्कर्ष, डॉ. हरमोहन, पृ.192
2.

सामाजिक परिवेश के साथ राजनैतिक परिवेश ने आज के जीवन संदर्भों को सर्वाधित प्रभावित किया है । इसलिए आज का व्यक्ति समाज से अधिक राजनीति में दिलचस्पी रखता हुआ दिखाई पड़ता है । राजनैतिक विसंगतियाँ, दलबदल राजनीति, छल से भरी झूठी राजनीति और भ्रष्टाचार का यथार्थ रूप हिन्दी साहित्य में देखने मिलता है । आज राजनीति उच्चादर्श से कोसों दूर हो गई है । पहले राजनीति आदर्शवादी व्यक्तियों के लिए और अनुयायिओं के लिए कर्मक्षेत्र थी लेकिन उसका स्वरूप एकदम बदल गया । आज वह किसी महान लक्ष्य को हाँसिल करने या अच्छे आदमी के गठन का क्षेत्र नहीं रहा है । स्वाधीनता पूर्व राजनीति का लक्ष्य स्वाधीनता प्राप्त करना था । अतः उस समय राजनीति की अपनी नैतिक नींव थी । स्वाधीनता परवर्ती युग में यह नैतिकता टूट गई है, पूरे देश में अनैतिकता छा गई है । कोई भी राजनीतिक दल हो, अब उसका अपना अलग-अलग लक्ष्य होता है । समाज का आम आदमी उन्हें उतना मुख्य नहीं जितना उसका अपना स्वार्थ । इस राजनैतिक पतन को पकड़ पाने का कवियों ने सफल प्रयत्न किया है । भारतेन्दुजी ने 'भारत-दुर्दशा' में लिखा है कि -

"आवहु सब मिलि रोवहु भाई,
भारत दुर्दशा देखी न जाय ।"

हर कोई चेतना साहित्य में प्रवेश पा सकती है । राजनीतिक चेतना भी इस दृष्टि से साहित्य के लिए वर्ज्य नहीं है । राष्ट्र की प्रगति उसकी राजनैतिक प्रगति से जुड़ी रहती है । अतः राष्ट्र का कोई भी नागरिक उसकी राजनीतिक गतिविधियों से अछूता नहीं रह सकता । "राजनीतिक चेतना संपूर्ण सामाजिक बोध को नये परिप्रेक्ष्य में ग्रहण करने की दृष्टि पैदा करती है ।"[1] राजनीतिक चेतना मनुष्य को अपने गौरव को सुरक्षित रखने की शक्ति प्रदान करती है ।

राजनीतिक चेतना के प्रसार में साहित्यकार का अपना दायित्व होता है । वह जनता को जागृत कर सकता है । "साहित्यकार परिवेश की असंगतियों में निहित राजनीतिक उत्पीड़न के सुक्ष्म अप्रत्यक्ष तंतुओं को अनावृत करते हुए जन मानस की मानसिकता को सही दिशा की ओर प्रेरित करता है ।"[2]

1. हिन्दी कथा साहित्य में जनचेतना, डॉ. अरुण लोखण्ड़े, पृ.48
2. स्वातंत्र्योत्तर कविता में राजनीतिक चेतना, डॉ. गुणमाला नवलखा, पृ.33

2.8.4 आर्थिक चेतना :

समाज का पूरा आधार अर्थव्यवस्था पर टिका होता है । आर्थिक प्रणाली का विकास ही सामाजिक संगठन तथा चेतना को नयी गति देता है । समाज में आर्थिक व्यवस्था वर्गो को उत्पन्न करती है । धन-अभाव के कारण कई कुरीतियाँ जन्म लेती है जैसे बाल विवाह, अनमेल विवाह आदि । ये आर्थिक विषमताएँ व्यक्ति के विकास में जब बाधित होती है तो वह कुंठित, विकृत तथा विद्रोही बन जाता है । अतः समाज तथा अर्थव्यवस्था का सामंजस्य बना रहना चाहिए ।

धन के प्रसार में समाज मुख्यतः शोषक और शोषित दो वर्गो में विभाजित हो गया । शोषण का उत्पीड़न जब भी मानव-समाज पर ज्यादा या उग्र होता है, तब क्रान्ति के बीजों में अंकुर फूटने लगते है । रूस की क्रान्ति में अन्य कारणों के अतिरिक्त आर्थिकव्यवस्था भी आधारित थी । आर्थिक पक्ष को सामाजिक चेतना से अनिवार्य तथा प्रत्यक्ष सम्बन्ध है ।

धर्मवीर भारती ने कहा है कि - "अर्थशास्त्र वह पत्थर है जिस पर समा के सारे भवन का बोझ है ।"[1] अर्थ ही देश के विकास का मेरूदंड है । मानव-जीवन और जगत की तमाम बाहरी और भीतरी व्यवस्थाओं की आधार-शक्ति 'अर्थ' ही है । प्रत्येक युग की सामाजिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक परिस्थितियाँ अर्थ से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकती । शास्त्रों में भी जीवन को सार्थक बनानेवाले चार पुरूषार्थ में से 'अर्थ' को एक पुरूषार्थ माना गया है ।

आर्थिक असंतुलन विभिन्न विषमताओं की जननी है । अर्थ अधिकता व्यक्ति को विलासी, तामसी एवं पाशविक बना देती है, वही अर्थ अभाव उसे कुंठित एवं पंगु बना देती है । भारतीजी ने भी 'मुरदों का गाँव' कहानी में अर्थ की महत्ता प्रतिपादित करते हुए कहा है कि - "अन्न जीवन की प्रथम आवश्यकता है, अन्न संस्कृति की प्रथम आवश्यकता है, जो कि सुनहली बालों की छाया में कल्पना, गीत, प्रेम और कला की उपलब्धि में आर्थिक सम्बन्धों की सक्रियता भी आवश्यक रहती है ।"[2]

---

1. धर्मवीर भारती युग चेतना और अभिव्यक्ति, डॉ. सरिता शुक्ल, पृ.90
2. वही, पृ.90

कुछ विद्वानों का मत है कि संस्कृति का अर्थ की आधारशिला पर निर्मित होती है । आर्थिक व्यवस्था द्वारा समाज व्यक्ति के विकास के लिए उचित वातावरण तैयार करता है । जिस समाज में आर्थिक असमानता अधिक पायी जाती है उस समाज में व्यक्तियों का विकास अवरूद्ध हो जाता है । परिणाम स्वरूप समाज की प्रगति धीमी पड़ जाती है ।

मुक्तिबोध के काव्य में मूल्य चेतना :

प्रस्तावना :

हिन्दी समीक्षा विश्लेषण-मूल्यांकन में प्रतिमानों का नया आधार प्राप्त कर चुकी है । इसीलिए आज किसी भी कृति में प्रतिमान भाव और कला पक्ष की अपेक्षा विश्लेषण अन्वेषण में मूल्यों के प्रति लेखक की अभिरूचि विशेष को समीक्षा के केन्द्र में स्वीकार किया जाता है । फिर मूल्य अथवा प्रतिमान जीवन (मानव) और साहित्य के लिए अन्योन्याश्रित है, एक दूसरे के पूरक हैं । तभी मुक्तिबोध ने जीवन-विवेक और साहित्य-विवेक को पर्याय रूप में स्वीकार किया है तथा समीक्षक 'नयी कविता के प्रतिमान' तथा 'कविता के नये प्रतिमान' के रूप में कृति अथवा कृतिकारों का विश्लेषण कर रहे हैं । अब तो शैली विज्ञान तक के प्रतिमान स्थापित हो चुके हैं ।

मूल्य चेतना के साथ हमने वैयक्तिक, सांस्कृतिक, सामाजिक, बौद्धिक तथा राजनीतिक, सौन्दर्यात्मक पक्षधरता का उल्लेख सोदेश्य किया है । निःसंदेह 'चेतना' का सम्बन्ध व्यक्ति से है, क्योंकि व्यक्ति-मन चेतना का मूल उत्स है और चेतना उसका प्रधान गुण स्वीकार्य है । इसीलिए इसे (चेतना को) फ्रायड़, जुंग और सार्त्र ने अपने-अपने आधार से व्यक्ति मन अथवा अस्तित्व को घोषित किया है । इसी कारण चेतना को व्यक्ति सापेक्ष माना जाता है । वैयक्तिक चेतना से सामाजिक तथा राजनीतिक चेतना का विकास होता है । वस्तुतः चेतना में बोध, भाव एवं कर्म की समन्विति रहती है । "चिंतन, अनुभूति और कर्म की प्रक्रिया, इनका प्रसार और विकास ही चेतना है । इनकी प्रतिक्रिया और परिणाम के रूप में निरंतर उगनेवाली इनकी नई-नई विविध शाखाएँ-प्रशाखाएँ सभी चेतना में समाविष्ट हैं । बौद्धिक सक्रियता (चिंतन), भावात्मक सक्रियता (अनुभूति) और दैहिक सक्रियता (कर्म) को कसौटी मानकर ही प्राणी की चेतना का निर्धारण

किया जाता है ।"[1] चेतना को आत्म अथवा मानव सापेक्ष्य इसीलिए स्वीकारा जाता है क्योंकि इसीसे सृष्टि की समस्त कलाओं का विकास संभव है, कवि-चेतना आत्मबोध से विश्व-बोध तक की अंतःबाह्य धरातल पर संवेदना और ज्ञान की यात्रा तय करती है । इसी आधार पर डॉ. जगदीश गुप्त ने काव्य प्रेरणा का मूल स्त्रोत उसकी चेतना को माना है ।

मुक्तिबोध ने रचना-प्रक्रिया की सविस्तार व्याख्या करते समय मूल्य चेतना के प्रस्थापन की ओर संकेत किया है । उनकी धारणा है कि केवल विचारधारागत मूल्य ही उसके अपने नहीं हो जाते, बल्कि उसके अंतर्मन अंतप्रेरणाओं तथा संवेदनात्मक अनुभवों से भी मूल्य विवेक का विकास होता है तथा जीवन यथार्थ के बदलाव की प्रक्रिया में निरंतर गतिशील रहता है । रचना प्रक्रिया को स्वायत प्रक्रिया मानता हुआ कवि-समीक्षक मूल्य-चेतना के अनेक पक्षों को व्याख्यायित करता है । निःसंगता एवं आभ्यांतरीकरण के संदर्भ में इस तथ्य को केन्द्र में स्थिर किए हैं कि प्रत्येक व्यक्ति अपनी व्यक्ति चेतना के आधार पर अपने सामाजिक जीवन का अभ्यांतरीकरण करता है ।

मुक्तिबोध की मूल्य चेतना का आधार सामाजिकता है - मध्यवर्गीय वास्तविकता है । इस वर्ग की पहचान वह अनेक दृष्टियों एवं पक्षों के आधार पर करता है । उनके आलोचनात्मक निबंधों, वक्तव्यों, कहानियाों एवं कविताओं में इस प्रकार के संकेत मिलते है । अंतर केवल इस धारणा दृष्टि की प्रस्तुति का है । साहित्यिक रूप के बदलाव के साथ लेखक की मूल्य चेतना की प्रस्तुति में अंतर अवश्य आ जाता है जबकि मूल स्थिति पूर्ववर्त बनी रहती है यथा 'सतह से उठता आदमी' में वह कहते है - "मध्यवर्गीय समाज की साँवली गहराइयों की रूँधी हवा गंध से मैं इस तरह वाकिफ हूँ जैसे मल्लाह समन्दर की नमकीन हवा से ।"[2]

मुक्तिबोध के संपूर्ण साहित्य की चर्चा करते हुए विद्वानों ने उनकी मूल्य चेतना को प्रायः नकार दिया है । यह सही है कि वह इनकी मूल्य चेतना में या तो जनवादी विचारधारा को ढूँढने का प्रयास करते हैं या फिर कुछ विद्वान उन्हें दुरूह कवि घोषित कर मूल्यों के प्रति उसे एक प्रकार का मौन कवि सिद्ध कर

1. साहित्य का आधारदर्शन, जगनाथ नलिन, पृ.1
2. सतह से उठता आदमी, मुक्तिबोध, पृ.6

देते हैं परंतु स्वातंत्र्योत्तर कविता के विकास में मुक्तिबोध ही एक ऐसा कवि है जिसमें मूल्यों के प्रति एक सही दृष्टि है, जो सृजन-क्षण की सही पहचान संवेदनात्मक ज्ञान और ज्ञानात्मक संवेदना के द्वारा करना चाहता है । ऐसा कवि हमारी दृष्टि में मूल्य सृष्टा कवि है तथा मूल्यान्वेषण की इस चिरंतन प्रक्रिया से गुजरना चाहता है । जनवादी परिप्रेक्ष्य में मानवीय सौन्दर्य संवेदना जागृत करनेवाली मुक्तिबोध की कविता कभी कभी जटिल, संश्लिष्ट रूप धारण करती है परन्तु उसमें समाज का वास्तविक चित्रण होता है । कवि होने के नाते मुक्तिबोध अपना सामाजिक दायित्व पूर्णरूपेण निभाते है । श्रद्धा, आस्था, कर्मशीलता, संघर्षशीलता, अपने अहम् की स्थापना, मानवता पर दृढ़ विश्वास, शोषित-सर्वहारा वर्ग के लिए आत्मीयता आदि गुणों के स्पष्ट निर्देश उनकी कविता में दृष्टिगोचर होते है, जिनसे पाठकों के मन में भी अदम्य विश्वास जागृत होता है ।

2.9 मुक्तिबोध के काव्य में मूल्य चेतना :

विवेकशील व्यक्ति या साहित्यकार के लिए मानव-मूल्यों की सार्थकता है, किन्तु इसकी चर्चा तो सभी दिखावे के रूप में करते है । मूल्यों की सही एवं सार्थक पहचान के कारण मुक्तिबोध को ईमानदार लेखक माना जाता है । यहाँ वह बात ध्यान में रखनी है कि कवि मूल्यों की चर्चा जहाँ प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप में करता है, उसके मूल में 'संघर्ष' अवश्य है इसी संघर्ष के मध्य निर्मित मूल्य उसकी दृष्टि में सही मूल्य है और संघर्ष पर आधारित ही मूल्य चेतना है । यह संघर्ष बाह्य तथा आंतरिक दोनों दृष्टियों का है । यदि हम आंतरिक संघर्ष को वैयक्तिक मूल्यों में समाविष्ट करना चाहें तो बाह्य संघर्ष की कविताएँ निसंदेह सामाजिक मूल्य के अंतर्गत रखी जायेंगी । मुक्तिबोध अन्य मूल्य चिन्तकों एवं सर्जक कवियों या लेखकों से भिन्न साहित्य और जीवन मूल्य के विकास में 'संघर्ष' की महत्ता को उजागर करते है ।

मुक्तिबोध के समस्त काव्य को पढ़ने के पश्चात यह कहा जा सकता है कि मुक्तिबोध मूल्यों का आधार विवेक को स्वीकार करते है । इसीलिए उनकी दृष्टि में सबसे बड़ी बात सही अर्थो में आदमी होना तथा बने रहना है । उनकी सभी कविताएँ मूल्य चेतना की विभिन्न स्थितियों, पक्षों, संदर्भों को अपने में

सँजोये है । यह सही है कि कुछ कविताओं को छोड़कर उसकी दृष्टि मूल्यों के प्रति संश्लिष्ट रूप, जिसे दूसरें शब्दों में प्रतिबद्ध रूप कहा जा सकता है । वस्तुतः ऐसी कविताएँ उनकी जनवादी विचारधारा, मार्क्सवादी चिंतन तथा प्रत्यक्ष परिवेशगत समझ तथा सामाजिक दायित्व का परिचय करवाती है और ऐसे संदर्भो में कवि कहीं-कहीं अपने अन्तस की खीज को भी वाणी प्रदान करता है । इन सबसे हमें यह नहीं समझना चाहिए कि उनके काव्य में प्रतिपादित मूल्यों का आधार खीझ अथवा आक्रोश है । हमारी दृष्टि में कवि की मूल्य-चेतना संघर्ष पर आधारित है । यह संघर्ष बाह्य तथा आंतरिक दोनों दृष्टियों का है । यदि हम आंतरिक संघर्ष को वैयक्तिक मूल्यों में समाविष्ट करना चाहे तो बाह्य संघर्ष की कविताएँ निःसंदेह सामाजिक मूल्य के अंतर्गत रखी जायेंगी ।

हमें मूल्य-चेतना की धारणा का उल्लेख करना उचित प्रतीत होता है क्योंकि वह मूल्यों को तीन भागों में विभाजित करते समय मूलतः अपनी दृष्टि में एक सर्जक कलाकार को रचता है - स्वनिष्ठ मूल्य, सामाजिक मूल्य तथा बौद्धिक मूल्य । यह विभाजन मुक्तिबोध की कविताओं में वैयक्तिक मूल्य, मनोवैज्ञानिक मूल्य और सामाजिक मूल्य-शीर्षकों में दृष्टव्य है । उनके लेखकीय वक्तव्यों, भूमिकाओं तथा आलोचना ग्रंथों में प्रस्तुत की गई चिंतनप्रधान धारणाएँ उनके ग्रंथों में देखी जा सकती है । वे ज्ञान और संवेदन के सामंजस्य की बात भी इसीलिए करते हैं और ज्ञान जहाँ मूल्यों को दृष्टि प्रदान करता है, सार्थकता की ओर रले जाता है । वहाँ संवेदन उसे गहन और मनोवैज्ञानिक आधार प्रदान करता है । मुक्तिबोध के अंर्तसंघर्ष विशेष रूप से उसके गहन संश्लिष्ट अनुभूतिमय क्षण एवं मनोवैज्ञानिक मूल्य चेतना की कोटि में ले जाता है । इनकी प्रारंभिक कविताएँ तो इसके रोमानी स्वभाव, प्रकृति-प्रेमी, सौन्दर्य पारखी और प्रणय की ओर आसक्त एक ऐसे कवि का परिचय करवाती हैं, जो निरंतर कुछ पाना चाहता है, निकटता चाहता है और उसका यह विश्वास है कि प्रकृति और मनुष्य का भीतरी मन उसे सही आदमी होने में, सही आदमी की पहचान करवाने में कहीं बाधा उपस्थित नहीं करते । तार-सप्तक की कविताओं से कवि सचमुच मूल्यों की दृष्टि से थोड़ा बदला हुआ प्रतीत होता है । जैसा कि हम पहले संकेत कर चुके है उसकी दृष्टि मार्क्सवादी हो जाती है और वह आम आदमी के दुःख

दर्द की पहचान कविता में करवाता है । इसीलिए जीवन की सार्थकता गरीबों के प्रति सहानुभूतिमय मानता है । यही इसके काव्य का आधार है । 'शब्दों का अर्थ जब' नामक कविता गरीबों के प्रति उसकी सहानुभूति की परिचायक है -

"गरीबी के अनुभव के बीहड़ हिमनगर प्रदेशों में,
ममता की शुभ्र अमल गंगा के कूलों पर,
मानवीय लक्ष्यों के
श्याम खेत सिंचते हैं पठारों पर
संवेदन सत्यों की झीलें प्रतिबिम्बित अरूणायित लहराती है ।"[1]

पूँजीपति समाज के प्रति तीखा व्यंग्य प्रहार करते है । यह छोटी-सी कविता कवि की दृष्टि और मूल्य-चेतना की सार्थक अभिव्यक्ति करती है क्योंकि वह मानते है कि पूँजीवादी समाज एक ऐसी संस्कृति को अपने में संजोये है जिसका लक्ष्य शोषण है ।

मुक्तिबोध की मूल्य-चेतना का आधार उसका प्रत्यक्ष ज्ञान है । जिस तरह वह समाज में आपाधापी, छीनाझपटी सामाजिक धरातल पर देखता है, उसे कविता में प्रतीकों, बिम्बों, मिथकों तथा फैंटेसी के शिल्प में प्रस्तुत करता है । कहीं उसका यह प्रत्यक्ष अनुभव किसी एक व्यक्ति विशेष के प्रति केन्द्रित भी करता है । 'दूरतारा' कविता में कवि को विराट शक्ति का रूप प्रतीत होता है । जो प्रत्येक हृदय में समाई है । कवि को विश्वास है कि प्रत्येक व्यक्ति अपना रास्ता स्वयं बनाता है । कविता में शून्य के नीले अविस्तार में तारे की गति को उदय और अस्त के इतिहास में नापा गया है -

"तीव्र गति, अति दूर तारा
वह हमारा
शून्य के विस्तार नीले में चला है
और नीचे लोग । उसको देखते है, नापते हैं
गति, उदय और अस्त का इतिहास ।"[2]

1. भूरी-भूरी खाक धूल, मुक्तिबोध, पृ.154
2. नदी कविता का आत्मसंघर्ष एवं अन्य निबन्ध, मुक्तिबोध पृ.5

लेखक, साहित्यकार, कवि जो घटिया हथकंडों से सब कुछ प्राप्त कर चुके हैं उनका जीवन में सफलता पाना ही सबसे बड़ा लक्ष्य है । इसके लिए वह अपनत्व पाना ही सबसे बड़ा लक्ष्य है । इसके लिए वह अपनत्व को बेच सकते हैं, अस्तित्व का हनन कर सकते हैं । ऐसे कई प्रसंग कवि की निजता के सूचक हैं । हम इन सबको वैयक्तिक अभिरूचियों के अंतर्गत मानते हैं । कवि ऐसे लोगों का उल्लेख भी संकेत रूप में करता है जो सफलता की बस में जगह न होने पर भी धकापेल से चढ़ जाते है, परंतु वह अपने मूल्यों की रक्षा के लिए अपने अस्तित्व को बनाये रखने के लिए जीवन की उन सफलताओं को न पा सकने के लिए पिछडा हुआ मानता है । वस्तुतः उसके जीवन का आधार तो सार्थकता पर केन्द्रित है और यही उसके मूल्यों की सबसे बड़ी पहचान है ।

'चाँद का मुँह टेढ़ा है' कविता में कवि मुक्तिबोध ने गांधीवादियों पर व्यंग्य किया है तिलक के नाम पर गलत फायदा उठानेवालों को फटकारा है । दृष्टव्य है -

"गाँधी के पुतले पर
बैठे हुए आँखों के दो चक्र
यानी कि धुग्धु एक -
तिलक के पुतले चार
बातचीत करते हुए
कहता ही जाता है ।"[1]

कवि मुक्तिबोध द्वारा काली करतूतों पर गाँधी तथा तिलक के माध्यम से संभाषण द्वारा करारा व्यंग्य किया हुआ दृष्टिगोचर होता है । रात्रि के अंधकार में जो काले धंधे और अवैध व्यापार चलाते है, वे ही हमारी वर्तमान संस्कृति के प्रतीक बन गये है । आकाश रात्रि के अँधेरे सत्यों को घोटकर पी गया है और मनुष्य को मारने के जीवित खूब टोटके या हथकंडे समझ लिए है । इन काली सच्चाईयों का पर्दाफाश न हो सके इसलिए आकाश में भी कर्फ्यू लगा दिया है ।

मुक्तिबोध ने उन साहित्यकारों पर व्यंग्य किया है जो यथार्थता को

1. चाँद का मुँह टेढ़ा है, मुक्तिबोध, दसवा सं., पृ.58

यथार्थ न बतलाकर व्यर्थ ही संस्कृति की दुहाई देते हैं । जीवन के सत्य को, यथार्थ को कहने से कतराते हैं । जिन्दगी की विषमता को बताने का साहस नहीं करते या सत्य को नहीं दिखाते -

"सचाई के अध-जले मुर्दो की चिताओं की
फटी हुई दहक में कवियों ने
बहकती कविताएँ गाना शुरू किया ।
संस्कृति के कुहरीले धुएँ से भूतों के
गोल, गोल मटकों से चेहरों ने
नम्रता के धिधियाते स्वांग में
दुनिया को हाथ जोड़
कहना शुरू किया - बुद्ध स्तुप में
मानव के सपने
गड़ गये, गाड़े गये ।
ईसा के पंख सब
झड़ गये, झाड़े गये !!
सत्य की देवदासी चोलिया उतारी गयी
उधारी गयीं, सपनों की आंते सब
चीरी गयीं, फाड़ी गयीं !!
बाकी सब खोल है,
जिन्दगी में झोल है !!"[1]

कविवर मुक्तिबोध बतलाते हैं कि अधजले सत्य के मुर्दो की चिताओं से जो आग की चिनगारियाँ फुट रही थी, उनके प्रकाश में कवियों सत्य के स्थान पर अर्ध-सत्य या भ्रामक सत्य के पुष्टि गीत गाना प्रारंभ किया है ।

मानव जाति के समस्त स्वप्न गौतम बुद्ध के स्तूप में गाड़े गये थे तथा स्वयं भी गड़ गये थे । इसी प्रकार ईसा मसीह के सिद्धांत रूपी पंख समय में स्वतः भी झड़ गये हैं जबकि झाड़े भी गये है । सत्य की चोलियाँ, देवदासियों की भाँति निर्वस्त्र किया गया । इस प्रकार मानवता ने सुख और मुक्ति के जो

1. चाँद का मुँह टेढ़ा है, मुक्तिबोध, दसवा सं., पृ.62

सपने देखे थे, वर्तमान स्वार्थी सभ्यता ने उसकी अंतडियों तक को नोंच-खरोच डाला है । अब हमें शेष जो कुछ भी दिखाई दे रहा है, वह मानवता का थोथा खोखला खोल या ढाँचा मात्र ही है । जिन्दगी में झोल ही पड़ा है आर्थात् जिन्दगी असमर्थता में हिचकोले खा रही है ।

मूल्यों की दृष्टि से इनके काव्य-संग्रहों 'चाँद का मुँह टेढ़ा है' तथा 'भूरी-भूरी खाक धूल' में संकलित कविताएँ 'तार-सप्तक' में संकलित रचनाएँ तथा 'मुक्तिबोध रचनावली' में कुछ अप्रकाशित रचनाओं का प्रकाशन कवि की रचना-प्रक्रिया और मूल्य-चेतना के व्यापक और विविध पक्षों को सिद्ध कर देता है । वस्तुतः रचनावली के दोनों खंडों को पढ़ने के बाद ऐसा लगता है कि कवि की प्रत्येक कविता सोदेश्य है, एक विशिष्ट प्रेरणा, अनुभव, भाव और सृजनधर्मिता की परिचायक है । प्रारंभ की कविताएँ यदि महादेवी के प्रणय दुःख और प्रकृति प्रेम से कहींकहीं प्रभावित दिखती हैं तो परवर्ती कविताएँ प्रगतिवादी विचारधारा से प्रभावित है ।

मूल्य की दृष्टि से उनका काव्य-संसार हमारी दृष्टि में मार्क्स, सार्त्र के अस्तित्ववाद और भारतीय आस्तिकता का विचित्र सामंजस्य है । यह सही है कि कुछ कविताएँ किसी एक वाद विशेष से प्रभावित है परंतु अधिकांश में वे शोषितों के प्रति सहानुभूति, शोषितों के प्रति खीझ, देश के नेताओं के प्रति व्यंग्य-प्रहार, समकालीन लेखकों के प्रति चुटीलापन और कहीं-कहीं अपने आप के संघर्ष को आधार बनाये हुए है । यही कारण है कि कविता के पहले वह सूत्र रूप में कुछ कहता है । फिर उसकी संक्षिप्त-सी व्याख्या करता हुआ मिथकों, बिम्बों, प्रतीकों तथा फैंटेसी का आधार ग्रहण कर, उस सूत्रात्मक व्याख्या को गहराता है । कुछ कविताओं में तो निष्कर्ष वह सूत्र रूप में प्रस्तुत करता है परंतु अधिकांश कविताएँ बिना किसी निष्कर्ष के अधूरे व अपूर्ण छोड़ देता है । यही कारण है कि डॉ. मदान सरीखे विद्वान उसकी कविताओं को अधूरी घोषित करते है । यहाँ अधूरी का अर्थ अपूर्णता का नहीं है । क्योंकि कवि निरंतर एक बहुत बड़ी समस्या में लिखता है जो कभी समाप्त नहीं होती । हमें तो मुक्तिबोध एक ऐसा शोधक कवि प्रतीत होता है जो निरंतर आत्म-मुक्ति से मानव-मुक्ति तक की यात्रा तय करता है । आत्म-मुक्ति उसका वैयक्तिक पक्ष है, वैयक्तिक मूल्य-चेतना

है, तो मानव-मुक्ति में उसका मानववादी दृष्टिकोण, जनवादी चेतना, शोषितों के प्रति सहानुभूति और उन्हें संगठित करना, क्रांति का आह्वान सारे पक्ष इसके अंतर्गत आ जाते है । यही कारण है कि उनके समक्ष एक ही समस्या है, उसके देश के लोग सभ्य और शोषण मुक्त कब होंगे । यहाँ सभ्य और शोषणमुक्त शब्द गहन अर्थ की प्रतीति कराते है । हम तो मुक्तिबोध की इस मूल्य-चेतना में सामाजिक धरातल पर सभ्य और शोषण मुक्त को केन्द्र रूप में मानते हैं । उसे कदम-कदम चौराहे मिल रहे हैं तथा वह पूरे हिन्दुस्तान को अँधेरे में कविता में देखने का प्रयत्न करता है । आम आदमी से वह देश के नेता तक की वस्तुस्थिति का परिचय करवाता है, परंतु इस सबसे परे यह शोधक रूप है जो कहीं भी ओझल नहीं होता । इसीलिए वह 'मेरे सहचर मित्र' नामक कविता में बहुत बड़े तथ्य को उद्घाटित करता है -

"मेरे सहचर मित्र
जिन्दगी के फूटे घुटनों से बहती
रक्तघर का जिक्र न कर,
क्यों चढ़ा स्वयं के कंधों पर
यों खड़ा किया नभ को छूने,
मुझको तुमने अपनाो से दुगुना
बड़ा किया मुझको क्यों कर ।"[1]

गीत कविता में कवि रामू के माध्यम से जहाँ आम आदमी की पहचान करवाता है, उसकी आर्थिक विपन्नता का उल्लेख करता है, वहाँ पूँजीवादी वर्ग के शोषण के खिलाफ क्रांति तथा विद्रोह की बात भी करता है -

"रामू जनता है कि पूँजीवादि शक्तियाँ
जन-जन की बैठकर
शासन के चाकू से
विद्रोहिणी बुद्धि की त्रिकालदर्शी आँखों से काटकर
निकाल देना चाहती है
किंतु इन असफल प्रयासों पर सुविश्वास

1. चाँद का मुँह टेढ़ा है, मुक्तिबोध, दसवा सं., पृ.92

करनेवाली आँखें उलटी है
कौड़ी की आँखें है जिनमें रेगिस्तान की
सफेदी चिलचिलाती है
जिसके बीचो बीच
घनीभूत रात की सियाही का घेरा है ।
राम के सोये हुए हृदय को
अवरूद्ध जीवन को अकस्मात् किसीने
सत्य की शक्ति दी औ' हिम्मत की राह दी
पूँजीवादी झूठ के विराट अत्याचार बीच ।"[1]

यहाँ हम मुक्तिबोध की कविताओं में उनकी मूल्य चेतना को विभिन्न शीर्षकों में रखकर देखना चाहेंगे ताकि निष्कर्ष रूप में एक दृष्टि प्रतिपादित की जा सके ।

2.9.1 मूल्य चेतना - वैयक्तिक पक्ष :

कवि के संपूर्ण चिंतन का आधार अनुभव है और यही अनुभव जीवन अनुभव उसे कभी आत्मसंघर्ष की स्थिति में ले जाता है, कभी ऐसे रूप से भी परिचित करवाता है जिसमें वह अपनी पहचान करवाता है । वास्तव में यही आत्मविश्लेषण और साक्षात्कार है, जो कि मूल्यों का बहुत बड़ा आधार है । कवि निरंतर विश्लेषण करता है और अपनी पहचान के द्वारा पूरे समाज, देश तक को पहचानना चाहता है । यही उसकी आत्म मुक्ति से मानव-मुक्ति तक की यात्रा है । वैयक्तिक मूल्यों का धरातल पृथक से प्रस्तुत करना विकट समस्या है क्योंकि कवि जिस किसी निजी धारणा, मान्यता को इंगित करता है वह सीमित और सूत्र रूप में प्रस्तुत है । एकाएक व्यापक संदर्भ ग्रहण कर लेती है । इस प्रकार उनकी वैयक्तिक मूल्य चेतना सामाजिक मूल्य-चेतना का व्यापक अर्थ ग्रहण किये है । वास्तव में यह मूल्य विभाजन हम केवल कविताओं को ठीक से समझने के लिए करते हैं ।

कवि की मूल्य-चेतना को एक क्रमिक विकास में देखा जा सकता है, अनुभव की श्रृंखला में पकड़ा जा सकता है । उसे खंडों और उपखंडों या विभिन्न

---

1. भूरी-भूरी खाक धूल, मुक्तिबोध, पृ.204

कोटियों में विभाजित करने से उसके स्वरूप का सही धरातल पकड़ में नहीं आयेगा । फिर भी कुछ कविताएँ ऐसी है जो उसकी निजी आसक्ति, अभिरूचि तथा धारणा को पुष्ट करती है । वह मूल्य के लिए जहाँ अनुभव, विवेक और ज्ञान को जरूरी मानता है, सफलता और सार्थकता में अंतर करता है, वहाँ वह उन लोगों को भी आड़े हाथों लेता है, जो धरातल पर मूल्यों, सत्यों की बात करते हैं, परंतु व्यवहार में वह लोग बिल्कुल अलग हो जाते हैं । ऐसे लोगों के प्रति उसकी खीझ तो है ही साथ ही वह उन लोगों को सही राह, यहाँ तक कि उनको वास्तव अनुभव लोक की सांकेतिक प्रतीति भी कराता है । ऐसे लोगों को संबोधित करता हुआ कवि कहता है -

"लोगों..... एक जमाने में जो मेरे ही थे
बहुत स्वप्नदृष्टा थे
कवि थे, चिन्तक और क्रांतिकारी थे
क्या हो गया तुम्हें अब -
प्रतिदिन कर उपलब्ध सत्य
अब खो देते अगले क्षण ही
निज द्वारा अनुसंधानित होते हैं अन्तर्हित
बाहरी जिन्दगी के होहल्ले-मेले में
अपनु अनुभव के पुत्र गवाँ देते है क्यों
क्यों बिछुड़े तुम अपनों ही से ।"[1]

'ब्रह्मराक्षस' कविता में कवि वैयक्तिक का एक दूसरा धरातल प्रस्तुत करता है जिसमें दो तरह की शक्तियाँ काम कर रही है - पहली सद्वृति की, नैतिक आचरण की, मूल्य परख दृष्टि की तथा दूसरी दुष्ट वृत्ति की स्वार्थ, आपाधापी से सबकुछ पाने की और शोषण की । वस्तुतः यह कविता समग्र रूप में मध्यवर्गीय बुद्धिजीवी की छटपटाहट व्यक्त करनेवाली कविता है, जिसमें वह निरंतर अपनी पहचान कराना चाहता है । उन्होंने इस कविता द्वारा मध्यवर्गीय बुद्धिजीवी की कुण्ठावस्था को व्यक्त किया है । परन्तु इस बुद्धिजीवी का अन्तर्विरोध, कुण्ठाएँ, दंभ उसे आत्मकेन्द्रित बना देती है । ये सब बातें उसके

---

1. भूरी-भूरी खाक धूल, मुक्तिबोध, पृ.64

विकास को अवरूद्ध कराती है । प्रस्तुत कविता में वैयक्तिक मूल्य स्थापना है जो आत्मसंघर्ष व्यक्त करती है । बुद्धिजीवी स्वयं का मूल्य जानना चाहता है । आत्म परिचय से जग परिचय संभव है । उसे विश्वास है कि यदि आत्म परिचय हो जाय तो शायद वह दुनिया से परिचित हो सकता है । इसलिए वह इस कविता के अंत में जहाँ बुद्धिजीवी की मानसिक व्याकुल अवस्था, अंतर्विरोधों की बात करते है वहाँ आंतरिकता के मूल्य का भी संकेत देते है -

"आत्म चेतस् किंतु इस
व्यक्तित्त्व में थी प्राणमय अनबन.....
विश्व चेतस बे-बनाव ।।
महता के चरण में था
विषादा-कुल मन ।
मेरा उसीसे उन दिनों होता मिलन यदि
तो व्यथा उसकी स्वयं जी कर
बताता मैं उसे उसका स्वयं का मूल्य
उसकी महत्ता
वह उस महत्ता का
हम सरीखों के लिए उपयोग
उस आंतरिकता का बताता मैं महत्त्व ।"[1]

प्रस्तुत कविता में मुक्तिबोध वैयक्तिक या निजी रूप की ओर संकेत करते है । उनके ये अनुभव आत्मसंघर्ष की स्थिति में ले जाते है । आत्मचेतस से विश्वचेतस तक की बातें करना ही अपनी पहचान के द्वारा विश्व तक पहुँचना है ।

वैयक्तिक मूल्यों की दृष्टि से 'देख कीर्ति के नितंब इठलाते' कविता विशेष रूप से उल्लेखनीय है क्योंकि इसमें वह ऐसे लोगों का उल्लेख करता है जो अपनी प्रशंसा के द्वारा अपना महत्त्व निरूपित करना चाहते है । ऐसे लोगों के वह कई तरह के व्यंग्य विशेषण भी लगाता है । वह 'निज के महत्त्व का' लेबल लगाकर फिर रहे है तथा इन्हें वह 'बौद्धिक-भावुक-कल्पक-भूत-गण' कहता

1. चाँद का मुँह टेढ़ा है, मुक्तिबोध, दसवा सं., पृ.16

है । यह पुरस्कार पाने के लिए निज को बेच देते है अपने अस्तित्व को गिरवी रख देते है और शाब्दिक दृष्टि से बड़े-बड़े उपदेश भी देते है और बहुत बड़े समाज-सुधारक होने का दावा भी करते हैं । इन लोगों को संबोधित करता हुआ कवि कहता है -

"जनता, संस्कृति, जीवन, मानव
का भी नाम लेते ये
किंतु देह में चरबी के थर,
अपने तन की सब सतहों पर
खूब कमाते नाम ये प्रदीप जिह्वा
लोभी लौ या
इनके हिय में चरबी का ही दीप है
मानव के प्रति - इन्हें देख,
बढ़ते नितंब अब मस्तकहीन
महत्त्व के गुड़ के ढेले पर चढ़ते चिउंटे है
मत्सर तत्व के ।
यश के चौर व प्रतिभा की कुलटा की भैया दुज है,
हिय की कोमल त्वचा-त्वचा पर अहंकार की सूज है ।"[1]

इस तरह की अनेक कविताएँ 'भूरी-भूरी खाक धूल' में संकलित है जिनमें वह ऐसे लोगों की जिनके जीवन सर्वस्व स्वार्थमय है, निज की क्षणिक पूर्ति में है । उनके सामने कोई एक व्यापक लक्ष्य नहीं है । ऐसे लोगों पर वे जहाँ करारा प्रहार करते है वहाँ समाज में उत्तरोत्तर मूल्यहीनता की स्थिति का उल्लेख भी करते है । ऐसे भी कुछ लोग होते हैं जो कवि की तरह सिर्फ अपने लिए ही नहीं जीते, उनके जीने में जीवन के प्रति थोड़ी सार्थकता, लक्ष्य तथा आदर्श रहता है । यही कारण है कि ऐसे लोगों को स्वार्थी लोग जब समाप्त कर देते हैं तब कवि को लगता है कि एक पूरा युग समाप्त हो गया है । ऐसा मूल्य-संकल्प व्यक्ति भले ही -

---

1. भूरी-भूरी खाक धूल, मुक्तिबोध, पृ.82

"मारा गया वह बधिकों के हाथों ।
मुक्ति का यत्नों के साथ निरंतर,
सब का था प्यारा ।
अपने में द्युतिमान ।
उनका यो बध हुआ,
मर गया एक युग ।"[1]

ऐसा युग पुरूष जीवन आदर्श के प्रति समर्पित व्यक्ति को मुक्तिबोध ने चेतना पुरूष का नाम दिया है । यही कारण है कि वह निरंतर प्रयत्नशील है कि उसे उस लाल ज्योति का पता चल जाय जिससे वह पूरे समाज को एक नयी चेतना दृष्टि प्रदान कर सके । "मेरे युवजन्, मेरे परिजन" नामक कविता में निज संकल्प और मूल्य-चेतना की सांकेतिक अभिव्यक्ति कर देता है -

"मैं लेखक हूँ
प्रतिपल युवजन-व्यक्तित्त्व-अध्ययन करता हूँ
उनके हिय के तालाबों में
सिर से पैरों तक लहू लुहान नहाता है
चेतना-पुरूष
वह बिजली-भरा रक्त है जो धुलता है
श्यामल लहरों में
वे लाल रक्त-लेखाएँ गहरी ज्योतित हैं ।
उन रक्तांगारों के संदर्भो से, युवजन का हूँ ।
इस रात्रि-श्यामला बेला में
आगामी प्रांतों की ओस सुगंधित है ।
क्या करूँ कि मुझको ओस कणों में
लाल ज्योति दिखती
मानों वे शत-शत रूधिर-बिंदु थरथरा रहे
उनकी प्रदीप्त किरनों को गिनने का
मैं यत्न कर रहा हूँ ।"[2]

---

1. चाँद का मुँह टेढ़ा है, मुक्तिबोध, दसवा सं., पृ.274
2. भूरी-भूरी खाक धूल, मुक्तिबोध, पृ.87

उनकी ऐसी अनेक प्रारंभिक कविताएँ भी उल्लेखनीय हैं जिनमें उनकी दृष्टि से मूल्य-चेतना और जीवन के प्रति निश्चित दृष्टिकोण प्रतीत होता है । 'अन्तर्दर्शन' कविता में कवि अपने अन्तस् में विद्यमान संघर्ष का उल्लेख करता है जो कि पश्चात् की कविताओं का मूल-स्त्रोत माना जाना चाहिए । यही रक्त स्त्रोत और निरंतर जीवन दाह उसकी रचना प्रक्रिया का मूलाधार है तभी तो कवि कहता है -

"मैंने यह जब कहा किसी से तो कहलाया अपना खूनी ।

जीवन-दाह-शांति-हित किसकी गोद अपेक्षित ऊनी-ऊनी ।।"[1]

यही कारण है कि वह कवि इस समाज की मूल्यहीनता में अपने आपको कई बार एडजदस्ट करने में असमर्थ पाता है । उसे लगता है कि सारा का सारा समाज एक ऐसे मूल्यहीन मार्ग की ओर जा रहा है जहाँ वह अपने को अकेला पाता है परंतु ऐसे सामाजिक भटकाव में भी वह अपने आप से छल नहीं करता, अपने आपको धोखा नहीं देता । निरंतर एक दृष्टि एक समझ को वह आत्मसात् किये है इसीलिए उसे जीवन के छोटे-छोटे स्वार्थ, लालच उसके मार्ग में बाधा नहीं डाल सकते । तभी तो वह कहता है -

"कविता में कहने की आदत नहीं पर कह दूँ
वर्तमान समाज में चल नहीं सकता
पूँजी से जुड़ा हुआ हृदय बदल नहीं सकता,
स्वातंत्र्य व्यक्ति का वादी
छल नहीं सकता मुक्ति के मन को, जन को ।"[2]

"साँझ और पुराना मैं" में तो वह अपनी उदासी का उल्लेख भी करता है जो कि उसे कभी-कभी अपने प्रियजनों के संपर्क से होती रही है । जीवन के आरोह-अवरोह में वह निरंतर आत्म-विश्लेषण से एक सही पहचान की ओर जाने का, पहुँचने का उपक्रम करता रहा है । परंतु यही वह एक संकल्प के द्वारा इन स्थितियों को स्वयं से बचा लेता है । हर चीज, जब अपनी निजी विवशता का परिचय करवाती है तथा समाज में जो आपाधापी, नफरत, नफासत है, उसमें

1. तार सप्तक, मुक्तिबोध, पृ.30
2. चाँद का मुँह टेढ़ा है, मुक्तिबोध, दसवा सं., पृ.284

कवि ऐसा समझता है कि जिसके पास पैसा है वही टिकट का हकदार है । वह स्पष्ट रूप से ऐसे लोगों को फटकारता भी है और अपनी वैयक्तिक मूल्य-चेतना का परिचय करवा देता है -

"न मेरी उनसे बनती है
जो काली शेरवानी की खोल में
सिर्फ दिवाल है, न उनसे,
जो जबड़े की पोल में
लार टपकाती हुई खाल है
सिर्फ एक मनहुस
बदमिजाज बवाल है ।
चूँकि मेरी उन सबसे ठनती है
इसलिए कभी-कभी मेरी
मुझसे ही नहीं बनती
लेकिन, दिल में एक याद
चिलचिलाती चिलकती रहती है
मेरी यह बिजली-भरी ठठरी लेटती है
और रात कटती है ।
शायद यह मेरी बहुत बड़ी भूल है
लेकिन मेरी यह गरीब दुनिया
उन्हीं के बदनसीब हाथों से चलती है ।"[1]

"नहीं चाहिए मुझे हवेली" रचनावली खंड दो में संकलित कविता ऊपरी धरातल पर कवि के निजी दुःख की प्रतीति कराती है, परंतु सहज, बोधगम्य भाषा और शैली का प्रयोग मुक्तिबोध को उनकी काव्य-चेतना के एक विलक्षण पक्ष की सूचना देता है । यथा -

"यही दुःख है
सेवाओं की कीमत किनसे लूँ मैं
उनसे नहीं कि जिनकी मैंने सेवा की है

---

1. भूरी-भूरी खाक धूल, मुक्तिबोध, पृ.101

अरे, मूल्य देने लायक वे कभी नहीं थे
उनसे यदि किमत लूँ जिनका एक कार्य यह
मात्र मान्यता देना, मूल्य चुकाना बड़ी कृपा कर ।।
उनसे कुछ लेने की बिल्कुल नहीं तबियत
क्योंकि उन्होंने सेवा करने वाले के वे आँसू
कभी नहीं देखे थे,
जो सेवा करने के पहले भर आते हैं
जबकि हृदय यों पिघल-पिघल जाता है जैसे व्यर्थ
पूरी हाय जिन्दगी यदि न हुआ कुछ अपने हाथों ।"[1]

उपर्युक्त पंक्तियाँ कवि की रचना प्रक्रिया और पाठकीय संवेदना का नया रूप प्रस्तुत करती है । कुछ अंशों तक यह एक वास्तव बनकर रह जाता है । उसके सम्मुख यहाँ भी समस्या है और यही समस्या मुक्तिबोध की काव्यचेतना का आधार है । स्वयं किसी महत्वपूर्ण तथ्य, पक्ष, सूत्र या समस्या को प्रस्तुत करता है और फिर उसके प्रति अपने अन्तस् में विद्यमान प्रतिक्रिया को संवेदनात्मक ज्ञान की कसौटी पर परखता है - यहाँ भी वह जिस दुःख की ओर संकेत करता है वस्तुतः वह सेवा से सम्बद्ध है । उनसे कुछ पाने के संकेत के साथ ही वह यह धारणा निश्चित कर लेता है कि उनसे इनकी अपेक्षा करना व्यर्थ है क्योंकि उन्होंने सेवा करने वाले वे आँसू कभी नहीं देखे हैं जो सेवा करने से पहले भर आते हैं । यह पक्ष कविता को उच्च धरातल प्रदान करता है । यही कारण है कि हमने कवि की रचना-प्रक्रिया, सृजनधर्मिता तथा काव्य चेतना की प्रस्तुती से उनके जीवन को समझने का प्रयास किया है - व्यावहारिक समीक्षा में ऐसा संभव होता है । यहाँ इस संबंध में श्रीकांत वर्मा के उस वक्तव्य की कुछ पंक्तियों को उद्धृत करना सर्वथा उचित होगा जो उन्होंने 'चाँद का मुँह टेढ़ा है' काव्य-संग्रह के आमुख में प्रस्तुत की है । उनका अभिमत है - "किसी ओर कवि की कविताएँ उसका इतिहास न हों मुक्तिबोध की कविताएँ अवश्य उनका इतिहास हैं । जो इन कविताओं को समझेंगे उन्हें मुक्तिबोध को किसी और रूप में समझने की जरूरत नहीं पड़ेगी । जिन्दगी के एक-एक स्नायु के तनाव को एकबार जीवन में

1. मुक्तिबोध रचनावली (खंड-2), पृ.56

और दूसरी बार अपनी कविताओं में जी कर मुक्तिबोध ने अपनी स्मृति के लिए सैंकड़ों कविताएँ छोड़ी है और यह कविताएँ ही उनका जीवन वृतांत है ।"[1]

इसीलिए मुक्तिबोध के जीवन और काव्य की सही पहचान के लिए उनकी कविताओं में संयोजित सभी संदर्भो, प्रतीकों, शब्दों की पृष्ठभूमि का परिचय पाठक को होना अपेक्षित है - इस कविता को गहरे में समझने की चेष्टा इसी प्रकार की जा सकती है । इस तथ्य की ओर प्रायः सभी विद्वानों ने संकेत तो किया है परंतु समीक्षा या मूल्यांकन करते समय वे अपनी मान्यताओं विभिन्न वादों के अंतर्गत कविताओं को बाँधकर देखने की चेष्टा करते हैं । वस्तुतः मुक्तिबोध किसी एक वाद, सिद्धांत अथवा दर्शन की सीमा में आबद्ध विश्लेषित नहीं किया जा सकता - कारण इसके कथ्य की संदर्भ विविधता एवं व्यापकता है । हम इनकी प्रत्येक कविता को अपने आप कथ्य प्रस्तुति की स्थिति से पूर्ण भी मानते है तथा अपूर्ण और अधूरी भी । यही अपूर्णता अथवा अधूरापन उनकी काव्य-चेतना का क्रमिक विकास भी है और रचना प्रक्रिया का मूलाधार । इसीलिए हमें मुक्तिबोध की कविताओं पर समग्र दृष्टि से प्रस्तुत कथन अधिक उपयुक्त एवं सटीक प्रतीत होता है ।

"मुक्तिबोध ने छायावाद की सीमाएँ लाँघकर, प्रगतिवाद से मार्क्सीदर्शन ले, प्रयोगवाद के अधिकांश हथियार सँभाल और उसकी स्वतंत्रता महसूस कर, स्वतंत्र कवि-रूप से, सब वादों और पार्टियों से ऊपर उठकर निराला की सुथरी और खुली मानवतावादी परंपरा को बहुत आगे बढ़ाया ।"[2]

इस अभिमत को यदि हम रचनावली के दोनों खंडों में संकलित कविताओं के आधार पर देखना चाहें तो यह मानना होगा कि छायावाद की सीमाएँ लाँघने से पूर्व कवि का मन उसमें काफी समय तक रमा रहा और प्रकृति सौन्दर्य उसे निरंतर प्रेरणा देता रहा । परंतु परवर्ती कविताएँ प्रकृति के सामाजिक संदर्भ की परिचायक है - लहूलुहान मानव की पहचान कराती है - आम आदमी से तथाकथित पूँजीपति नेता वर्ग का साक्षात्कार और कवि-आक्रोश एवं संघर्ष का

---

1. चाँद का मुँह टेढ़ा है, मुक्तिबोध, दसवा सं., पृ.7-8
2. वही ।

आत्मसात् कराती है । इसीलिए इसे मानवतावादी परंपरा और मानववादी परंपरा के पारस्परिक अंतर में समझना होगा । यही कारण है कि मुक्तिबोध के मूल्य संसार (मूल्य-चेतना) को निश्चित वर्गो या सीमा में आबद्ध नहीं किया जा सकता ।

2.9.2 मूल्य चेतना - सामाजिक पक्ष :

सभी मूल्य चेतनाओं ने मूल्य-विभाजन एवं महत्त्व-निरूपण में सामाजिक मूल्यों का विशेष उल्लेख किया है । जैसा कि वैयक्तिक मूल्यों में हम स्वयं संकेत कर चुके हैं कि वैयक्तिक मूल्य का बहुत बड़ा पक्ष सामाजिक मूल्य पर आधारित है । समाज व्यक्ति से पृथक बेमानी है । व्यक्ति की निजी धारणाएँ युग-युग की संकल्पशक्ति का रूप धारण कर लेती है । वेदना उसकी निजी विवशता व्याकुलता तक ही सीमित नहीं है वरन् यह नाम सरीखी भयंकरता को आत्मसात् किए हैं । ऐसी चेतना एवं स्फूर्ति-व्यापक जनजीवन की स्फूर्ति एवं चेतना बन सके - यही कवि का अभिप्रेत है और उसका सामाजिक दायित्व बोध है । 'ओ विराट् स्वप्नों' कविता का वैयक्तिक एवं सामाजिक मूल्यों की दृष्टि से विशेष महत्त्व है । अपने संकल्प को सामाजिक दायित्व के रूप में मानता है । इसलिए स्वयं को विश्व-परिव्याप्त सघन मेघों की छायाओं से पूर्णग्रस्त खग्रास चन्द-सा मानता है । वह निरंतर भयावह एवं पीड़ामय स्थितियों में भी जन-जन में शत लक्ष-रश्मि (सूर्य की व्याप्ति) का संकल्प लेता है ।

'ब्रह्मराक्षस' कविता के अंतर्गत कवि ने शोधक के व्यक्तित्व की कल्पना कोमल स्फटिकों से बने हुए एक प्रसाद के रूप में की है जिसमें जीना और जीने के लिए अकेली सीढ़ियाँ, जिसमें चढ़ना अत्यंत कठिन था । शोधक का भीतरी संघर्ष सीढ़ियों पर चढ़ने उतरने की तरह बहुत कठिन था । ऐसा करने के लिए शोधक विवश था । उसकी इच्छा थी वह अपने चिंतन और कर्म के मध्य गणित जैसा समीकरण स्थापित करे, लेकिन वह अपने इस उद्देश्य में असफल रहा । उचित मार्ग-निर्देशन के लिए सब पीड़ितों और चिंतकों के पास शोधक गुरू प्राप्त करने को भटका । उसको कोई गुरू प्राप्त नहीं हुआ । क्योंकि युग के बदलने के साथ गुरूओं में भी परिवर्तन आ गया । मुक्तिबोध दृढ़तापूर्वक कहते है कि इस पूँजीवादी संस्कृति में धन एक प्रबल ताकत है । आज गुरू विद्यादान करने की अपेक्षा यश का व्यापार करते हैं । बड़े बेवाक शब्दों में मुक्तिबोध कहते है कि

अब समाज में धन ने हृदय, मन और अंतःकरण सबको अभिभूत कर लिया है । कवि के अनुसार यह सब छलावा है, धोखा है -

"किंतु युग बदला व आया कीर्ति व्यवसायी
लाभकारी कार्य में से धन,
व धन में से हृदय-मन,
और धन-अभिभूत अंतःकरण में से
सत्य की झाई निरंतर चिलचिलाती थी ।"[1]

शोधक आत्मचेतना से परे विश्वचेतना में लीन होने के उद्यत था । अपने व्यक्तित्त्व की लघुता को 'महत्ता' में विलीन करने का इच्छुक था । शोधक की ट्रैजेड़ी यह है कि वह भीतरी और बाहरी संघर्षो से जूझते हुए समाप्त हो गया, पिस गया । यह ट्रेजेड़ी (त्रासदी) 'ब्रह्मराक्षस' की ही नहीं मुक्तिबोध की भी करूणकथा कहती है -

"पिस गया वह भीतरी
औ' बाहरी दो कठिन पाटों बीच,
ऐसी ट्रेजिड़ी है नीच !!"[2]

अंततः हम 'ब्रह्मराक्षस' कविता के संदर्भ में अनंत कीर्ति तिवारी के शब्दों में कहते है - "'ब्रह्मराक्षस' रोमांटिक बेचैनी और तड़प से भरी हुई एवं विचार-गर्भिता कविता है, जो मुक्तिबोध की कविता 'अंधेरे में' की तरह 'क्लासिक' बन चुकी है ।"

तभी तो ऐसा लगता है कि मानव मुक्ति अदूर पास तथा उसके बहुत पास है जिसका एक किनारा विश्वास का है तथा दूसरा किनारा मुक्ति का और बीच में मादक गंगाधारा बह रही है - ज्वारभरी, धहराती, हहराती अपार जलराशि है जिसे वह मानव अग्नि परीक्षाओं सरीखा मानता है - उसे ऐसी स्थिति में महत्त्वकांक्षाओं की अगाध शक्ति का बोध होने लगा है । कविता का अंत भारत गौरव और मानवतावादी दृष्टि की ओर ले जाते है । उसे लगता है -

---

1. चाँद का मुँह टेढ़ा है, मुक्तिबोध, दसवा सं., पृ.40
2. वही, पृ.41

"केवल एक तुम्हारे कारण
अंगारे हो गये कमल-से सुन्दर कोमल
लाल स्फुलिंग नवल किंशुर के फूल हो गये,
मेरे भारत के वृक्षों ने
ज्वालाओं के नये सुनहले कंकण पहने
माला पहनी कुल नदी के लाल हो गये
देश-देश प्रज्वलित
सुनहली क्रुर भव्य दावा में जलवाता
वह मानव हो गया फैल कर
महान व्यापक ।"[1]

प्रस्तुत कविता का संपूर्ण कथ्य इसी व्यापकता एवं विराटता को आत्मसात किए है । मुक्तिबोध की प्रत्येक काव्य कृति प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से कहीं-न-कहीं लाल, रूधिर, रक्त, अंगार, क्रांति, विद्रोह की स्थिति का संकेत अवश्य करती है । इसीलिए तो यहाँ अंगारे कमल से हो गए हैं - वृक्षों ने ज्वालाओं के नये सुनहले कंकण धारण किए हैं । कवि की चेतना में कहीं-कहीं अंतर्विरोध स्पष्टतः परिलक्षित होता है । किसी प्रसंग एवं संदर्भ में यदि चन्द्रमा भी अंगार है और कमल में अंगार सरीखी ज्वाला है तो वही अंगारे भी कमल के समान सुन्दर एवं कोमल हैं । स्पष्ट है कि अंगारे में कोमलता एवं सुन्दरता के मूल में जो भावस्थिति सन्निविष्ट है, उसका अनुमान सहज लगाया जा सकता है । मुक्तिबोध की मूल्य-चेतना का आधार 'संघर्ष' है और संघर्ष का यह रूप चन्द्र-अंगार में तथा अंगार-कमल में समानता आत्मसात् किये है - कथन की संश्लिष्ट अभिव्यक्ति में ऐसी पद्धति मर्मस्पर्शी एवं प्रभावोत्पादक हुआ करती है ।

'एक आत्म वक्तव्य' कविता में सामाजिक जीवन की विसंगतियों पर बड़ी बेरहमी से चोट की गई है । मुक्तिबोध अपने आपको दलित, पीड़ित मानवता के पक्षधर मानते हैं । वे सामाजिक वासातविकता की सही तस्वीर खींचते है । उन्होंने सामाजिक संरचनात्मकता को प्रकट करनेवाली ठोस यथार्थ भूमिका को निम्न पंक्तियों में बतलाया हैं -

1. मुक्तिबोध रचनावली (खंड-2), पृ.145

"मार-काट करती हुई सदियों की चीख,

मुठभेड़ करते हुए स्वार्थों के बीच ।

भोल-भाले लोगों के माथों पर घाव ।

कुचल गये इरादों के बाकी बचे धड़ ।

अधकटे पैरों ही से लात मार कर अपने

जैसे दूसरे के लिए

सब करते है दरवाजे बन्द ।

उलटे दिल-दिमागों में गुस्से की धुन्ध ।

अँधियाली गलियों में घूमता है,

तड़के ही, रोज ।

कोई मौत का पठाण

माँगता है,

जिन्दगी जीने का ब्याज

अनजाना कर्ज

माँगता है चुकार में, प्राणों का मांस ।"[1]

मार्क्स साहित्य का उद्देश्य है पूँजीवाद की समाप्ति के लिए सर्वहारा को क्रान्ति के लिए प्रोत्साहित करना । मुक्तिबोध ने इस कविता में सामाजिक विषमता को स्पष्ट किया है -

"काली-काली गलियों में,

फिरती हुई आदमी की शक्ल

अच्छा है कि अँधेरे में इलाका-बदर

मैं हूँ जवाबी गदर ।"[2]

भारतीय संस्कृति में वर्णव्यवस्था की तरह संयुक्त परिवार प्रणाली की व्यवस्था महत्वपूर्ण रही है । इसमें परिवार के अनेक सदस्य अपने-अपने कर्तव्यों-

1. तार सप्तक, अज्ञेय, तृतीय सं., पृ.40
2. वही, पृ.43

मर्यादाओं से परिचित होकर रहते है । उनके इस आचरण से पारिवारिक कलहों झगडों की संभावनाएँ ज्यादातर न के बराबर ही रहती थी । परन्तु यह बात भी सच है कि हंमेशा ही ऐसे संयुक्त परिवार शान्ति से रहने की संभावना नहीं रहती थी । उनमें ऐसे अनेक रिश्ते सम्बन्ध है - सास-बहू, ननद-भावज, जेठानी-देवरानी के झगड़े पारिवारिक सुख-शांति में बाधा उत्पन्न करते है । मूलतः इन स्थितियों का कारण या संयुक्त परिवार के विघटन का कारण स्त्रियों को माना गया है । आज कल शहरों के साथ-साथ छोटे कस्बों-गाँवों में भी यही बिखराव आने लगा है । आधुनिक काव्य में परंपरावादी कवियों ने संयुक्त परिवारों के परंपरागत आदर्शो को पुनःश्च स्थापित करने का प्रयास किया है । परन्तु इसके साथ ही उन्होंने वास्तविक स्थिति से भी परिचित किया है । मुक्तिबोध ने तो गृहकलह से त्रस्त बहुओं की आत्महत्या करने की सामाजिक समस्या की बात की है । समाज की सबसे छोटी ईकाई व्यक्ति है । व्यक्ति, परिवार, समूह, समुदाय, वर्ग, संप्रदाय तथा राज्य समाज की ही विभिन्न ईकाईया है । व्यक्ति की चेतना, उसकी बौद्धिक क्षमता का विकास, शारीरिक उपलब्धियाँ भी समाज की ही देन है । परिवार से सम्बन्धित हर व्यक्ति इसी कारण एकदूसरे से जुड़ा रहता है । अपने निर्धारित कर्तव्यों तथा मर्यादाओं से वे एक तरह से अपना पारिवारिक दायित्व ही निभाते हैं और सामाजिक भी । ऐसे में आधुनिक काल में परिवारों का विघटन होता जा रहा है एवम् पारिवारिक समस्याओं से बुरी तरह पीडित होकर कई घरों की बहुएँ आत्महत्या करती है ।

“गृहकलह से त्रस्त बहुएँ
मुंडेरों से कुद कर
आत्महत्या करती है ।”[1]

सामाजिक मूल्यों की रक्षा अथवा निर्वाह के लिए प्रत्येक सामाजिक प्राणी में सजगता एवं संकल्प-शक्ति होनी चाहिए । मुक्तिबोध सही अर्थो में इस तथ्य यााको अनुभव के धरातल पर समझते ही नहीं वरन् व्यााावहार में भी लाते है । यही कारण है कि वह ‘गुलामी की जंजीरे टूट जायेगी’ कवि भी आम लोगों के संपर्क से अनुभव ग्रहण करता है और फिर उन्हें उनका प्राप्य दिलवाने के लिए संघर्ष का मार्ग अपनाता है । यथा -

1. चाँद का मुँह टेढ़ा है, पृ.68

"बनने के लिए हम इन्सान
कहाये हैं आदमी
मानव के लिए हम
गलियों में रहेंगे और गलियों में खावेंगे
गलियों में रहनेवाले के लिए हम लडेंगे ।"[1]

मानव-मूल्यों की नैतिकता, आर्थिकता, सम्मान की सांकेतिक अभिव्यक्ति करता हुआ कवि स्पष्ट कहता है - अर्थप्रधान समाज में मानव की सार्थकता और उसके मूल्यांकन का आधार अर्थ है । इसीलिए -

"सारा स्नेह, शक्ति, गुण, प्रतिमा
रहती धन-सीमा से सीमित
यह है अंतिम सत्य अनाहत ।
इस समाज के वक्ता सारे
सत्य और आदर्शवाद ही नीत बर्राते,
उसको खाते, उसको पीते
और चाट जाते हैं, रूचि से ।"[2]

वस्तुतः मूल्यों के सामाजिक संदर्भ को प्रस्तुत करने में 'किसी से' कविता का विशेष महत्व है । इसमें कवि समाज में नारी के स्थान एवं मूल्य को भी संक्षेप में प्रस्तुत करना चाहता है । उसे ऐसा लगता है कि समाज में नारी जिसे ममता, आदर्श, त्याग एवं पूजा के योग्य समझा जाता रहा है, अब वह बौनी, तिरस्कृत एवं अपमानित है - उसे सामाजिक दृष्टि में नगण्य माना जाता है, इसीलिए वह कविता के अंत में उसे जागृत कर 'प्राण के कोमल अंगारों की लतिका' से संबोधित करता है । नारी के प्रति इससे बढ़कर सम्मान का भाव भला क्या हो सकता है ? हम सही अर्थो में मूल्यों के धरातल पर मुक्तिबोध को जनवादी, लोकजीवन का कवि मानते है । तभी वह 'सत्य के गर्वीले अन्याय न सह' कविता के अंत में मूल्य प्रेरित हुआ है । 'नया आदित्य' में कवि की मानवतावादी दृष्टि का परिचय मिल जाता है । 'मानवता का चेहरा' कविता में

1. मुक्तिबोध रचनावली (खंड-2), पृ.145
2. वही, पृ.151

कवि ने कमलों का अनुभव और परिमल को मानवता के रूप में स्वीकार कर वेदना, करूणा के साथ जीवन-संग्राम के संकल्प को प्रस्तुत किया है । इसमें भी उसको मूल्यों की दृष्टि से क्रांति और संघर्ष का कवि मानना होगा । वह तो महाक्रांति की छैनी से जन-जीवन के ललाट को अंकित करने के लिए कृत-संकल्प है । शोषण मुक्ति की स्थिति ही सही मानवतावादी दृष्टि है और इसके लिए संघर्ष और क्रांति को वह अनिवार्य मानता है । मूल्यों में इनका विशेष महत्त्व है । मूल्यों में वैयक्तिक एवं सामाजिक पक्ष को एकसाथ प्रस्तुत करनेवाली कविता 'मेरे सहचर मित्र' मानी जा सकती है । इसमें कवि ने भारतीय जन-जीवन का वास्तविक चित्र प्रस्तुत किया हैं, शोषकों के साथ मध्यवर्ग के दलाल, चापलुस-स्वार्थी लोगों की मूल्यहीनता का उल्लेख कर मूल्यों की प्रतिष्ठा वह अंगारी चेतना से करता हहै । कविता के अंत में अभिप्राय की गोपनीयता न रहने का संकेत उन्हें मूल्य चेतना एवं सोदेश्य कवि बना देता है । मुक्तिबोध सरीखा प्रबुद्ध संवेदनशील कवि गीतात्मक शैली में भी मूल्यहीनता का संकेत करता हुआ कहता है -

> **"आदर्शो के त्यक्त शिवालयों के सूने में**
> **स्वार्थी इच्छा-श्वान दुबकते, सोते नीरव**
> **हे सुविधानुसार सत्यों के प्रयोग अभिनव ।**
> **मंतव्यों, वक्तव्यों, कर्तव्यों में अंतर**
> **देख शब्द का अर्थ अनाह्य खोया-खोया**
> **बेहद के मैदान कबीरा बेबस रोया ।"**[1]

कवि मूल्य-संदर्भ में कुछ प्रसंगों को छोड़ वक्तव्य भाषण नहीं देता । शब्दों के संकेत से बहुत बड़े दायित्व एवं मूल्य-चेतना की पुष्टि अवश्य करता है । सामाजिक मूल्यों में मुक्तिबोध की दृष्टि जन-सामान्य के प्रति विशेष रही है, इसीलिए तो 'गलियों' में जाकर क्रांति/विद्रोह की सही शुरूआत करना चाहता है । कविता, छंद, शब्द, प्रतीक, बिम्ब में परिवर्तन से जनता के किसी न किसी पक्ष को उद्घाटित किया है - तभी तो उसकी दृष्टि में मसीहा के लिए जनता से

1. मुक्तिबोध रचनावली (खंड-2), पृ.178

सीधा सरोकार होना अनिवार्य है । मसीहाई अन्दाज (मुद्रा) से वह उद्विग्नता की स्थिति को कवि के लिए जरूरी समझता है । तभी तो -

"मिट्टी के लोंदे में फिरनी ले कण-कण
गुण हैं, जनता के गुणों से ही संभव
भावी का उद्‌भव.....
गंभीर शब्द वे आगे बढ़ गए
जाने क्या कह गए ।।
मैं अति उद्विग्न ।"[1]

कवि की यह उद्विग्नता हमारी दृष्टि में जहाँ उसे कविता की गहन भूमि प्रदान करती है, अनुभव को व्यापक बोध कराती है, वहाँ इससे उसके सामाजिक पक्ष, जनवादी संकल्प शक्ति का प्रत्यक्ष प्रमाण भी मिल जाता है ।

जैसा कि मूल्यों की सिद्धांत चर्चा में हम स्पष्टतः उल्लेख कर चुके हैं कि 'विवेक' संबंध तथा 'दायित्व' की त्रिवेणी का विशेष महत्त्व है । विवेक मूलाधार है, संबंध में अपनत्व का, सहयोग का तथा परस्पर सुख-दुःख का बंधन रिश्ता रहता है । 'दायित्व' के कारण हम इस संबंध को कार्यान्वित प्रदान करते हैं । इसीलिए संबंध-बोध और दायित्व-बोध एक ही श्रृंखला की कड़ियाँ है । व्यक्ति, परिवार, वंश, जाति, कबीला का बोध विवेक के बिना असंभव है । विवेक अनुभव और संकल्पशील व्यक्ति के लिए मूल्यों की सार्थकता अथवा महत्ता है ।

सामाजिक मूल्यों में कवि की दृष्टि अपने वर्ग के प्रति विशेष रही है । बुद्धिजीवी मध्यवर्ग की पहचान मुक्तिबोध ने अनेक संदर्भो एवं पक्षों में की है । जितना संस्कृति, नैतिकता एवं जीवनादर्शो की शाब्दिक चर्चा यह वर्ग करता है व्यवहार में वह इसके विपरित आचरण करता दिखता है । इसीलिए कवि ने इस वर्ग को हिलते-जुलते टूटे इक्के की भाँति छिछला तथा पेट-पूजा तक सीमित व्यर्थ को जीवन व्यतीत करनेवाले व्यक्तियों का समूह माना है । इतना ही नहीं, ये समाज में शोषकों को साथ देते हैं और अपने वर्ग का सदैव अहितकर स्वयं को गौरवान्वित अनुभव करते हैं । इसीलिए वह इन्हें उनका दासानुदास भावुक

1. चाँद का मुँह टेढ़ा है, मुक्तिबोध, दसवाँ सं., पृ.271

मान ऐसे तथ्य को उद्‌घाटित करता है जो शतशः सही हैं । इस वर्ग के बुद्धिजीवी उधर से शोषकों समाज का अहित करनेवालों के प्रति अपनी शिकायतें अन्य लोगों की भाँति करते हैं परंतु साथ ही उनका उनके तथाकथित आदर्शो का गीता और कुरान की भाँति प्रचार-प्रसार भी करते रहते हैं, उनके गुणगान (प्रशस्ति गान) से स्वार्थपूर्ति कर स्वयं के जीवन को सफल मान लेते हैं - पर कवि तो मूल्यों की दृष्टि से इस प्रकार की सफलता की अपेक्षा आदर्शो के व्यावहारिक पक्ष को सम्मुख कर जीवन की सार्थकता पर विश्वास रखता है । इसीलिए उनका संस्कृति-प्रेम, आदर्शात्मक निष्ठा, नैतिक जीवन दृष्टि का मुक्तिबोध की दृष्टि में कोई महत्त्व नहीं है । इसके विषय में स्पष्ट है -

"मध्यवर्ग की भारतीय संस्कृति के गहरे तालाबों में
मानव की नीःसिम उपेक्षा के मुसकाते
लाखों स्याह कमल हैं, जिनकी
चिमगादड़ की रात्रि-श्याम
पंखों-सी पंखुरियाँ है काली..... खाकर मानव-आत्मा,
सोचा करती गहरे दाँव-पेंच औं नये पैंतरे
गुरूओं का संदेश धरातल तक ले जाते
तट पर रहते स्थित पराजन
नैतिक आत्मा का उतार वह तार-तार कुरता कि पहनते
काला चोगा नूतन स्वार्थी का भयावना ।
और बुदबुदाते हरेक नंगा है
निज के कपड़ों के अंदर ।"[1]

'घर की तुलसी' कविता में कवि 'स्वदेश' की महत्ता प्रतिपादित कर देश के प्रति प्राणवाद, सचेत रहने के संकल्प का परिचय देता है । तभी तो विदेशी वृक्षों की अपेक्षा स्वदेशी वृक्ष (तुलसी) का महत्व आँकने के लिए प्रयत्नशील है । स्वयं का अदेखा, अनजाना, अन-पहचाना मानते हुए भी कवि निरंतर कालबिहंग की भाँति अपने स्वदेश की खोज कर रहा है । वह अँधेरे के निःसंग सरोवर में पंखुरिया खोलता लाल-लाल अग्निम सरसिज देखता है तो एक भव्य कल्पना

1. मुक्तिबोध रचनावली (खंड-2), पृ.195

रूपमान हो जाती है । उसे ऐसा लगता है जैसे वह अपने घर की तुलसी (स्वदेशी) से रेगिस्तानों से नदियों की भाँति दूर चला गया है - विदेशी प्रभाव के कारण भारतीयों ने स्वदेशी मूल्यों का तिरस्कार कर दिया है । वह सचेत है इसलिए मानता है -

"मैं निज से कहने लगा रहस्यात्मक न बन
न बन प्रतीकात्मक उपमात्मक जहाँ विमान
अनबन अपने से बाहर से
रे यह स्वदेश की खोज वस्तुतः अंतर के
आकर्षण की ही संगति सामंजस्या कुल
यह आत्मधर्म यह आत्मकार्य ।
तू इसकी अपनी आज्ञाएँ कर शिरोधार्य
न बन प्रतीकात्मक रहस्य - भावानुभूति
बन चल मानव-पथ विपथों की
चित्रात्मक गहन समीक्षा-सी
हो जा समीक्षिता मानव-बीथी का अनुभव
तु आत्मधर्म से विश्वधर्म के सब संभव
मार्गो व पूलों पर जा रूक जा
उस पुल पर सब विश्व दृश्य-विस्तार निरख
उनके रंग-रूप में अपना रूप परख ।"[1]

इस काव्यांश में आत्मधर्म, आत्मकार्य तथा विश्वधर्म तीन उल्लेखनीय शब्द है - आत्मधर्म से ही आत्मकार्य में व्यक्ति परिणत होता है - मूल्यों में 'आत्म' पर विशेष बल दिया जाता है - स्वयं का साक्षात्कार ही 'आत्मधर्म' है और इस आत्मधर्म के अनुसार कृतकार्य आत्मकार्य है - विश्वकार्य से कवि की व्यापक मूल्य-चेतना, संकल्प एवं दृष्टि का परिचय मिलता है । पर यहाँ वह विश्वधर्म को स्वदेश-आत्मधर्म की पहचान करने का माध्यम मानता है, अपने रूपरंग की पहचान करने, परखने की पुष्टि करता है - विश्व के विकास को सम्मुख रख स्वदेश विकास के प्रति लोगों में जागरूकता लाने के लिए मुक्तिबोध कृत संकल्पी है ।

---

1. मुक्तिबोध रचनावली (खंड-2), पृ.60

इसीलिए हम मुक्तिबोध को सचेत, संकल्पधर्मी मूल्यचेतना के कवि मानते है । इसी कविता के अंत में वह 'धर्म' के आत्मिक विश्वजनीन सन्दर्भो से सुन्दर बनने का संकेत भी देता है । नयी कविता में मुक्तिबोध में जहाँ जीवन के प्रति एक निश्चित दृष्टि, संकल्प है वहाँ सौन्दर्य के प्रति पूर्ण आकर्षण भी ।

'काँप उठता दिल' में कवि सुविधा अवसर तथा स्वार्थ से सम्बद्ध अस्तित्वहीन लोगों का परिचय दे अपने ईमान, संघर्षधर्मी होने का संकेत देता है । उसकी वेदनाएँ, सुविधाओं का मार्ग अपनाती नहीं है । वह जिन्दगी के गहरे चक्करों को अच्छी तरह से समझ चुका है इसीलिए हठधर्मी और संघर्ष का मार्ग अपनाएँ ईमानदारी तथा सत्य के सम्मुख पर जीवन की सुविधाओं और अवसरों को तुच्छ समझता है । मानवता की सही धारणा का पक्षधर है । आर्थिक मूल्यों के प्रति सचेत है तथा अपने को इससे वंचित मानता है तथा ऐसे लोगों पर व्यंग्य-प्रहार भी करता है जो ऊपर तौर पर (शाब्दिक धरातल) मानवतावादी और आदर्शवादी मूल्यों की घोषणा करते हैं पर भीतर से आर्थिक दृष्टि से स्वयं को सुरक्षित बनाए हैं । 'एक भूतपूर्व विद्रोही के आत्मकथन' कविता में कवि आत्मदुःख को व्यापक धरातल पर प्रस्तुत करता है । अंत में वह आत्म-विस्तार को मूल्य रूप में व्यक्त करता हुआ कहता है -

"आत्म-विस्तार यह
बेकार नहीं जायेगा ।
जमीन में गड़ी हुई देहों की खाल से
शरीर की मिट्टी से, धूल से,
खिलेंगे फूल गुलाबी
सही है कि हम पहचाने नहीं जायेंगे
दुनिया में नाम कमाने के लिए
कभी कोई फूल नहीं खिलता है
हृदयानुभव - राग - अरूण
गुलाबी फूल, प्रकृति के गंध-कोश,
काश हम बन सकें ।"[1]

1. मुक्तिबोध रचनावली (खंड-2), पृ.153

'एक टीले और डाकू की कहानी' में मूल्य-प्रतिष्ठा को निश्चित एवं निर्णयात्मक रूप में मान्यता दी गई है । टीला जो कवि के व्यक्तित्त्व की प्रतीति कराता है उस पर डाकू (दस्यु) बिराजमान है, हवा टीले की वास्तविकता का बोध कराती कवि के भीतर दुनिया, अनुभवहीनता, चिंतन की व्यापकता एवं प्रखरता की लहर विद्यमान है - संवेदनात्मक ज्ञान का प्रबल क्षण स्पष्ट है, पर दस्यु जो उस पर अंकुश लगाए है, मठाधीशों का प्रतीक है जो कवि की काव्य-प्रतिभा से आतंकित है और उसे 'भयंकर शत्रु' तक मानते हैं - ऐसी समझ मूल्यवेता चिंतक कवि ही कर पाने में सक्षम है । मुक्तिबोध का चिंतक भले ही कहीं-कहीं आशंकित, संत्रस्त, भयभीत भी दृष्टिगोचर होता है परंतु उसकी संकल्पधर्मी रक्तप्लावित चेतना निर्णयात्मक रूप में स्वयं को शिलामूर्ति के रूप में प्रतिष्ठापित मानती है । उसे अपनी काव्य-प्रतिभा एवं मूल्य-संकल्प का पूरी तरह से बोध है - इसीलिए निर्णयात्मक पल के सन्निकट आने पर 'युद्ध-संघर्ष' की क्रियात्मक स्थिति में आ जाता है तथा उसके भीतर का झील (द्वन्द्व) भभकने लगता है - इसीलिए वह इस मूल तथ्य की पुष्टि करता है ।

"समन्वय सामंजस्या रूपांतर क्रिया है यदि
नाश पर आश्रित हैं - तथा स्वयं को
निश्चित स्थिति में पाते है -
मैं भी स्वयंमात्म रूपांतर क्रियाओं में लीन हूँ
पार चला जाऊँगा, निश्चित है ।"[1]

निश्चित ज्ञान और समझ के कारण कवि ने जहाँ मूल्यों के प्रति अपनी सही दृष्टि का परिचय दिया है, वहाँ उनके गुण-धर्म का उनका स्वभाव मानकर स्वयं 'पंगु' कहकर उन पर तीक्ष्ण प्रहार किया है तथा अपनी निश्चित दृढ़ संकल्पशक्ति का परिचय दिया है ।

'रहूँगा तुमसे मैं ईमानदार' कविता में कवि अपनी मूल संवेदना का उल्लेख निरंतर अपने कवि-धर्म के प्रति ईमानदार रहने का संकल्प दोहराता है वस्तुतः इस प्रकार का संकल्पधर्मी कवि मूल्यचेता ही हो सकता है । उसका संकल्प है -

1. मुक्तिबोध रचनावली (खंड-2), पृ.256

"इस कठिन जिन्दगी के कठोर
पहियों में दिल का जोर लगा
निज को उभारता हुआ निभाता हुआ
उन्हें धक्का दे-देकर तेज बढ़ाता जाऊँगा आगे-आगे
इस तरह लगाकर जान रहूँगा जानकर हरपल ।"[1]

मूल्यों की दृष्टि से 'जान' तथा 'जानदार' शब्दों का विशेष महत्त्व है । यह सही है कि मूल्यों का जीवन में निर्वाह वही करता है, जिसमें जान लगाने की क्षमता हो, जो जानदार हो - शारीरिक क्षमता की अपेक्षा इसमें आंतरिक सक्षमता, विश्वास, आस्था एवं संकल्प का विशेष योग रहता है । इसीलिए मुक्तिबोध को हम एक मूल्य-संकल्प धर्मा-चेतना का कवि मानते हैं जो वास्तव में जानदार है और अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए बड़ी से बड़ी कुर्बानी करने पर तत्पर रहा - यही उसके कवि-व्यक्तित्व की सही पहचान भी कही जा सकती है ।

जानदार व्यक्तित्व का कवि मुक्तिबोध 'चुप रहो मुझे सब कहने दो' कविता में ऐसे लोगों को काव्यात्मक अंदाज में प्रस्तुत करता है जिनके जीवन का चरम लक्ष्य स्वर्ण-धातु अर्थात् अर्थ प्राप्त करना है । ऐसे लोगों को वह सामाजिक संदर्भ में 'अच्छा व ओछा' एकसाथ व्यक्त कर उनसे विवाद-संघर्ष करना व्यर्थ समझता है । इस प्रकार के लोग उसकी दृष्टि में 'विकराल राष्ट्रपति' कहे जाने चाहिए जो धन-वैभव के समाज में अपनी विकराल दंभी स्थिति से जीवन का चरमोत्कर्ष मानने लगते हैं - वस्तुतः मूल्य-संकल्पी के लिए तो 'अर्थ' एक साधन मूल्य हैं - साध्य तो 'जान' और 'जानदार' बनने में है, अस्तित्व और संकल्प के निर्वाह में वास्तविक मूल्यों का समावेश हैं ।

वैसे तो सभी कविताओं का कवि की मूल्य चेतना की दृष्टि से महत्त्व है । अनेक उदाहरणों एवं उनके विश्लेषण से यह स्पष्ट है कि कवि की प्रत्येक रचना सोदेश्य है, किसी न किसी समस्या के प्रति पाठक वर्ग को सचेत करती है । वस्तुतः मूल्यों का आधार वैयक्तिक, सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक एवं बौद्धिक धरातल पर स्थिति की सही पहचान करना है, उत्तरोत्तर विकास हित अथवा सुधार है । मुक्तिबोध के मूल्य-बोध का आधार 'संघर्ष' मानना उचित

---

1. मुक्तिबोध रचनावली (खंड-2), पृ.243

होगा - यह संघर्ष आत्म (भीतर) और युग (बाहर) दो रूपों में स्पट है, उसे व्यापक संदर्भों में अभिव्यक्ति प्रदान की गई हैं । कहीं यह संघर्ष चन्द्र अंगार है तो कहीं अंगार-कमल के रूप में । रक्तप्लावित स्वर और अंगारी चेतना कवि की मूल्यों की दृष्टि से विलक्षण प्रतिभा की प्रतीति कराती है ।

कुछ ऐसी कविताएँ रचनावली में संकलित है जिनके शीर्षक एवं कथ्य के अधिकांश पक्ष वे छायावादी रोमानी - सौन्दर्यपरक दृष्टि का भ्रम उत्पन्न करते हैं, किन्तु संकेत में प्रस्तुत कुछ शब्द या पंक्तियाँ संपूर्ण कविता को एक नये अंदाज, उद्देश्य की बना देती हैं । इसी प्रकार की कविता 'वर्षा' है - इसमें कवि ने वर्षा की पावनता, सौन्दर्य को अनेक रूपों में प्रस्तुत किया है - "आदिम चुम्बन, अबोध (भोले), निष्पाप के साथ उसे वर्तमान युग के मानव को नहीं मिल पानेवाले आत्मबन्धनाहीन, सरल, निश्छल, अतिपावन निज सुकुमार नग्नता में द्युतिमान चौदह वर्ष की बालिका के हृदय सरीखा माना है । प्रसंग की सोदेश्यता के लिए कवि उसे मानवता जैसे मीठे अनिवार प्रेम के मधु आलिंगन के ये अविरत-अविरत मधु क्षण मानकर उन्हें पिकल पंथ के मृदुल संबल घोषित करता है तथा मत थक, मत हर, दलदल से इस, चलता चल ।"[1] में निरंतर अग्रसर होने की प्रेरणा परंपरा में मुक्तिबोध वर्षा को आधार बनाता है ।

सामाजिक यथार्थ एवं मूल्य-बोध की दृष्टि से 'किसी-से' कविता का मध्य भाग विशेष दृष्टव्य है । इसमें कवि समाज में चिरकाल से पीड़ित, तिरस्कृत, प्रताड़ित जन समुदाय की स्थिति का बोध कराता हुआ जहाँ शासक (उच्च वर्ग) के प्रति तीक्ष्ण व्यंग्य प्रहार करतात है, वहाँ वह मूल्य-चेतना का सामाजिक पक्ष भी उद्‌घाटित करता है । उच्च वर्ग अपनी वर्गीय सत्ता शासन के फल स्वरूप प्रमाद के अधिकारी है, अपराध सत्य-सा रंगने का उन्हें पूरा अधिकार है, उनके सभी मनोभाव हित-सत्य रूप है । इसीलिए कि -

"उनके प्राण महासागर हैं ।
बाकी सारे अन्धकूप हैं ।
उनकी व्यथा-वेदना की स्वतंत्र-सत्ता है ।
उसकी अपनी अलग महत्ता, उसका मूल्य

1. मुक्तिबोध रचनावली (खंड-2), पृ.154

सदा हम-तुम से परे उच्च है

उसकी अपनी अलग हयन्ता

उनका सारा अहंभाव भी अति सुन्दर है,

स्वाभाविक है, माननीय है

लेकिन तेरे मनोभाव

वह क्षोभ, द्रोह-सब अच्छे हैं, सब दानवीय है

उनका व्यंग्य सत्य की उज्जवल चिनगारी,

औं तेरा भद्दा क्रोध हाय वह सारी गाली ।

वे शाराक हैं - उनमें शासन की वाणी है ।"[1]

कविता के अंतराल में कवि के आर्थिक मूल्यों में गहन समझ, अनुभव और प्रत्यक्ष ज्ञान रहा है । सामाजिक मूल्यों की आरोपित स्थितियों का उल्लेख वह अपनी कविताओं में न कर ऐसी संदर्भो की सांकेतिक अभिव्यक्ति करता है, जिनसे मूल्यों का यह पक्ष स्पष्ट होने लगता है । ऐसे प्रसंगों में कहीं-कहीं स्पष्टतः वह संबोधन शैली में घोषणा भी कर देता है । ऐसा वह अपने व्यापक अनुभव एवं व्यावहारिक ज्ञान के धरातल पर कहता है । कहीं उसका यह अनुभव बाहुशक्ति का प्रतीक है तो कहीं इसे वह जन-संकल्प एवं लोक-शक्ति से संबोधित कर सामाजिक यथार्थ और मूल्य-प्रतिबद्धता का परिचय देता है । उसे विश्वास है कि आज समाज में मूल्यहीनता की स्थिति का प्रमुखतम कारण स्वार्थांधता है । इसीलिए तो वह पुकार-पुकार कर ऐसे लोगों के चारित्रिक बदलाव के साथ आम आदमी की वस्तुस्थिति में परिचित करवाने के लिए कृत-संकल्प है । यथा -

"सुनो सुनने वालो ।

पशुओं के राज्य में जो बियाबान जंगल है

उसमें खड़ा है घोर स्वार्थ का प्रभीमकाय

बरगद एक विकराल, सामाजिक महत्व की

गिलौरिया खाते हुए, अन्याय की कुर्सी पर

आराम से बैठे हुए,

---

1. मुक्तिबोध रचनावली (खंड-2), पृ.157

मनुष्य की त्वचाओं का पहने हुए ओवरकोट,
बंदरों व रीछों के सामने
नई-नई अदाओं से नाचकर
झुठाई की तालियाँ देने से, लेने से,
सफलता के ताले खुलते हैं ।"[1]

सामाजिक मूल्यों की रक्षा अथवा निर्वाह के लिए प्रत्येक सामाजिक प्राणी में सजगता एवं संकल्प शक्ति होनी चाहिए । मुक्तिबोध ने सही अर्थो में इस तथ्य को अनुभव के धरातल पर समझकर व्यवहार में लाने का सफल प्रयास किया है । यही कारण है कि वह 'गुलामी की जंजीरे टूट जायेगी' कविता में आम लोगों के संपर्क से अनुभव ग्रहण करता है और फिर उन्हें उनका प्राप्य दिलवाने के लिए संघर्ष का मार्ग अपनाता है । यथा -

"बनने के लिए हम इन्सान
कहाये हैं आदमी
मानव के लिए हम
गलियों में रहेंगे और गलियों में खोवेंगे
गलियों में रहनेवालों के लिए हम लडेंगे ।"[2]

मूल्य की दृष्टि से मूल में आज व्यक्ति और समाज में 'स्वार्थ' सीमित हैं - व्यापक, परोपकार के दायित्व से विमुख हो रहा है । तभी मुक्तिबोध 'अँधेरे में' कविता में अपने आदर्शवादी तथा सिद्धांतवादी मन से बार-बार एक ही प्रश्न करता है कि उस जीवन जीने से क्या सार्थकता जिसमें देश मर जाये और हम उस मृत देश में जीवित रहें । इसीलिए तो देश रक्षा सर्वोच्च मूल्य माना जाता है - आत्मरक्षा के मूल्य को भी इसकी रक्षा के लिए न्योछावर किया जाना चाहिए । समाज तथा देश में भी विवेकहीन स्थिति में सम्बन्ध और दायित्व से किनारा किया है । तभी कवि कहता है -

"लो-हित-पिता को घर से निकाल दिया,
जन-मन-करूणा-सी माँ को हकाल दिया,

---

1. चाँद का मुँह टेढ़ा है, मुक्तिबोध, पृ.60
2. मुक्तिबोध रचनावली, पृ.151

स्वार्थों के टेरियार कुत्तों को पाल लिया,
भावना के कर्तव्य-त्याग दिये,
हृदय के मंतव्य-मार डाले !
बुद्धि का भाल ही फोड़ दिया,
तर्कों के हाथ उखाड़ दिये,
जम गये, जाम हुए, फँस गये !!
विवेक बधार डाला स्वार्थों के तेल में
आदर्श खा गये !"[1]

कवि को पूर्ण विश्वास है कि आज समाज में मूल्यहीनता की स्थिति का प्रमुखतम कारण स्वार्थांधता है । इसीलिए तो वह पुकार-पुकार कर ऐसे लोगों से चारित्रिक बदलाव के साथ आम आदमी को वस्तुस्थिति से परिचित करवाने के लिए जिम्मेदार समझता है ।

इस प्रकार मुक्तिबोध की सभी कविताओं का कवि की मूल्य-चेतना की दृष्टि से महत्व है । अनेक उदाहरणों एवं उनके विश्लेषण से यह स्पष्ट है कि कवि की प्रत्येक रचना सोदेश्य है, किसी-न-किसी समस्या के प्रति पाठक वर्ग को सचेत करती रहती है ।

2.9.3 राजनीतिक पक्ष :

मुक्तिबोध को इतिहास, राजनीति, संस्कृति, विज्ञान, गणित तथा अन्य विषयों का सम्यक् ज्ञान था । इसीलिए अनुभव और संवेदनात्मक ज्ञान को आधार रूप में रखकर वह इतिहास और राजनीति सरीखे विषय के प्रति अपनी गहरी समझ का परिचय देते हैं । इसीलिए हम इन्हें युग के प्रति सचेत संवेदनशील चिंतक कवि मानते हैं । सामाजिक बदलाव, वर्गीय चेतना और वैयक्तिक चेतना (आत्मसंघर्ष) के साथ ही वह राजनीतिक पक्षधरता का परिचय देते हैं ।

मूल्य-चेतना के वैयक्तिक, सामाजिक पक्ष की चर्चा करते समय हमने राजनीतिक मूल्यों की ओर संकेत किया, किन्तु इसमें किसी प्रकार की विभाजक रेखा न खींची जाये । मूल्य व्यक्ति विवेक के आधार होते है । राजनीति के

---

1. चाँद का मुँह टेढ़ा है, मुक्तिबोध, पृ.110

कारण यह मूल्य-चेतना विशेष प्रभावित होती है, इसीलिए मुक्तिबोध ने सामाजिक, सांस्कृतिक एवं राजनीतिक चेतना का एकसाथ विवेचन किया है । मुक्तिबोध ने राजनीतिक मूल्यों में जहाँ प्रजातंत्र, तानाशाही, सामंतीय व्यवस्था, साम्राज्यवादी शक्तियों के प्रति अपनी सही समझ का परिचय वक्तव्यों में प्रस्तुत किया है, वहाँ समाजवाद, मार्क्सवाद एवं साम्यवाद की वास्तविकता को उद्‌घाटित करते हुए वर्ग-संघर्ष के अनेक रूपों को प्रस्तुत किया है ।

तंत्र (व्यवस्था) किस प्रकार अपने प्रभाव अथवा कोरे नारों से सामाजिक बदलाव में बाधक है, इसका संकेत अनेक कविता में है । वह स्वातंत्र्य-प्राप्ति की उपलब्धि से असंतुष्ट है, उसे विश्वास हो चुका है कि इससे कोई परिवर्तन नहीं हो सकता है, इसके लिए वह अपनी पीड़ा-वेदना, संवेदना में ज्ञान, विवेक, उद्देश्य की पुष्टि अंगार, इस्पात, लोहे, रक्त, क्रांति से करना चाहता है । धूग्धू, सियार, भूत, पिशाच भी व्यवस्था की सांकेतिक अभिव्यक्ति करते हैं, राजनीतिक व्यवस्था पर व्यंग्य करते हैं । तभी उसे लगता है कि -

"राजनीति - साहित्य क्षेत्र भी
महा असत्य शूकरों का है एक तमाशा
यद्यपि बोली जाती मूँह से
भारतीय संस्कृति की भाषा है ।"[1]

'अँधेरे में' कविता में राजनीतिक चेतना को व्यापक रूप में प्रस्तुत किया गया है । इसमें गाँधीवादियों पर व्यंग्य किया है तिलक के नाम पर गलत फायदा उठानेवालों को फटकारा है । दृष्टव्य है -

"गांधी के पुतले पर
बैठे हुए आँखों के दो चक्र
यानि कि धुग्धू एक
तिलक के पुतले पर
बैठे हुए धुग्धू से
बातचीत करते हुए
कहता ही जाता है ।"[2]

1. मुक्तिबोध रचनावली, पृ.195
2. चाँद का मुँह टेढ़ा है, मुक्तिबोध, पृ.58

कवि मुक्तिबोध ने काली करतूतों पर गाँधी तथा तिलक के माध्यम से संभाषण द्वारा करारा व्यंग्य किया है । रात्रि के अंधकार में जो काले धंधे और अवैध व्यापार चलते है, वे ही हमारी वर्तमान संस्कृति के प्रतीक बन गये हैं । आकाश रात्रि के अँधेरे सत्यों को घोटकर पी गया है और मनुष्य को मारने के जीवित खूब टोटले या हथकण्डे समझ लिए है । इन काली सच्चाईयों का पर्दाफाश न हो सके इसलिए आकाश में भी कर्फ्यू लगा दिया है ।

कवि मुक्तिबोध ने समाज की राजनीति पर व्यंग्य प्रस्तुत किया है । रात्रि के गहरे अंधकार में एकसाथ बैठकर षड्यंत्र चलता है । इसका लक्ष्य रहता है - जनशक्ति को नुकशान पहुँचाना । इस षड्यंत्र में मुक्तिबोध का अपना वर्ग भी सम्मिलित हुआ है । कवि ने उद्योगपतियों, मंत्रीगणों, रचनाकारों, विचारकों, कविगणों, पत्रकारों, कुख्यात हत्यारा आदि पर व्यंग्य किया है । इनके भीतर राक्षसी स्वार्थ छिपा है परन्तु इसका दायित्व कवि अपने पर लेता है । ऐसे लोगों की स्वार्थी प्रवृत्ति स्पष्ट होते ही उनके उद्देश्य निखर आते है तो कवि इन्हें 'शोभा-यात्रा' कहते हैं -

"चेहरे वे मेरे जाने बूझे से लगते,
उनके चित्र समाचार पत्रों में छपे थे,
उनके लेख देखे थे,
यहाँ तक कि कविताएँ पढ़ी थी
भई वाह !
उनमें कई प्रकाण्ड आलोचक, विचारक, जगमगाते कवि-गण
मन्त्री भी, उद्योगपति और विद्वान
यहाँ तक कि शहर का हत्यारा कुख्यात
डोमाजी उस्ताद
बनता है बलवान
हाय, हाय !!
यहाँ से दिखते है भूत-पिशाच-काय ।
भीतर का राक्षसी स्वार्थ अब
साफ उभर आया है,

छिपे हुए उद्देश्य

यहाँ निखर आये हैं,

यह शोभा-यात्रा है किसी मृत्यु-दल की ।"[1]

कवि गहरेक्षोभ के साथ कहता है कि इस जुलूस में तो मुझे इनकी काया भूतों जैसी भयंकर दिखती है, जबकि वास्तव में ये नगर और देश के अत्यधिक प्रतिष्ठित, प्रख्यात और सामान्य लोग समझे जाते हैं । वह सोचता है कि ये सभ्य प्रतिष्ठित लोग अपनी राक्षसी आत्माओं पर दिन में सभ्यता, परोपकार, आदर्शवादिता आदि के खोल चढ़ाये रहते है, जबकि रात्रि के इस निस्तब्ध वातावरण में इनका असली रूप दिखाई दे रहा है । इनके हृदय का छिपा हुआ राक्षसी स्वार्थ जब साफ उभर कर बाहर आता है, इनके स्वार्थ-पूर्ण छिपे हुए उदेश्य जब स्पष्ट रूप से पता चलते तब वह शोभा-यात्रा किसी मृत-दल की यात्रा मालूम पड़ती है । इस नगर की भयानक रूप से फरेबी भूतात्माओं प्रत्येक रात्रि के अंधकार में तो अपनी स्वार्थ-सिद्धि का उत्सव मनाते हुए जुलूस निकाला करती है, जबकि दिन के उजाले में वे विभिन्न कार्यालयों, केन्द्रों और घरों में मिल बैठकर अनेकानेक प्रकार के षड्यंत्र रचा करती हैं ।

"गहन मृतात्माएँ इसी नगर की

हर रात जूलूस में चलती,

परन्तु दिन में

बैठती हैं मिलकर करती हुई षड्यंत्र

विभिन्न दफ्तरों, कार्यालयों, केन्द्रों में घरों में ।"[2]

कवि मुक्तिबोध ने चौथे खण्ड में व्यवस्था की क्रुरता, तानाशाही तथा क्रान्ति विरोधी प्रवृत्ति का संक्षिप्त वर्णन किया है । रात्रि के चार बजे का बजर बजता है । चारों ओर फँसाव, घिराव और तनाव दिखाई पड़ता है । धुप्प अँधेरे में पता भी नहीं हिल रहा है । शहर में मार्शल लो लगा हुआ है । सेना ने सडके घेर रखी हैं । कवि सोचता है कि यह सब क्या हो रहा है ? क्या किसी जन-क्रान्ति को दमन करने के लिए यह मार्शल लॉ लगा दिया गया है । लोग

---

1. चाँद का मुँह टेढ़ा है, मुक्तिबोध, पृ.266-67
2. वही, पृ.268

गलियों में मरे-मरे पैरों से दम छोड़कर भाग रहे हैं, जमाने की जीभ निकलकर बाहर आ गई है । कवि भी भाग उठता है - उसे लगता है कि कोई उसका लगातार पीछा कर रहा है । वह भागता हुआ उस घने बरगद के पास चला जाता है । वह बरगद समस्त उपेक्षितों और वंचितों तथा गरीबों के आश्रयदाता के रूप में चित्रित किया हुआ है । बरगद के नीचे एक सिरफिरा व्यक्ति रहता है । वह और कोई न होकर स्वयं कवि ही है । वह सिरफिरा पागलपन छोड़कर आत्मबोधमय गीत गा रहा है -

"ओ मेरे आदर्शवादी मन,
ओ मेरे सिद्धान्तवादी मन,
अब तक क्या किया ?
जीवन क्या जीया !!
उदरम्भरि बन अनात्म बन गये,
भूतों की शादी में कनात-से तन गये,
किसी व्यभिचारी के बन गये विस्तर,
बताओ तो किस-किसके लिए तुम दौड़ गये,
करूणा के दृश्यों से हाय ! मुँह मोड़ गये,
बन गये पत्थर,
बहुत-बहुत ज्यादा लिया,
दिया बहुत-बहुत कम,
मर गया देश, अरे, जीवीत रह गये तुम ।"[1]

मुक्तिबोध अपनी राजनीतिक पक्षधरता इस प्रकार स्पष्ट करते हैं - "मेरा अपना विचार है कि जिस भ्रष्टाचार, अवसरवादिता और भ्रष्टाचारवादिता के जो दृश्य दिखायी दिये उनमें बुजुर्गों का हाथ है ।"[2] मुक्तिबोध ने 'अंधेरे में' कविता में राजनीतिक पक्ष को प्रस्तुत किया है । वे युगीन समस्याओं को क्रांति के माध्यम से सुलझाना ज्यादा मुनासिब समझते हैं । राजनीति में आये बदलाव से वे स्वयं सचेत रहते हैं तथा कहते हैं -

---

1. चाँद का मुँह टेढ़ा है, मुक्तिबोध, पृ.270
2. मुक्तिबोध, एक साहित्यिक की डायरी, पृ.35

"एकाएक मुझे भान होता है जग का
अखबारी दुनिया का फैलाव
फँसाव, घिराव, तनाव सब ओर
पत्ते न खडके
सेना ने घेर सड़कें
बुद्धि की मेरी रग
गिनती है समय की धक्-धक्
यह सब क्या है ?
किसी क्रांति के दमित-निमित्त यह मार्शल लो है ।"[1]

इस व्यवस्था की वजह से कवि को जनतंत्रात्मक शासन पद्धति 'मार्शल लॉ तथा सैनिक प्रशासन' जैसी प्रतीत होती है । पहले तो राजनीतिक मूल्य कुछ आदर्शो या नैतिक आधारों पर नेता लोग आत्मसात करते थे । तभी वह जीवन की सार्थकता 'देश-अस्तित्व' में मानता है । आज वर्तमान काल में सबकुछ बदल गया है । राजनीति का स्वरूप रक्षक के अलावा 'भक्षक' का हो गया है । तभी उसे इस व्यवस्था में वह आदमी की अपेक्षा धूग्धू, सियार बने देखता है - इसीलिए उसे पशुओं के राज्य में 'पूनो की चाँदनी' चौंकाने और लुभानेवाली प्रतीत होती है - स्वार्थान्धता के कारण व्यवस्था का वास्तविक रूपज्ञान होने पर भी बुद्धिजीवी तक मौन धारण किए हैं । स्पष्ट है साम्राज्यवादी शक्तियों एवं सामन्तीय व्यवस्था को वह 'बरगद' के प्रतीक सा प्रस्तुत कर राजनीतिक चेतना (मूल्यहीनता) का संकेत कर देता है । राजनीतिक मूल्य जिस आदर्श अथवा नैतिक आधार को आत्मसात कर जनहित के लिए ये नेता कार्यरत हुआ करते थे, वर्तमान युग में सबकुछ विपरीत हो चुका है । तभी रामू के माध्यम से कवि स्पष्ट रूप से स्वीकार करता है कि -

"रामू जानता है कि पूँजीवादी शक्तियाँ
जन-जन की छाती में बैठकर
शासन के चाकु से

1. मुक्तिबोध एक साहित्यिक की डायरी, पृ.35

विद्रोहिणी बुद्धि की त्रिकालदर्शी आँखों को काटकर

निकाल देना चाहती है ।"[1]

राजनीतिक चेतना में वह कुछ कविताओं में कुटनीति की ओर संकेत करता है जिसके कारण जनता को गुमराह किया जाता है, झूठे वायदे किए जाते हैं, लोगों को अपनी नीति के प्रचारार्थ उन्हें खरीदा जाता है । ऐसी स्थिति वह 'तांत्रिक की दुष्ट साध' का संकेत भी देता है । वस्तुतः गत कुछ समय से राजनीति में तांत्रिकों का बोलबाला रहा हहै । इनके आदेश का ये (कारावासी) मानवता के शासनकर्ता शोषण प्रवीण पालन में दीक्षित है । समसामयिक राजनीति में ऐसे संकेत मिलते हैं, ऐसी स्थिति में राजनीतिक मूल्य जन-हित किस सीमा तक कर सकते है ।

आज की सामाजिक और राजनीतिक स्थिति का जीवंत चित्रण इन शब्दों द्वारा कवि ने प्रस्तुत किया है -

"टिकट कलेक्टर है, उँचा सफेदपोश वक्त

वैलशेव्ड है चेहेरा, है काला और सख्त

भीतर घुस नहीं सकता है

बिना टिकट कोई भी.....

जिसके पास पैसा है,

उसके पास टिकट है ।"[2]

उपरोक्त शब्दों में चिरन्तन सत्य को मुक्तिबोध ने स्पष्ट कर दिया है । सारा खेल पैसों का है यह है वह सत्य ! रिश्वतखोरी या भ्रष्टाचार मात्र पृथ्वी पर नहीं किन्तु स्वर्ग में भी है । वहाँ कौन है ?

"विपरीत दोनों दूर छोरों द्वार पुजकर

स्वर्ग के पुल पर

चुंगी के नाकेदार

भ्रष्टाचारी मेजिस्ट्रेट

रिश्वतखोर थानेदार !!"[3]

---

1. भूरी-भूरी खाक धूल, मुक्तिबोध, पृ.203
2. मुक्तिबोध रचनावली, डॉ. नेमिचन्द्र जैन, पृ.229
3. वही, पृ.189

जहाँ बुद्धिमन्तों की कमी होती है वहाँ अवसरवादी गिद्ध का रूप ले बुद्धिवैभव पर ऐंठते हैं, इतराते हैं, अपने को 'स्वयंसिद्ध' कहकर साधारण बुद्धिवालों को भ्रमचित कर देते हैं । बड़े-बड़े संकल्प बोलकर उनकी दिशाभूल कर देते हैं । नेताओं की बुद्धि हंमेशा ऐसी ही रही है । उन्हें गिद्ध कहकर उनके विचार बिना किसी विरोध के सुननेवालों को अत्यंत क्षुद्र, तुच्छ समझा है जैसा कि हंमेशा समझा जाता है । उन्हें सम्मान मिलता है परन्तु वह कैसा होता है ? अवसरवादियों की खिल्ली उड़ाते मुक्तिबोध लिखते हैं -

"तभी तरूतले बैठे एक श्वान ने
.....लटकती हुई जीभ
अन्दर तुरन्त खींचकर
यह कहा
तुम महाबुद्ध हो..... ।"[1]

दुनिया की किसी नेतागिरी की इतनी सहज खिल्ली उडायी नहीं गयी होगी । ऐसी खोखली नेतागिरी कर साधारण जनों पर अत्याचार ढानेवाले, घौंस जमानेवाले पूँजीवादियों को मुक्तिबोध उनकी प्रवृत्ति के कारण 'वानर और वनबिलाव' कहने में नहीं हिचकते ।

"शाखाओं पर बैठे हैं
वानर और वनबिलाव -
साम्राज्यवादियों का पाशविक ताव वह
भविष्य को बढने ही नहीं देगा जब तक
कि उनका नाश ना हो ।"[2]

सत्ता के अभिलाषियों ने एक भी सामाजिक आयाम नहीं छोडा है जिसमें उनकी रूचि है । आम आदमी को अत्याचारों के दमनचक्र में पीसने के जितने भी तरीके है, ठिकाने है, सभी उन्होंने हथिया लिये हैं । मुक्तिबोध कहते है -

"स्तम्भों के शीश पर
मन्दिरों के शृंगों पर

---

1. मुक्तिबोध रचनावली, डॉ. नेमिचन्द्र जैन, पृ.85-86
2. वही, पृ.79

बैठे हैं ये जनद्वेषी धुध्धू घनघोर
चीखते है दिनरात ।"[1]

अतः मुक्तिबोध की राजनीतिक चेतना के विषय में यह मानना अधिक सही है कि कवि ने समाजवादी व्यवस्था की पुष्टि करते हुए अपने जनवादी कवि होने का परिचय दिया है । मुक्तिबोध ने प्रायः ब्रिटिश साम्राज्यवादी व्यवस्था और सामन्ती वर्ग का विरोध व्यक्त किया है । उनका मत ऐसा रहा है कि इनके कारण कभी जनसामान्य का हित नहीं होता है । मुक्तिबोध ऐसी समाजवादी व्यवस्था चाहते हैं जिससे सबको समान अधिकार प्राप्त हो तथा मानव-मुक्ति का दृढ़ संकल्प प्रस्तुत हो । प्रत्येक पक्ष में वह 'मुक्ति का संघर्ष' अनिवार्य मानता है ।

मुक्तिबोध ने अनेक कविताओं में ऐसे संकेत प्रस्तुत किए हैं, जिनसे लेखक की मूल्य-चेतना का अनुमान लगाया जा सकता है । वह जीवन अनुभव और मन की पीड़ा से युग-बोध की वास्तविकता का बोध कराता है । उसकी दृष्टि समूह-जन समुदाय को समझने-जानने की ओर रही है । तभी तो वह 'उपकृत हूँ' कविता के अंत में मूल्यों के प्रति सचेत होने का परिचय देता है । यथा -

"हे प्राणों का सहचर ।
केवल एक व्यंग्य से तुमने मेरे मर्मस्थल में
कितनी कठिन यातनाओं के गहरे अर्थ भर दिये,
मानो सारा विश्व मिल गया मुझे एकदम ।
और खुल गई तहें मानवी छुपे मर्म की ।
कुटिल प्रश्नों के कठोर-उत्तर-सी निर्भय हो ।
राहें भी चल पड़ी हुलसती सर्व दिशाओं में ।"[2]

मूल्यों के प्रति कवि निरंतर 'अर्थ' की पहचान कराता है, जीवन में सफलता की अपेक्षा सार्थकता पर बल देता है । वह सिर्फ यथार्थ का वास्तव की सार्थकता जाँच नहीं करता वरन् अपनों तक की सार्थकता को समझना चाहता है पर उसकी विवशता है कि वह 'असली अर्थ' समझ पाने में अभी कठिनाई अनुभव कर रहा है । तभी तो 'काँप उठता दिल' में कवि ने अपनी हठधर्मिता

1. मुक्तिबोध रचनावली, डॉ. नेमिचन्द्र जैन, पृ.77
2. वही, पृ.195

तथा ईमानदारी की संवेध स्थिति का उल्लेख कर मूल्यों के लिए सर्वस्व त्यागने का संकेत दिया है । वह ऐसे लोगों पर प्रहार करता है जो कथनी में आदर्श तथा मूल्यों की बात बढ़ा-चढ़ाकर करते रहते हैं पर उनकी करनी (व्यवहार) में कहीं भी ऐसी स्थिति नहीं होती । वह मूल्यपरक, अस्तित्त्वयुक्त जीवन व्यतीत करने का पक्षधर है, भले ही इसके लिए कितनी यातनाएँ क्यों न सह करनी पड़े ।

'एक भूतपूर्व विद्रोही का आत्म-कथन' कविता कवि की चेतना का मूल स्वर, रचना-प्रक्रिया, अनुभव की तीक्ष्णता के साथ उसकी मूल्य-प्रतिबद्धता की परिचायक है । दु:ख महसूस से कविता का प्रारंभ हो, महल के ऐतिहासिक पौराणिक संदर्भो की सांकेतिक स्थिति का बोध कराती हुई अंत में कवि के दृढ़ संकल्पी स्वर एवं आत्म-विस्तार का संकेत कराती है । मुक्तिबोध का विद्रोही, बागी व्यक्तित्त्व समय आने पर पहचान लिया जाएगा - ऐसा उसे पूर्ण विश्वास है । तभी तो वह कहता है -

"आत्म-विस्तार यह
बेकार नहीं जायेगा
जमीन में गड़े हुए देहों की खाक से
शरीर में मिट्टी से, धूल से ।
खिलेंगे गुलाबी फूल ।
सही है कि पहचाने नहीं जायेंगे ।
दुनिया में नाम कमाने के लिए
कभी कोई फूल नहीं खिलता है
हृदयानुभव - राग - अरूण, गुलाबी फूल
प्रकृति के गंध कोश
काश, हम बन सकें ।"[1]

2.9.4 मूल्य चेतना - सांस्कृतिक पक्ष :

मुक्तिबोध कविता को एक सांस्कृतिक प्रक्रिया मानते है । कवि कहते है कि - "काव्य-रचना केवल व्यक्तिगत मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया नहीं वह एक सांस्कृतिक प्रक्रिया है और फिर भी वह एक आत्मिक प्रयास है । उसमें जो

1. मुक्तिबोध, नयी कविता का आत्मसंघर्ष एवं निबन्ध, पृ.5

सांस्कृतिक मूल्य परिलक्षित होते है, वे व्यक्ति की अपनी देन नहीं समाज की या वर्ग की देन है ।"[1] काव्य सोदेश्य रचना है । उसमें अनुभूत वास्तव की अभिव्यक्ति होती है जो जनमानस को प्रभावित कर सकें । डॉ. प्रकाशचन्द्र गुप्त का मत है कि - "कलाकार अपने युग की वास्तविकता को ग्रहण करता है और उसे अपनी कला में व्यक्त करता है । उसकी वाणी में असंख्य पाठक अपनी भावनाओं और विचारों को प्रतिबिम्बित पाते है । उसकी रचना में वे अपने जीवन अनुभव को एक नये रूप में देखते हैं और उससे प्रभावित होकर स्वयं अपने को और जग को बदलने की शक्ति प्राप्त करते है ।"[2]

मुक्तिबोध कहते है - "काव्य बाह्य का आभ्यन्तरीकरण और आभ्यन्तर के बाह्यीकरण का नाम है ।..... यह एक निरन्तर चक्र है । यह आभ्यन्तरी कंरण तथा बाह्यीकरण मात्र मननजन्य नहीं, वरन् कर्मजन्य भी है । जो, हो, कला आभ्यन्तर के बाह्यीकरण का एक रूप है ।"[3] मार्क्स ने समाज के विकास के इतिहास को वर्गसंघर्ष का इतिहास कहा है । समाज में दो वर्ग रहते हैं । एक शोषक तथा दूसरा शोषित वर्ग । साहित्यकार भी वर्गचेतना से सर्वाधिक अभिभूत थे । उन्होंने अपनी कविताओं में वर्गभेद चर्चा बहुत स्थानों पर की है । उन्होंने लिखा है, "हिन्दी में इन दिनों दो प्रकार के वर्ग काम कर रहे हैं । एक उच्च मध्यवर्गीय जन, दूसरे निम्नमध्यवर्गीय जन । इन दोनों के बीच की खाई लगातार बढ़ती जा रही है । .....प्रगतिशील जीवन मूल्य निम्न मध्यवर्गीय श्रेणी के भावना चित्रों में अधिक पाये जाते है । इस श्रेणी में जीवन संघर्ष की अधिकता के फलस्वरूप अन्तर्मुखता और भावसघनता तो होती ही है, किन्तु उसके साथ शिक्षा, स्वाध्याय और समय के अभाव के कारण काव्य सौन्दर्य के विकास के प्रति विमुखता भी दृष्टिगोचर होती है, किन्तु सबसे अधिक चिन्तनीय यह है कि तथाकथित अभिजात उच्च वर्गीयक काव्य संस्कृति से आच्छन्न होकर, अपनी विशिष्टता को प्रखर रूप से प्रकट नहीं कर पाते ।"[4]

1. साहित्यधारा, प्रकाशचन्द्र गुप्त, पृ.4
2. नयी कविता का आत्मसंघर्ष एवं निबन्ध, मुक्तिबोध, पृ.8
3. वही, पृ.28-29
4. वही, पृ.46

मुक्तिबोध ने सांस्कृतिक पक्ष को भी कविता में स्थान दिया है । 'अँधेरे में' कविता का मनु रक्तालोकस्नात पुरूष है जो समस्यायुगीन है । वह फटे वस्त्र धारण कर वक्ष पर भाव तथा रोटी पानी की समस्या को लिए चित्रित हुआ है जो युगीन सन्दर्भो का प्रतिनिधित्व करता है । यहाँ मुक्तिबोध सांस्कृतिक समस्या को प्रस्तुत करता है । 'अँधेरे में' काव्य का मनु सन्देह लिए है । इसमें सकर्मक प्रेम की अतिशयता है । वह संघर्षरत रहनेवाला है । 'रक्तालोकस्नात पुरूष' मनु मानवीय संस्कृति के विकास के लिए निरन्तर संघर्ष करते रहनेवाले संस्कृति पुरूष का प्रतिक है । मुक्तिबोध कहते है कि वह हम सबके अन्तर्मन में विद्यमान है । वह बाहर भी है । बाहर से अर्थात् समाज से हमारे हृदय में आकर हमें कर्मशील बनाना चाहता है..... वह स्वयं संघर्षशील हैं इसीलिए उसके वक्ष पर घाव है..... पीठ पर नहीं । वह कर्मशील हैं, शक्तिवान है परन्तु दरिद्री है क्योंकि वह करूण भाव लिए समाज के शोषित, उत्पीड़ित, गरीब जनों का प्रतिनिधि बना है ।

'लकड़ी का रावण' कविता द्वारा कवि ने साम्राज्यवादी मानसिकता को प्रस्तुत की है । साम्राज्यवादी मानसिकता का प्रतीक है 'रावण' और वानर-जनसामान्य के रूप में प्रस्तुत किया है । इस कविता में पूँजीवादी राज्य-सत्ता द्वारा होनेवाले जनता के शोषण को उद्घाटित किया है ।

डॉ. सम्पूर्णानन्द के शब्दों में "संस्कृति उस दृष्टिकोण को कहते हैं जिसमें कोई समुदाय विशेष जीवन की समस्याओं पर दृष्टि निक्षेप करता है ।"[1] डॉ. भगवानदास ने संस्कृति का सम्बन्ध मानसिक उत्कर्ष से दिखाते हुए यह विचार व्यक्त किया है - "मानसिक क्षेत्र में उन्नति की सूचक प्रत्येक कृति संस्कृति बनती है । इसमें प्रधान रूप से धर्म, दर्शन, सभी ज्ञानविज्ञानों और कलाओं, सामाजिक तथा राजनीतिक संस्कारों और प्रथाओं का समावेश रहता है ।"[2] संस्कृति के इन सन्दर्भों के अनुसार सोचे तो मुक्तिबोध का काव्य सांस्कृतिक सन्दर्भो को भी लेकर चलता है । उन्होंने अपने काव्य में सांस्कृतिक समस्याओं को प्रस्तुती दी है ।

---

1. भारतीय संस्कृति, मालवीयजी के सपनों का भारतलेख, पृ.218
2. प्राचीन भारतीय संस्कृति एवं कला, डॉ. राजकिशोर सिंह, पृ.192

'अँधेरे में' कविता में वर्ग, समाज, संस्कृति तथा व्यवस्था के भीतरी-बाहरी द्वन्द्व को सार्थकता से उजागर करती है । मुक्तिबोध ने ऐसे व्यक्ति दुनिया में देखे हैं जो भारतीय संस्कृति पर बड़े-बड़े भाषण देते हैं परन्तु अपनी निजी जिन्दगी में महाशोषकों का साथ देते हैं, उनके दास बने रहते हैं परन्तु अपनी निजी जिन्दगी में वे महाशोषकों का साथ देते हैं, उनके दास बने रहते हैं । उनकी मूल प्रवृत्ति है अवसरवादिता, चाटुककारिता एवम् अपने वर्ग का अहित देखना । कवि के सामने ये बातें बहुत बड़ी समस्याएँ बनकर खड़ी है ।

भारतीय संस्कृति में वर्णव्यवस्था की तरह संयुक्त परिवार प्रणाली की व्यवस्था महत्वपूर्ण रही है । इसमें परिवार के अनेक सदस्य अपने अपने विभिन्न कर्तव्यों, मर्यादाओं से परिचित होकर रहते थे । उनके इस आचरण से पारिवारिक कलहों झगड़ों की संभावनाएँ ज्यादातर न के बराबर ही रहती थी परंतु यह बात भी सच है कि हमेशा ही ऐसे संयुक्त परिवार शान्ति से रहने की सम्भावना नहीं रहती थी । उनमें ऐसे अनेक रिश्ते सम्बन्ध हैं - सास-बहू, ननद-भावज, जेठानी-देवरानी के झगडे पारिवारिक सुख-शांति में बाधा उत्पन्न करते रहे हैं । मूलतः इन स्थितियों का कारण या संयुक्त परिवार के विघटन का कारण स्त्रियों को माना गया है । आज कल शहरों के साथ-साथ छोटे कस्बों-गाँवों में भी यह बिखराव आने लगा है । आधुनिक काव्य में परम्परावादी कवियों ने संयुक्त परिवारों के परम्परागत आदर्शो को पुनःश्च स्थापित करने का प्रयास किया है परन्तु इसके साथ ही उन्होंने वास्तविक स्थिति से भी परिचित किया है । मुक्तिबोध ने तो गृहकलह से त्रस्त बहुओं आत्महत्या करते रहने की बात की है । समाज की सबसे छोटी इकाई व्यक्ति है । व्यक्ति, परिवार, समूह, समुदाय, वर्ग, सम्प्रदाय तथा राज्य समाज की ही विभिन्न इकाईयाँ है । व्यक्ति की चेतना, उसकी बौद्धिक क्षमता का विकास, शारीरिक उपलब्धियाँ भी समाज की ही देन है । परिवार से सम्बन्धित हर व्यक्ति इसी कारण एकदूसरे से जुड़ा रहता है । अपने निर्धारित कर्तव्यों तथा मर्यादाओं से वे एक तरह से अपना पारिवारिक दायित्व ही निभाते हैं । ऐसे में आधुनिक काल में परिवारों का विघटन होता जा रहा है एवम् पारिवारिक समस्याओं से बुरी तरह पीड़ित होकर बहुएँ आत्महत्या करती है ।

"गृहकलह से त्रस्त बहुएँ
मुंडेरों से कुद कर
आत्महत्या करती है ।"[1]

यह समस्या केवल एक परिवार की नहीं, पूरी भारतीय संस्कृति की है । ऐसी अनेक समस्याओं को मुक्तिबोध ने अपने काव्य में उठाया है । अनेक प्रश्न उनके सामने मंडराते रहे है । उन्होंने भारतीय जन सामान्य की दयनीय स्थिति को विशेष रूप से प्रस्तुति दी है । उनका मत है कि शोषक वर्ग से शोषित वर्ग हमेशा पीड़ित होता आ रहा है । इस पीडितावस्था से अकेले व्यक्ति की मुक्ति नहीं हो सकती । यदि मानव समूह या मानव संगठित होकर संघर्षरत रहने की प्रवृत्ति रखें तभी मानव की मुक्ति संभव है ।

"अपनी मुक्ति के रास्ते अकेले में नहीं मिलते ।"[2]

कवि कहते है कि उनके सभ्य नगरों, ग्रामों में सभी मानव, सुखी, सुन्दर और शोषण से मुक्त कब होंगे ? यहाँ पहले तो उनकी चाह है कि उनके नगर-ग्राम सभ्य होने चाहिए और फिर वे शोषण से मुक्त भी होने चाहिए ।

"समस्या एक ।
मेरे सभ्य नगरों और ग्रामों में ।
सभी मानव ।
सुखी सुन्दर व शोषण मुक्त ।
कब होंगे ।"[3]

मुक्तिबोध की कविताएँ अनुभूतियाँ, मध्यवर्गीय अनुभवों पर आधृत है । अतः उनकी कविताएँ लोकहित की कविताएँ है तथा वे मानव-मुक्ति के कवि हैं । जनसामान्य, देहाती जीवन के जीवन्त प्रश्न, गाँव में रहनेवाले दलित जो हर तरह से तिरस्कृत रहे हैं तथा श्रमिक वर्ग से मुक्तिबोध प्रत्यक्ष जुडे हुए हैं । आर्थिक अभाव में जीनेवाले वर्गो के प्रति उनकी दृष्टि सहानुभूति की रही हहै । वे

---

1. मुक्तिबोध, एक साहित्यिक की डायरी, पृ.35
2. चाँद का मुँह टेढ़ा है, मुक्तिबोध, पृ.147
3. वही, पृ.155

आर्थिक विपन्नता से जनसामान्य को मुक्ति दिलाना चाहते हैं अतः उन्हें संगठित होकर रहने का समाधान बता देते है ।

'मेरे मित्र', 'सहचर' कविता में मध्यवर्ग के बुद्धिजीवी लोगों को मुक्तिबोध अवसरवादी, दासानुदास, भावुक तथा महाशीर्षकों के सुसहायक कहकर व्यंग्य करते हैं । इस वर्ग के लोग प्रायः भारतीय संस्कृति की आड लेकर दिखावा करते है ।

"राजनीति साहित्य क्षेत्र भी,
महा-असत्य शूकरों का है एक तमाशा
यद्यपि बोली जाती है मुँह से
भारतीय संस्कृति की भाषा ।"[1]

2.9.5 मूल्य चेतना - बौद्धिक पक्ष :

मुक्तिबोध की कविता का 'कथ्य' बहुआयामी तथा बहुपक्षीय है । इनकी कविता किसी एक विशिष्ट विषय या कथ्य तक सीमित नहीं है । कवि विभिन्न ज्ञानशाखाओं स्थितियों और गहराईयों से परिचित है । उसमें विभिन्न ज्ञानशाखाओं का आधार लिए व्यापक सन्दर्भ तथा स्वयं का भीतरी संघर्ष प्रस्तुत करने की क्षमता है ।

मुक्तिबोध की कविता में विज्ञान, इतिहास, राजनीति, समाजशास्त्र, मनोविज्ञान, दर्शनशास्त्र, गणित, पुराण-अध्यात्म, संस्कृति, अर्थशास्त्र आदि विषयों से सम्बन्धित शब्द, वाक्यांश, विशिष्ट सन्दर्भ, तकनीकी गणिती शब्द प्राप्त होते है । मुक्तिबोध में आत्मसंघर्ष की बहुत गहरी स्थितियाँ प्राप्त होती है । अतः उनकी कविता में नारेबाजी, समझौता नहीं है और न ही पलभर का आवेश तथा आक्रोश । उनमें प्रत्येक परिवर्तित स्थिति के प्रति एक गहरी समझ है और संयमित आवेग है । यह बात केवल 'कविता' तक सीमित नहीं है तो ज्ञान के अनेक क्षेत्रों में दृष्टिगोचर होती है । ज्ञान क्षेत्रों का सम्वेदनात्मक रूपान्तरण या बदलाव इस संयमशील आवेग से परिचित करा देता है । मुक्तिबोध में पाया जानेवाला यह रूपान्तरण बहुआयामी है क्योंकि विज्ञान, इतिहास, समाज, धर्म, दर्शन आदि ज्ञान क्षेत्रों को उन्होंने स्वीकृत किया है । उन्होंने इस ज्ञान को

1. मेरे मित्र, सहचर रचनावली-1, डॉ. नेमीचन्द्र जैन, पृ.310

सम्वेदना के माध्यम से काव्यात्मक तथा कलात्मक सन्दर्भ देने का सफल प्रयास किया है । अतः मुक्तिबोध की कविताओं में वैज्ञानिक प्रस्थापन की अनेक स्थितियाँ प्राप्त होती हैं ।

मुक्तिबोध प्रायः तथ्य तथा वस्तुसत्य के उद्घाटन सम्बन्धी सतर्क रहे हैं । ज्ञान का मूल आधार खोज अथवा अनुसंधान है । प्रासंगिक स्थितियों के प्रमाणों के आधार पर उसकी पुष्टि की जाती है । सत्य स्थितियों के परीक्षण सम्बन्धी वैज्ञानिक को कर्मशील रहना चाहिए । मुक्तिबोध हमें इस बात से परिचित करवाते हैं कि कोई भी वैज्ञानिक, सत्य के परीक्षण की बात प्रस्तुत करता है तो वह कर्मशील रहकर ही यह कर सकता है । इसी संकेत के साथ मुक्तिबोध अपनी कविताओं की रचना प्रक्रिया का बोध कराते है । बहुत बार वे स्वयं वैज्ञानिक बने हैं - जडवत् हुए है तथा मृत्यु को भी अपना चुके हैं । यह उनके विषय-वस्तु के काव्यात्मक सन्दर्भो का वैशिष्ट्य तथा वैविध्य है । वे अनेक स्थितियों से गुजरे है । हर परिस्थिति को उन्होंने झेला हैं - उनका आंतरिक संघर्ष - भीतरी-बाहरी द्वन्द्व - उनकी रचना-प्रक्रिया से सम्बन्धित है ।

कविता या साहित्य और विज्ञान के पारस्परिक सम्बन्ध हो सकते हैं या नहीं ? कैसे होंगे ? विद्वानों में इस बात पर मतैक्य नहीं है । वैज्ञानिक कथासाहित्य भी - साहित्य के अंतर्गत समाविष्ट करने के सम्बन्ध में विवाद ही रहा है । वैसे देखें तो कविता और विज्ञान के मौलिक तत्त्व भिन्न-भिन्न हैं । परन्तु यह भी सोचना चाहिए कि ज्ञान-क्षेत्रों और मानवी क्रियाओं का एकदूसरे के साथ सम्बन्ध है । कोई भी कला मानव से सम्बद्ध ही होती है । उसकी निर्मिती मानव द्वारा होती है । साहित्य की कोई भी विधा हो या एक-दो ललित कला भी हो अर्थात् यहाँ कविता सोचें तो कविता ऐसी मानवीय क्रिया है जिससे अनुभव तथा ज्ञान को अनुभूति तथा संवेदना के रूप में अभिव्यक्ति मिलती है । अन्य ज्ञान क्षेत्रों में मानवीय स्पर्श तो रहता है परन्तु वहाँ पर तथ्य, सत्य सिद्धांतों के आधार पर बात की जाती है । जैसे विज्ञान, समाजशास्त्र, धर्म, दर्शन आदि । कविता में वह क्षमता रहती है जिससे वह मनुष्य के मन को संवेदना के तह तक ले जा सकती है । तब वहाँ पर विचारों तथा भावनाओं का संतुलन हो जाता है । विज्ञान तथा साहित्य दोनों के मौलिक तत्त्वों प्रकृति में बहुत ही अंतर होने के बावजूद भी इनमें संतुलन की संभावना तो रहती ही है ।

मुक्तिबोध ने इसे साबित कर दिखाया है कि कवि के मन में जो वैज्ञानिक चेतना की धारा जाग जाती है वह गतिशील होकर कविता के रूप में बहने लगती है ।

मुक्तिबोध की कविताएँ उनके अनुभव की सशक्त अभिव्यक्ति है । उनका साहित्येतर ज्ञान-क्षेत्रों का ज्ञान विशेष रूप से - गणित, विज्ञान के तकनीकी तथा पारिभाषिक संकेतों का गहरा अध्ययन, उनकी विलक्षण बुद्धिमत्ता के परिचायक है । हिन्दी कविता के विकास के अंतर्गत मुक्तिबोध को संवेदनात्मक ज्ञान तथा ज्ञानात्मक संवेदना के आधार पर अनन्य साधारण कवि माना जाता है । उनकी कविताओं की रचना-प्रक्रिया का आधार संवेदना तथा सामंजस्य है । मुक्तिबोध की कविता के इस पहलू पर आलोचकों का ध्यान कम ही रहा है ।

डॉ. वीरेन्द्र सिंह का यह ध्येय रहा है कि इसी अनजाने बोध-स्तर को स्पष्ट किया जाय । उन्होंने कहा है कि "विज्ञान और साहित्य दोनों की 'प्रकृति' में अंतर होते हुए भी उनके मध्य कोई ना कोई संवाद की स्थिति खोज निकाली जा सकती है ।"[1] इन दोनों के बीच की संवाद स्थितियों के बारे में उन्होंने जाँच-पड़ताल भी की है । उनका मत यह रहा है कि जिस प्रकार धार्मिक तथा दार्शनिक प्रस्थापनाओं का रचनात्मक संदर्भ दिया जा सकता है उसी तरह वैज्ञानिक प्रस्थापनाओं को काव्यात्मक अभिव्यक्ति क्यूँ नहीं दी जा सकती है । वैज्ञानिक प्रस्थापनाओं के अंतर्गत ऐसे विचार आने चाहिए जो प्रकृति, विश्व तथा मानव रहस्य का उद्‌घाटन करने में सक्षम हों । ये विचार मनुष्य की वैचारिकता तथा चिन्तन को नयी संकल्पनाएँ प्रदान कर सकते हैं । यहाँ पर कवि की कल्पना और अनुभूति एवम् विज्ञान के तर्क पर आधृत अनुभूति नवीन मूल्यों की स्थापना कर सकती हैं ।

मुक्तिबोध में इनका सामंजस्य देखने को मिलता है । उन्होंने प्राचीन मूल्यों तथा धारणाओं को अपनाते हुए नवीन मूल्यों को स्थापित करने का प्रयास किया है । वे समसामायिकता के प्रति अत्यंत सजग है, परम्परा की सही तथा सार्थक पहचान रखते हैं, बौद्धिक दृष्टि से हर प्रक्रिया, घटना, स्थितियों को परखते हैं । यही तत्व उनकी आधुनिकता का परिचय देते हैं ।

1. मुक्तिबोध : काव्यबोध का नया परिप्रेक्ष्य, डॉ. वीरेन्द्र सिंह, पृ.26

वैज्ञानिक संकल्पनाओं को समझने के लिए 'विश्लेषण' प्रक्रिया भी समझना अनिवार्य है । इसमें सौन्दर्य तत्त्व महत्वपूर्ण रहता है तथा इसका साहित्य तथा कला से गहरा सम्बन्ध होता है । सौन्दर्य का सम्बन्ध ज्ञान क्षेत्रों से भी होता है । वैज्ञानिक की सौन्दर्यानुभूति बौद्धिक धरातल पर आधारित रहती है । एक साहित्यकार या कलाकार संवेदनात्मकता से सौन्दर्यानुभूति कर सकता है । बौद्धिक तथा मानसिक (संवेदनात्मक) स्थिति को डॉ. जगदीश गुप्त ने "'नए स्तर पर रसास्वादन' की प्रतिष्ठा की संज्ञा दी है ।"[1]

साहित्यकार को इसके कारण वैज्ञानिक संकल्पनाओं से सौन्दर्यबोध के अनेक आयाम संभव है । मुक्तिबोध के सामने इस तरह डार्विन का विकासवादी सिद्धांत, मैक्सवेल का विद्युत चुम्बकीय सिद्धांत, खगोलशास्त्रीय सिद्धांत, आइनस्टाइन का सापेक्षवादी सिद्धांत, गाणितीय सिद्धांत हैं जिनके द्वारा उन्हें सौन्दर्य और अनुभव के अनेक आयाम मिलने की संभावना रही है । उनके पास 'अन्तर्दृष्टि' असाधारण रूप से है । वैज्ञानिक प्रस्थापनाओं के लिए 'अन्तर्दृष्टि' का होना अनिवार्य है जिसमें 'संवेदना' भी गहराई से जुड़ी हुई होती है ।

मुक्तिबोध ने ब्रह्मांड के रहस्य को उद्‌घाटित करने का प्रयास किया है । उनकी कविता में दिक् या शून्य का विशेष स्थान दृष्टिगोचर होता है । इसके साथ ही रचना-प्रक्रिया के अंतर्गत भी वह प्रेरक तत्त्व के रूप में आया है । शून्य या दिक् की विराटता में ब्रह्मांड की अवस्थिति है । सभी ग्रह, नक्षत्र, तारा, उल्काएँ इसी विराट या अपरिसीमित दिक्‌काल में विन्यास करते हैं । उसकी यह विन्यास प्रक्रिया निरन्तर चलती रही है । मुक्तिबोध कालदिक् नैरन्तर्य शिखर से बोलना चाहते हैं । उनकी छाया अनेक ब्रह्माण्डों पार दूर पृथ्वी पर फैली रहती है । वे स्वयं विराट पुरूष की कल्पना करते हैं और अपने अनाकार कंधों पर शून्य सुनील को विराजित करते हैं जो सुनील सूर्य, चंद्र, तारा - द्युति मंडलों के परे तक फैला अमर्यादित-सा है । ऐसे विराट, अमर्यादित शून्य को अपने कंधों पर उठाकर स्वयम् अपने और सुनील के दूर-दूर तक देखने की बात करते है ।

"मैं ही वह विराट पुरूष हूँ

1. नयी कविता, डॉ.जगदीश गुप्त, पृ.5

.....मेरे इन अनाकार कंधों पर विराजमान
खड़ा है सुनील
शून्य
रवि, चंद्र, तारा, द्युति-मंडलों के परे तक
.....मैं और शून्य
देख रहे..... दूर..... दूर-दूर तक ।"[1]

ब्रह्माण्ड की कल्पना या रहस्य को मुक्तिबोध गति और गुरूत्वाकर्षण के आधार पर अभिव्यंजित करना चाहते हैं । यह गति भी विराट हैं । वे विज्ञान से सम्बन्धित विराट गतियों को सीखकर ब्रह्माण्ड का अनुभव करना चाहते हैं ।

"उरस्पटल पर
सहज झलमलाए
सुदूर आकाशयात्री की किरनें..... और मैं उनका गुरूत्व आकर्ष
चुम्बक शक्ति
ब्रह्माण्ड अनुभव हृदय में पा सकूँ
सीख सकूँ विराट गतियाँ ।"[2]

मुक्तिबोध की कविता अनुभव सापेक्ष है । वे अनुभव को जीवन और यथार्थ के लिए आवश्यक समझते हैं । उनका मन प्रायः ब्रह्माण्ड के प्रति आकर्षण लिए हैं और उसका रहस्योद्‌घाटन की कल्पना लिये हुए हैं । उनकी कविता में गति हैं और वह प्रायः निरन्तर सक्रिय रही है ।

"हृदय के बुद्धि के अश्व तुमको ले उडेंगे और
शैल-शिखरों की चढ़ानों पर बसी ठंडी हवाओं में,
व उसके पार,
गुरू गंभीर मेघों की चमकती लहर
पीठों पर उसके भी परे, आगे व ऊँचे ।
स्वर्ण-उल्का क्षेत्रों में रथ ।
तुम्हें ले जाएगा ।
नक्षत्र-तारक-ज्योति लोकों में घुमा ले जाएगा सर्वत्र ।"[3]

1. मुक्तिबोध प्रतिनिधि कविताएँ, डॉ. अशोक वाजपेयी, पृ.172
2. मुक्तिबोध डॉ. नेमीचंद्र जैन, पृ.408
3. मुक्तिबोध प्रतिनिधि कविताएँ, डॉ. अशोक वाजपेयी, पृ.76

रथ पर आरूढ हो, शैल-शिखरों से बहती ठंडी हवा, मेघों की पीठ जो समुन्दर-लहरों सी लगती है, उसके आगे तथा ऊँचाई पर उल्का क्षेत्रों में, नक्षत्र, तारा, ज्योति, लोकों में घूमने की कल्पना मुक्तिबोध के काव्य को गतिमयता प्रदान करती है । गतिमयता हमेशा विकासशील प्रवृत्ति मानी जाती है । मुक्तिबोध ने अपने इतिहास बोध को जागृत रखकर उन्होंने वर्तमान जीवन के यथार्थ को समझने की वैज्ञानिक दृष्टि को भी आत्मसात किया है । वे वैज्ञानिक प्रस्थापनाओं के कवि हैं ।

मुक्तिबोध की कविता में विज्ञान की सभी शाखाओं से सम्बन्धित संदर्भ प्राप्त होते हैं । गणित, तकनीकी के शब्द भी कविताओं को गंभीर अर्थ प्रदान करते हैं । ऊपरी तौर पर वैज्ञानिक शब्द सामान्य प्रतीत होते हैं परन्तु वे कविता में विशिष्ट गहन अर्थ प्रदान के लिए ही प्रयुक्त हुए हैं । मुक्तिबोध ने ऐसे शब्दप्रयोग प्रचुर मात्रा में किए हैं ।

"गगन के तारे हुए हैं झलमलाते गणित के शत अंक ।
वह गणित जो हल न मैं कर पा रहा हूँ ।"[1]

मुक्तिबोध गणित के शत अंकों का उल्लेख करके उसे हल न कर पाने की अवस्था से कविता की कठिनता स्पष्ट करते हैं । वे अपनी संवेदना तथा संपूर्ण क्षमता की पूर्तता करने की प्रेरणा देते हैं । उनका गणित सचमुच विलक्षण है । उनकी संवेदना सबका तकाजा करते हुए सब पूरा चाहती है वह भी एकदम अभी । उन्हें कभी ज्यामितिक रेखा नभ के पार झलमलाती-सी जाती दिखाई देती है । उनके अन्तर का, मन का गाणितिक अनुवाद हुआ है । उत्साहित होकर तरूणावस्था में मन की शून्यावस्था में जो बाकी शीशी रहनेवाली थी वह भी निःसीम हो गई है । कवि गतिवान् संसार के सिद्धांत को मानकर चलनेवाला था, परन्तु न जाने कैसे ऋण-धन से परे गाणितिक पथ पर चल पडा और सारे जमाने से विद्रोह करने लगा । त्रैराशिकों के आंकडें उन्हें नक्षत्र पुष्पों से दमकते हुए महसूस हुए ।

"वह ज्यामितिक रेखा,
नभस् के पार जाती झलमलाती-सी दिखी ।

1. मुक्तिबोध रचनावली-2, डॉ. नेमिचन्द्र जैन, पृ.17

उत्साह के तारूण्य में,

गाणितिक हुआ अनुवाद अन्तर का,

हमारे शून्य में ऋण-राशि को निःसीम कर डाला ।

चलत् संसार के सिद्धान्त हम पर कृद्ध थे ।

ऋण-धन परे गणितिक पथों पर चल पडें ।

हम प्रथम विद्रोही जमाने से लड़े ।

नक्षत्र-पुष्पों से दमकने ये लगे ।

उलझें हुए त्रैराशिकों के आँकड़ें ।"[1]

मुक्तिबोध ऐसे गाणितिक विश्लेषण और उनसे शेष संख्या से जीवन की यथार्थता और चिंतातुर होने के संकेत देते हैं ।

"जीवन यथार्थ के गाणितिक विश्लेषण में रम,

तुम स्वयं एक

सबकुछ करने-पिटने के बावजूद,

बच रहती संख्या के अनुक्रम में देख ।

गहन सौन्दर्य-स्वप्न-माया

गंभीर-मुखी सोचने लगी ।

मीठी विशाल लहरों में जी भी अकुलाया !!

वह नित्य शेष क्या है ?

जन है !!"[2]

मुक्तिबोध भाग करने पर जो शेष रहता है उसे भी बहुत महत्त्वपूर्ण मानते हैं । कभी भी पुनः संख्या बनानी हो तो 'शेष' के बिना नहीं होता ।

मुक्तिबोध की कविता में गणित तथा यांत्रिकता के नियमों के आधार पर 'सत्य' के सापेक्ष रूप के संकेत मिलते हैं । कवि विज्ञान और गणित में यंत्रबद्ध कारणों के आधार पर 'सत्य' महसूस करता है ।

"गतियों का गणित हूँ मैं ।

गलतियाँ करने से डरता ।

---

1. मुक्तिबोध रचनावली-2, डॉ. नेमिचन्द्र जैन, पृ.30
2. वही, पृ.125

यंत्रबद्ध गतियों का ग्रह पथ त्यागने में असमर्थ ।

अयास, अबोध निरा सच मैं ।"[1]

कवि मुक्तिबोध बाद में यह अनुभव करता है कि -

"गणित के नियमों की सरहदें लांघना ।

स्वयं के प्रति नित जागना ।

भयानक अनुभव ।

फिर भी मैं करता हूँ कोशिश ।"[2]

इसी अनुभव को लेकर कवि मुक्तिबोध यह भी कहता है कि -

"आती है पूर्व से एक नदी ।

पश्चिम से सरित अन्य ।

संगदित बनती है एक महानदी फिर ।

सृष्टि न गणित के नियमों को मानती है ।

अनिवार्य ।"[3]

इस विश्लेषण प्रक्रिया की प्रस्तुति के बाद कवि 'सतही' काव्य के सम्बन्ध में बाते करता हैं :

"इसीलिए, सत्य हमारे हैं सतही ।

पहले से बनी हुई राहों पर घूमते हैं ।

मंत्रबद्ध गति से,

पर उनका सहीपन,

बहुत बड़ा व्यंग्य है ।"[4]

"काँपता है वर्ग-मूल-अर्थ-भरा ।

त्रैराशिकी कोई स्मित स्निग्ध यथार्थो से चला हुआ ।

स्वर्गो तक पहुँचता है ।

---

1. मुक्तिबोध रचनावली-2, डॉ. नेमिचन्द्र जैन, पृ.155
2. वही, पृ.156
3. वही, पृ.157
4. मुक्तिबोध प्रतिनिधि कविताएँ, डॉ. अशोक वाजपेयी, पृ.185

गणितों का किरणीला सेतु ।

पृथ्वी के हेतु ।"[1]

'सत्य' के व्यंग्य रूप में प्रस्तुत होने की तथा उसके निरन्तर खोज की बात कवि मुक्तिबोध ने की है । कवि टूटी लाइनों, न उभरे हुए चित्रों में उसे टटोलना चाहता है ।

"ज्यामितिक संगति - गणित,
की दृष्टि से कृत,
भव्य नैतिक मान
आत्मचेतन सूक्ष्म नैतिक भान.....
अतिरेकवादी पूर्णता की तुष्टि करना ।
कब रहा आसान,
मानवी अन्तर्कथाएँ बहुत प्यारी है ।"[2]

अतिरेकवादी पूर्णता जो ब्रह्मराक्षस प्राप्त करने की चाहत रखता है वह भ्रममात्र है । भ्रममात्र को संभवनीय बनाना ही असंभव है । वास्तव में कभी कोई भी बात पूर्णता तक नहीं पहुँचती । हंमेशा वह भ्रम से छलती हुई नजर आती है । परन्तु यह ब्रह्मराक्षस उसके लिए अत्यंत प्रयत्नशील है और उसे मानवी अन्तर्कथाएँ बहुत प्यारी लगती है । इसे व्यक्त करते समय कवि ज्यामितिक, गणिती संगति के दृष्टिकोण से भव्य नैतिक मानों के उद्‌भावित होने की बात करता है । ब्रह्मराक्षस जिस नभ के बारे में सोचता था, उस नभ के तारों ने उससे हार मान ली है । आज वे उसके उद्विग्न भालों पर फैले हुए हैं ।

"उद्विग्न भालों पर
सितारें आसमानी छोर पर फैले हुए
अनगिन दशमलव से
दशमलव - बिन्दुओं के सर्वतः पसरे हुए उलझे गणित मैदान में
मारा गया, वह काम आया
और वह पसरा पड़ा है..... वक्ष बाँहें खुली फैली ।
एक शोधक की ।"[3]

---

1. मुक्तिबोध रचनावली-2, डॉ. नेमिचन्द्र जैन, पृ.123
2. वही, पृ.124
3. मुक्तिबोध प्रतिनिधि कविताएँ, डॉ. अशोक वाजपेयी, पृ.155-158

'ब्रह्मराक्षस' कविता के प्रस्तुत अंश के द्वारा 'आत्मसंघर्ष' व्यक्त हुआ है । इसी आत्मसंघर्ष में ब्रह्मराक्षस की मृत्यु का अर्थ निहित है । यहाँ मुक्ति का प्रयास भी खत्म हो जाता है । मुक्ति की चाहत किए यह शोधक मर जाता है, क्योंकि उसकी बांहे फैली हुई हैं । सितारों के नभ में फैलने की स्वाभाविक क्रिया को दर्शाते वक्त मुक्तिबोध गणिती शब्दों का प्रयोग करते हैं । सितारों का फैलाव अनगिन दशमलव से दशमलव बिन्दुओं का फैलाव है जिसे उलजे हुए गणित मैदान की संज्ञा दी है ।

विज्ञान में यह बात सत्य स्थापित हुई है कि परमाणु, पदार्थ की सूक्ष्मतम इकाई है, उसीके संयोग से सृष्टि निर्माण हुई है । जब उसका विलय हो जाता है तब संहार अर्थात् प्रलय होता है । प्रायः सृष्टि का यह क्रम चलता ही है अर्थात् वह गतिशील है । आधुनिक काल में 'परमाणु' का अत्यंत महत्त्व है । वैज्ञानिकों के अनुसार परमाणु की धारणा ने पदार्थ तथा ब्रह्माण्ड की रचना के रहस्यों का उद्घाटन किया है । परमाणु के संघात से अणु निर्माण होते हैं । अणु के निर्माण से पदार्थ का स्वरूप स्पष्ट होने में सहायता होती है । सौर मण्डल की रचना जैसी ही परमाणु की रचना होती है । परमाणु के केन्द्र में न्युक्लिअस होता है जिसके चारों ओर एक निश्चित वृत में इलेक्ट्रान परिक्रमा करते हैं । इनके अतिरिक्त न्यूट्रान, प्रोटान, मीसोट्रान आदि कण परमाणु की संरचना में रहते है । इनमें आकर्षण रहता है तथा परस्पर सम्बन्ध भी ।

मुक्तिबोध ने 'परमाणु' का स्वरूप विज्ञान से ही लिया है और उसकी प्रतिष्ठा काव्य में संघर्ष तथा संवेदना के स्तर की है । उनका सौन्दर्यबोध वैज्ञानिक संकल्पना से जुड़ा हुआ है । एक व्यापक परिप्रेक्ष्य द्वारा उनका सौन्दर्यबोध जीवन की यथार्थता को स्पष्ट करता है । परमाणु रचना सम्बन्धी कवि ने कहा है -

"परमाणु केन्द्रों के आस-पास ।
अपने गोल पथ पर, घूमते है अंगारे,
घूमते हैं 'इलेक्ट्रान' ।
निज रश्मि रथ पर ।

..... 'इलेक्ट्रान' रश्मियों में बंधे हुए अणुओं का पुंजीभूत ।

एक महाभूत मैं ।"[1]

घूमते है अंगारे - निज रश्मि रथ जैसे शब्द-प्रयोगों से कवि के वैज्ञानिक बोध के साथ कवित्व शक्ति का भी परिचय होता है । उनके सौन्दर्य बोध ने रचना को सौन्दर्य प्रदान किया है । उन्होंने केवल 'परमाणु' की रचना किस तरह की होती है यही नहीं बताया तो तथ्य की उद्घोषणा के साथ-साथ कवित्व शक्ति का परिचय दिया है ।

मुक्तिबोध विश्व, ब्रह्माण्ड तथा दिक् सम्बन्धी अत्यंत सजग है । वे इसका स्वाभाविक स्वरूप जो विज्ञान से अत्यंत नैकट्य रखता है उसे काव्यात्मक रीति से प्रस्तुत करते हैं । सूरज, उर्जा का स्त्रोत, नीली किरनों का फैलाव करता है परन्तु काले शून्य या दिक्..... में किरणों के विकिरण न होने तथा विविध ग्रहों के बीच के गुरूत्वाकर्षण इसी शून्य में सचिन्त सलवट रेखाओं का निर्माण होने और बाद में इन्हीं के द्वारा 'गतिविधि' प्रारंभ होने की बातें करते हुए वैज्ञानिक प्रस्थापनाओं को प्रस्तुत करते है -

"वह जल रहा सूर्य ।
अकेली नीली किरणें फेंक रहा है ।
नीली पतली ।
उड़े हुए काले रंग-सा है अपरिसीम ।
वह दिग्वकाश ।
रश्मि-विकिरण नहीं स्याह शून्य में यहाँ ।
गुरूत्वाकर्षण विविध ग्रहों के ।
दिग्वकाश की सचिन्त सलवट रेखाओं से
गतिविधि पैदा करते ।"[2]

तिर्यक का निर्माण भी उनका सजग विवेक भूला नहीं । इसके सम्बन्ध में कहते हुए भी काव्यात्मकता का अविष्कार महत्त्वपूर्ण बात माननी चाहिए ।

---

1. मुक्तिबोध रचनावली-2, डॉ. नेमिचन्द्र जैन, पृ.110
2. वही, पृ.111

"बहुत देर के बाद ।
बहुत दिनों बाद ।
कई प्रकाश वर्ष गणना के बाद ।
एक कहीं कोई नव अतिथि ।
कि आता ज्योति जगत् ।
तब तिर्यक पथ संवेदित ।
होने लगता उसका ।
तब ब्रह्माण्ड-धूल के ।
मद्धिम धुंधले परदे ।
उजल-उजल उठते हैं,
आगात किरणावली से ।"[1]

एक वैज्ञानिक की तरह मुक्तिबोध ने 'भविष्यधारा' कविता में ब्रह्माण्ड, अपरिसीम दिक्, गुरूत्वाकर्षण, ब्रह्माण्ड की विराटता की गति आदि के सम्बन्ध में वैज्ञानिक परंपरा को आत्मसात् कर विश्व ब्रह्माण्ड के रहस्य को उद्घाटित करने का प्रयास किया है । उनकी कविता में दिक् या शून्य का विशेष स्थान दृष्टिगोचर होता है । इसके साथ ही रचना-प्रक्रिया के अंतर्गत भी वह प्रेरक तत्त्व के रूप में आया है । शून्य या दिक् की विराटता में ब्रह्माण्ड की अवस्थिति है । सभी ग्रह, नक्षत्र, तारा, उल्काएँ इसी विराट या अपरिसिमित दिक्काल में विन्यास करते हैं । उनकी यह विन्यास प्रक्रिया निरंतर चलती रही है । मुक्तिबोध काल-दिक्-नैरन्तर्य शिखर से बोलना चाहते है । उनकी छाया अनेक ब्रह्माण्डों पार दूर पृथ्वी पर फैली रहती है । वे स्वयं विराट पुरूष की कल्पना करते हैं और अपने अनाकार कंधों पर शून्य सुनील को विराजित करते हैं जो सुनील सूर्य, चंद्र, तारा - द्युति मंडलों के परे तक फैला अमर्यादित-सा है । ऐसे विराट, अपरिसीमित शून्य को अपने कंधों पर उठाकर स्वयम् अपने और सुनील के दूर-दूर तक देखने की बात करते हैं ।

"मैं ही विराट पुरूष हूँ,
.....मेरे इन अनाकार कंधों पर विराजमान,

1. मुक्तिबोध प्रतिनिधि कविताएँ, डॉ. अशोक वाजपेयी, पृ.368-69

खड़ा है सुनील,

शून्य,

रवि-चंद्र तारा, द्युति-मंडलों के परे तक,

..... मैं और शून्य,

देख रहा.....

दूर..... दूर..... तक ।"[1]

ब्रह्माण्ड की कल्पना या रहस्य को मुक्तिबोध गति और गुरूत्वाकर्षण के आधार पर अभिव्यंजित करना चाहते हैं । वह गति भी कैसी ? विराट !!! वे विज्ञान से सम्बन्धित विराट गतियों को सीखकर ब्रह्माण्ड का अनुभव करना चाहते हैं ।

"उरस्पटल पर,

सहज झलमलाए,

सुदूर आकाशयात्री की किरनें

.....और मैं उनका गुरूत्वाकर्षण चुम्बक शक्ति,

ब्रह्माण्ड अनुभव हृदय में पा सकूँ

सीख सकूँ विराट गतियाँ ।"[2]

कवि द्वारा व्यक्त हुई यह प्रक्रिया अन्तरजगत से जुड़ी हुई है परन्तु उसका प्रकटीकरण 'विराट' का अनुभव दे देता हैं । मुक्तिबोध की कविता अनुभव सापेक्ष है । वे अनुभव को जीवन और यथार्थ के लिए आवश्यक समझते हैं । उनका मन प्रायः ब्रह्माण्ड के प्रति आकर्षण लिये हैं और उसका रहस्योद्घाटन की कल्पना लिये हुए हैं । वे प्रायः इन्हीं विचारों से उद्वेलित होते हुए नजर आते हैं । मुक्तिबोध की कविता में गति हैं । वह गति प्रायः निरन्तर सक्रिय रही है ।

"हृदय के, बुद्धि के ये अश्व तुमको ले उडेंगे और,

शैल-शिखरों की चढ़ानों पर बसी ठंड़ी हवाओं में,

व उसके पार,

---

1. मुक्तिबोध रचनावली-2, डॉ. नेमिचन्द्र जैन, पृ.408
2. वही, पृ.154

गुरू गंभीर मेघों की चमकती लहर पीठों पर ।
व उसके भी परे, आगे व ऊँचे,
स्वर्ण उल्का-क्षेत्रों में रथ,
तुम्हें ले जाएगा,
नक्षत्र-तारका-ज्योति-लोकों में,
घुमा लें जाएगा सर्वत्र ।"[1]

रथ पर आरूढ़ हो, शैल शिखरों से बहती ठंडी हवा, मेघों की पीठ, जो समुन्दर की लहरों जैसी लगती है उसके आगे तथा ऊँचाई पर उल्का क्षेत्रों में, नक्षत्र, तारा, ज्योति लोकों में घूमने की कल्पना वाकई मुक्तिबोध के काव्य को गतिमयता प्रदान करती है । नक्षत्र, तारे, मेघ, शैलशिखर - सभी निसर्ग प्रदत ब्रह्माण्ड के रहस्य को समझा भी है तथा स्पष्ट भी किया है । मुक्तिबोध की रचना-प्रक्रिया यथार्थ तथा ज्ञान से द्वन्द्वात्मक स्वरूप को विश्लेषित करती है । केवल यही नहीं तो ज्ञान और अनुभव की रचनात्मकता को भी स्पष्ट करती है ।

मुक्तिबोध की हर कविता उनकी मानसिकता अनुसार विकसित हुई है । समाजशास्त्र, अर्थशास्त्र, इतिहास, मनोविज्ञान, दर्शन, विज्ञान, गणित आदि अनेक विषयों के अध्ययन पश्चात् उनके प्रभावस्वरूप उस विशिष्ट समय की रचनाओं में उस विशिष्ट विषय से सम्बन्धित ज्ञान, स्वरूप तथा शब्दप्रयोग अत्यंत सहजता से आये हैं । मुक्तिबोध आधुनिक विज्ञान एवं तकनीकी विज्ञान के विकास को ध्यान में लेकर कथ्य की अभिव्यक्ति करते रहे । उनकी कविताओं में वैज्ञानिक शब्दावली प्राप्त होती है । इनकी वजह से कविता की नयी पहचान, मुहावरें तथा उसके नये अंदाज पहचाने जा सकते हैं ।

'भविष्यधारा' कविता वैज्ञानिक संकल्पनाओं की प्रस्तुति, शब्दप्रयोग तथा प्रयोगशाला से सम्बन्धित कविता है । कविता का प्रारंभ प्रश्नात्मकता से हुआ है । कवि को सोया हुआ अचेत वैज्ञानिक स्वयं की प्रयोगशाला में ही दिखाई देता है । प्रयोगशाला में अजीबोगरीब द्रव्यों की महक आती रही है तथा वहाँ पर ढुली पडी कुछ शीशियाँ हैं, परीक्षण नलिकाएँ भी हैं । कवि को वह वैज्ञानिक अपने सूक्ष्म तथ्य मापन यंत्रों के बीच अचेतावस्था में मिलता हैं । वहाँ पर

1. मुक्तिबोध रचनावली-2, डॉ. नेमिचन्द्र जैन, पृ.208

जलता हुआ गैस-स्टोव्ह और परीक्षण नलिका-यंत्र पर रखी हुई दिखाई देती है । इसे देखकर कवि अन्तर्मुख हो जाता है । वह सवाल करता है कि इस वैज्ञानिक पर कौन-सी जबरदस्ती की गई है । वैज्ञानिक अन्तर्मुख क्यों हुआ है ? फिर कवि ही स्वयं को प्रयोगशाला में पाता है और वह वैज्ञानिक की भूमिका में प्रवेश करता है । मुक्तिबोध ने रेडियम, क्वान्टम, अणु, स्पेक्ट्रम, फॉसिल और समीकरण, सूत्र, शेष, राशि, अंक जैसे अनेक वैज्ञानिक एवम् गणितिक शब्दों के प्रयोग किये हैं । कवि कलाकार से वैज्ञानिक फिर वैज्ञानिक से कलाकार बनने की चाहत व्यक्त करता है । गणितिक भाषानुवादिता को गणितिक अभिव्यक्ति में बदलना चाहता है । यूरेनिअम-रेडियम यदि तुम उठा लाओगे तो तुम्हारे हाथ काले हो जायेंगे और तुम्हारी उंगलियाँ जल जायेगी ऐसा कहकर कवि ने अपने विज्ञान विषयक गहरे ज्ञान का परिचय दिया है । मुक्तिबोध को “कभी रत्न रश्मिरेखाएँ, भीतर के अंधेरे को ज्यामितिक रूपों में निखारती हुई नजर आती है ।”[1] तो “कभी भीतर के इलेक्ट्रान यकायक बुझते हुए प्रतीत होते है ।”[2] इसी तरह वे प्रश्न भी करते हैं कि -

> **“कहता कौन कि फोस्फारेस या गन्धक कार्बन, युरेनिअम वह ।**
>
> **द्रवीभूत हो जहरीला है ।”[3]**

मुक्तिबोध ने ध्वनि तथा उसके स्वरूप के वैज्ञानिक पहलू को भी कविता में जगह दी है । शब्द को दो अर्थो में लिया है । ये दो अर्थ ध्वाानि तथा भाषा के शब्द से सम्बन्धित है । हम जानते है कि ध्वनि द्वारा ही शब्द का उच्चारण होता है और शब्द ध्वनि की ही अभिव्यक्ति होती है । ये ध्वनियाँ ब्रह्माण्ड की गहराईयों से उठती है और हर शब्द अपने ही प्रतिशब्द को काटता रहता है और इस तरह ‘प्रतिध्वनि’ से ध्वनि का लड़ना ही ‘प्रतिध्वनि’ का स्वरूप स्पष्ट करता है ।

> **“ये गरजती गूँजती, आंदोलिता ।**
> **गहराइयों से उठ रही ध्वनियाँ**
> **अतः उदभ्रान्त शब्दों के नए आवर्त में**

---

1. मुक्तिबोध रचनावली-2, डॉ. नेमिचन्द्र जैन, पृ.209
2. वही, पृ.312
3. मुक्तिबोध प्रतिनिधि कविताएँ, डॉ. अशोक वाजपेयी, पृ.122

हर शब्द निज प्रति-शब्द को भी काटता ।

वह रूप अपने बिम्ब से ही जूझ ।

विकृताकार-कृति ।

है बन रहा ।

ध्वनि लड रही अपनी प्रतिध्वनि से यहाँ ।"[1]

मुक्तिबोध की कविता में शब्द, नाद, प्रवाह, गति, अर्थ - सब कुछ है जो एक वैज्ञानिक विवेक द्वारा ही स्थापित हो सकता है । भूगर्भशास्त्र, खगोलशास्त्र, ज्योतिषशास्त्र, भौतिकी, गणित, रसायनशास्त्र आदि विज्ञान के हर क्षेत्र का प्रभाव मुक्तिबोध पर स्पष्टतः दृष्टिगत होता है । उन्होंने हर क्षेत्र के तथ्यों को आधार बनाकर अपनी रचना-प्रक्रिया को सशक्त बनाया है । इस तरह के अनेक उदाहरणों के आधार पर स्पष्ट होता है कि मुक्तिबोध में विवेक, ज्ञान तथा अनुभव का संतुलन तथा संवेदनात्मक मौजूद है । उनमें संवेदनात्मक अन्तरण की क्षमता है । वे अपने यथार्थ के साथ साथ विज्ञान के प्रति अत्यन्त सजग है । डॉ. वीरेन्द्रसिंह के मतानुसार युग की संवेदना विज्ञान बोध के बगैर अधूरी ही मानी जाएगी । मुक्तिबोध ने पारिभाषिक वैज्ञानिक शब्दों के अर्थो में परिवर्तन नहीं किया है बल्कि उन शब्दों के माध्यम से साहित्यिक अभिव्यक्ति की है ।

'चाँद का मुँह टेढ़ा है' काव्यसंग्रह की भूमिका में शमशेर बहादुर सिंह ने कहा है कि वे बौद्धिक उहापोह में जीते थे । इस कथन पर डॉ. वीरेन्द्र सिंह अपना मत प्रस्तुत करते है कि "सत्य के प्रति अधूरी दृष्टि है । यह उहापोह सतही है जो उनके द्वारा प्रयुक्त बिम्बों और प्रतीकों के द्वारा प्रकट होता है, पर उनकी दृष्टि एवम् अवधारणा इतनी स्पष्ट है कि एक बार उन बिम्बों और प्रतीकों का अर्थ स्पष्ट हो जाय, तो यह सतही 'ऊहापोह' एक सारगर्भित अर्थ देता हुआ प्रतीत होता है ।"[2] इन बातों को और स्पष्ट रूप से देखना है तो हमें स्वयं मुक्तिबोध के वैज्ञानिक मत भी देखने आवश्यक होंगे । "जो पुराना है, वह अब लौटकर नहीं आ सकता । लेकिन नए ने पुराने का स्थान नहीं लिया । धर्म भावना गयी, पर वैज्ञानिक बुद्धि नयी आयी । धर्म ने हमारे जीवन के प्रत्येक

1. मुक्तिबोध : काव्यबोध का नया परिप्रेक्ष्य, डॉ. वीरेन्द्रसिंह, पृ.48
2. मुक्तिबोध रचनावली-5, डॉ. नेमिचन्द्र जैन, पृ.266

पक्ष को अनुशासित किया था । वैज्ञानिक मानवीय दृष्टि ने धर्म का स्थान नहीं लिया । इसीलिए केवल हम अपनी अन्तःप्रवृत्तियों के यंत्र से चलित हो उठे ।"[1] इससे यह स्पष्ट होता है कि विज्ञान बोध केवल यांत्रिकता पर आधारित नहीं होता । वह एक अन्तः प्रवृत्ति है जिसका विश्लेषण किया जाता है । मुक्तिबोध इसी प्रवृत्ति से परिपूर्ण कवि है । उनकी वैज्ञानिक संकल्पनाएँ इन पर ही आधारित है तथा इनकी स्थापना से कविताएँ अत्यंत सशक्त बन पडी है । वैज्ञानिक प्रस्थापनाओं से वे कविता को नया मुहावरा प्रदान करना चाहते है । एक ही समय पर इसके कारण कविता के अनेक पहलू नजर आने लगते हैं । इसका दूसरा पक्ष यह है कि ऐसी अभिव्यक्ति में जटिलता, क्लिष्टता आयी है जिससे सामान्य पाठक आशय की ऊपरी सतह तक भी नहीं पहुँच पाते हैं । विज्ञान के हर विषय की जानकारी प्राप्त करके ही कविता की तह तक पहुँच सकने की संभावना रहती है । परिणाम स्वरूप कविता अधिक गहरी, संवेदनशील सार्थक बनकर सामने आ सकेगी ।

2.9.6 मूल्य चेतना - सौन्दर्यात्मक पक्ष :

संस्कृत तथा हिन्दी आचार्यो ने सौन्दर्य को परिभाषित करने का प्रयास किया है । प्राचीन भारतीय अलंकार शास्त्रियों ने चारूत्व शब्द से ही सौन्दर्य की परिभाषा की है । उनके अनुसार अलंकार ही सौन्दर्य का हेतु है । आ. कुन्तक ने सौन्दर्य की व्याख्या करते हुए सौन्दर्य तथा लावण्य शब्दों का प्रयोग किया है और सौन्दर्य को आंतरिक धर्म का सूचक माना है एवम् लावण्य को बाह्य सौन्दर्य का । कवि कालिदास का मत है, "रमणीयता में आनन्द होता है तथा यही आनन्द सौन्दर्य है । माघ यही मानते है कि क्षण-क्षण में परिवर्तित होनेवाले रूप द्वारा उत्पन्न रमणीयता एवम् वैचित्र्य में सौन्दर्य की अवस्थिति है ।"[2]

आचार्य रामचन्द्र शुक्लजी ने अत्यंत स्पष्ट शब्दों में अपना विचार व्यक्त किया है । "सौन्दर्य कोई बाहर की वस्तु नहीं है, मन के भीतर की वस्तु है । जैसे वीर कर्म से पृथक वीरता कोई पदार्थ नहीं वैसे ही सुन्दर वस्तु न पृथक

1. शाकुन्तलम् अंक-6, कालिदास, इलाहाबाद, प्र.सं.1969
2. शिशुपालवधम्, माघ, पृ.90

सौन्दर्य - कोई पदार्थ नहीं । कुछ रूप रंग की वस्तुएँ ऐसी होती हैं जो हमारे मन में थोडी देर के लिए हमारी सत्ता पर ऐसा अधिकार कर लेती है कि उसका ज्ञान ही हवा हो जाता है और हम उन वस्तुओं की भावना के रूप में परिणत हो जाते हैं । हमारी अन्तःसत्ता की यही तदाकार परिणति सौन्दर्य की अनुभूति है । जिस वस्तु के प्रत्यक्ष ज्ञान से या भावना से तदाकार परिणति जितनी ही अधिक होगी, उतनी ही वह वस्तु हमारे लिए सुन्दर कही जाएगी ।"[1]

डॉ. हरद्वारीलाल शर्मा सौन्दर्य की व्याख्या इस प्रकार करते हैं, "अपनी अनुभूति, स्मृति, कल्पना आदि द्वारा आनन्द को निर्माण करनेवाले वस्तु के गुण को सौन्दर्य और वस्तु को सुन्दर कहते हैं । .....सौन्दर्य जिस तृप्ति का नाम है उससे जीवन का विकास, प्राणों में स्फूर्ति, हृदय में उदात्त वेदना का संचार तथा कल्पना के लिए नवीन आलोक का सृजन और शान्ति का संचार होता है । इस विशेषता के कारण ही यह जीवन का परम आधार है ।"[2] डॉ. शर्माजी "वस्तु के गुण और मानस चेतना को सौन्दर्य निर्धारण का साधन स्वीकृत करते हैं और जीवन का आधार भी । छायावादी कवि जयशंकर प्रसाद सौन्दर्य को चेतना का उज्जवल वरदान मानते है ।"[3] "सुमित्रानन्दन पंत का सौन्दर्य विषयक दृष्टिकोण व्यापक है ।"[4]

भारतीय विद्वानों के साथ-साथ पाश्चात्य विद्वानों के मत भी हम देखेंगे । पाश्चात्य विचारकों की दृष्टि से सौन्दर्यशास्त्र अत्यंत महत्त्वपूर्ण विषय रहा है तथा इस पर गंभीरता से विचार प्रस्तुत किए गए है । कुछ विद्वान सौन्दर्य को वस्तु के बाह्य आकार-प्रकार में निहित मानते हैं, कुछ आंतरिक स्वरूप को महत्त्व देते हैं और कुछ आध्यात्मिक स्तर पर उसका मूल्यांकन करते हैं परन्तु पाश्चात्य सौन्दर्यशास्त्र के आधुनिक स्वरूप को हीगेल तथा क्रोचे की धारणाओं ने सर्वाधिक प्रभावित किया । हीगेल का मत है कि "आइडियल की अभिव्यक्ति का प्रयास सौन्दर्यसृजन है और इसका मध्यम अथवा अनुकरण ही सुन्दर है ।"[5]

1. चिन्तामणि भाग-1, आ.रामचन्द्र शुक्ल, पृ.164-65
2. सौन्दर्यशास्त्र, डॉ. हरद्वारीलाल शर्मा, पृ.10
3. कामायनी, लज्जा सर्ग, कवि प्रसाद, पृ.110
4. पल्लव, सुमित्रानंदन पंत, पृ.87
5. सौन्दर्यशास्त्र, डॉ. हरद्वारीलाल शर्मा, पृ.71

इंग्लैण्ड के सौन्दर्यशास्त्रीयों ने सौन्दर्य का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण प्रस्तुत किया है । इनके दो वर्ग है । एक प्रकार के चिन्तक 'आइडियालिस्ट' हैं जो सौन्दर्य को वस्तु का अखण्ड गुण मानते हैं और विश्लेषण से परे मानते हैं । दूसरे प्रकार के विचारक 'फार्मेलिस्ट' है जिनके अनुसार सौन्दर्य का विश्लेषण संभव है । आइडियालिस्ट विचारकों में रस्किन, शैफ्ट्सबरी आदि है । फार्मेलिस्ट विचारकों में इड्सिन तथा बर्क विशेष उल्लेखनीय हैं ।

सौन्दर्य और कला का अन्तः सम्बन्ध रहता है । यदि ऐसा कहे कि कला के अन्तःदर्शन में सौन्दर्य है और सौन्दर्य के अन्तःदर्शन में कला तो यह अत्युक्ति नहीं होगी । सौन्दर्य हर तरह की कला में निहित है । वह विभिन्न रूपों में सामंजस्य स्थापित करता है । कला और सौन्दर्य के सम्बन्ध में डॉ. शकुंतला अपना मत प्रस्तुत करती है - "सौन्दर्यशास्त्र का दूसरा नाम कला है । सौन्दर्य, कला का सहयोग पाकर निखरता है । जो व्यक्ति अपनी कृतियों में सौन्दर्य की सुष्ठु अभिव्यक्ति कर पाता है वही कलाकार है और जो कला में सौन्दर्य का अनुभव कर पाता है वह कलाविद् है ।"[1]

साहित्य का उद्देश्य सौन्दर्य की अनुभूति कराना है । कला के अनेक रूपों की अभिव्यक्ति साहित्य/काव्य में होती है । काव्य, भाषा द्वारा सौन्दर्य को मूर्त रूप देता है । साहित्य या काव्य ही कला के मौन को मुखर करता है । वह कला को गतिमान बनाता है । आ. हजारीप्रसाद द्विवेदी कहते हैं - "साहित्य में निहित जीवन और सृष्टि के विभिन्न रूप ही सुन्दर है । वह सौन्दर्य निर्माता भी है और सौन्दर्य की सृष्टि भी । सारे मानव समाज को सुन्दर बनाने की साधना का ही नाम साहित्य है ।"[2] साहित्य के माध्यम से ही जीवन के विविध रूपों का कलात्मक चित्रण संभव होता है । मनुष्य इनका अनुकरण कर जीवन को सुन्दर बनाने का प्रयत्न करता है । स्पष्ट है कि साहित्य में सौन्दर्यांकन होता है और सौन्दर्य द्वारा साहित्य का सृजन ।

कवि मुक्तिबोध सौन्दर्यसृष्टि के सम्बन्ध में अपना मत प्रस्तुत करते हैं, "आज के जमाने में प्राकृत होना ही सबसे ज्यादा मुश्किल है । किन्तु जो इस

1. आधुनिक काव्य में सौन्दर्यभावना, शकुन्तला शर्मा, पृ.25
2. कल्पना, आ. हजारीप्रसाद द्विवेदी, पृ.140

वास्तविक सत्य और यथार्थ के अधिकाधिक समीप पहुँचेगा, जो इसका जितना मार्मिक आकलन और उद्घाटन करेगा, वही साहित्यकार समाज की और जनता की अधिकाधिक सेवा करेगा और उसके लिए अनन्य सौन्दर्य की सृष्टि करेगा ।"[1]

कलाकार सौन्दर्यबोध से सौन्दर्य की अभिव्यंजना के लिए आकुल रहता है तथा उसकी अभिव्यक्ति करता है, उस पद्धति को ही हम 'कला' कह सकते हैं । कला का जन्म इसी तरह हुआ है । संगीत, नृत्य, चित्रकला, मूर्तिकला, साहित्य इन ललित कलाओं का जन्म हुआ । मुक्तिबोध के अनुसार मानसिक द्रवण के उत्कर्ष का क्षण सौन्दर्यानुभूति का क्षम है । कलाकार का मुख्य धर्म यह है कि वह इस क्षण का चित्रण करें तथा उसकी सुन्दर आकृतियों को उपस्थित करें । सौन्दर्यानुभूति क्या है ? इस प्रश्न का जवाब देते हुए मुक्तिबोध ने कहा है, "सौन्दर्यानुभव अर्थात् कलात्मक अनुभव के लिए मनुष्य को क्षणभर के लिए ही क्यों न सही, अपनी दृष्टि बदलनी पड़ती है । आत्मबद्ध दशा के भीतर रहकर जो हमारी दृष्टि होती है, वह बद्धता से मुक्ति की दशा में प्राप्त दृष्टि से भिन्न है । क्षण भर के लिए क्यों न सही, आत्मबद्ध दशा से बाहर जाने, अर्थात् अपने पार जाने या इस जिन्दगी से जरा हटकर दृष्टि का कोण बदलने के उपरांत बाह्य-प्रत्यक्ष अथवा मानस-प्रत्यक्ष में भीगने और रमने से ही आत्मबद्धता से रहित वह मुक्ति की अवस्था प्राप्त होती है, जब हमारे मन का स्वतंत्र संचरण होता है और संवेदनात्मक उद्देश्यों के अनुसार, उदीप्त कल्पना-शक्ति जीवन अनुभवों को विशेष पैटर्न्स में उपस्थित करती हुई उन्हें संवेदनात्मक उदेश्यों की पूर्ति की ओर ले जाती है । यह सौन्दर्यानुभूति रास्ते चलते भी हो सकती है । किसी कारण दृश्य को देखकर, हमारे हृदय में जो आंदोलन होता है, वहाँ यदि मन का स्वतंत्र संचरण होने लगे और कल्पना उदिप्त होकर उसमें, क्षणमात्र के लिए ही क्यों न सही, हम सब डूब जाए तो निःसंदेह वहाँ हमें सौन्दर्यानुभव प्राप्त होगा ।"[2]

साहित्य की निर्भिती सौन्दर्य द्वारा होती है और सौन्दर्य की सृष्टि साहित्य के द्वारा । साहित्य और सौन्दर्य का परस्पर सम्बन्ध है । साहित्यकार

1. मुक्तिबोध रचनावली-5, डॉ. नेमिचन्द्र जैन, पृ.140
2. वही, पृ.262

भाषा, अलंकार, छन्द, बिम्ब, प्रतीक आदि से सौन्दर्य को स्थापित करता है । जगत् की प्रत्येक वस्तु में कवि को सौन्दर्य दिखाई देता है । साहित्य तथा साहित्यिक सौन्दर्य जीवन और जीवन सौन्दर्य से अलग बात नहीं है । वह साहित्य की स्वतंत्र सत्ता है । जिस साहित्यकार में जीवन से नैकट्य स्थापित करने की क्षमता रहती है उसकी कला श्रेष्ठतम तथा आकृष्ट होती है । इसीलिए महान साहित्यकारों की रचनाओं में जीवन शाश्वत बनाने की क्षमता रहती है और वे साहित्यकार अमर हो जाते है ।

साहित्यिक सौन्दर्य सत्यम् और शिवम् स्वरूप होता है । सत्य के कारण ही सौन्द र्य सार्वकालिक तथा सार्वजनीन बनता है । हम सौन्दर्य के माध्यम से ही सौन्दर्य का दर्शन करते हैं । सौन्दर्य शिवरूप भी है । साहित्य उदेश्यहीन कभी नहीं होता । मानवजीवन में शिव का महत्त्व अनन्य साधारण है । इसीलिए वहीं स्थान साहित्य में भी होता है । साहित्यकार सत्य को कल्पना के आधार पर प्रस्तुत करता है । अर्थात् सत्य और शिव, सत्य और सौन्दर्य एक ही वस्तु के तीन पहलू है । निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि सौन्दर्यानुभूति जब सर्जनात्मकता तक पहुँचती है तभी वह कलानुभूति का रूप धारण कर सकती है । इसका और आनंद का अनिवार्य सम्बन्ध रहता है । सौन्दर्यबोध प्रत्यक्षतः होता है और सौन्दर्यग्रहण का सम्बन्ध अन्तःकरण से रहता है । अतः स्पष्ट है कि सौन्दर्य काव्य का प्रमुख तथा अनिवार्य तत्त्व हैं ।

सौन्दर्य संवेदना मन का वह भाव है जो परिवर्तनशील सामाजिक जीवन के परिवर्तन और विकास की गति के साथ परिवर्तित होता रहता है । विकास की प्रक्रिया में सौन्दर्य के निकष भी परिष्कृत और समृद्ध होते रहते हैं । डॉ. रामविलास शर्मा कहते है, “सौन्दर्य किसे कहते हैं ? प्रकृति, मानव-जीवन तथा ललित कलाओं के आनंददायक गुण का नाम सौन्दर्य है ।”[1] इसी आनंदमय गुणों को स्वयं मुक्तिबोध ने भी सौन्दर्य प्रतीति माना है । उनके मत से सौन्दर्य मात्र व्यक्तिपरक निरपेक्ष सैद्धांतिक सत्ता नहीं है इसमें समाज-सापेक्षता भी आकांक्षित है । यथार्थपरक जीवन के समृद्ध अनुभवों की बुनियादी आत्मचेतना के कारण उनकी सौन्दर्यमीमांसा अधिक वस्तुनिष्ठ है । उनकी धारणा उन्होंने स्पष्ट लिखी है

1. आस्था और सौन्दर्य, डॉ. रामविलास शर्मा, पृ.20

कि सौन्दर्यसंवेदना और सामाजिक दृष्टि में परस्पर विरोध नहीं अपितु इनके बीच आंतरिक गहरी एकसूत्रात्मकता का अस्तित्व होता है । वे सौन्दर्यवादी मान्यताओं को समाजवादी, मार्क्सवादी धारणाओं की बुनियाद प्रदान करते थे । यथार्थपरकता उनका विशेष था । इसी शैली में लिखा साहित्य ही अपनी उपयुक्तता सिद्ध कर सकता हैं । वे मानते थे कि काव्यसृजन एक सांस्कृतिक प्रक्रिया है । वास्तविक जीवन जगत् से सम्बन्धित काव्यसृजन स्थायी होता है ।

मुक्तिबोध सौन्दर्य को अनुभूति का विषय मानते थे । सांस्कृतिक प्रक्रिया द्वारा प्राप्त होनेवाली अनुभूति आनंद प्रदान करती है इसलिए वे मानते थे कि सौन्दर्यानुभूति और जीवनानुभूति का परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध है । सौन्दर्य की वह अनुभूति आंतरिक होती है । यह आंतरिकता मानव तथा प्राकृतिक परिवेश पर निर्भर होती है । मानव-सम्बन्ध, विश्वात्मकता तथा जीवनमूल्य परिवर्तित होते ही सौन्दर्य के प्रमाण भी परिवर्तित हो जाते है । इसलिए उनकी सौन्दर्यानुभूति के बारे में कहा गया है, "सौन्दर्यानुभूति का सम्बन्ध जीवनानुभूति से मानकर उसे विलक्षण मानना तथा उसको कलात्मक सृजनसमय से सम्बन्ध जोडना उचित ही है ।"[1] इस तरह का सीधा सम्बन्ध स्थापित कर ही तो काव्य की सौन्दर्यानुभूति का आस्वाद लिया जाता है । स्वयं मुक्तिबोध का मत था कि सौन्दर्य तब उत्पन्न होता है जब सृजनशील कल्पना के सहारे, संवेदय अनुभव ही का विस्तार हो जायें । इसी दृष्टि में देखा जाएँ तो काव्यसृजन का परिप्रेक्ष्य बदल जाएँ, अनुभवों की विचारधाराओं में परिवर्तन हो जाएँ तो सौन्दर्य की संवेदना के निकष भी परिवर्तित हो जाते हैं । आधुनिक युग का मंत्र कर्म है तो सौन्दर्य की कल्पना इसी कर्मक्षेत्र से जुड़ गयी है । कर्मसौन्दर्य अब सारी सुन्दरता का एक विभाग बन गया है । आधुनिक काल में ज्ञान-विज्ञान के क्षितिज विस्तृत हो जायें । इसी दृष्टि से देखा जाएँ तो काव्यसृजन का परिप्रेक्ष्य बदल जाएँ, अनुभवों की विचारधाराओं में परिवर्तन हो जाएँ तो सौन्दर्य की संवेदना के निकष भी परिवर्तित हो जाते हैं । आधुनिक युग का मंत्र कर्म है तो सौन्दर्य की कल्पना इसी कर्मक्षेत्र से जुड़ गयी है । कर्मसौन्दर्य अब सारी सुन्दरता का एक विभाग बन गया है । आधुनिक काल में ज्ञान-विज्ञान के क्षितिज विस्तृत हो गए है तो

1. गजानन माधव मुक्तिबोध, डॉ. लक्ष्मणदत गौतम, पृ.84

सौन्दर्य के मूल्य भी विस्तृत, नयी सजगता धारण किए हुए बन गए है । मार्क्सवादी चिंतनधारा के कारण, उसके प्रभाव के कारण सामाजिक विकास प्रक्रिया की सौन्दर्यधाराएँ जनवादी सौन्दर्यधारणाएँ बन गयीं । मानव की संघर्ष की ज्वलंत चेतना और विषम स्थितियों को जीतकर वर्चस्व प्रस्थापित करने की तीव्र इच्छा में सौन्दर्य का अन्वेषण होता रहा । जीवन को संपूर्णता प्रदान करने के प्रयत्नों में सौन्दर्याभिलाषी बनना जरूरी होता है । मानव-जीवन और मनुष्य का चैतन्य इन दोनों में सौन्दर्य की वस्तुतः सत्ता निहित होती है । इसलिए डॉ. रामविलास शर्मा का यह विधान कि, "सौन्दर्यबोध इन्द्रियबोध तक सीमित नहीं है, उसकी सत्ता मनुष्य के भावजगत् और उसके विचारों में है ।"[1] एक ऐसा निकष है कि जिससे सौन्दर्य की अनुभूतियाँ परखी जा सकती हैं । मनुष्य का भावजगत् और विचारक्षेत्र इसी सौन्दर्यानुभूति से आनन्दविभोर और उल्लासित बनता है ।

मुक्तिबोध की कविता में सौन्दर्य संवेदना का दो पहलुओं को आधारभूत बनाकर अध्ययन किया है । पहला है मानवीय सौन्दर्य तथा दूसरा है प्राकृतिक सौन्दर्य । मुक्तिबोध मार्क्सवादी थे यह सर्वश्रुत है । वे काव्यसृजन को आत्मिक प्रयास मानकर कहते है - "काव्य-सृजन में जो सांस्कृतिक मूल्य परिलक्षित होती हैं वे व्यक्ति की अपनी देन नहीं, समाज की या वर्ग की देन है ।"[2] उनके इस मंतव्य के कारण ही उनकी कविता से भावजगत् आनन्दमय बन तो जाता ही है अपितु विचारक्षेत्र भी प्रभावित समृद्ध, सतर्क बन जाता है । आधुनिक यांत्रिक युग में बाह्य एवम् आंतरिक संघर्षो के बीच पिसे जा रहे मनुष्य का वर्णन वैचारिक सौन्दर्य संवेदना जागृत करता है;

"पिस गया वह भीतरी,
ओ 'बाहरी दो कठिन पाटो' के बीच,
ऐसी ट्रेजिडी है नीच ।"[3]

सामाजिक भ्रष्टाचार तथा अनैतिकता के बीच पिस जानेवाला मध्यवर्गीय

1. आस्था और सौन्दर्य, डॉ. रामविलास शर्मा, पृ.33
2. मुक्तिबोध रचनावली-2, डॉ. नेमिचन्द्र जैन, पृ.315
3. तारसप्तक, अज्ञेय, पृ.59-60

संवेदनशील मन किस तरह अस्वस्थ होता है यह एक मिथक द्वारा प्रकट हुआ है । औद्योगिकरण से मनुष्य कैसे स्वयं यंत्ररूप बना है यह बताते समय उनकी रचना यथार्थ बनी है,

"दो लालटेन-से नयन दीन,
निष्प्राण स्तंभ,
दो खडे पाँव,
लकडी का खोखा,
वक्ष रिक्त,
मस्तिष्क तेल,
की है मशीन ।"[1]

मुक्तिबोध का शोषित, निम्न, सर्वहारा वर्ग के विपन्न मनुष्य का वर्णन हृदय को दहला देता है,

"धोबी के मैले कपड़ो के गठ्ठ सा,
निर्जीव पड़ा है तेरा तन-मन,
उष्ण रक्त के दीर्ध दाण-सा,
अण्डाकार बना है जीवन..... ।"[2]

वास्तव में उनका जीवन ऐसा ही अण्डाकार होता ही है..... कहीं द्वार नहीं, कोना नहीं, दम घुटता जाएगा इतना संकुचित और बन्द..... कहीं से भी कोई भी उसे फोड देगा..... अर्थहीन मनुष्य जीवन की इतनी अन्तहीन शोकान्तिका का यह यथार्थ वर्णन मन को सोचने पर बाध्य कर देता है कि वर्गीय, वर्णाश्रमाधिष्ठित सामाजिक रचना कब तक मनुष्य के मृदु भावों को कुचलता रहेगा ? 'पूँजीवादी समाज के प्रति' में उनका सारा क्षोभ, सारा क्रोध, धृणा, शब्दों शब्दों में व्यक्त हुई हैं,

"तेरे रक्त में भी सत्य का अवरोध,
तेरे रक्त से भी धृणा आती तीव्र,
तुझको देख मितली उमड़ आती शीघ्रर

1. मुक्तिबोध रचनावली-1, डॉ. नेमिचन्द्र जैन, पृ.185
2. वही, पृ.185

तेरे हास में भी रोग-कृमि है उग्र,

तेरा नाश तुझ पर क्रुद्ध, तुझ पर व्यग्र ।"[1]

पूंजीवादी समाज के अत्याचारों-जुल्मों में फंसे सर्वहारा वर्ग के मन में ऐसी ही भावनाएँ होती हैं । मानवीय सौन्दर्य से अभिभूत वैचारिक संवेदना जागृति इसी कारण होती है । बीसवीं शती के दूसरे दशक में रूस में क्रान्ति हो गयी । जुल्मी जारशाही का अंत हुआ । जो नयी सत्ता प्रस्थापित हुई वह आम, साधारण, श्रमजीवि जनों की थी । इसी सत्ता की एक नई सभ्यता उदित हुई है, वहाँ का माहौल कैसा होगा ? मुक्तिबोध का अदम्य विश्वास, वर्गविहीन समाजरचना पर उनका दृढ़ विश्वास आगे की पंक्तियों में झलकता है,

"कोई नई सभ्यता है, वह सौ सूर्यो का प्रात,

अब तो सौ समुद्र, सौ नदियाँ, सौ चन्द्रों की रात ।"[2]

इतने सुन्दर समाज में जीनेवाले स्त्री-पुरूष कवि को वंदनीय है । संघर्षशील मानवी वृत्ति उन्हें हमेशा प्रिय रही है इसीलिए वे कहते है,

"लाल क्रान्ति की लड़नेवाली मजूर-सेना आम ।

उनको, उनके स्त्री-पुरूषों को मेरा लाल सलाम ।"[3]

साधारण आम आदमी के कार्यकलापों पर होनेवाला उनका दृढ़ विश्वास कभी इस तरह प्रकट होकर विचारों के हिन्दोलों को झखझोरकर रख देते हैं,

"कोलाहल करता सगर्व उद्धृत मजदूरों का जुलूस,

प्राण के बंद देता विदार,

है उष्ण स्पर्श,

शत-लक्ष प्रात सूर्यों की छवि-सा वह,

भरता उभार ।"[4]

प्राणों के बन्धनों को तोड़ता, विदीर्ण करता वह जुलूस अब मात्र एक

---

1. मुक्तिबोध रचनावली-1, डॉ. नेमिचन्द्र जैन, पृ.117
2. वही, पृ.131
3. वही, पृ.131
4. वही, पृ.139

नहीं किन्तु 'शत-लक्ष सूर्यो की छवि को उभारता है !' इतनी भव्य और उदात्त कल्पना पाठकों को सौन्दर्यानुभूति प्रदान करती ही है । हमारी मानवीय सौदर्य की संवेदना और चेतना का विकास इसी कारण तो होता है । मुक्तिबोध का 'मैं' एक साधारण व्यक्ति है परन्तु वह इतना कार्यरत है, इतना दृढ़ संकल्प है, उसका श्रमों में इतना प्रगाढ़ विश्वास है, अपनी कार्यकलापों में वह इतना लीन है कि वह आत्मनिर्भरता की मिसाल बनता है । वह कहता है,

"मैं जो भी एक नगण्य व्यक्ति
करता रहता दिन-रात काम
पर मटमैली सारी राहों को
एक नयी ही दिशा अचानक
गहते देखा
विश्वसृजन का मूल स्त्रोत
मेरे उर में भी बहते देखा ।"[1]

कवि मुक्तिबोध का 'मैं' विश्व व्यापक है । जरूर उनमें 'विश्व-सृजन' का मूल स्त्रोत है इसीलिए तो वे सारे जहाँ की आत्मा एक ही मानते हैं और जनों का चेहरा भी एक ही मानते हैं । सामाजिक दायित्व का व्यक्तिनिष्ठ ऐसा इतना सुन्दर उदाहरण दुर्लभ ही होता है,

"जन-जन के शीर्ष पर
शोषण का खड्ग अति घोर एक
दुनिया के हिस्सों में चारों ओर
जन-जन का युद्ध एक
मस्तक की महिमा
व अंतर की उष्मा
से उठती है ज्वाला अति क्रुद्ध एक
मस्तक की महिमा
संग्राम का घोष एक
जीवन-सन्तोष एक

1. मुक्तिबोध रचनावली-1, डॉ. नेमिचन्द्र जैन, पृ.141

क्रांति, पुर का हो

जन-जन का चेहरा एक ।"[1]

'वसुधैव कुटुम्बकम्' तथा 'भवत्येक नीडम् तत्र' का इतना सुन्दर विचारनिष्ठ उदाहरण पढ़कर पाठक की मानवीय वैचारिक सौन्दर्य संवेदना और भी गहरी हो जाती है । वे स्वतंत्र अस्तित्व होकर भी सारे विश्व में, स्त्री-पुरूषों, बड़े-बूढ़ों, बाल-बच्चों में खून के रूप में शामिल हैं, 'बहते है लाल खून बनकर' कविता में वे इतने सामर्थ्यशाली है कि उनका 'मैं' कहता है,

"मुझे निजत्व-प्रकाशनहित,

फ्लैश लाइटों व मेघों व व्योम की

जरूरत ही नहीं ।"[2]

वामन की तरह धरती तो क्या अंबर को भी पादाक्रान्त कर मुक्तिबोध का 'मैं' शेष हैं !! इसीलिए तो वे 'मैं' को झोंककर बड़ी ही तुच्छता से भाव व्यक्त करते है,

"सेवाओं की कीमत किनसे लूँ मैं

उनसे नहीं कि जिनकी मैंने सेवा ली है,

अरे ! मूल्य देने लायक वे कभी नहीं थे ।"[3]

सर्वहारा, शोषित, निम्न वर्ग के लिए मुक्तिबोध अत्यंत संवेदनशील थे । अत्याचार-जुल्म, शोषण के विरोधी थे । ऐसे लोगों का वर्णन वे इतनी आत्मीयता से, हू-ब-हू करते थे कि जीवन्तता उसका विशेष बन जाता था । उनकी वह गंदी नाली के पासवाली बस्ती, ईंट-पत्थरों के चूल्हें, बिखरे बालवाले बाल-बच्चे देखकर उनका मन व्यथित हो जाता है । उनके मन की करूणा जागृत हो उठती है, उनके शब्दों द्वारा प्रकट हुई आत्मग्लानि से पाठकों की करूणा संवेदना अभिभूत हो जाती है,

"मुझको है भयानक ग्लानि

निज के श्वेत वस्त्रों पर

1. मुक्तिबोध रचनावली-1, डॉ. नेमिचन्द्र जैन, पृ.144-45
2. वही, भाग-2, पृ.23
3. वही, भाग-2, पृ.50

स्वयं की शील-शिक्षा सत्य-दीक्षा के

विरोधी अस्त्र-शस्त्रों पर

कि नगरों के सुसंस्कृत सौम्य चेहरों से

उचटता मन..... ।"[1]

महानगरीय जीवन समस्या के बारे में और घूमंती जन-जातियों के बारे में इतनी पारदर्शी सोच मानवीय सौन्दर्य संवेदना सिक्त मन की ही हो सकती है इसी कारण जब मुक्तिबोध कहते है, 'चाहिए मुझे मेरा असंग बबूलापन' तो आश्चर्य नहीं होता । वास्तव जिन्दगी संघर्षो, कष्टों, दु:खभरे अनुभवों से लिप्त थी, उन्हीं को लेकर क्यों ना उनकी अभिव्यक्ति हुई हो ?

"चाहिए मुझे मेरा खोया हुआ

रूखा सूखा व्यक्तित्त्व

चाहिए मुझे मेरा पाषाण

चाहिए मुझे मेरा असंग बबूलापन !!"[2]

अपनी, एक कवि की स्वतंत्र, सन्तप्त, क्षुब्ध अभिव्यक्ति को इतनी अहंतापूर्वक, दृढ़तापूर्वक आत्मरक्षित करने का उनका मंतव्य 'बबूल' कविता द्वारा इन शब्दों के अवगुण्ठन में व्यक्त हुआ है कि 'बबूल' जैसे काँटेदार वृक्ष को भी कोई इतनी आत्मीयता से अपनाता है इस विचार से मन विस्मित हो जाता है । समाज में उच्चवर्णियों की नजर में सदा बहिष्कृत, उपेक्षित जनों का प्रतीक है बबूल ! मुक्तिबोध कहते है, "वृक्षों के अभिजात वर्ग की आँखों में वह सदा बहिष्कृत !"[3] समाज में उपेक्षितों की स्थिति का ऐसा वर्णन दुर्लभ ही है । शब्दों का एक-एक रत्न सामने आ जाता है - बबूल है 'नग्न सुदामा' परन्तु 'वसंत के वासंती' रंग जब उस पर छाते हैं तब

"उभर-उभर उठती हैं अंतस्तल की छुपी लकीरें

आसमान की ताराओं की

सलज चाँद की

---

1. मुक्तिबोध रचनावली-2, डॉ. नेमिचन्द्र जैन, पृ.222
2. वही, भाग-2, पृ.49
3. वही, भाग-1, पृ.175

लाल सूर्य की

वह बबूल

जो चिरनिर्वासित

एक प्रतीक बना है

केवल जन-जन के निःसीम त्याग का ।"[1]

जनवादी परिप्रेक्ष्य में मानवीय सौन्दर्य संवेदना जागृत करनेवाली मुक्तिबोध की कविता कभी कभी जटिल, संश्लिष्ट रूप धारण करती है परंतु उसमें समाज का वास्तविक चित्रण होता है । कवि होने के नाते मुक्तिबोध अपना सामाजिक दायित्व पूर्णरूपेण निभाते है । श्रद्धा, आस्था, कर्मशीलता, संघर्षशीलता, अपने अहम् की स्थापना, मानवता पर दृढ़ विश्वास, शोषित सर्वहारा वर्ग के लिए आत्मीयता आदि गुणों के स्पष्ट निर्देश उनकी कविता में दृष्टिगोचर होते हैं, जिनसे पाठकों के मन में भी अदम्य विश्वास जागृत होता है ।

मानवीय सौन्दर्य संवेदना के अंतर्गत 'पुरूष' को संबोधन या पुरूष का वर्णन या पुरूष होने की दर्पोक्ति आदि के उल्लेख मुक्तिबोध की कविता में है । पुरूषप्रधान सामाजिक परिप्रेक्ष्य में उनके ये उल्लेख एक अलग ही मानवीय सौन्दर्य संवेदना का एहसास दिलाते है ।

"अंतराल-विवर के तम में

लाल लाल कुहरा,

कुहरे में सामने रक्तालोक-स्नात-पुरूष एक

रहस्य साक्षात् ।"[2]

'अँधेरे में' उन्हें एक ही सामासिक शब्दयोजना द्वारा मनःश्चक्षुओं के सामने उस पुरूष की छवि साकार हो जाती है । उसी तरह द्वार पर जब साँकल बजती ही रहती है तब कवि जानता है कि, कौन व्यक्ति बाहर खडा है,

"यह वही व्यक्ति है, जी हाँ !

जो मुझे तिलिस्मी खोह में मिला था

......अरे ! उसके चेहरे पर खिलती हैं, सुबहें

---

1. मुक्तिबोध रचनावली-1, डॉ. नेमिचन्द्र जैन, पृ.175
2. वही, भाग-2, पृ.320

गालों पर चट्टानी चमक पठारों की
आँखों में किरणीली शांति की लहरें ।"[1]

एक अलौकिक पीली आभा की पृष्ठभूमि पर चमकता नीलासाँवला चेहरा आँखों के सामने घूम जाता है । जब युवकों को संबोधित कर वे प्रेम, कर्म और कला के बारे में 'हृदय बेचने' को मना करते हैं तब उनकी उपरोक्त तीनों के बारे में कौन-सी धारणाएँ है इसकी प्रतीति होती है । सृजन - वह कविता का हो या किसी नये जीव का उसका चित्र वे शब्दांकित करते हैं । उनका चित्रात्मक का काव्यविशेष यहाँ पर अनुभूत होता है ।

"उर में संभाले दर्द
गर्भवती नारी का
कि जो पानी भरती है
वजनदार घडों से
कपडों को धोती है भाड़ भाड़
घर के काम बाहर के काम सब है ।
अपनी सारी थकान के बावजूद ।"[2]

यह मुक्तिबोध का स्त्री की देह का वर्णन है परन्तु लीक से त्यजकर । परंपरा थी कि नारी की देह का वर्णन चंद्र, तारे, फूल, निर्झरों आदि के बिना अधूरा रह जाता है । इस परंपरा को ऐसे वर्णनों से खंडित किया गया पढकर, नारी मात्र भोग्या नहीं, उसका त्याग, श्रमशीलता, पारिवारिक चिंताओं को वहन करना और मंगल मातृत्व के दायित्व निभाना आदि सारे निःस्वार्थी गुणसमुच्चयों को इतनी आत्मीयता से प्रस्तुत कर मुक्तिबोध ने अपना आधुनिक दृष्टिकोण व्यक्त किया है । 'मानव का सुख-दुःख' कविता में तो उनका 'मैं' अत्यंत दृढ़ता से, पूरे आत्मविश्वास के साथ कहता है "मैं सुन्दर और असुन्दर की सुन्दरता" - यह अत्यंत भावभीनी सौन्दर्य संवेदना है ।

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदीजी की परिभाषा के अनुसार "वस्तु या व्यक्ति

---

1. मुक्तिबोध रचनावली-2, डॉ. नेमिचन्द्र जैन, पृ.324
2. वही, भाग-1, पृ.238

की आकर्षण शक्ति ही उसका सौन्दर्य है ।"[1] असुन्दरों में सुन्दरता महसूस करनेवाले कवि की पूर्ण आंतरिक सौन्दर्य संवेदना यहाँ पर पाठकों के अंतरंग को भी आलोकित करती है । व्यक्ति की आकर्षण शक्ति में अन्तर्निहित सौन्दर्य संवेदना यहाँ पर जागृत हो जाती है । अपने एकांतप्रिय, सूनेपन में ताकते रहने की वृत्ति को स्पष्ट करते हुए जब वे कहते है, पुरूष हूँ, आँसू मैं गिरा नहीं सकता हूँ ।"[2] तब वे मानो सारे एकांतप्रिय कठोर स्वभाव के व्यक्तियों का प्रतिनिधित्त्व करते हैं । आँसूओं का मोल समझ उनकी अवहेलना न करने की कठोर वृत्ति के परिचायक बनकर वे उसी वृत्ति की गंभीरता की पहचान कराते है । चीन के किसान से मुक्तिबोध कहते है,

"श्रमसिक्त चेतना की
नव-छन्दयुक्त कविता
तैयार कर रही है ।
बिलकुल नयी जमीनें
उस ओर जाऊँगा मैं ।"[3]

श्रमप्रतिष्ठा को उच्च स्थान देनेवाली नयी पीढ़ि को 'नयी जमीनें' कहकर विचारात्मक और भावात्मक सौन्दर्य संवेदना मुक्तिबोध ने जागृत की है । यही विश्वास उन्होंने 'चेहरा गंभीर उदास' में व्यक्त किया है,

"वे धँसे हुए जलते नेत्रोंवाले जन-जन
..... स्वदेश की मानवता
अपना गरीब जनराष्ट्र देश का चित्र लिए
सूखे कुएँ की बालटी टूटी-सी
त्यों परित्यक्त असहायावस्था में जीकर
भी अधिकाधिक मानव बनने की कोशिश में
जिनका कपाल रक्ताल हुआ, कटि टूटी-सी
वे भी आगे बढ़ने की हिम्मत रखते हैं ।"[4]

---

1. हजारीप्रसाद ग्रंथावली भाग-10, हजारीप्रसाद द्विवेदी, पृ.19
2. मुक्तिबोध रचनावली-1, डॉ. नेमिचन्द्र जैन, पृ.387
3. वही, पृ.387
4. वही, पृ.342

श्रमजीवियों के बारे में मुक्तिबोध विशेष आस्था रखते हैं । 'श्रमशील कष्टजीवी मन का जीवनविश्व' हो या फिर 'बहती है सरिता अजस्र', 'आधुनिक कष्टजीवी जीवन की क्रांतिशील' यह संकल्पना हो, श्रमजीवियों का सार्थ अभिमान उसके द्वारा झलकता है । निडरता, निर्भयता जिसके स्वभाव में अनुस्यूत है किसी ऐसे 'तुम' को संबोधित कर मुक्तिबोध कहते है,

"तुम निर्भर, ज्यों सूर्य गगन में
अन्तहीन आकाश रौंदता
एकाकी, कटु, तीव्र, विलक्षण
तुम निर्भय सूर्य गगन में ।"[1]

'आकाश को रौंदकर' चले आने की कल्पना ही कितनी विराट है !

मुक्तिबोध की 'कहते हैं लोग-बाग' कविता पढ़कर साधारण जनों की छिद्रान्वेषी प्रवृत्ति का पूरा विश्लेषण ही मानों मिल जाता है । ऐसे छिद्रान्वेषी वृत्ति के लोगों को उन्होंने चील, बूढा, गिद्ध कहा है । 'मरी हुई गाय' का क्लेवर नोंचकर खानेवाले बूढे गिद्ध, मँडराती चीलें आदि से भरा वातावरण उन्हें 'भयंकर-मानव-उपेक्षा' का ना लगे तो आश्चर्य ! निंदक तो हर जगह मिलते हैं और इसीलिए तो दुनिया में मानव उपेक्षा हो रही है ! फिर भी वे उपेक्षा को उपेक्षित कर आश्वस्त भाव से कहते है,

"खुली स्वाधीन पृथ्वी का
श्रमिक मैं नागरिक स्वाधीन,
व जनभ्रातृत्व के सहज आनंद में तल्लीन ।"[2]

व्यक्तित्त्वनिहित सामाजिक दायित्व का उमदा आविष्कार 'जन-भ्रातृत्व' शब्द द्वारा हुआ है । इसी प्रेरणा से उद्यत हो वे 'मित्र' से संबोधित करते हैं । वास्तव का कवि अनवरत 'मित्र' के माध्यम से स्वयं को अन्य, मध्यवर्गीय बुद्धिजीवियों को संबोधित करता हुआ अन्तर्विरोधों, विपरीत स्थितियों के होने पर लक्ष्योन्मुख रहने की प्रेरणा देता है । वे कहते हैं,

---

1. मुक्तिबोध रचनावली-1, डॉ. नेमिचन्द्र जैन, पृ.286
3. वही, पृ.235

"तू किससे भिक्षा माँगेगा ?
सब भिक्षुक हैं, सब भिक्षुक हैं !
करनी ही होगी.....
तुझे, मित्र
प्रातः की कठिन परीक्षा ।"[1]

अपनी अहमियत को सुरक्षित रख अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का उपभोग लेनेवाले सौ प्रतिशत सत्यवादी कवि की काव्यचेतना का इतना सुंदर आविष्कार और एक कविता द्वारा भी होता है - उनकी 'अपने ही' कविता ऐसा सुन्दर आविष्कार करती हैं -

"एक विश्व-पुरूष ने,
दुनिया के साथी ने एक जगह कहा है
जीवन अनंत है
प्रतिपल सृजनशील उसका अनंत वक्ष है,
अनंत संपन्न है !"[2]

मानवीय सौन्दर्य संवेदना की विराटता यहाँ दृष्टिगत होती है । कवि की नजर में साधारण मनुष्य जो कि समस्त समाज का एक क्षुद्र घटक है, अपने को स्वतंत्र नागरिक कहलाता है, प्रत्यक्ष में उसकी स्थिति कैसी है ? स्वार्थी, अमीर, पूँजीवादी, शोषक समाज में यह शोषित, सर्वहारा, दीनहीन मनुष्य प्रतीत होता है -

"चूहे-सा उपेक्षित
बैलगाडी के अचानक (राह में)
दो भग्न पहियों-सा पराजित
युद्ध में टूटे हुए उध्वस्त पुल-सा
भग्न ईश्वर-मूर्ति-सा विखण्डित
फाडी हुई चिठ्ठी-सा घोर अपमानित
.....जर्जर मलिन आँचर-सा अनावृत दीन

1. मुक्तिबोध रचनावली-1, डॉ. नेमिचन्द्र जैन, पृ.214
2. वही, पृ.211

बूढे करूण धुँधले लोचनों-सा
मलिन, तेजोहीन ।
..... फेंके हुए प्याज के छिलकों सरीखा
धूल खाता ।"[1]

कभी मुक्तिबोध ने समाज के 'मैं' या 'तुम' को संबोधित किया है तो कभी उनकी कविता में साधारण, आम आदमी, नगण्य व्यक्तित्ववाले व्यक्ति, व्यक्तिवाचक संज्ञाओं के चोलों में आकर उन्मुक्त संचार करते हैं । कभी रामू तो कभी लकड़ी का रावण, कभी ब्रह्मराक्षस, कभी भूत तो कभी दैत्य या दानव कभी चीन का किसान तो कभी रास्ते पर कंधी बेचनेवाला कालिदास ! कभी शतधन्वा तो कभी भर्तुहारी ! कभी तो ऐतिहासिक व्यक्तियों के उल्लेख भी आये हैं ।

मुक्तिबोध की सौन्दर्यसंवेदना कविताओं के विवेचन के लिए दूसरा पहलू है प्रकृति । मुक्तिबोध की प्राकृतिक सौन्दर्य संवेदना भी अनन्य साधारण है । उन्होंने अपनी कविता में प्रकृति के मनोहर और नाजुक, कोमल, आनंददायी रूप के साथ उसके विराट और रूद्रभीषण सौन्दर्य की अनुभूतियों को भी अभिव्यक्त किया है ।

प्रकृति की रमणीयता और आल्हादकारिता मन को प्रसन्न कर देती है । प्रकृति के उपादानों के मधुर, सुन्दर, नाजुक, कोमलतापूर्ण उल्लेख और वे भी संस्कृत भाषा से सिक्त । अपने आप कविता पंक्तियों को गेयता तथा तालबद्धता प्राप्त हो जाती है । कभी वे अपनी कवितासुन्दरी को 'चन्द्र का मुकुट' पहना देते है । झीनी, पतली चाँदनी को वे 'तारों की मृदु उज्जवलता' कहते है । शीतकाल की रात उनकी नजर में, "शिशिर निशा का धूम्रांचल" होती है, तो पूर्ण यौवनावस्था के प्रति हर पल बढनेवाली पूनम की रात 'शशि के मधूर करों से निशि का स्निग्ध अंग खुलता जाता है ।' मुक्तिबोध जैसे क्रान्तिदर्शी कवि के अंतर्याम में एक उत्तम चित्रकार भी छुपा हुआ है..... उनकी कविता के चित्रात्मक वर्णन उसका प्रमाण है । सांध्यकालीन मेघों का उनका यह वर्णन "साँझ किरन से श्याम घनों की कोरे" मन को छू लेता है । उनकी 'जंगल' कविता की कई पंक्तियाँ उनकी इस चित्रात्मकता की कुशलता का प्रमाण है ।

---

1. मुक्तिबोध रचनावली-1, डॉ. नेमिचन्द्र जैन, पृ.194

"दूर बह रही नदिया-तीरे
श्यामल हरे नीर के ऊपर
निबिड द्रुमों की छाया-तम में ।"[1]
"गहन नील है गगन बह रही
पथरीले सरि अपने स्वर पर
गरम किरण सूरज की प्यारी
उष्ण कर रही मेरा अंतर ।"[2]

ये पंक्तियाँ मन पर जादु कर देती हैं । इसी कविता में वे हू-ब-हू वर्णन करने में अत्यंत सफल हुए है -

"पीले ज्वार-खेत के बाजू
गाडी श्वेत बैलवाली है
सूनी पड़ी, खड़ी है गुपचुप ।"[3]

मुक्तिबोध के कृषि-संस्कृति के साथ गहरे, विशेष भावात्मक सम्बन्ध होने के कारण उनके ग्रामजीवन के चित्रण सजीव हो गये हैं । उनके वर्णनों की खासियत ही रही है कि कम से कम शब्दों में यानी संस्कृत प्रचुर सामासिक शब्दयोजना द्वारा प्रकृति के नाजुक, कोमल, सुंदर रूप की वे पाठकों के सामने नुमाईश करते हैं । शब्द पढते ही मन को एहसास होता है ऊँचाई पर खडा हो पाठक विहंगावलोकन कर रहा है, प्रत्यक्ष देख रहा है,

"तन्द्रिल-नील-हरित-श्यामल जल
पर फैली है शांत स्निग्ध चिर
सघन हरे तरूओं की छाया ।"[4]

प्रकृति के रंगीन रूपों के वर्णन से कविता की पंक्तियों को गुनगुनाने की चाहत होती है -

---

1. मुक्तिबोध रचनावली-1, डॉ. नेमिचन्द्र जैन, पृ.95
2. वही, पृ.95
3. वही, पृ.95
4. वही, पृ.96

"पीत-गुलाबी-लाल-श्वेत-
सुमनों में मृदु सारी का आँचल
नील गगन है सौन्दर्यानुकूल ।"[1]

इसी नील गगन के तले की हर बात उन्हें सुंदरतापूर्ण लगती है, चाहे वे खेत ही क्यों ना हो -

"शादूल खेत अछोर छू रहे
मुग्ध नील अम्बरर के पदतल ।"[2]

यह सुंदरता किसी 'तेरे स्मित' की है ।

कभी कवि की प्रसन्न उदासी में भी परिवर्तित हो जाती है । जीवन कितना सुंदर क्यों ना हो, मृत्यु की छाया उसे उदास कर देती है । मन के भावों की तरह तब प्रकृति के उपादान भी उदास, दुःखभरे, व्याकुल डरावने लगते हैं -

"घनी रात, बादल रिमझिम हैं
दिशा मूक निःस्तब्ध वनान्तर
.....निःस्तब्ध गगन, रोती सी सरिता..... ।"[3]

कवि यह सत्य भी कभी भूलता नहीं कि यहाँ मानव सबकुछ होकर भी उसका मूल्य अंशमात्र नहीं है । प्राकृतिक उपादानों का अवलंबन करके ही मुक्तिबोध यह चिरंतन सत्य बताते हैं -

"मैं हूँ नम्र धूलि के कण-सा
मैं अजस्त्र पृथ्वी के मन-सा ।"[4]

कितना विरोधाभासात्मक वर्णन इन शब्दों में है । कोमलता से परिपूर्ण उपादानों के वर्णन में उनकी शब्दसामर्थ्य भी कोमल बन जाती है । एकात्म बनने की, दूसरे में लीन होने की उनकी कल्पना ऐसी रमणीय है

---

1. मुक्तिबोध रचनावली-1, डॉ. नेमिचन्द्र जैन, पृ.97
2. वही, पृ.98
3. वही, पृ.114
4. वही, पृ.121

"रात संध्या को स्वयं में मग्न करने

मधुरतम गोधूलि बेला में

क्षितिज के पास ।"[1]

इस तरह कवि उस 'तुम' के पास जाता है । उसके मन में जो कोमल भाव हैं, उनके कारण उसे रात ऐसे लग रही थी,

"नयन के कण,

हो गए थे,

तारकामय, चाँदनीमय, फूल दलमय रात नभ के,

निशा की चाँदनी से नवल आभा ।"[2]

रात्रि के हर समय का सुन्दर वर्णन कवि के मन को लुभाता है । चाहे वे रात्रि शिशिर ऋतु की हों चाहे ग्रीष्म की या ऋतुराज वसंत की, कवि कहते हैं,

"गौर वासन्ती निशा में,

सरसराते नीम-तरू के पात से.....

एक तो निशा ।"[3]

मुक्तिबोध की प्रकृतिप्रियता सजीव वर्णनों से पाठकों का दिल थाम लेती है । मुक्तिबोध की कविता में सौन्दर्यसंवेदना के उल्लेख मात्र ऋतुवर्णन से नहीं किन्तु समुद्र, समुद्र-पुलिन, समुद्र-तट आदि के रूपों में पाये जाते हैं ।

"सागर की साँवली तरंगों के दिगन्त पर

एक दूज का छिपता-सा अनुदार चाँद ।

मैं हूँ विनम्र अंतर नत-मुख

ज्यों लक्ष-फूल-पत्तोंवाली वृक्ष की शाख ।"[4]

मुक्तिबोध की चित्रात्मकता का यह और एक उदाहरण है । परिवर्तन चैतन्यमय समाज का और उस समाज से जुड़े हुए मानवमन का धर्म है । इसके कारण हुए परिवर्तन का वर्णन उन्होंने अत्यंत रमणीयता से किया हैं,

---

1. मुक्तिबोध रचनावली-1, डॉ. नेमिचन्द्र जैन, पृ.129
2. वही, पृ.129
3. वही, पृ.220
4. वही, पृ.285

"हृदय की प्यासी प्यासी धूल
सुगंधित होकर
ज्ञान-कर्म में तपे पहाडी जीवन-मैदानों में
प्यारी उमग रही है ।
नया प्यार अब युवा हुआ है
अब आलिंगन में धरती की सुगंध गहरी बौरायी हैं ।
अब चुंबन में भी धरती की,
गरम-गरम माटी का स्वाद बसा हैं ।
'औं' होठों पर आसमान की शीतल ओस
सरस वासंती अकुलायी हैं ।"[1]

परिवर्तन हुआ है उस कारण चैतन्य का निर्माण हुआ है..... पाठकों का मन उस कल्पना द्वारा माटी का स्वाद लेने की जो अधिरता दिखाता है वह अधीरता 'तुम्हें विश्वास होगा क्या' इस कविता की पंक्तियों में विलीन हो शांति महसूस करने लगता है.....

"कभी रात के ठंडे अंधेरे में,
सितारे धुंध की धुंधली चमकती
....हवा के आँचलों से गंध झरती हहै,
हिय के शांत कुहरे में
भूरे-भूरे मैदानों पर खिली है चाँदनी
कि जिसके नीले कुहरे में,
क्षितिज समा गया ।"[2]

मुक्तिबोध भावों का वर्णन ऐसे अर्थगर्भ शब्दों में करते हैं कि पाठक के मन के भाव ही मानो शब्दरूप धारण करते हैं । हृदय के विषादभाव प्रकृति के रम्य, शांत, स्निग्ध उपादानों से कम हो जाते हैं इसीलिए अत्यंत मनोरम शब्दों द्वारा जब से विश्वास देते हैं तब पाठक की सौन्दर्यसंवेदना भी रोमांचित हो उठती है -

"सुनसान खण्डहरों पर इनके जो अंधकार

1. मुक्तिबोध रचनावली-1, डॉ. नेमिचन्द्र जैन, पृ.285
2. वही, पृ.296-303

अब तक छाया था
आज शीघ्र हो रहा दूर !
अब उन पर स्निग्ध चमकता है मधुशील चाँद !
चैतन्य चाँदनी में
खण्डहर की छायाएँ लंबी गंभीर !!
मैं देख हुआ भयभीत शीत
पर साथ-साथ है मुग्ध चाँद,
चैतन्य चाँद !
मैं काट लूँगा अपने जीवन का विषाद !"[1]

कितनी मनोहर कल्पना है ! चैतन्य पूर्ण चाँद के साथ चलकर विषाद मिटाने का विश्वास देनेवाली मुक्तिबोध की यह शब्दयोजना एक अनोखी सौन्दर्य संवेदना जागृत करती है । किसी का मात्र पत्र आने से कवि का मन ऐसे ही मचलता है, तब तो अछूता आकाश भी उनकी दृष्टि में प्रतिबिम्बित होता है,

"हमारे श्याम घर की छत
हुई निःसीम नीले व्योम-सी उन्नत
.....इतनी ही नहीं तो.....
हमारी चारदीवारी
क्षितिज से मिल गयी चलकर !"[2]

मिट्टी मानव मात्र का अंतिम रूप है । उसीसे वह ऊपर उठता है और फिर उसीमें मिल जाता है । यह तो व्यावहारिक सत्य है, परंतु इसी मिट्टी पर मुक्तिबोध की लिखी पंक्तियाँ सुंदर अनुभूतियाँ प्रदान करती हैं । वे लिखते हैं,

"हिये की धरत्री की
बडी अजीब (आँसुओं से नमकीन)
वह मिट्टी की सुगंध
मेरे हिये में समाती है ।

---

1. मुक्तिबोध रचनावली-1, डॉ. नेमिचन्द्र जैन, पृ.228
2. वही, पृ.240

दिल भर उठता है

ओस-गीली झुलसी हुई चमेली की आहों से ।"[1]

यहाँ बिम्बयोजना का इतना सुंदर उपयोग मुक्तिबोध ने किया है कि पंक्तियाँ पढ़ने के बाद चमेली की गंध नाक में महकने लगती हैं । 'द्युति की कली' कविता में लिखा हैं,

"....वह मोतिया आकाश की कर्पुरकोमल क्रांति है,

हिय में बसी -

त्यों यह तुम्हारे रूप की

कोमल सफेद गुलाब-सी

द्युति शांति है ।

किन्तु आज की कपूर-शीतल

संध्या का समीर जब था

वासंतिक मदिरा की तल्खी की लकीर-सी..... ।"[2]

उनकी संध्या भी कपूर शीतल होती है..... फिर नीले आसमान का चंद्रमा भी तो उसके साथ है..... कैसा है ? वे कहते है -

"प्रेम के चमेली बुर्जो पर मीनारों पर

अस्वाभाविक हंस रहा चाँद, जादूगर है !"[3]

इसी जादूगर चांद के साथ साथ कभी-कभी सूरज भी कवि का साथ देता है । मुक्तिबोध पर शब्ददेवता का अनुग्रह है, शब्दों की लडियाँ एक के पीछे एक इस तरह सुलझ जाती है कि उन शब्दों से बनी कविता की पंक्तियाँ हर्षविभोर करती हैं ।

"....नीले नभ का सूरज हंसते हंसते उतरा

मेरे आँगन

प्रतिपल अधिकाधिक उज्जवल हो,

मधुशील चंद्र

---

1. मुक्तिबोध रचनावली-1, डॉ. नेमिचन्द्र जैन, पृ.322
2. वही, पृ.327
3. वही, पृ.343

या प्रस्तुत यों
मेरे सम्मुख आया मानो
मेरा ही मन ।"[1]

उर्जा का मूल केन्द्र, मूल स्त्रोत प्रत्यक्ष सूर्य जब कवि के सम्मुख होता है, कवि की कल्पना इतनी विराट, विशाल है कि वह सूरज उसके सम्मुख होते ही मधुशील चाँद बन जाता है..... ! मुक्तिबोध प्रकृति के उपादानों को मनोहर, नाजुक, सुंदर, रमणीय, विलोभनीय रूपों में प्रस्तुत करते हैं ।

"तारों भरी रात ने अपनी गुत्थी खोली
गुत्थी खोली समीर-स्वर में धीरे-धीरे, हल्के-हल्के
वृक्ष-पर्वतों-झरनों की गूँजों में ढलके
रेतीली सरिता के कूलों पर चल-चलके
हवा हो गयी गीली-गीली
वातायन से बहकर आयी लहराती समीर शरमीली ।"[2]

इन पंक्तियों की शब्दरचना के मोहजाल में फंसे पाठक को अगली पंक्तियों तक पहुँचते ही अधिक सुंदरता संवेदित होती है ।

"कमल विकसने चले सरोवर
नीरवता में, धीरे-धीरे, हल्के-हल्के
कलियों ने पंखुरियाँ खोली ।"[3]

इस कविता में 'धीरे-धीरे', 'हल्की-हल्की' इन शब्दों की जो पुनरूक्ति मुक्तिबोध ने की है, इसी कारण सौंदर्य संवेदना संवर्धित हुई है । उन्होंने किया आकाश का वर्णन भी इसी तरह मन को मोहित करता है,

"धीरे उठा नील नीरव गहन मेघ
हौले लगा मापने मुक्त आकाश के मील
धीरे उठा नील-द्युति इन्द्र
भीगा हुआ कुन्द-चंपा-चमेली-जूही

1. मुक्तिबोध रचनावली-1, डॉ. नेमिचन्द्र जैन, पृ.363
2. वही, पृ.374
3. वही, पृ.375

साँस में वह खिला चंद्र

है कूल-मैदान पर मुक्त फैला हुआ वह

कुहरवासिनी चाँदनी से भरा स्वच्छ आकाश ।"[1]

शब्दों की ताजगी, उनकी मृदुता, उनकी अभिजातता सौन्दर्यानुभूति तीव्रतम करती है । अपनी आत्मा की आर्तता व्यतीत करनेवाले उनके शब्द सौन्दर्य का एक नया परिमाण देते हैं ।

"मधु आम्र मंजरित कुएँ के तट का वासी

वह पारिजात वह मोहक कुसुम-गंध-श्वासी !"[2]

मानवजीवन का सर्वस्पर्शी, सर्वांगीण कोमल, नाजुक, सुन्दर रूप का वर्णन करती हुई मुक्तिबोध की कलम और भी नाजुक और कोमल हो जाती है ! चाहे वह 'घर की तुलसी' का वर्णन हो चाहे उनके परिवेश में होनेवाले उनके आत्मीय जन हों - उनका वर्णन एक अभिमानी व्यक्तितत्त्व की सौन्दर्यानुभूति देता है -

"अरूणोदय के पूर्व ही,

तन-मग्न खण्डहरों के मृदगंद प्रसारों में

उद्ग्रीव कुन्द-चंपा-गुलाब की गंध लिए,

मेरे युवजन-व्यक्तित्व यहाँ पर महक रहे

क्षिप्रा के तट

वीरान हवाओं में..... अरूणोदय के पूर्व ही ।"[3]

ऐसी ही सौन्दर्यानुभूति इन पंक्तियों द्वारा भी होती है -

"नीले अंधियाले भरी साँझ

के झुकते पल में निराकार

व्योम के धुले संपन्न रंग

साँवले वस्त्र में ढँकते अपने खुले रंग ।"[4]

1. मुक्तिबोध रचनावली-1, डॉ. नेमिचन्द्र जैन, पृ.379
2. वही, पृ.52
3. वही, पृ.99
4. वही, पृ.125

प्रकृति का उपादान तो कोमल है परंतु उनका उल्लेख भी कवि ने चुनिन्दा कोमल, नजाकतदार, लयबद्ध शब्दों में किया है । जैसे -

"स्वप्न के आवेश में यह जो
सुकोमल चाँदनी की मंद नीलिश्री
क्षितिज पर देख
फसलों के महकते सुनहले फैलाव
.....व आँखों में चमकती चाँद की लपटें
हृदय में से
निकलती आम्र-तरू-मधु-मंजिरी की गंध ।"[1]

मुक्तिबोध विरोधाभासात्मक कल्पनाओं की गूंथ ऐसे शब्दों में करते हैं कि एकदूसरे की छेद देनेवाली स्थितियों या भावों का उल्लेख होने पर भी वे असंगति का निर्माण नहीं करती ।

"सूखे हुए बबूलों के मैदानों के आसमान
में खिला चाँद
मीठा-समीर-सा लहराया
मैदानी आत्मा का सोंधा आशीर्वाद
मुग्ध स्मिता चाँदनी के
अज्ञात प्रदेशों के अछोर
से बहती है
विस्तार-भव्यताओं की चेतन एक गंध ।"[2]

लेकिन समय की धारा तो चलती ही रहती है । ऋतुचक्र की गति कभी रूकती नहीं । हंमेशा आनंद ही यह जरूरी नहीं होता । कवि के मन में कभी प्रकृति के परिवर्तन के नियमानुसार नाजुक, कोमल, मनोहर रूप देखकर भी उदासी के विचार आने लगते है.... कारण कौन से भी हो परंतु सुन्दरता के अलावा एक अनामिक बैचेनी, उदासी प्रकट होती है । उपादान का मूल रूप नाजुक हो, कोमल और सुन्दर हो भी परंतु अगर कवि का मन बैचेन-सा है,

1. मुक्तिबोध रचनावली-1, डॉ. नेमिचन्द्र जैन, पृ.152
2. वही, पृ.152

वेदनाओं, पीडाओं, अन्तर्व्यथाओं से ओतप्रोत है, उसके मन में उदासी है तो उसका किया वर्णन भी पाठकों की वही सौन्दर्यसंवेदनाएँ प्रदान करता है । जैसे -

"साँझभरे, गंभीर-मलिन नभ-पीपल के शाखान्तराल में.....
अपनी ही छाया सा गहरा
कुहरे के बादल-सा धुँधला..... ।"[1]

"जलते विशाल मैदानों में
काली पहाडियों पीछे से अपने मटमैले पंखों पर ।"[2]

मटमैलापन उदासी का ही दूसरा रूप है । कभी तो प्रकृति का स्तब्ध, अंधकारमय रूप भी मन को उदास कर देता है -

"ऊपर अनगिन तारों की बर्फीली आँखे
काली रजनी है प्रवंचना-अंधकार
से झाँक रही है ।"[3]

प्रवंचना का अंधकार कविमन को अस्वस्थ कर देता है, परंतु इससे कवि दीर्धकाल तक निराशाग्रस्त नहीं होता । इसके विपरीत वह उसी प्रकृति के अन्य उपादानों के मूल रूपों को ग्रहण करने का आदेश मनुष्य के अंतर्याम में सोये हुए को जगाने के लिए कहता है,

"निःसीम नग्न अंबर का लेकर सब अछोर बल
श्यामयित तारालोकित जब पृथ्वीतल
तुम रजत तारकों का कोमल उच्छ्वास पा चलों ।"[4]

इसी नग्न अंबर को मुक्तिबोध ने 'किसी से' कविता में उदासी का परंतु सत्य महसूस होनेवाला रूप प्रदान किया है कि सावन का आकाश ही भासमान होता है,

"छितरे श्याम धनों में से दयनीय झाँकनेवाला अंबर.....
उसकी धुँधली लोचनतारा ।"[5]

---

1. मुक्तिबोध रचनावली-1, डॉ. नेमिचन्द्र जैन, पृ.199
2. वही, पृ.159
3. वही, पृ.159
4. वही, पृ.173
5. वही, पृ.185

अंबर के नीचे उसे पहाड़ भी निराशाग्रस्त, उदास, स्याह दिखाई देता है,

"आँखों के सामने दूर.....
ढँका हुआ कुहरे से.....
कुहरे में से झाँकता सा दिखता पहाड
स्याह !"[1]

उदासी का अनुभव भी एक सौन्दर्य संवेदना जागृत करता है । दुःखपर्यवसायी कलाकृतियाँ भी आनंददायिनी होती है । उदासी दूर हो जाती है तो जिंदगी का वास्तव रूप एक भयानकता सामने लाता है । उसका भद्दापन, भौंडापन जुगुप्सा भरे शब्दों में अंतर्याम में चुभन पैदा करता है ।

"गलियों से भरी हुई,
सदियों की रूंधी हुई
अर्धभग्न मकानों की गंधभरी
युगों की बासी सास निर्जीव
सुबह के समीर के
तीखी-सी उद्विग्न चिंता की लकीर बन
मन मथ देती है ।"[2]

ऐसे ही मन मथ देनेवाला सीधा-सादा सूर्यप्रकाश भी होता है,

"लकडी की छडवाली खिडकी से ठंडा उदास आता है ।
गलियों का मटमैला-धुँधला-सा प्रकाश आता है ।"[3]

यह उदासी भी हट जाती है और एक रूक्ष, शुष्क, खुश्कीभरा अकेलापन मुक्तिबोध के निःसंग अकेलेपन का प्रतिनिधित्व करने लगता है । उनकी कलम अब ऐसी दुर्निवार चलने लगती है कि कोमलता, नजाकत को रौंदकर वह प्रकृति के रूद्रगंभीर, भीषण रूपों का वर्णन करने लगती है..... ओज, प्रासादिकता, माधुर्य के साथ साथ वह भय के भावों का परिपोष करने लगती है..... अब वे लिखते हैं,

---

1. मुक्तिबोध रचनावली-1, डॉ. नेमिचन्द्र जैन, पृ.236-237
2. वही, पृ.259
3. वही, पृ.290

"अंधेरे के पहरे में गिरफ्तार
अनमनी गंभीर उदास पहाडियाँ
क्षितिज की साँवली लोहे की भीत पर
अपना सिर टेककर
सोचती-सी खड़ी है !!"[1]

मन के सारे उद्विग्न भावों को उद्वेलित करनेवाले उनके खींचे शब्दचित्र मन को सौन्दर्यास्वाद का तीव्र और गहरा एहसास दिलाते हैं -

"उस पथ-सा मैं तकलीफ भरा
खाई-खड्डों-टीलों-चट्टानों पर चलता
उस जिद्दी पगडण्डी-सा मैं टूटा-बिखरा
हूँ यद्यपि अदेखा अनजाना अनपहचाना.....
.....उग चलूँ अंधेरे के निःसंग सरोवर में
पंखुरिया खोलता लाल-लाल अग्निम सरसिज..... ।"[2]

ऐसी ही चित्रात्मकता द्वारा किसी शहर का वर्णन मूल पंक्तियों द्वारा ही अनुभूत करना चाहिए । रोमांचकारी भी और भय के लिए प्रत्ययकारी भी है -

"सात गुम्बदोंवाला एक सफेद शहर
हो गया राख
सैंकडों पुलोवाली वह गौरवशाली बहती हुई नदी
धँस गयी.....
जमीनीं परतों की
तेल का-सा गाढ़ा-गाढ़ा समुद्र
मृत्यु-सागर
जिनमें है निन्यानवे फीसदी
अमोनियम फोस्पेट घोर नायट्रेट
विषैली भाप हवाओं में

---

1. मुक्तिबोध रचनावली-1, डॉ. नेमिचन्द्र जैन, पृ.24
2. वही, पृ.53

जिसके कारण पक्षी भी उडते नहीं कहीं
आकाश दिशाओं में ।"[1]

पढ़ते-पढ़ते मन थक जाता है...... हिरोशीमा, नागासाकी के ऊपर फेंके गए बम जापानियों ने कैसे झेले होंगे ! याद आकर मन काँपने लगता है । सौन्दर्य का भीषण, विकराल रूप वर्णन करने में तो मुक्तिबोध ख्यातकीर्त हैं ।

"उसी धधकते हुए सूर्य
के तले प्रखर
सब ओर चिलचिलाती काली चट्टानों पर
ठोकर खाता, टकराता, भटकेगा समीर !!
भौंहे पर धूलपसीना ले, तन-मन हारा
बैचेन रहूँगा फिरता मैं मारा मारा
देखता रहूँगा क्षितिजों
की
सब तरफ गोल कोरी लकीर !"[2]

इन शब्दजाल से लडता पाठक बाहर ही नहीं आता कि इतने में चमकती चिनगारियों जैसा दूसरा शब्दजाल उसे गिरफ्त में लेता है,

"देखता रहूँगा आसमान
के तल में जलता हुआ भाल
काल का
भूरी पहाडियों के कंधों पर अलसायी
ऊँची सियाह चट्टानों पर..... टीलों पर..... ।"[3]

कभी-कभी मुक्तिबोध की वर्णनशैली स्वाभावोक्ति अलंकार का रूप धारण करती है । गंदकी भी जीवन की वास्तविकता है..... उसका जुगुप्साभरा वर्णन कर वे मानवीय जीवन का यह पक्ष भी उजागर कर देते हैं -

"आलीशान इमारत के पिछवाडे पहुँचो

---

1. मुक्तिबोध रचनावली-1, डॉ. नेमिचन्द्र जैन, पृ.98
2. वही, पृ.102
3. वही, पृ.102

जहाँ कि काली गलियों की

अति श्याम रंग फैण्टसी

अंटसंट अंधेर, धुँधला का

मैला पानी, गंदी साँस, उबास

सभ्यता की संडास कि चोरी और मुचलका

राख..... ।"[1]

दो शब्दों की पंक्तियों द्वारा भी मुक्तिबोध की कल्पना अंतर्याम को छू लेती है..... दीर्ध काल तक कानों में जिस तरह कोई मधुर आवाज गूँजती है उसी तरह,

"जीवन-विवेक की निभृत मोमबती के तल में

ताजे गुलाबा के फूल महकते हैं..... ।"[2]

ऐसी बात नहीं कि कुदरत के नाजुक, कोमल, मृदु रूपों का वर्णन ही सौन्दर्य-संवेदना को तसल्ली देता है । मुक्तिबोध के भयानक, रौद्र, भीषण वर्णन भी उतने ही सुंदर है । वह वर्णन चाहे गुप्ता-गव्हर का हो, चाहे पर्वतो-पठारों, मैदानों का हो, नदी, समुंदर के अंधेरे कूलों का हो । भय के निर्माण के साथ उनकी कई शब्दयोजनाओं से मन में अन्य वस्तुओं के बारे में तुच्छता के भाव का निर्माण होता है । सौन्दर्यसंवेदना के उनके कुछ उदाहरण -

"उस पथ-सा मैं तकलीफभरा

खाई-खड्डों-टीलों-चट्टानों पर चलता

उस जिद्दी पगडण्डी-सा मैं टूटा-बिखरा ।"[3]

आदरयुक्त डर के भाव का भी निर्माण होता है । जिस तरह -

"जिंदगी एक जंगल है

जिसकी पेचीदा पगडण्डी पर

ठोकर से, पैर अंगूठे के

उखडे नख से बहते खून लाल लाल ताजे

---

1. मुक्तिबोध रचनावली-1, डॉ. नेमिचन्द्र जैन, पृ.122-123
2. वही, पृ.224
3. वही, पृ.53

का तेज दर्द

भुलवा

कोई

द्युति चुंबन की झाँई आकर

आत्मा विद्युन्मय करती है ।"[1]

इस तरह गंदी गली का किया वर्णन मन में जुगुप्सा निर्माण करेगी भी तो लगता है कि मुक्तिबोध की कविता चित्रात्मकता के नजरिए लेकर समृद्ध है -

"पथरीले नालों की काली-काली धार में

धराशयी चाँदनी के होंठ काले पड गए ।"[2]

आगे का वर्णन तो और भी सौन्दर्यसंवेद्य हैं -

"टेढ़े मुँह चाँद की ऐयारी रोशनी भी खूब है ।

लोहे के गजोंवाली जाली के झरोखों के इस पार

लिए हुए कमरे में

काली काली धारियों के पीले पीले बड़े चौकोन

जेल के कपडे सी फैली चाँदनी

जेल सुझाती हुई तिलिस्मी रोशनी -"[3]

मन का क्रोध, क्षुब्धता, संत्रास की अभिव्यक्ति डरावने वर्णनों द्वारा करने में मुक्तिबोध सिद्धहस्त है ।

"बरगद एक विकराल,

उसके विद्रुप शत

शाखा-व्यूहों निहित

पत्तों के धनीभूत जाले हैं, जाले हैं

तल में अंधेरा है, अंधेरा है घनघोर...... ।"[4]

---

1. मुक्तिबोध रचनावली-1, डॉ. नेमिचन्द्र जैन, पृ.194
2. वही, पृ.274
3. वही, पृ.278
4. वही, पृ.279

विशिष्ट शब्दों की द्विरूक्ति का अर्थ ही है - आतंक का भाव बढाना, दृढ़ करना । जैसे -

“मंदिर बाहर, धुल-धुंध में
बरगद पर पीपल पर उतरी
सूनी-सूनी घनी तमिसा !”[1]

कवि मुक्तिबोध की ‘ब्रह्मराक्षस’ कविता तो ऐसे भयकारी वर्णनों के लिए विख्यात है - उसका आरंभ ही ऐसे भयकारी वर्णन द्वारा होता है -

“शहर की ओर खण्डहर की तरफ
परित्यक्त सूनी बावडी
के भीतरी
ठंडे अंधेरे में
बसी गहराइयाँ जल की..... ।”[2]

कभी-कभी कविता उदासी का रंग धारण करती है -

“चाँद उग आया है
गलियों की आकाशी लंबी सी चीर में
तिरछी है किरणों की मार
उस नीम पर
जिसके कि नीचे
मिट्टी के गोल चबुतरें पर नीली
चाँदनी में कोई दिया सुनहला
जलता है ।”[3]

उनका उदासी भरा वर्णन ही उनका अकेलापन का साझीदार है,

“साँज बेसुरी, काले छितरे जर्जर बादलभरी अधूरी
उठते बरसाती कुहरे सी रूँधी थकी मजबूरी
गीली अध-नीली ठंडक में घिरी उदासी पूरी-पूरी ।”[4]

---

1. मुक्तिबोध रचनावली-1, डॉ. नेमिचन्द्र जैन, पृ.294
2. वही, पृ.315
3. वही, पृ.348
4. वही, पृ.427

उन्हें उदास बनानेवाली रातें भी ऐसी हैं -

> **"कीचड से व्यथित यह रात काली**
> **चिपचिपाती राह ।"[1]**

मन पर छायी हुई उदासी दूर करने में उनकी यह कविता मदद करती है,

> **"मानव के करूण विद्रुप औ दुर्दष**
> **दृश्यों को तडपते विश्व**
> **मंडराते, कंपाते, तैरते हैं**
> **धुँए से विद्रुप इन काली छतों में**
> **अंधकार प्रसार जब तैरते**
> **विद्युल्लता के बिम्ब हों ।"[2]**

मुक्तिबोध की सौन्दर्य संवेदय कविताएँ इतने विविध रूप धारण किए हुए हैं । मन का जोम, क्रोध, तिरस्कार, उलाहना, तीखा व्यंग्य उपवास व्यक्त करते समय उनकी प्रतिभा ने डरावने, भयकारी वर्णन किए हैं । उसके साथ बिम्बों प्रतीकों की योजना ऐसी कुशलता से की हैं कि प्रकृति ने नाजुक, मनोहर, सुन्दर रूपवर्णनों से संवेदित होनेवाला सौन्दर्य जिस तरह मन को प्रमुदित करता है उसी तरह डरावना, भयकारी वर्णन मनुष्य का क्षुद्रपन और इस कुदरत के चिरंतनत्व, अविनाशीत्व का एहसास दिलाता है । यह तो सर्वश्रुत है कि मुक्तिबोध सौन्दर्य को अनुभूति का विषय मानते है । उनके मत से जीवनानुभव और सौन्दर्यानुभूति के परस्पर अत्यंत दृढ़ सम्बन्ध होते हैं । इसी सम्बन्धों के कारण प्रकृति का ऋतुराज और मनुष्य इन दोनों के बीच उन्होंने जो मधुर सम्बन्ध प्रस्थापित कर कविता की पंक्तियाँ प्रस्तुत की है, वह सबसे अधिक सौन्दर्य संवेदय है -

> **"धरती औ वसंत के समान ही जो नाता है**
> **धरती है मानव तो वसंत मानवता है !!"[3]**

---

1. मुक्तिबोध रचनावली-1, डॉ. नेमिचन्द्र जैन, पृ.156

2. वही, पृ.196

3. वही, पृ.376

निष्कर्ष :

निष्कर्षतः यह कहना उचित होगा कि मुक्तिबोध का मूल्य-संसार उनके विस्तृत ज्ञान एवं अनुभव का परिचायक है । इसीलिए उन्हें 'चिंतक प्रोफेसर कवि' मानना उचित होगा । मूल्यों के सम्बन्ध में इनकी निजी धारणाओं के साथ हमने कुछ कविताओं में प्रतिपादित मूल्य चेतना के संकेत प्रस्तुत किये हैं । वस्तुतः यह एक ऐसा कवि है, जिसकी प्रत्येक कविता सोदेश्य है, किसी न किसी मूल्य की व्यंजक । मूल्यों के प्रति सचेत होने के कारण ही मुक्तिबोध ने जीवन में 'सफलता' की अपेक्षा 'सार्थकता' को महत्त्व दिया है । यही सार्थकता उनकी रचना-प्रक्रिया और चिन्तनधारा का आधार है । इसकी पूर्ति के लिए वह कहीं संघर्ष को महत्त्व प्रदान करता है तो कहीं उसके स्वर में 'रक्तप्लावित अंगारी चेतना' दिखलाई देती है । व्यक्ति, जाति, वर्ग, समाज, देश के प्रति उसकी दृष्टि सजग रही है, सही की पहचान वह अनुभव के धरातल पर करता है । इसलिए जीवनादर्श के अभाव में तथा देश-राज-गौरव के बिना जीवन को व्यर्थ मानता है । जीवन में आत्मिक विकास को भी स्वीकारता है । हमारी दृष्टि में 'अँधेरे में', 'जमाने का चेहरा', 'ओं विराट स्वप्नों' तथा 'गुलामी की जंजीरें टूट जायेंगी' कविताएँ कवि के व्यापक मूल्य-संसार की परिचायिका हैं । इसीलिए उसका मूल्य-संसार मानवीय चेतना एवं संवेदना को आत्मसात् किए है । उसकी कविताओं में मूल्य आरोपित नहीं है, सहज रूप में संयोजित हैं तथा यह कवि कर्म एवं मर्म के विषय में स्पष्ट हैं । इसीलिए वह काव्य-रचना को सांस्कृतिक प्रक्रिया स्वीकारता हुआ अपने मूल्य-संसार का सम्यक् आधार इंगित कर देता है ।

अध्याय-3

मुक्तिबोध के काव्य में वर्ग संघर्ष

3.1 प्रस्तावना

3.2 वर्ग संघर्ष

3.3 मार्क्सवाद का केन्द्रबिंदु तथा वर्ग संघर्ष

3.4 मुक्तिबोध के काव्य में वर्ग संघर्ष

3.5 वर्ग विभाजन

3.5.1 उच्च वर्ग

3.5.2 मध्य वर्ग

3.5.3 निम्न वर्ग

3.6 शोषण तंत्र

3.7 शोषित

3.8 शोषित का जीवन

3.9 शोषित मन

3.10 शोषित परिवार

3.11 शोषित जनता

3.12 शोषितो के भेद

3.12.1 मजदूर

3.12.2 किसान

3.12.3 नारी

3.12.4 शिशु

3.13 शोषित समाज

3.14 शोषक और शोषित

3.15 विद्रोही शोषित

निष्कर्ष

अध्याय-3

मुक्तिबोध के काव्य में वर्ग संघर्ष

3.1 प्रस्तावना :

मार्क्सवादी विचारक और साहित्य की क्रान्तिमूलक सहानुभूति सर्वहारा वर्ग पर बरस पड़ती है । मुक्तिबोध जैसे कवि सर्वहारा वर्ग कि साथ रागात्मक तादात्म्य स्थापित करते हुए उनके भोगे हुए यथार्थ को काव्यांतरित करते हैं । उनका का उसी रूप में अनुभव करना होता है जिस रुप में सर्वहारा वर्ग अनुभव करता है । इस तादाताम्य का परिणाम यह होता है कि कवि सर्वहारा वर्ग के एक प्रबुद्ध अंश के रूप में अवतरित होता है । यह प्रक्रिया कवि इसलिए आवश्यक मानते है कि मार्क्सवादी क्रान्ति-दर्शन का आधार सर्वहारा वर्ग ही है । इस वर्ग को मुक्त करना ही क्रान्ति का लक्ष्य है । इसीलिए कवि इस वर्ग को क्रान्ति का संदेश देता है । उसकी एकता का उपक्रम करता है और इस वर्ग की शिरोप-शिराओं में रक्त की भाँति क्रांति को संचारित कर देता है ।

पूँजीवादी समाज व्यवस्था का एक अनिवार्य परिणाम शोषण है । उच्च वर्ग अपने स्वार्थो की पूर्ति के लिए और पूँजी पर अपने एकाधिकार बनाये रखने के लिए शोषण तंत्र को व्यवहार में लाता है । शोषित वर्ग और अधिक दीन-हीन होते जाते हैं । पूँजीपति का शोषण व्यापार निर्दय, निरंकुश और अनियंत्रित होता जाता है । तटस्थ विचारक और साहित्यकार शोषण के तंत्र का बौद्धिक विश्लेषण करने के लिए विवश हो जाते है । शोषण की प्रक्रिया में ही क्रान्ति के बीज अंतर्निहित रहते हैं । इन्हीं का अनुसंधान कवि भी धीरे-धीरे शोषण के तंत्र को विचार की प्रक्रिया में लाता है और उसको क्रान्ति का एक औजार बनाकर इसका उपयोग करता है ।

3.2 वर्ग संघर्ष :

'वर्ग' शब्द अंग्रेजी 'class' और मूल लेटीन भाषा 'classis' पर से उतर आया है । इसका सामान्य अर्थ 'समूह' होता है ।

कार्ल मार्कस बताते है कि किसी भी युग के मनुष्य जीवन निर्वाह के विभिन्न साधनों के लिए ही भिन्न-भिन्न वर्गो में विभाजित हो जाते और सभी

वर्गो में अपनी-अपनी वर्गीय चेतना प्रकट होती है । मार्क्स प्राचीन सामाजिक वर्गो के संदर्भ में बताते है कि प्राचीन समय में समाज व्यवस्था साम्यवादी स्वरूप की थी । सभी मनुष्यों में सहकार की भावना देखने को मिलती थी किन्तु विकास की शुरूआत होने के साथ उत्पादन के विभिन्न साधनों में भी परिवर्तन आने लगा । इन साधनों की उपयोगिता के आधार पर समाज विभिन्न वर्गो में विभाजित हो गया ।

मनुष्य समाज विभिन्न वर्गो में बंटा हुआ है । इन वर्गो में लगातार संघर्ष बना रहता है । "सभी श्रमिक योग्यता, प्रशिक्षण तथा कौशल में एक जैसे नहीं होते है और यह अंतर मजदूरी की भिन्न-भिन्न दरों में दिखाई पड़ता है; किन्तु समान योग्यतावाले श्रमिकों की मजदूरी में भी काफी अंतर दिखाई देता है ।"[1] इस अंतर को मिटाने के लिए समाज के उन्नत और निम्न वर्ग में निरंतर संघर्ष चलता रहता है । उन्नत वर्ग के नेता पूँजीपति है । उत्पादन में इन पूँजीपतियों का एक मात्र उद्देश्य मुनाफा कमाना था । उन्नत वर्ग के लोग समाज के अन्य जीव (निम्न वर्ग) की ओर नज़र तक नहीं डालते थे । मजदूर अपने श्रम का तो मालिक है सिर्फ वेतन के नाते ही मजदूर है । पूँजीवादी व्यवस्था में मजदूर अपने श्रम के बराबर मजदूरी नहीं पाता । उसके श्रम का थोड़ा हिस्सा पूँजीपति के मुनाफे में जाता है, इसको ही कार्ल मार्क्स अतिरिक्त मूल्य कहते है । कार्ल मार्क्स के अनुसार किसी वस्तु की उत्पादन लागत मूल्य तथा बिक्री के मूल्य के अंतर को अतिरिक्त मूल्य कहा जाता है । मजदूर श्रम अधिक करते हैं, इसका पारिश्रमिक उनके परिश्रम के अनुपात में मिल मालिक बहुत थोड़ा देता है और बाजार में उस वस्तु को महंगे दाम पर बेचता है । मार्क्स के अनुसार इस शोषण व्यवस्था को मिटाने के लिए क्रान्ति ही उसका उपाय है ।

3.3 मार्क्सवाद का केन्द्रबिंदु तथा वर्गसंघर्ष :

युगों-युगों से शोषण की तमच्छाया से वासित काले नाग रुपी शोषणमति अशक्त, क्षीण, निसहाय तथा निराश्रित सर्वहारा को अपने विष-दंतों से डसता आया है । अत्यधिक संख्या में सर्वहारा वर्ग पुरातन काल से किसी न किसी रूप में पीड़ित रहा है । काले विषैले नागों के काले कारनामों के कारण सर्वहारा वर्ग

1. ऐलेक केयर्न फ्रास : अर्थशास्त्र का परिचय, पृ.421

अपनी जिन्दगी की बाजी हार बैठा है । अपनी जिन्दगी से तथा समाज से उब गया है । इसके लिए समाज में सबके समकक्ष अधिकार, स्थान और मान-मर्यादा होते हुए भी छीना गया है । डॉ. शशि शर्मा के अनुसार "मार्क्सवादी चिन्तन का मूलाधार सर्वहारा मजदूर वर्ग है जो समाज में आर्थिक वैषम्य के कारण शोषित एवं उत्पीड़ित है । आर्थिक समानता की प्राप्ति के माध्यम से वर्गहीन समाज का स्वप्न मार्क्सवाद का प्रमुख लक्ष्य है ।"[1]

मुक्तिबोध ने अपनी कविताओं में सर्वहारा का उल्लेख किया है ।

"...वह बबूल भी
दुबला, धूलभरा, अप्रिय-सा, सहज उपेक्षित,
श्याम, वक्र अस्तित्व लिये वह रंग तिरस्कृत,
अपमानों को मौन झेलता, चिर-अपमानित,
पथ के एक ओर चुपचाप खड़ा है ।
फटे-हाल जीवन की नंगी कठठिनि दिनता,
सा जो वर्जित वह बबूल है ।"[2]

सर्वहारा को कांटों का पेड़ बबूल की-सी उपमाओं में अभिव्यक्ति किया गया है । वह समाज में उपेक्षित और अप्रिय है । उसका शरीर क्षीण, मैला, काला भयंकर बनकर गरीबी का डटकर सामना कर रहा है । वह पूँजीपतियों से होनेवाले अपमानों को मौन से झेलता चला आया है और वह समाज के एक तरफ निरुपयोगी तथा निर्लक्षित हो पड़ा है ।

"हम एक ढहे हुए मकान के नीचे दबे हैं
चीख निकालना भी मुश्किल है,
असंभव...
हिलना भी ।
भयानक है बड़े-बड़े ढेरों की
पहाडियों-नीचे दबे रहना और

1. मुक्तिबोध का साहित्य एक अनुशीलन, डॉ. शशि शर्मा, पृ.153
2. मुक्तिबोध रचनावली (खंड-1) बबूल, पृ.145

महसूस करते जाना
पसली की टूटी हुई हड्डी ।"[1]

सर्वहारा पूँजीवादी समाज में अत्यधिक दमित और शमित है । खुलकर जीने की स्वतंत्रता उन्हें नहीं होती । वे पूँजीपतियों के शोषण के दबाव से इतना दबे हुए होते हैं उन्हें चीख निकालना भी दुसाध्य है । यहाँ पहाडियों के रूप में पूँजीपति है जिनके नीचे दब जानेवाले सर्वहारा सिर्फ अपनी टूटी पसलियों का मात्र अनुभव कर सकते हैं ।

"अनैतिक समाज में नीतिमान
साँसों के लिए भी परेशान
समस्या के वृषक्ष के सींगों में फंसा मैं
बैल के धक्के से एकाएक लुढ़क मैं कि
सींगों में फँस गया
समस्या के सींगों में फँसा हूँ ।"[2]

पूँजीवादी समाज अनैतिकता से आलोड़ित रहने से वहाँ नीतियुक्त साँस लेना भी प्रवंचनीय है । ऐसे समाज में सर्वहारा उलझनों के गुत्थे में जकड जाता है और उसका जीना भी दुष्कर हो जाता है । कवि खुद को सर्वहारा मान कहता है मैं बैल (पूँजीपति) के धक्के से लुढ़ककर उसके सींगों (पूँजीवादी शोषण जाल) में फँस गया । सर्वहारा समस्याओं के जाल में फँसकर तिलमिला उठता है ।

"...गिरफ्तार चूहा ज्यों भागता है लगातार
पिंजरें की चक्रव्यूह गलियों में बैचेन
(बाहर भाग सकने की बुद्धि ही नहीं है) ।"[3]

पिंजरे में बंधित 'चूहा' उस बंधन से भागने की कोशिश करने पर भी मुक्त हो नहीं पाता । उसी प्रकार सर्वहारा पूँजीपति के जाल में कैद होकर मुक्तहीन रह जाता है ।

---

1. मुक्तिबोध रचनावली (द्वितीय खंड) पृ.146
2. वही, सही हूँ या गलत, पृ.176
3. वही, (द्वितीय खण्ड) इसी बैलगाडी को, पृ.102

"...लिये बाल-बच्चे कंधे पर, सिर्फ काँपता
अथवा निज औधड़ बोली में बात प्रकट कर
असभ्य कहलाता है ।"[1]

सर्वहारा 'औधड़ बोली' में बात करके असभ्य कहलाता है । अपने बच्चों को कंधे पर दोकर डर से काँपता हुआ चलता है । सर्वहारा पूँजीपति के भय से मुक्त नहीं हो पाता ।

"...मनुष्यों के जंगल में
तुम्हारी कुमारियाँ और नारियाँ भ्रष्ट हुई
कौन नहीं जानता कि कई रोग हमारे ये
उनकी ही देन हैं ।"[2]

पूँजीवादी जन-समाज जंगली जानवरों के समूह-सा है जिसमें सर्वहारा की कुमारियाँ और नारियाँ भ्रष्ट होती रहती है । पूँजीवादी समाज के दोष रोग के रूप में सर्वहारा को ग्रसित कर लेते है ।

"कोमल-कोमल टहनियाँ मर गयी अनुभव-मर्मो की
यह निरुपयोग के फलस्वरूप हो गया ।
अन्तर्जीवन के मूल्यांकन जो संवेदन
उनका विवेक संगत प्रयोग हो सका नहीं
कल्याणमयी करुणाएँ फेंकी गयीं
रास्ते पर कचरे-जैसी ।"[3]

सर्वहारा के कोमल हृदय एवं मन निर्जीव-से हुए है; यह सब अपने अपूर्ण अनुभव और अविवेक के कारण हुआ । इनकी बुद्धि का उपयोग नहीं हुआ । कल्याणमयी भावनाओं को ऐसा तिरस्कृत किया गया जैसे कचरे को रास्ते पर फेंका जाता है ।

"बिस्तर खूब गहरा खोद,
अपनी गोद से,

---

1. मुक्तिबोध रचनावली (द्वितीय खंड), नहीं चाहिये मुझे हवेली, पृ.56
2. वही, (द्वितीय खण्ड) शीर्षक विहीन कविता, पृ.474
3. वही, (द्वितीय खण्ड) एक अन्तर्कथा, पृ.156

रक्खा उसे उस नरम धरती-गोद ।
फिर मिट्टी,
कि फिर मिट्टी,
रखे फिर एक-दो पत्थर
उढ़ादी भृत्तिका को साँवली चादर
हम चल पड़े
लेकिन बहुत सी फिक्र से फिरकर,
कि पीछे देखकर
मन कर किया था शांत ।
अपना धैर्य पृथ्वी के हृदय में रख दिया था ।
धैर्य पृथ्वी के हृदय में रख लिया था ।
उतनी भूमि पर है चिरंतन अधिकार मेरा,
जिसकी गोद में मैंने सुलाया प्यार मेरा ।
आगे लालटेन उदास,
पीछे, दो हमारे पास साथी ।
केवल पैर की ध्वनि के सहारे
राह चलती जा रही हैं ।"[1]

उपर्युक्त पद्यांश में कवि सर्वहारा के यहाँ मृत्यु के दर्शन किये हैं । सर्वहारा अपने लाल का मृत शरीर को लेकर रात में साथियों के साथ स्मशान चलता हैं । स्वयं अपने हाथों से गड्ढा खोदकर दफन करता हैं । स्वयं सर्वहारा कह रहा हैं - उतनी भूमि पर है चिरंतन अधिकार मेरा जिसकी गोद में मैंने सुलाया प्यार मेरा । उदास लालटेन, दो साथी और पैरों की ध्वनि के साथ घर को वापस आता है । निराशा, मृत्यु तथा विवशता चू पड़ती है ।

"कीचड सनी गली के श्यामल ओझल कोने
मरे हुए चूहे की बास, पुरानी घिन सी,
रहती यहाँ मानवात्माएँ कैसी ? किन-सी ?"[2]

---

1. मुक्तिबोध रचनावली (प्रथम खंड), पृ.123-24
2. वही, (प्रथम खण्ड) मध्य वित्त, पृ.178

सर्वहारा की गली का सन्निवेश उभर आया है । गली संपूर्ण कीचड से समा गयी है क्योंकि वहाँ पर नाली बह रही है । दिन होते हुए भी वहाँ अंधकार छाया हुआ है । गंदा पानी वहाँ पर जम जाने से मरे हुए चुहे की-सी बदबू आ रही है । ऐसे कलुषित वातावरण में सर्वहारा राहत की साँस कैसे ले सकता है ? कवि अपने आपसे प्रश्न कर लेता है ।

"...परित्यक्त अपनों-सा लगता रहता है वह
अधनंगी मां, नंगे बच्चे
धुन्ध भरी प्रातः से ही सर्दी की ऋतु को
बबूल पेड़ो से नीचे खोजने अन्न के
दाने, चिथड़े आदि वस्तुएँ ।"[1]

पूँजीवादी समाज में सर्वहारा परित्यक्त रहता है । उसके घर में 'अधनंगी माँ, नंगे बच्चे' भूखे-प्यासे रहते है; अन्न के लिए तरसते रहते हैं । 'बबूल' वृक्ष के नीचे बिखरे अन्न के दाने और पुराने कपडों के टुकडों को खोजते फिरते रहते हैं । इस पद्य के द्वारा कवि ने अभावग्रस्त सर्वहारा के बेबस परिवार का यथार्थ चित्र प्रदर्शित किया है ।

"शपट-पटर सामान को धरे हुए शीर्ष पर
पुरूष उबारता
धरे हुए टोकरियों में बिलखते बच्चों को ।
सूखी हुई टोकरियों में बिलखते बच्चों को ।
सूखी हुई जाँघों को लंबी-लंबी अस्थियाँ
हिलाता हुआ चलता है
लँगोटधारी यह दुबला मेरा हिन्दुस्तान
रास्ते पर बिखरे हुए
चावल के दानों को बीनता है लपककर
मेरा यह साँवला इकहरा हिन्दुस्तान
सटर-पटर सामान को धरे हुए शीर्ष पर
रोते हुए बच्चों को कंधे पर बिठाये हुए
जिन्दगी को ढोता है बहादुर हिन्दुस्तान
अपने ही पुत्र के प्रेत को उठाये हुए साँवले हाथों में
श्मशान की ओर जाता
दिल में बिलखता हुआ ।"[2]

1. मुक्तिबोध रचनावली (प्रथम खंड), हे प्रखर सत्य; दो, पृ.196
2. वही, सूरज के वंशधर, पृ.267

उपर्युक्त काव्यांश में कवि ने सर्वहारा का वृद्ध जीवन प्रत्यजित किया है । सर्वहारा अपने सर पर टोकरी में अस्त-व्यस्त सामान ढोकर चला है । उस टोकरी में उसके बच्चे रोते हुए बैठे है, उन्हें उसकी पत्नी समझाती है । सर्वहारा की काया इतनी क्षीण ही गई है कि चलते समय उसके जाँधों से 'लंबी-लंबी अस्थियाँ' दृश्यमान होती हैं । उसकी देह पर वस्त्र भी इतने कम हैं कि एक लंगोटी हुई है । बिखरे चावल के दानों को लपककर जुटा लेता है और अपने रोते बच्चों को कंधे पर ले चलता है । उसकी इतनी जर्जर दयनीय स्थिति है कि अपने पुत्र के राव को अपने हाथ ही रोते हुए ले चलता है । अभाव की पराकाष्ठा दृष्टव्य है -

"मैं तुम लोगों से इतना दूर हूँ
तुम्हारी प्रेरणाओं से मेरी प्रेरणा इतनी भिन्न है
कि जो तुम्हारे लिए विष है, मेरे लिए अन्न है ।"[1]

सर्वहारा तथा पूँजीपति में अपरिमाण अंतर है । उनका संबंध एक दूजे के विपरीत है साथ ही साथ उनके भाव एवं गुणों में परस्पर विरोध है । पूँजीपति के लिये जो विष है वही सर्वहारा के लिए अमृत है; क्योंकि एक शोषक है दूसरा शोषित है । भूम्याकाश का यह फाँसला विषम है ।

"ऊपर के कमरे सब अपने लिए बन्द है;
अपने लिये नहीं वे ।
जमाने ने नगर से कहा -
यह गलत है, वह भ्रम है,
हमारा अधिकार सम्मिलित श्रम
और छीनने का दम है ।"[2]

सर्वहारा, पूँजीवादी समाज में उपेक्षित है । बड़े-बड़े महलों में उन्हें प्रवेश नहीं । उन महल-मीनारों के निर्माता सर्वहारा ही है; फिर भी उन्हें कहीं भी स्थान नहीं । सर्वहारा की अपनी कड़ी मेहनत से भव्य भवन बनते हैं । पूँजीपति के अनैसर्गिक विधान सर्वहारा को उन भवनों में आने नहीं देते ।

---

1. मुक्तिबोध रचनावली (द्वितीय खंड), मै तुम लोगो से दूर, पृ.237
2. वही, चाँद का मुँह टेढ़ा है, पृ.310

"...पहले
पत्थरी ढाँचे से छुटकारा मिल जाय ।
...पत्थरी ढाँचे में कैदी हैं हम सब...।"[1]

सर्वहारा, पूँजीपति समाज के शोषण जाल में कैद है । वे इस शोषण से मुक्ति होने के लिए तिलतिलाते रहते है । उपर्युक्त पद्यों में मुक्तिबोध ने सर्वहारा की घुटन-कुढ़न से भरी हुई जीवित तसवीर को प्रस्तुत किया है ।

3.4 मुक्तिबोध के काव्य में वर्ग संघर्ष :

पूँजीवादी समाज व्यवस्था का एक अनिवार्य परिणाम शोषण है । उच्च वर्ग अपने स्वार्थो की पूर्ति के लिए और पूँजी पर अपने अकाधिकार बनाये रखने के लिए शोषण के तंत्र को व्यवहार में लाता है । शोषित वर्ग और अधिक दीन-हीन होते जाते हैं । इस शोषण के कारण आर्थिक वैषम्य की खाई चौड़ी होती जाती है । पूँजीपति का शोषण व्यापार निर्दय, निरंकुश और अनियंत्रित होता जाता है । तटस्थ विचारक और साहित्यकार शोषणके तंत्र का बौद्धिक विश्लेषण करने के लिए विवश हो जाता है । शोषण की प्रक्रिया में ही क्रांति के बीत अंतर्निहित रहते हैं । इन्हीं का अनुसंधान कवि और लेखक को करना होता है । धीरे-धीरे वह अपनी समग्र बौद्धिक सहानुभूति को लेकर शोषित वर्ग के साथ जुड़ जाता है । मुक्तिबोध का कवि भी धीरे-धीरे शोषण के तंत्र को विचार की प्रक्रिया में लाता है और इसको क्रान्ति का एक कारगर औजार बनाकर इसका उपयोग करता है । शोषण की प्रक्रिया को बिम्बित करने में मुक्तिबोध अधिक सक्रिय दिखाई देते हैं ।

'अंधेरे में' कविता 'चाँद का मुँह टेढ़ा है' संकलन की अंतिम अत्यंत सशक्त तथा सर्वाधिक लंबी कविता है । लगभग तैंतालीस पृष्ठों की तथा आठ खंडों की यह कविता पूरे कवि का प्रतिनिधित्व करती है । मुक्तिबोध के जीवन पर प्रकाश डालते हुए हरिशंकर परसाईजी ने उनकी मनःस्थिति उनकी सबसे लंबी कविता भय को कल्पित किया - "सबसे लंबी कविता 'अंधेरे में' जिसमें फासिस्ट ताकतों के भयावह कल्पना-चित्र है ।"[2]

1. मुक्तिबोध रचनावली (द्वितीय खंड), चम्बल की घाटी में, पृ.455
2. पर मुक्तिबोध ऐसा था, परसाईजी - स्वर्णजयंती अंक-1996, पृ.1

डॉ. प्रभाकर माचवे का कहना है कि - “ ‘अंधेरे में’ मुक्तिबोध की एक ऐसी ही कविता है, जिससे उनकी काव्यात्मक शक्ति के अनेक तत्व घुल-मिलकर एक महान रचना की सृष्टि करते है, जो रोमानी होते हुए भी अत्याधिक यथार्थवादी और एकदम आधुनिक हैं और किसी भी कसौटी पर उसको जाँचा जाये, मैं कहूँगा कि वह आधुनिक युग की कविताओं में सर्वोपरि ठहरती है । उसके बिम्ब और प्रतीक, संदर्भ और संकेत, शब्द और ध्वनिचित्र, बड़ी गहरी और विविध गूँजे हमेरी भावनाओं से भर जाते है । उसमें मुक्तिबोध को कवि व्यक्तित्व वॉल्ट हिटमैन और मायकॅवस्की के शिल्प और शक्ति से टक्कर लेता है और अपनी जमीन पर अप्रतिहित और अद्वितीय रहता है । इस कविता का हमारी अमर राष्ट्रीय कविताओं में शुमार होगा, मुझे इसमें किंचित संदेह भी नहीं ।”[1]

डॉ. नामवरसिंह ने इस कविता के बारे में अपना मत प्रस्तुत करते हुए कहा है - “इस कविता का मूल कथ्य है अस्मिता की खोज, किन्तु कुछ अन्य व्यक्तिवादी कवियों की तरह इस खोज में किसी प्रकार की आध्यात्मिकता या रहस्यवाद नहीं, बल्कि गली-सड़क की गतिविधि, राजनीतिक परिस्थिति और अनेक मानव-चरित्रों की आत्मा के इतिहास का वास्तविक परिवेश है । आज के व्यापक सामाजिक संबंधों के संदर्भ में जीनेवाले व्यक्ति के माध्यम से ही मुक्तिबोध ने ‘अंधेरे में’ कविता में अस्मिता की खोज को नाटकीय रूप दिया है ।”[2]

वस्तुतः यह रचना फैंटेसी पर आधारित सस्पेंस, तिलस्म, संदेह, आशंका, भयावनेपन, दुश्चिन्ता और दुःस्वप्नों की लंबी कविता है ।

मजदूर अपने श्रम के अनुपात में अपनी मजदूरी चाहता है, उसके न मंजूर होने पर उन्नत वर्ग से संघर्ष करता है । पूँजीवाद का पर्याप्त विकास हो जाने के कारण श्रमिक आंदोलन विकसित होगा, जो वर्ग-संघर्ष द्वारा पूँजीवादी शासन प्रणाली को नष्ट कर सर्वहारा वर्ग का अधिनायक तंत्र स्थापित करेगा । मुक्तिबोध ने अपनी अधिकांश कविताओं में वर्ग-संघर्ष को चित्रित करने का सफल प्रयास किया है । उनकी कविताओं में दलित वर्ग के संघर्ष के प्रति सचेत और सक्रिय तथा भयाक्रांत शोषित वर्ग का विस्तृत चित्रण हुआ है -

---

1. चाँद का मुँह टेढ़ा है, मुक्तिबोध, दसवा सं., पृ.25-26
2. कविता के नये प्रतिमान, डॉ. नामवर सिंह, पृ.221

"मारो गोली, दाहो रसालो को एक दम
दुनिया की नजरों से हटकर
छुपे तरीके से हम जा रहे थे कि
आधी रात अँधेरे में उसने
देख लिया हमको
व जान गया वह सब
मार डालो, उसको खतम करो एक दम ।"[1]

यहाँ पूँजीपति की सेना है, जिसमें "मंत्री, उद्योगपति, आलोचक, विचारक, कवि, कर्नल, ब्रिगेडियर, सेनापति, सेनाध्यक्ष और कुख्यात डकैत डोमाजी उस्ताद सभी अपने असली रूप में एक ही कतार में है ।"[2] पूँजीपति शोषक के रूप में रहते हैं । वे अपनी ऐसी सेना से सर्वहारा वर्ग का दमन करते हैं । उनको गोली से दागने के लिए बताते है जबकि शोषित उनकी क्रुर आँखों से छिपकर चलते है ।

"भागता मैं दम तोड़,
घूम गया कई-कई मोड़...।"[3]

शोषितों की क्रांति का दमन करने के लिए शोषक गण ने मार्शल लॉ लगा दिया है । शोषित के रूप में कवि यहाँ दम छोडकर भाग रहा है कई मोड़ घूम जाता अपनी जान खतरे से बचाने के लिए ।

"चीख निकालना भी मुश्किल है,
असंभव...
हिलना भी ।
भयानक है बड़े-बड़े ढेरों को
पहाड़ियों - नीचे दबे रहना और
महसूस करते जाना
पसली की टूटी हुई हड्डी ।
भयंकर है ! छाती पर वजन टोलों का रखे हुए

1. मुक्तिबोध रचनावली (द्वितीय खंड), अंधेरे में, पृ.360
2. हिन्दी कविता : आधुनिक आयाम, डॉ. रामदरश मिश्र, पृ.170
3. मुक्तिबोध रचनावली (द्वितीय खंड), अंधेरे में, पृ.362

ऊपर के जडी भूत दबाव से दबा हुआ
अपना स्पन्द
अनुभूत करते जाना
दौड़ती रुकती हुई धुक धुकी
महसूस करते जाना भीषण है ।"[1]

"परिवेश तथा जीवन-संघर्ष का यह रुप मुक्तिबोध का प्रामाणिक यथार्थ है । इस देश की राजनीति और शासन-व्यवस्था में जिन मानव विरोधी शक्तियों का हाथ रहा है, उन्होंने हमारी अर्थ-व्यवस्था को पूरी तरह से झकझोर दिया है । औद्योगिकरण के नारो ने सामाजिक व्यवहार के सारे सूत्रों को तोड़ दिया है और अमर्यादित आचारों ने मानवीय दायित्व की चेतना का विघटन किया है ।"[2]

मुक्तिबोध का कहना है - शोषित-शोषक के शोषण से दबाये गये हैं, वह हिल भी नहीं सकते है और इन्हें चीख निकालना भी मुश्किल है ।

"आज के अभाव के व कल उपवास के
व परसों की मृत्यु के...
देन्य के, महा-अपमान के, व ओभपूर्ण
भयंकर चिंता के उस पागल यथार्थ का
दीखता पहाड़...
श्याह ।"[3]

वर्तमान जीवन की विपरीतता और स्थितियों की विद्रुपता, केवल आज की वेदना नहीं है, अपितु भविष्य की चिंता भी है ।

बेकारी बढ़ने से शोषित को हर चीज का अभाव होता है । वैसे ही चन्द दिन तक वह भूखा पेट जीता है, क्रमशः वह मृत्यु के दाह में चला जाता है । वह इस अभाव के कारण को मिटाने के लिए अपने जीवन के अंत तक संघर्ष करता रहता है ।

---

1. मुक्तिबोध रचनावली, एक भूतपूर्व विद्रोही की आत्मकथन, पृ.146-47
2. अस्तित्ववाद और द्वितीय सत्तरोतर हिन्दी साहित्य, पृ.162
3. मुक्तिबोध रचनावली (प्रथम खंड), मुझे याद आते है, पृ.210

"भयानक, हाय, अंधा दौर
जिन्दा छातियों पर और चेहरों पर
कदम रखकर
चले हैं पैर ।"[1]

यहाँ भयानक अंधा दौर चला है जिसमें मानवीय सभ्यता घँसती जा रही हैं । मानवीय संवेदनशीलता का हनन और मानवीय सबंध चेतना का नाश हो गया है । यहाँ शोषित के जीते जी शोषक-शोषणों के कदम बेरहम रखते हुए उनके भविष्य का नाश कर रहे हैं ।

"काली पसली शोषक युग की
सत्ता की छाती पर बैठी
गला दबाकर जनता जग की ।"[2]

कवि पूँजीवादी व्यवस्था का जितना विरोध करते हैं उतना ही मनुष्य को दबानेवाली तानाशाही सत्ता का भी, लेकिन इसके साथ-साथ वे व्यक्ति के भीतर सत्य को विवेक, संकल्प और अनुभव तत्व को भी बार-बार रेखांकित करते है । तात्पर्य यह है कि शोषित का घोर शोषण करनेवाली पूँजीपति या शोषक वर्ग की सत्ता काली पसली शोषण युग में प्रजा की सत्ता की छाती पर बैठी जनता का गला दबा रही ।

"याद रखो,
कभी अकेले में मुक्ति न मिलती
यदि है तो सबके ही साथ है ।"[3]

बलिष्ट पूँजीवादी शक्ति के साथ अकेला कमजोर शोषित संघर्ष नहीं कर सकता और अकेले में इस पाशवी शोषण नीति से मुक्ति पा नहीं सकता । अतः उसको अपने साथियों के साथ मिलकर संघर्ष करना है, तभी उन्हें मुक्ति हाँसिल हो सकती है । कवि यहाँ इस कथन का समर्थन करता हुआ प्रतीत होता है कि एकता में बल है ।

---

1. मुक्तिबोध रचनावली (द्वितीय खंड), चकमक की चिनगारियाँ, पृ.252
2. वही, (प्रथम खंड), जब वृद्धा माँ के अंतर को, पृ.364
3. वही, (द्वितीय खंड), चम्बल की घाटी में, पृ.459

"जबकि सभ्यता एक अंधेरी
भीम भयानक जेल -
तोड़ जेल, भगाओ सबको, भागो खुद भी ।"[1]

"मुक्तिबोध के काव्य की नियति मानव स्थिति से, जुड़ी है । वह अपनी जगह तटस्थ है, परिस्थितियों से कतराकर भागता नहीं है । उसे मालूम है कि यह दुष्ट व्यवस्था उस दस्यु की तरह है, जो लोगों के सोने पर चट्‌टानी आकृति बनकर दबंग रोबीली ठाठ से बैठी हुई है । इस दुष्ट व्यवस्था में उदार चेतनाध्यक्ष की, आत्माध्यक्ष की हत्या हो चुकी है । गांधीजी एकदम पंगु हो चुके हैं । इसलिए उनकी कविता में यह क्रांति पूँजीवाद के विरुद्ध हैं उसमें आक्रमकता है । कभी भी समझौते का संकेत नहीं हैं । वे संकेत करते हैं समूह मुक्ति आवश्यक है ।"[2] कवि के अनुसार अकेले में मुक्ति मिलना झूठ है, यदि वह है तो सबके साथ है । शोषण के विरोध में सब मिलकर संघर्ष करना, जबकि शोषण युग की अंधेरी, सभ्यता का भीम भयानक जेल तोड़ भगाओ सबको ताकि सभी आजाद हो जायें । इस प्रकार कवि यहाँ मानवमुक्ति चाहता हैं । यहाँ पर सभ्यता पर व्यंग्य किया गया है ।

"हाय हाय कुहरे की घनीभूत प्रतिमा या
भरमाया मेरा मन,
उसके वे स्थूल हाथ
मनमाने बलशाली
लगते है खतरनाक,
जाने-पहचाने से लगते है मुख वे ।"[3]

"लकड़ी का रावण कुहरे को चीरकर काले लोहे के लोगों को निकलते हुए देखते है और डरता है कि कहीं वे उसके उत्तुंग शिखर की सर्वोच्च स्थिति तक पहुँचकर नेस्तानाबूद न कर दे ।"[4] शोषित वर्ग शोषण की आग से भड़क

1. मुक्तिबोध रचनावली (प्रथम खंड), भविष्यधारा, पृ.135
2. वीणा : सितम्बर-1982, अंक-9, पृ.21
3. मुक्तिबोध रचनावली (द्वितीय खंड), लकड़ी का रावण, पृ.405
4. मुक्तिबोध का काव्य, डॉ. नरेन्द्र वर्मा, पृ.35

उठते हैं, शोषक वर्ग जो समाज का सर्वोन्नत वर्ग कहलाता उसका शमन करने के लिए हावी होकर आगे बढ़ रहा है ।

"शांत हो, धीर करो,
और उलटे पैर ही निकल जाओ यहाँ से,
जमाना खराब है
हवा मदमस्त है,
बात साफ-साफ हैं
सब यहाँ त्रस्त हैं,
दरों में भयानक चोरों की गश्त है ।"[1]

पूँजीवादी जमाना बहुत खराब है जिसमें सब त्रस्त हैं । यहाँ शोषक रुपी की गश्त है । जनता पूरी संघर्ष में त्रस्त है ।

"फैले गये हाथ दो
चिपका गये लंबे-चौडे पोस्टर
बाँके-तिरछे वर्ण और
लाल-नीले घनघोर
हड़ताली अक्षर !!
बिल्ली एक चुपचाप
रजनी के निजी गुप्तचरों की प्रतिनिधि
पूँछ उठाये वह
जंगली तेज
कंजी आँख फैलाये
यमदूत-पुत्री-सी
.....धेकती है मार्जार
चिपकाता कौन है
....हडताली पोस्टर...।"[2]

"शोषण सत्ता के विरुद्ध हडताली पोस्टर रात के अंधेरे में स्थान-स्थान पर चिपकाता है । सूफिया गुप्तचरी ताक में जमी हुई आँखें अंधेरे के कंधों पर

1. मुक्तिबोध रचनावली (द्वितीय खंड), चम्बल की घाटी में, पृ.494
2. वही, चाँद का मुँह टेढ़ा है, पृ.301-302

इन भडकीले पोस्टरों को चिपकाने वाले को देखती है ।"[1] पूँजीवादी समाज में कार्मिक वर्ग पूँजीपतियों के विरोध में निरंतर संघर्ष करते रहते हैं । वे हडताली पोस्टर लगाकर हडताल के लिए श्रमिक वर्ग को प्रेरणा देते रहते हैं । इसको पूँजीपति के जासूस कंजी आँख से उन्हें गुप्त रीति से बिल्ली जैसे निहारते रहते हैं ।

"लाहाँगी में शहर से बहती हुई हवाएँ
दरख्त में घुसकर
पत्तों से कहती हैं
फुस फुसाती कहती हैं
नगर की व्यथाएँ, समाजों की कथाएँ
मोचों की तड़प और मकानों के मोर्चे
मीटिंगों के मर्म-राग
अंगारों से भरी हुई प्राणों की गर्म राख ।
उस समय
गारियों को थाहों में बसी हुई छायाएँ
हिली कुछ
मद्धिम चाँदनी में कोई चल पड़ी दो
श्याम आकृतियाँ
भेरों के सिन्दूरी भयावने मुख पर
छर इरी झाइयाँ ।"[2]

"वैसे तो 'चाँद का मुँह टेढ़ा है' शीर्षक कविता अपने संपूर्ण क्लेवर में ही वर्ग-संघर्ष की क्रांति चेतना से आपूरित है । संघर्ष धर्मी वातावरण का चित्रण ही वर्ग-संघर्ष की उपस्थिति को व्यंजित करता है । यहाँ गली में दो छायाओं को हिलाना-चलाना और एक हो जाना, मीटिंगे, मोर्चे आदि संघर्ष की ही व्यावहारिक प्रक्रिया है । इस कविता में मुक्तिबोध ने काले स्याह और भभकते लाल रंग के प्रयोग द्वारा बिम्बों और प्रतीकों को विशिष्टता दी है । ये दोनों रंग भयाक्रांत वातावरण निर्माण और संघर्षधर्मी चेतना की व्यंजना में सहायक सिद्ध हुई है ।

1. मुक्तिबोध : व्यक्तित्व एवं कृतित्व, डॉ. जनक शर्मा, पृ.158
2. मुक्तिबोध रचनावली (द्वितीय खंड), चाँद का मुँह टेढ़ा है, पृ.307-08

वर्गसंघर्ष के प्रमुख माध्यम के रूप में पोस्टर इस कविता में क्रांति चेतना की पैरवी करता है । यह विचारों के प्रचार का माध्यम शोषित जन-जीवन की यथार्थ चेतना का प्रतिनिधि है ।"[1] यहाँ पर वातावरण और कवि प्रतीकों द्वारा वर्ग-संघर्ष का पता चल जाता है ।

"मेरी सलाह है -
लुढ़को (मैं तुम्हें देता हूँ धक्का, गति और वेग)
वक्षालीन उस दस्यु को लेकर
लुढ़कते चले जाओ
पहाडी उतार पर
(वह पिस जाएगा ।
अपने ही दरों के
लुटेरे इलाकों में जोरदार
आज जो गिरोह है,
छुपो हुए, खुले हुए, उनके
भयानक हमलों से पीड़ित
जन-साधारण को उनकी ही टोह है ।
पूर्ण-विनाश और अनस्तित्व उनका
तुम्हारे निजत्व का चरम विकास है
इसलिए, ओ दृषद-आत्मन्
कट जाओं, टूट जाओं ।
टूटने से विस्फोट-शब्द जो हाग ।
गूँजेगा जग-भर ।
किंतु अकेली की, तुम्हारी ही वह सिर्फ
नहीं होगी कहानी ।"[2]

डॉ. शशि शर्मा के अनुसार - "चंबल की घाटी कविता में भी कवि ने शोषण जीवी व्यवस्था (दस्यू) के अत्याचार से मुक्ति के लिए सामूहीकरण पर बल दिया है । इस कविता में मुक्तिबोध ने नवनिर्माण की भूमिका के लिए शोषण

1. मुक्तिबोध का साहित्य एक अनुशीलन, डॉ. शशि शर्मा, पृ.159-160
2. मुक्तिबोध रचनावली (द्वितीय खंड),चम्बल की घाटी में, पृ.459-60

व्यवस्था के पूर्ण विनाश को आवश्यक मानते हुए वर्ग-संघर्ष में व्यक्ति को सत्ता के खोजने में ही उसकी एक बड़े लक्ष्य की प्राप्ति में सार्थकता समझी है, क्योंकि नाश की उसी प्रक्रिया में व्यक्ति के विभिन्न तत्वों का उपयोग जन जन के हित में हो सकता है ।"[1] इस कविता की समाप्ति के समय मुक्तिबोध ने दलित वर्ग-संघर्ष के स्वरूप को स्पष्ट किया है । "पीडितजनों के प्रति उनकी पक्षधरता का प्रमाण उसकी लुटेरे गिरोहों की ध्वंस कामना है । यह ध्वंस कामना रचनात्मक प्रवृत्ति इतनी प्रखर रही है कि कवि की रचनात्मक दृष्टि उसमें विलीन-सी हो गयी है ।"[2]

'अंधेरे में' शीर्षक कविता अपने फेंटेसी स्वरुप में कवि के अवचेतन में इच्छित समस्त जीवन उद्देश्यों की काव्य-वृत्ति देती है । इन जीवन लक्ष्यों में प्रमुख है वर्ग-संघर्ष की सक्रियता एवं सार्थकता के द्वारा वर्गहीन समाज की परिकल्पना । इस कविता का वातावरण मार्शल लॉ लगे हुए नगर का है । यह मार्शल लॉ जन क्रांति के दमन के निमित लगाया गया है, इसलिए लोग दम छोड़ भाग रहे हैं । कविता में गांधीजी भी एक पात्र के रूप में उपस्थित होकर स्वयं को (अपने अहिंसावादी सिद्धांत को) गुजर गये जमाने के चेहरे के रुप में घोषित करते हैं और काव्य नायक को देश की जनता (शिशु) को सुरक्षित रखने का दायित्व सौंपकर चले जाते है । यह शिशु काव्य नायक के पास सारे बहलावे के प्रयत्नों को झुलाओं के बावजूद शांत न रहकर विरोध में अपनी आवाज बुलंद करता है, क्रोध में चीखता है । उसमें क्षोभ भरा स्वर और गहरी शिकायत है - अपनी निम्न शोषित उपेक्षित स्थिति के प्रति ।... इस कविता के अंत में सक्रिय एक जंधे का चित्रण है जिसमें एक रेला है, लोगों की मुट्ठियाँ बंधी हैं, रक्तपलावन का लाल प्रकाश है, इतने में कोई काव्य नायक को एक चर्चा दे जाता है - यह गुप्त चर्या संगठन की गुप्त शक्ति का प्रतीक है । इस जन क्रांति से नगर चारों ओर से आग से भभक रहा है । सडके सुनसान है हवाओं में अदृश्य ज्वाला की गर्मी है और लोगों में उस गर्मी का ज्वाला की गर्मी है और लोगों में इस गर्मी का आवेग । जन क्रांति में भाग लेनेवाली जनता में साथी सहयोग (कामरेड) का-सा भाव है और इन पर दमनचक्र चलानेवाली व्यवस्था के खाकी वर्दी धारी लोग भी यंत्रवत् गश्त लगा रहे है ।"[3]

1. मुक्तिबोध का साहित्य एक अनुशीलन, डॉ. शशि शर्मा, पृ.162
2. वही, पृ.163
3. वही ।

अतः 'अंधेरे में' शीर्षकवाली लंबी कविता मानव इतिहास के वर्ग-संघर्ष की लंबी व प्रदीर्घ कहानी है ।

इस प्रकार मुक्तिबोध की कविताओं में वर्ग-संघर्ष साकार हो उठा है । वर्ग-संघर्ष के पात्र और परिवेश सजीव लगते हैं ।

3.5 वर्ग विभाजन :

मुक्तिबोध मानवीय संवेदनाओं के आधार पर मानव-मानव पर बीच के भेदभाव को समाप्त कर मानव सब समान है, उनमें वर्गगत भेद नहीं होना चाहिए इसी बात को प्रकट करते है -

"आदमी की दर्द-भरी गहरी पुकार सुन
पड़ता है दौड़ जो
आदमी है वह खूब
जैसे तुम भी आदमी
बूढी माँ के झुर्रीदार
चेहरे पर छाये हुए
आँखों में डूबे हुए
जिन्दगी के तजुर्बात
बोलते हैं एक साथ
जैसे तुम भी आदमी
वैसे मैं भी आदमी
चिल्लाते हैं पोस्टर ।"[1]

अर्थात् मुक्तिबोध मानव-मात्र की समानता के तथ्य को रेखांकित कर धनिक-पूँजीपति शोषक वर्ग के मस्तिष्क में इस तथ्य को प्रतिबिंबित करना चाहते हैं कि मनुष्य-मनुष्य में कोई अंतर नहीं होता । जो लोग दुःख-दर्द में पिसते लोगों की पुकार सुनकर उनकी रक्षा के लिए उनका पक्ष समर्थन करने के लिए दौड़ पड़ते हैं, वास्तव में वे लोग ही धन्य हैं । वे पूँजीपतियों की आँख खोलते हुए कहते हैं कि जैसे तुम मनुष्य ही और तुम्हें मनुष्योचित सुख-सुविधाओं की आवश्यकता है । वृद्ध माता झुर्रीदार मुख से अभिव्यंजित होनेवाले पोस्टरों के

1. चाँद का मुँह टेढ़ा है, मुक्तिबोध, पृ.67

माध्यम से एक साथ ही अनेक लोग चिल्ला उठते हैं कि अरे शोषकों ! तुम्हारी तरह हम भी मनुष्य हैं । हमें भी हमारे उचित अधिकार मिलने चाहिए ।

"अलग-अलग मानव जातियों के लोगों में शरीर की बनावट और रुप-रंग का फरक होता है, पर इनमें से किसी बात का भी शारीरिक या मानसिक शक्ति या आदमी के काम पर कोई खास असर नहीं पड़ता ।"[1]

"...सारे दरमियानी ये फास्ले
मनुष्यों-मनुष्यों में जो अजीब बीच के
भयानक ये भेद भाव खड़े ऊँच-नीच के
स्वार्थो के कचरे से बने हुए घोंसले,...।"[2]

मानव-मानव के बीच भयानक भेदभाव का फासला विद्यमान हैं । ऊँच-नीच के वर्ग बने हैं । यहाँ स्वार्थरुपी कचरे के घोंसले में तांडव नृत्य चल रहा है ।

"सामाजिक उत्पादन प्रणाली, कार्य-विभाजन के अनुसार विविध वर्ग तथा उनके जीवन की विशेष प्रणालियाँ ही मानव संबंधों को निर्धारित करती है । एक वर्ग के भीतर सामाजिक संबंध मानव संबंध है ।... ये सामाजिक अस्तित्व में अपनी सारी जटिलताओं और अन्तर्विरोधों के साथ समाज का भौतिक जीवन मूर्त होता है ।"[3]

आदिकाल से ही दो प्रमुख वर्ग समाज में काम करते चले आये है - 1) शासक और 2) शासित । इतिहास की दृष्टि से प्रारंभ में दास प्रथा थी वहाँ इनका संबंध प्रभु और दास का था, उसके बाद राजा और प्रजा, जमींदार और किसान, मालिक और गुलाम यही संबध पूँजीवाद में चल चलाकर पूँजीपति और श्रमिक (सर्वहारा) के रूप में परिवर्तित हुए । पूँजीवादी साम्राज्यवाद के अवलोकन से संप्रति वहाँ पर प्रमुख रूप में तीन वर्ग के जन के अस्तित्व का बोध होता है ।

1) उच्च वर्ग

2) मध्य वर्ग

3) निम्न वर्ग

---

1. जुआन कोमस : मानव जातियों में ऊँच-नीच के विचार, पृ.25
2. मुक्तिबोध रचनावली (द्वितीय खंड) शीर्षक विहीन कविता, पृ.477
3. डॉ. शिवकुमार मिश्र : मार्क्सवादी साहित्य चिंतन, पृ.69

3.5.1 उच्च वर्ग :

उच्च वर्ग याने अधिकारी वर्ग जिसके अधीन उत्पादन के साधन और उत्पादन सामग्री होती है । उनकी संख्या न्यूनतम होती है । उन विलासी तथा आरामतलबियों को भूख और कष्ट सपने में भी देखने को नहीं मिलते ।

"वे न देख पाये हैं अब तक गोली गरमी
चिन्ता के स्थिर मेघ-श्याम वातावरणों की
गन्ध न देखी थके देह के आवरणों की ।"[1]

उच्च वर्ग के लोगों ने गरमी का, न चिंता का, न थकावट का अनुभव किया है । वे सिर्फ आराम करते विलासी जीवन बिताते रहते हैं ।

"...चाँद का अधूरा मुँह
व्यंग्य मुसकराता है
फैलाता अपार वह व्यंग्य की विषैली चाँदनी
घोर के देह पर
पहाड के देह पर...।"[2]

चाँद के सदृश्य उच्च वर्ग के लोग हैं जो अपनी व्यंग्य विषैली दृष्टि और मुस्कान से सर्वहारा को निहारते हैं और पहाड रुपी सर्वहारा पर विषैली चाँदनी रुपी अफनी नजर डालते है ।

"मानो कि श्वेत-वस्त्रधारी इस मानव ने
मानवता त्याग दी ।"[3]

उच्च वर्ग के श्वेत, शुभ्र वस्त्राधारी लोग भोग विलास में निमग्न रहते हैं । वे वास्तव जगत से अनभिज्ञ हैं । वे सच्ची मानवता को त्याग कर अपने मधुर कल्पित स्वप्नलोक में सानन्द विचरण करते हैं । उनके यथार्थ जीवन कोसों दूर है ।

उन्नत श्रेणी के लोग अपने मन मौजी लोक में आलोच्य कवि के काव्य में दीखते हैं ।

---

1. मुक्तिबोध रचनावली (प्रथम खंड) मध्य-वित्त, पृ.177
2. वही, मुझे याद आते हैं, पृ.210
3. वही, जिन्दगी का रास्ता, पृ.236-37

3.5.2 मध्य वर्ग :

ऊँच-नीच वर्ग के बीच में आनेवाला वर्ग मध्य वर्ग है । इस वर्ग की हालत न लीने की है, न मरने की है । मध्य वर्ग उच्च के सहायक के रूप में काम करता है । इसका अपना कोई स्वतंत्र अस्तित्व नहीं है । उच्च वर्ग के आदेश और इशारे के अनुसार यह वर्ग चलता-फिरता है सेक्रेटरी, म्यानेजर, आर्कोटण्ट, क्लर्क आदि इस वर्ग के प्रमुख पात्र हैं ।

"दुनिया का उदरम्भरी मध्यम वर्ग थर्राकर
(रोटी की तलाश में)
बेचता है आत्मा को
वेश्या के देह-सा व्यभिचार के लिए
.....आत्मा को वासना-संवेदनो में बोरकर
लाल सामयी जीभा को चलाते हुए
खाते हैं सुख की, आराम की
वे बासी मिठाइयाँ
पूँजीवादी चोट्टों के घर की
पूँजीवादी ल्हास को गटर में
मध्यवर्गी बुद्धिशील अवसरवादी केंकड़े
खेलते शिकार हैं
भयभीत मध्य वर्ग भागकर
प्राणों की भिक्षा माँग
खड़ा हुआ रावण के आँगन में दीन-सा
टिक गया दानवों की भीत दे आसरे ।"[1]

उपर्युक्त पद्य में मध्य वर्ग का चित्र बहुत ही सुन्दर बन पड़ा है । मध्य वर्ग रोटी के लिए अपनी आत्मा की वैश्या को देह-सा व्यभिचार में बेचता है । सुख भोग करने के लिए स्वार्थी मध्य वर्ग पूँजीपति चोरों के यहाँ सेवा कर उनकी मिठाइयाँ बड़े शौक से खाता है । वह पूँजीवादी शोषण की मटर के केंकड़े सा खेलता है । अपनी रोज गुजारी के लिए रावण रुपी उच्च वर्ग के यहाँ आश्रय की भिक्षा माँगता है ।

1. मुक्तिबोध रचनावली (प्रथम खंड) जिन्दगी का रास्ता, पृ.238

“यह मध्य वर्गीय असंस्कृति की प्रवंचना
एक लालसा के स्वप्निल सौन्दर्यो-डूबी
खण्ड़ित दर्पण देख रही अपना मुख लोभी ।”[1]

वंचित मध्य वर्ग स्वर्णिम सौन्दर्य की आभा को प्रत्याशा में उत्सुक है । छुटे दर्पण में अपना प्रतिबिम्ब देख रहा है । यहाँ पर कवि ने मध्य वर्ग की मूर्खता पर करारा व्यंग्य किया है ।

“...शोषक के अत्याचारी जाल पर गरजता है
निहार वह आलोचना नपुंसक
जो आत्मा को बेच
आत्म-विरोध सिरजती है
पंख-कटे पक्षियों की लँडूरों की हालत को देखकर
सत्य का गला-घोंट चलती हुई पद-लिप्सु
कीर्ति-लोलुप कलम की जहालत देखकर
देख जन-शत्रुओं के छुपे याकि उजागर
दलाल या कि स्वार्थवादी लोंगो की स्याह रुह
देख अंधे शासन के घनघोर चक्रव्यूह...।”[2]

मध्य वर्ग यहाँ अपने पर बीतनेवाले अत्याचारों से सतर्क बन गया है । कवि ने मध्यवर्ग को नपुसंक कहकर संबोधित किया है । जो अपनी आत्मा को बेचकर पंख कटे पक्षियों की लँडूरों जैसी हालत देखकर क्रोधित होती है । यह शोषण की नीति सत्य का गला घोंटकर चलती है । इन स्वार्थी लोगों की आत्मा भी काली है । यह अन्धे शासन का घनघोर चक्रव्यूह हैं । यहाँ पर मध्य वर्ग की निजी भावनाएँ विस्फोट हुई है । मुक्तिबोध के साहित्य में अनेक प्रसंगों में मध्यवर्ग का चित्र निखरा हुआ है ।

3.5.3 निम्नवर्ग :

आदि काल से दो दास, किसान, मजदूर और श्रमिक के रूप में चला आया है उस जर्जर, दलित, पीड़ित, असहाय और दुर्बल वर्ग को निम्न वर्ग कहा

1. मुक्तिबोध रचनावली (प्रथम खंड) मध्य-वित्त, पृ.235
2. वही, मित्र, सहचर, पृ.285

जाता है । निम्न वर्ग अपने अधिकारी वर्गो के इच्छानुसार स्थित है जिसको अधिकार का कोई इक नहीं है । हंमेशा वह रौंदा जाता रहता है । उसके प्रति कोई सहानुभूति व्यक्त नहीं करता तथा उसके आँसू अनदेखे रह जाते हैं ।

विवेकीराय के अनुसार "निम्न वर्ग चाहे वह गाँव में किसान है अथवा नगर में मध्य वर्ग जिस-तिस प्रकार उदरपूर्ति भर अर्जन कर लेता हैं । शेष सभ्य मानवीय आवश्यकताएँ उसके लिए दुःस्वप्न हैं । यह सत्य है कि गाँव का आर्थिक पक्ष इतना दुर्बल है कि वह वर्धमान जनसंख्या को आजीविका प्रदान करने में अक्षम है और वही निम्न वर्ग की महत्वकांक्षाओं की पल्लवन संभावना हैं । अतः नगर शरणता आज की एक अनिवार्य विवशता हैं ।"[1]

"...नित्य दमित व्रण-रक्तिम भूरी इच्छाओं के
मंडराते है तिमिर-कुण्ठित-कुहर कमरों में
निम्न-मध्यवर्गीय उदासी की छाहों के ।
घँसी हुई छाती की हारी-थकी अस्थियाँ
नित्य बुभुक्षित प्राणों की ज्वालाओं ढाँके
सांस ले रही हैं टूटी-टूटी निद्रा में
मृयु-कष्ट को लंबी छायाएँ फैला के ।"[2]

निम्न वर्ग की जनता का हृदय नित्य घायल रहता है, दर्दभरी व करुणामयी अभिलाषायें उनकी हैं । रात से सुबह तक उदास टूटे घर में मंडराते रहते हैं । सुबह से शाम तक काम करते थकान से इनकी छाती की हड्डीयाँ घँस गई हैं । नित्य भूख की ज्वाला हृदय में ढाँके रहते हैं । इनकी संपूर्ण नींद भी नहीं, अपूर्ण नींद में सांस लेते हुए मृत्यु और कष्टों की छाया को फैलाये बैठे हैं ।

"....भारतीय अंधेरी गलियों में आजकल
सर्दी की भयानक काली-स्याह रातें हैं ।
जिन्दगी की धज्जियों से बनी हुई
लूटियों से लोग-बाग

1. विवेकीराय : स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कथा साहित्य ग्रामजीवन, पृ.228
2. मुक्तिबोध रचनावली (प्रथम खण्ड), म्युनिसिपलिटी का कन्दीन, पृ.270-71

ठिठुरते प्राणों को गरमाते हैं रातभर
अपनी ही हड्डीयों की ज्वालाएँ उकसाकर ।"[1]

निम्न वर्ग की बस्तियों का वर्णन उपर्युक्त पंक्तियों में हुआ है । इनकी बस्तियाँ भारतीय अंधेरी गलियाँ है, जहाँ सर्दी की भयानक काली रात है, इसमें इनकी जिन्दगी धज्जियाँ से भरी हुई हैं । झोपडियों में निम्न वर्ग की जनता रातभर सर्दी से काँपती है । अपनी हड्डीयों की ज्वाला उकसाकर अपने ठिठुरते प्राणों को रातभर गरमाते हैं । इस पद्य से निम्न वर्ग के लोगों की दुःखदायक रातें कैसे कटती हैं इसका संकेत मिल जाता हैं ।

"बिस्तर खूब गहरा खोद,
अपनी गोर से,
रक्खा उसे उस नरम धरती-गोद ।
फिर मिट्टी,
कि फिर मिट्टी,
रखे फिर एक-दो पत्थर
उढ़ा दी मृतिका की साँवली चादर
हम चल पड़े...।
उतनी भूमि पर है चिरन्तन अधिकार मेरा,
जिसकी गोद में मैंने सुलाया प्यार मेरा ।
आगे लालटेन उदास,
पीछे, दो हमारे पास साथी ।
केवल पै की ध्वनि के सहारे
राह चलती जा रही थी ।"[2]

यहाँ कवि ने निम्न वर्ग के यहाँ शव संस्कार का चित्र दर्शाया हैं । किसी दलित के शिशु की मृत्यु हो गई है । कोई नहीं सिर्फ तीन लोग हैं, एक लालटेन है न कोई बाजा है । रात का समय व्यक्ति अपने शिशु के शव को दफनाने के लिए खुद एक गड्ढा खोदता है उसमें शव को रख मिट्टी धकेलता

---

1. मुक्तिबोध रचनावली (प्रथम खंड) मेरे मित्र, सहचर, पृ.288
2. वही, रात, चलते हैं अकेले ही सितारे, पृ.123-24

है, एक-दो पत्थर रखकर चल पड़ता है । वह दलित कहता है कि उतनी भूमि पर है चिरन्तन अधिकार मेरा, जिसकी गोद में मैंने सुलाया प्यार मेरा । क्योंकि इस दलित के न कोई अधिकार है, न कोई वस्तु उसके पास है । इस प्रकार दलितों में शव संस्कार होता है ।

"जिन्दगी का घर टपकता, भीगती दीवार
हिय के ग्वहरों में
कृद्ध होकर घुस पड़ी अनिवार,
गीली बास ठण्डे पंक, तड़ते भूषकों की, यार ।
कीचड़ से व्यथि यह रात काली,
चिपचिपाती राह,
प्रति पल काँपते
दीवाल पर दो सघन छाया-देह
घर की टीन पर, छत-छप्परों पर
एक ही आवाज
यह बरसात...।
प्यारे, जिन्दगी के इस मलिन-तम शाम,
इसमें वक्ष हैं, दृढ़ पाँव हैं
हे कीर्ति भी बेनाम ।
इसमें स्नेह-कातर श्वास,
जीवन का कठिन संग्राम ।"[1]

यहाँ निम्न वर्ग के घर और उसमें स्थित जनता का वर्णन किया है । एक झोपड़ी है, रात का समय है, बरसात हो रही है, झोपड़ी में बरसात का पानी बूँद-बूँद सा टपक रहा है । वहाँ सड़े भूषकों की दुर्गन्ध आ रही हैं । बरसात से गली के रास्ते कीचड़ से चिप चिपा रहे हैं । ऐसी स्थिति में हर क्षण दो व्यक्ति काँपते हैं (पति-पत्नी) जिनकी छाया दीवार पर पड़ता है । छप्पर पर बरसात का एकमात्र आवाज है । ऐसी मलिन-तम श्याम गृह में स्नेह है, धैर्य है तथा बेचैनी है । यह निम्न वर्ग के जीवन का कठिन तता संघर्षरत अनिवार्य संग्राम हैं ।

1. मुक्तिबोध रचनावली (प्रथम खंड) कष्ट तथा स्नेह, पृ.124

"गन्दी बस्तियों के पास नाले पार
बरगद है
उसी के श्याम तल में वे
रंभाती हैं कई गायें ।
कि पत्थर-ईट के चूल्हे सुलगते हैं ।
फुदकते हैं यही दो-चार
बिखरे बाल वाले बालकों के श्याम गंदे तन
व लोहे की बनी स्त्री-पुरूष आकृतियाँ
दलिद्दर के भयानक देवता के भव्य चेहरे वे
चमकते धूप में ।"[1]

नाले के किनारे बरगद के पेड़ के पास निम्न वर्ग की गंदी बस्तियाँ है । इन लोगों की गायें भी वहीं पर चारा चर लेती हैं । इन लोगों के चूल्हें पत्थर और ईट बहीं पर सुलगते हैं । निम्न वर्ग की स्त्री और पुरूष लोहे के जैसे मजबूत होते हैं । इनके चेहरे बदनसीब, मायूस और भयानक स्वरूप में धूप में चमकते हैं । इस कवितांश में मुक्तिबोध ने निम्न वर्ग के बसेरे का चित्र दिखाया हैं ।

"शहर के बड़े-बड़े पुलों के
मेहराबों नीचे बहुत नीचे उन
सिमटी हुई हरी हुई
बस्तियों के सुनसान उदास किनारों से लगकर
बहते-उटकते हुए
झरते भटकते हुए
पथरीले नालों की काली-काली धार में
धराशाही चाँदनी के होठ काले पड़ गये ।
हरिजन-बस्ती में, मन्दिर के पास एक
कबीठ के धड़ पर,
मटमैले छप्परों पर,
बरगद की ऐंठी हुई उभरी हुई जड़ पर
कुहासे के भूतों के लटके

1. मुक्तिबोध रचनावली (द्वितीय खंड) मेरे लोग, पृ.241

चूनर के विधरे
अंगिया व धाधरे, फटी हुई चादरें
अटक गयी जिनमें एक
व्यभिचारी टक्टकी
गंदे-सिर, टेढ़े-मुँह चाँद की ही कंजी आँख ।"[1]

निम्न वर्ग की बस्तियाँ शहर के बड़े-बड़े पुलों के मेहराबों के नीचे होती हैं, क्योंकि वे बेघर रहने के कारण निर्धन दलित वर्ग के लोग मजबूरी से पुल के नीचे वास करते हैं । ये बस्तियाँ नाले के किनारे ही होती हैं । नाले की धारा काली स्याही सी बहती रहती है । इनमें कुछ हरिजन-बस्तियाँ भी हैं, ये झोंपडियों में वास करती हैं । इनके पास पहनने के लिए ठीक से कपडे नहीं होते, वे फटे चुनर, अंगिया धाधरे और चादरें इस्तेमाल करती हैं । इन फटें पुराने चिथरों में गँजे-सिर, टेढ़े-मुँह चाँद की ही कंजी आँख व्यभिचार के लिए अटक भी जाती है अर्थात् पूँजीपतियों का मन कामातुर होकर इन पर ललचता है ।

"चाँदनी
सडकों के पिछवाड़े टूटे-फूटे दृश्यों में
अस्पृश्यों - अस्पृश्यों में
गन्दकी के काले-से नाले के झाग पर
बदमस्त कल्पना-सी फैली थी रात-भर
सेक्स के कष्टों के कवियों के काम-सी ।"[2]

निम्न वर्ग की बस्तियों में रात के समय स्पृश्यों-अस्पृश्यों में नंगा व्यभिचार चलता है । रात को उच्च वर्ग कहे जानेवाले अपनी काम वासना को तृप्त कर लेने के लिए अस्पृश्यों (निम्न वर्ग) की गन्दकी के काले-से नाले झाग पर आते थे । रात-भर वहाँ सेक्स चलता था । इस प्रकार यहाँ उच्च वर्ग की अनीति और निम्न वर्ग की मजबूरी को एक साथ दर्शाने का प्रयत्न किया है ।

इस तरह मुक्तिबोध के काव्य में, उच्च, मध्य तथा निम्न वर्ग के लोग व्यस्थित रूप में दृष्टिगोचर होते हैं ।

---

1. मुक्तिबोध रचनावली (द्वितीय खंड) चाँद का मुँह टेढ़ा है, पृ.268-69
2. वही, पृ.304

3.6 शोषण-तंत्र :

शोषण के बदलते रूप का वर्णन यहाँ पर किया गया है । कोई व्यक्ति दूसरे व्यक्ति को किसी वस्तु (उत्पादक वस्तु) तथा कार्य (उत्पादन कार्य) पर स्वतंत्र न छोडकर तथा स्वार्थ परायण होकर नाजायज फायदा उठाता है उसी कार्य को शोषण कहा जाता है । जैसे कि शोषक शोषित या गुलाम को अपने बराबर हक न देकर स्वतंत्रहीन बनाकर अपने सूत्र के अनुसार वर्ताव करता है । जैनेन्द्रकुमार के अनुसार "वर्तमान समाज में शोषण इतना गहरा और गहन है कि मनुष्य उसे देखा अनदेखा कर जाने और उसके परिणाम भोगने को विवश है । जीवन का वह कौन सा क्षेत्र है जहाँ शोषण को पोषण नहीं मिलता और वह अछूता बचा हुआ है ? यह शोषण मनुष्य की प्राप्ति शक्ति को घटाता जा रहा है ।"[1] यही शोषण मुक्तिबोध की अनेक कविताओं में दिखाई देता है ।

"मुक्तिबोध समाज के दलित और पीड़ित वर्ग की समस्याओं से अभिभूत थे और उनका कोई वैज्ञानिक समाधान चाहते थे - वैज्ञानिक ढंग से समस्याओं के कारणों की खोज़ और उनको दूर करने का उपाय ।"[2] मुक्तिबोध की कविताओं में शोषण का रूप पूँजीपति और मजदूर के बीच कार्यान्वित क्रिया के रूप में आया है ।

"नगर का अमूर्त-सा तिलिस्मी आभालोक
शोषण की सभ्यता का राक्षसी दुर्ग-रूप
यथार्थ की भित्ति पर
समुद्रघाटित करता है ।"[3]

उपर्युक्त कविता के अंतर्गत पूँजीवादी समाज का रूप तथा शोषण का चित्र है । पूँजीवादी नगर का प्रकाश अमूर्त और तिलिस्मी है । यह राक्षसी दुर्ग जिसकी सभ्यता शोषण है । यह विकराल रूप यथार्थ की भित्ति पर स्थापित हुआ है ।

---

1. जैनेन्द्रकुमार : समय, समस्या और सिद्धांत, पृ.11
2. शशि शर्मा : मुक्तिबोध की कविता में यथार्थबोध, पृ.46
3. मुक्तिबोध रचनावली (प्रथम खण्ड), मुझे याद आते हैं, पृ.214

"...शोषण के भयानक जबड़ो ने फूँक मार
झोपडियाँ गिरा दी व मकान ढहा दिये
तुलसी हुई पुरानी धुनकी हुई रुई की
टुकडों-सी उडती है
मनुष्य के साँवले समूहों की जिन्दगी ।"[1]

शोषण के खातिर पीड़ित शोषित वर्ग की बस्तियाँ उजाड़ दी गई । धुनकी हुई पुरानी रूई के टुकडों सी पीड़ित जनता की जिन्दगी रही ।

"...बीच सड़क में बड़ा खुला है एक अंधेरा छेद,
एक अंधेरा गोल-गोल
वह निचला-निचला भेद,
जिसके गहरे-गहरे तल में
गहरा गन्दा कीचड़
उनमें फँसे मनुष्य ।"[2]

कवि शोषण के स्वरूप का वर्णन करते हैं । शोषण एक बड़ा खुला अँधेरे का छेद है । वह गोल रहकर उसका तल गंदा दल कीचड़ है । इस शोषण के कीचड़ के गहरे खड्डे में मासूम-भोली शोषित जनता फंस गई है ।

"...वह दुष्ट ब्रह्म कर रहा जबर्दस्ती वसूल
हमसे तुमसे
यह रक्त-किराया, अस्थि-माँस-भाड़ा
धरती पर रहने का ।"[3]

दुष्ट ब्रह्म (शोषक) पीड़ितों से उनके रक्त, अस्थि-मांस का भक्षण करके धरती पर रहने का किराया वसूल कर रहा है ।

"टीले के सीने पर
आसन जमाये हैं

---

1. मुक्तिबोध रचनावली (प्रथम खण्ड), सूरज के वंशधर, पृ.267
2. वही (प्रथम खण्ड), भविष्य धारा, पृ.135
3. वही (प्रथम खण्ड), विक्षुब्ध बुद्धि के मानक स्वर, पृ.138

दस्यु एक ।
उसी ने, निकाली बन्दूक और धाँय-धाँय !!
कौन ग्राम जल उठा
लुट गया कौन आज हाय-हाय ।"[1]

शोषित समुदाय के टीले पर आसन जमाये बैठा 'दस्यु' ने (शोषक) अपनी बन्दूक निकाल एकाएक गोली दाग दी । कई शोषित लुट गये, ग्राम जल उठा और ग्राम में हाहाकार उत्पन्न हुआ ।

"भयानक, हाय, अन्धा और
जिन्दा छातियों पर और चेहरों पर
कदम रखकर
चले हैं पैर ।
अनगिन अग्निमय तन-मन व आत्माएँ
व उनकी प्रश्न-मुद्राएँ,
हृदय की द्युति-प्रभाएँ,
जन-समस्याएँ
कुचलता चल निकलता हूँ ।"[2]

साम्राज्यवादी अंधे और (अंधायुग) से क्रुर अन्याय होता है । शोषितों की छाती और चेहरों पर साम्राज्यवादी कदम रखते चले हैं । उनका संपूर्ण भविष्य साम्राज्यवादी पैरों तले रौंदा जा रहा हैं ।

"भूखों ओ, प्यासों ओ
इन्द्रिय-जित संत बनो
बिरला को टाटा को
अस्थि-माँस दान दो
केवल स्वतंत्र बनो
धूल फाँक श्रम करो
साम्य-स्वप्न-भ्रम हरो
परम पूर्ण अन्त बनो

1. मुक्तिबोध रचनावली (द्वितीय खण्ड), एक टीले और डाकू की कहानी, पृ.227
2. वही, चकमक की चिनगारियाँ, पृ.252-53

अमरीकी सेठवाद
भारतीय मान लो
हमारे मत प्राण लो
मानवीय जन्तु बनो ।"[1]

कवि कहता है कि यह शोषण रुकने वाला नहीं, निरन्तर चलनेवाला है । भूखे प्यासे शोषित जन तुम्हारा संत बन जाना ठीक है । बिरला को टाटा को अस्थि-माँस दान दो और धूल फाँक श्रम करो, साम्य स्वपन्न हरो, अमरीकी सेठवाद भारतीय मान लो ।

"....मसान में....
मैंने भी सिद्धि की
देखों, मूँठ मार दी
मनुष्यों पर इस तरह...।"[2]

पूँजीपति ने दुग्धु के रूप में उपर्युक्त कविता में प्रस्तुत होकर मसान में सिद्धि पालिया है और दलित जनता पर अपना शोषण प्रवाह चलाया है ।

"इन माँओं के गहरे फराहते गर्भो से
मृत बालक ये कितने जन्मे
बीमार समाजों के घर में ।
...शोषण के वीर्य-बीज से अब जन्मे दुर्दम
दो सिर के चार पैर वाले राक्षस बालक
विद्रुप सभ्यताओं के गर्भो से निकले
विद्रुप समस्याओं के विश्व-जाल-बालक
मानव की आत्मा से सहसा कुछ दानव और निकल आये...।"[3]

शोषण के कारण दलित स्त्री धन प्रलोभनवश पूँजीपति वर्ग के साथ व्यभिचार करती है । व्यभिचार कर गर्भवती हो जाती है । इनके गर्भ से मृत बालकों का जन्म होता है क्योंकि वह बीमार समाज की नारियाँ हैं । कवि का आशय है कि इस 'शोषण के वीर्य बीज से', 'दो सिर वाले, चार पैरवाले राक्षस

---

1. मुक्तिबोध रचनावली (द्वितीय खण्ड), कल्पना की दीप्ति, पृ.294-95
2. वही, चाँद का मुँह टेढ़ा है, पृ.303
3. वही, एक प्रदीर्घ कविता, पृ.331

बालक' जन्मेंगे । ये कुरूप साम्राज्यवादी सभ्यता के गर्भ से निकले भयंकर समस्याओं के विश्व-जाल बालक हैं । इस प्रकार नारी पर निरंतर होनेवाले नारकीय अत्याचार तथा भीषण शोषण का चित्र प्रस्तुत किया गया है ।

"दस्यु-पराक्रम
शोषण पाप का परंपरा-क्रम
वक्षासीन है,
जिसके कि होने से गहन अंशदान
स्वयं तुम्हारा !!
इसीलिए जब तक उसकी स्थिति है,
मुक्ति न तुम को ।"[1]

दस्यु स्वरूप पूँजीपति शोषितों की छाती पर अपना क्रुर अधिकार जमाये शोषण के तीव्र गति से प्रचलित करते हुए जनता को अपने गुलाम बना बैठे हैं ।

"हाँ, वहाँ
एक गाँव, धधक रहा
गरीबों का गाँव एक,
बिना ठाँव !!
खतरनाक लूट-पाट, आग, डकैतियाँ
चम्बल की घाटियाँ ।"[2]

शोषण की घोर नीति के तहत एक बार दलितों का गाँव जल रहा था, वहाँ पर भयंकर लूटमार चल रही थी, आग धधक रही थी, डकैत लूट-पाट में लगे थे । अतः इस कविता द्वारा कवि मुक्तिबोध ने शोषकों के जुल्म, लूटमार, दलित वर्ग पर भयानक और क्रुर रीति से संपन्न होने का हृदय विद्रावद तथा विकृत दृश्य पेश किया है ।

शोषण के स्तर, प्रक्रिया, उपक्रम, परिणाम तथा परंपरा आदि का यथोचित सर्वेक्षण यहाँ विद्यमान है ।

विश्व में आरंभ से लेकर आज तक अनेक शोषण प्रणालियाँ ही चली

1. मुक्तिबोध रचनावली (द्वितीय खण्ड), चम्बल की घाटी में, पृ.458-459
2. वही, पृ.445

आई हैं जैसे स्वामी-दास, राजा-प्रजा, जमींदार-किसान, मालिक-गुलाम, पूँजीपति-मजदूर आदि ।

कवि ने अपनी कविता में शोषण प्रणाली के बदलते रूप के संबंध में अपना विचार व्यक्त किया है । सामन्त युग पुरातन काल से परंपरागत रूप में गतिशील था जिसका यथोचित विवरण आलोच्य कवि की कविताओं में विद्यमान हैं ।

"सामन्ती घराने की जागीरदार
बूढ़ी-सी सास क्यों
स्वयं पिशाइनी का प्रचण्ड रूप ले
विद्रोहिणी विधवा निज बहू की पीटी गयी
पीठ पर बैठकर
जबरदस्त हाथ में
गरम-गरम लोहे की शलाका ले
पीठ दागती हैं,...।"[1]

सामान्त युग में सास अपनी विधवा बहू को पिशाचिनी के रूप में सताती थी । बहू को पीटकर उस पीटी गई पीठ पर बैठ गरम लोहे के शलाके से दागती थी । ऐसी क्रुर शोषण नीति हम को सामन्त युग में मिलती हैं । उसी प्रकार मुक्तिबोध ने सामन्त युग के बाद आनेवाले जमींदारी युग के संबंध में भी अपनी कविता में निर्देश किया है ।

"किन्तु युग बदलाव आया कीर्ति-व्यवसायी
...लाभकारी कार्य में से धन,
व धन में हृदय-मन,
और, धन-अभिभूत अन्तःकरण में से
सत्य की झाई
निरन्तर चिलचिलाती थी ।"[2]

सामन्त युग के अंत के साथ जमींदार का आगमन तथा भूमालिक व कीर्ति व्यवसायी अस्तित्व में आये । धनार्जन में व्यस्त इन प्रलोभियों का धन में

1. मुक्तिबोध रचनावली (प्रथम खण्ड), जिन्दगी का रास्ता, पृ.240-41
2. वही (द्वितीय खण्ड), ब्रह्म राक्षस, पृ.348

हृदय मन लग गया है, जिसके कारण सत्य बेताब होकर नौ दो ग्यारह कर देता है ।

इस प्रकार मुक्तिबोध ने अपनी कविताओं में उत्पादन प्रणालियों के बदलते रूप (शोषक के परिवर्तित रूप) के संबंध में अपना विचार व्यक्त किये हैं ।

3.7 शोषित :

वह पीड़ित जो शोषकों का शिकार बनता है उसे शोषित समझा जाता है । जिसका कोई अपना अस्तित्व नहीं हैं, सेवक के रूप में हंमेशा सेवा अर्थात् श्रम करते-करते आखिर एक दिन मर जाता है । शोषित वर्ग का अस्तित्व अधिकतर पूँजीवादी समाज में होता हैं । शोषितों का जीवन शोषण से युक्त होता है ।

"सुखे श्याम चर्म से आवृत्त
वक्ष-अस्थियों की कुटिया के अन्दर
प्राण पीसती-सी धड़कन की सूखी चक्की
सदा चलता करती है ।"[1]

उपर्युक्त पद्यांश में शोषित के शरीर के संबंध में बताते हुए कवि कहते हैं कि शोषितों के शरीर के चर्म काले और सूखे हैं । वक्ष और अस्थियों से निर्मित कुटिया (देह) के अंदर प्राण सूखी चक्की सी सदा प्रचलित रहती है । यह पद्यांश शोषित के शरीर के निर्माण से संबंधित हैं ।

"...वह बबूल भी
दुबला, धुल भरा, अप्रिय-सा, सहज उपेक्षित,
श्याम, वक्र अस्तित्व लिये वह रंग तिरस्कृत,
अपमानों को मौन झेलता, चिर-अपमानित,
पथ के एक ओर चुपचाप खड़ा हैं ।
फटे-हाल जीवन की नंगी कठिन दीनता-सा जो वर्जित वह बबल है ।
वृक्षों के अभिजात वर्ग की आँखों में वह सदा बहिष्कृत,
चिर-निर्वासित ।"[2]

---

1. मुक्तिबोध रचनावली (प्रथम खण्ड), ओ विराट् स्वप्नों, पृ.139
2. वही, बबूल, पृ.145

बबूल के पेड़ के रूप में शोषित का चित्र आँका गया है । बबूल के पेड़ रूपी शोषित दुबला, मैला, कुरूप, उपेक्षित काला तथा वक्र अस्तित्ववाला वह गरीब तिरस्कृत हैं । यह अपमान को मौन से झेलता है और हमेशा अपमानित होता है । सभी से वर्जित फटेहाल जीवन में जीता हैं ।

"...मौन
साँवला शून्य पत्थर बनकर
तू पड़ा रहेगा युग-युगान्त ।"[1]

वह काला पत्थर-सा युग युगान्त के लिए पड़ा रहेगा । इस बात का उल्लेख कवि ने यहाँ किया हैं ।

"...दुखती हुई पसलियों, थकी हुई पीठ औ
अलसाये गात की
माँगो का गला घोंट ।"[2]

शोषित अपनी चाहत को पूरा कर नहीं सकते अपनी अभिलाषाओं का गला घोंटते हैं । उनका शरीर परिश्रम से त्रस्त कमजोर रहता है । उनकी पीठ और पसली वजनदार मेहनत के कारण खूब दर्द देती है ।

"...गिरफ्तार चूहा ज्यों भागता है लगातार
पिंजरे को चक्रव्यूह गलियों में बेचैन
(बाहर भाग सकने की बुद्धि ही नहीं है)...।"[3]

शोषित गिरफ्तार चूहा जैसा है अर्थात् बन्धन युक्त है । जैसे चूहा पिंजड़े के अन्दर निरंतर दौड़ता रहता है वैसे शोषित भी बन्धन के चक्रव्यूह की गलियों में बुद्धि भ्रष्ट होकर लगातार भागता रहता है ।

"...मामूली व्यक्ति वह नगण्य टीचर था ।
किन्तु हाय ! कर्ज के चट्टानी बोझ ने
पार्ट-टाइम सेवाओं की
टूटी हुई सीढ़ियों पर चढ़ने के लिए कर मजबूर...।"[4]

1. मुक्तिबोध रचनावली (प्रथम खण्ड), सूके कठोर नंगे पहाड़, पृ.220
2. वही, जिन्दगी का रास्ता, पृ.246
3. वही, (द्वितीय खण्ड), बैलगाड़ी को, पृ.102
4. वही, (प्रथम खण्ड), जिन्दगी का रास्ता, पृ.242

बेचारे मास्टर का अपना कर्ज एक चट्टान के रूप में उसके सर पर सवार है । वह चैन से कैसे जा सकता ? वह अपने इस कर्ज को चुकाने के लिए मजबूरी में फिर कहीं पार्ट-टाइम सेवा के लिये तथा नीच काम करने के लिए तैयार हो जाता है ।

"मैं कनफटा हूँ बेठा हूँ
शेव्रलेट-हौज के नीचे मैं लेटा हूँ
तेलिया लिबास में पूरजे सुधारता हूँ
तुम्हारी आज्ञाएँ ढोता हूँ ।"[1]

मैं (शोषित) कनफटा हूँ और तुच्छ हूँ । तेल से मैला कुर्ता पहनकर शेव्रेलेट डॉज गाड़ी के नीचे लेटकर पुरजे सुधारता रहता हूँ । शोषण गण की आज्ञाएँ ढोया रहता हूँ । मेरा कोई स्वतंत्र जीवन नहीं हैं ।

शोषितों पर निरन्तर जालिम शोषकों द्वारा चलनेवाले विविध कष्टदायक निर्दय, क्रुर जुल्मों का व्यापक ब्योरा आलोच्य कवि के काव्य में परिलक्षित होता हैं ।

कवि मुक्तिबोध ने अपनी अधिकांश कविताओं में शोषित वर्ग को प्रमुख स्थान देकर उनके कष्टमय जीवन को सजीव रूप में रखकर उनके प्रति अनेक स्थलों पर सहानुभूति प्रकट की है । शोषिक के पीड़ित जर्जरमय जीवन का सांगोपांग वर्णन करते हुए उनके प्रति अपना अपार स्नेह-प्रेम व्यक्त किया है । शोषितों के शोषण, कष्टमय जीवन के कवि अनुप्राणित हुआ है । वह शोषण से मुक्त होने की कामना करता है । मुक्तिबोध के शोषितों के प्रति सहानुभूति से संबंधित चन्द कवितांश को निम्न रूप में सूचित किया गया हैं ।

"वे धँसे हुए जलते नेत्रों वाले जन-जन
पीले कपोल वाले स्वदेश की मानवता
अपना गरीब जन-राष्ट्र देश का चित्र लिये
सूखे कुएँ में गिरी बालटी टूटी-सी
त्यों परित्यक्त असहायवस्था में जीकर
भी अधिकाधिक मानव बनने की कोशिश में
जिनका कपाल रक्तताल हुआ, कीट टूटी-सी

1. मुक्तिबोध रचनावली (द्वितीय खण्ड), मैं तुम लोगों से दूर, पृ.238

वे भी आगे बढने की हिम्मत रखते हैं ।
पर उनका जीवन देखा हुआ मैं करुणाकुल
उनकी बातें करती रहती मुझको व्याकुल ।
यह दृश्य देख उर रोता है भीतर-भीतर
पर मन कहता है यह क्यों, यह सब क्यों...।"[1]

यहाँ शोषितों के प्रति कवि मन व्याकुल हो उठा है । गरीब निसहाय जनता शोषण से मुक्त बनकर स्वतंत्र मनुष्य बनने के लिए भगीरथ प्रयत्न करते चली है । उनके जीवन के अवलोकन से कवि मन में करुणा और अंतःरोदन करता है और उसका मन अपने आपसे सवाल करता है यह क्यों ? यब सब क्यों ?

"जहाँ सूखे बबूलों की कंटीली पाँत
भरती है हृदय में धुन्ध-डूबा दुःख,
भूखे बालकों के श्याम चेहरों साथ
मैं भी घूमता हूँ शुष्क,
आती याद मेरे देश भारत की ।"[2]

कवि जब जब भूखे शोषित बच्चों के साथ नीरसता से घूम रहा था तब उन्हें भारत देश की याद आती है क्योंकि भारत में अधिक मात्रा में गरीब हैं जिनके यहाँ अभाव, भूख, दरिद्रता छायी है ।

"झुलसते जा रहे हैं आग में
या मुँद रहे हैं धुल-धक्कड़ में ।
किसी की खोज हैं उनको,
किसी नेतृत्व की ।"[3]

"सर्वहारा वर्ग के प्रति आत्मीयता की अनुभूति इस कविता में प्रकट हुई है ।"[4] शोषित वर्ग मरणोन्मुख होता जा रहा है और धूल से आच्छादित ही सर्वहारा अपने-अपने प्रतिनिधि की खोज में आतुर हैं ।

1. मुक्तिबोध रचनावली (प्रथम खण्ड), चेहरा गंभीर उदास, पृ.310-11
2. वही, (द्वितीय खण्ड), चकमक की चिनगारियाँ, पृ.262
3. वही, (द्वितीय खण्ड), मेरे लोग, पृ.239
4. डॉ. नरेन्द्र देव शर्मा : मुक्तिबोध का काव्य, पृ.144

"समस्या एक-

मेरे सभ्य नगरों ग्रामों में

सभी मानव

सुखी, सुन्दर व शोषण-मुक्त

कब होंगे ?"[1]

कवि व्याकुल मन से सोच रहा है शोषण की समस्या कब दूर होगी । मेरे सभ्य नगरों और ग्रामों के सभी मानवी सुखी, सुसंपन्न, समृद्ध और शोषण मुक्त कब होंगे ? यहाँ पर मुक्तिबोध ने शोषण के प्रति घृणा व्यक्ति की है । शोषण से कवि मुक्तिबोध भी असंतुष्ट है ।

"दूर-दूर मुफलिसी के टूटे-फूटे घरों में
सुनहरे चिराग जल उठते है;
आधी-अँधेरी शाम
ललाई में निलाई से नहाकर
पूरी झुक जाती है
थाहर के झुरमुटों से लसी हुई मेरी इस राह पर ।
धुँधले में खोये इस
रास्ते पर आते-जाते दिखते हैं
लव्यारी बूढे-से पटेल बाबा
ऊँचे-से किसान दादा
ये दाढ़ी धारी देहाती मुसलमान चाचा और
बोझा उठाये हुआ
माएँ, बहनें, बेटियाँ -
सबको ही सलाम करने की इच्छा होती है,
सबको राम-राम करने को चाहता है जी
आँसुओं से तरहोकर प्यार के.....
(सबका प्यारा पुत्र बन)
सभी ही का गीला-गीला मीठा-मीठा आशीर्वाद
पाने के लिए होती अकुलाहट ।"[2]

1. मुक्तिबोध रचनावली (द्वितीय खण्ड), चकमक की चिनगारियाँ, पृ.264
2. वही, (प्रथम खण्ड), मुझे याद आते हैं, पृ.213

दूर-दूर पर निर्धनों के टूटे-फूटे घर हैं, जहाँ दिये जल रहे हैं । शाम होने से अँधेरा आवृत होते जा रहा है । यहीं पर बूढे पटेल बाबा, किसान दादा, मुसलमान चाचा और बोझा ढोये हुए माएँ, बहनें, बेटियाँ हैं । जिन्हें देखकर कवि के मन में सहानुभूति जाग्रत होती है और उन्हें सलाम करने की इच्छा होती है । उन सबको राम-राम करने को जी चाहता है । उन सबका कवि प्यारा पुत्र बनना चाहता है और उनका आशीर्वाद लेने के लिए उत्सुक हो उठता है ।

इस प्रकार मुक्तिबोध ने अपनी कविताओं में अनेक स्थलों पर शोषित-जन के प्रति अपार सहानुभूति प्रकट की है ।

3.8 शोषित का जीवन :

समाज में शोषण की नीति के अस्तित्व के कारण शोषितों की संख्या बढ़ गई । शोषित जीवनभर कष्टों का सामना करते हैं, अभावग्रस्त जीवन बीताते हैं । दुःख इनका एकमात्र जीवन का सहारा है । खुशी अनुभव करने का इन्हें मौका ही नहीं मिलता । शोषित कष्ट, दुःख, अभावग्रस्त तथा करूणा जनक जीवन बिताते हैं । मुक्तिबोध में इन शोषितों के जीवन को अपनी कविता में ऊँचा स्थान देकर अपनी कविता की शोभा बढ़ाई है ।

“.....दीखता पहाड़
स्याह..... !
आज के अभाव के व कल के उपवास के
व परसों की मृत्यु के......
दैन्य के, महा-अपमान के, व क्षोभ पूर्ण
भयंकर चिन्ता के उस पागल यथार्थ का
दीखता पहाड़.....
स्याह !”[1]

‘मुझे याद आते हैं’ शीर्षक कविता में अभाव ग्रस्तता का संघर्ष एक स्याह पहाड़ के रूप में प्रयुक्त है । यहाँ पहाड़ आज के अभाव, कल के उपवास और परसों की विकराल मृत्यु की दैन्यता के कटु यथार्थ से निर्मित है । स्वार्थ-साधन के प्रयोग से श्रमिकों द्वारा अधिक-सा-अधिक श्रम करवाकर भी उन्हें गुजर लायक मज़दूरी से वंचित करते हैं ।

1. मुक्तिबोध रचनावली (द्वितीय खण्ड), मुझे याद आते हैं, पृ.210

"शहर के बड़े-बड़े पुलों के
मेहराबों - नीचे बहुत नीचे उन
सिमटी हुई डरी हुई
बस्तियों के सुनसान उदास किनारों से लगकर
बहते-अटकते हुए
झरते भटकते हुए
पथरीले नालों की काली-काली धार में
धराशाही चाँदनी के होठ काले पड़ गये ।"[1]

डॉ. सम्मत ठाकुर के अनुसार "फटी हाल जनता का दुःख और शोषण मुक्तिबोध के काव्य का प्रमुख कथ्य है । हर वर्ग शोषण के डरावना रूप उनकी कविता में व्यक्त है ।"[2]

यहाँ शोषित शोषण की घोर नीति के कारण इतने दब गये हैं कि वे भीमकाय पुलों के नीचे अपने बसेरे बसा लिये हैं । जहाँ से नाले का काला झाग बहता रहता है । ये नालों की धार इतनी काली हो गई है कि जिस पर छाई हुई चाँदनी तक काली हो गई है । "चाँदनी जिस दुनिया में मर जाती है, वह दुनिया भी क्या दुनिया कहलाने काबिल है ।"[3]

"अजीब संयुक्त परिवार है -
औरतें व नौकर और मेहनतकश
अपने ही वक्ष को
खुरदरा वृक्ष-धड़
मानकर घिसती हैं, घिसते हैं,
अपनी ही छाती पर जबर्दस्ती
विष-दन्ती भावों का सर्प-मुख ।
बहुएँ मुँडरों से कुद अरे !
आत्महत्या करती हैं !!"[4]

1. मुक्तिबोध रचनावली (द्वितीय खण्ड), चाँद का मुँह टेढ़ा है, पृ.
2. डॉ. सम्पत ठाकुर : हिन्दी की मार्क्सवादी कविता, पृ.162
3. वही, पृ.163
4. मुक्तिबोध रचनावली (द्वितीय खण्ड), एक भूतपूर्व विद्रोही का आत्म-कथन, पृ.150

यहाँ नौकरशाही व्यवस्था द्वारा शोषित संयुक्त परिवार का चित्रण है । इस परिवार के व्यक्ति, औरतें व नौकर इतनी मेहनत करते हैं कि अपने शरीर को खुरदुरा वृक्ष-धड़ समझ उसे घिसते रहते हैं अर्थात् अनेक घोर कष्ट देते रहते हैं । अपनी छाती पर जबर्दस्ती से विष-दन्ती भावों का सर्प-मुख घिसते रहते हैं व अपने आपको बहुत ही संकट पहुँचाते रहते हैं ।

"जिन्दगी का घर टपकता, भोगती दीवार !
हिट के गव्हरों में
क्रुद्ध होकर घुस पड़ी अनिवार,
गीली बास ठण्डे पंख, सड़ते मूषकों की,
कीचड़ से व्यथित यह रात काली,
चिपचिपाती राह,
सबको बाँधती है एक
धुँधली टिमटिमाती मार्गदर्शी एक लौ की चाह ।
प्रति पल काँपते
दीवार पर दो सघन छाया-देह ।
उनसे मत डरो, प्यारे पथिक,
हे देह-छाया एक
मेरी, दूसरी गृह-स्वामिनी की ।
घर के टीन पर, छत-छप्परों पर
एक ही आवाज;
यह बरसात तुमसे और मुझसे,
विश्व से नाराज ।
प्यारे, जिन्दगी के इस मलिन-तम-श्याम
गृह में स्नेह है,
आलोक, दृढ़तम धैर्य बे-आराम,
इसमें वक्ष हैं, दृढ़ पाँव हैं
है किर्ती भी बेनाम ।
इसमें स्नेह-कातर श्वास,
जीवन का कठिन संग्राम ।"[1]

1. मुक्तिबोध रचनावली (प्रथम खण्ड), कष्ट और स्नेह, पृ.124-25

शोषित का टूटा-फूटा घर बारिश में टपकता रहता है । घर के अंदर की दीवारें भीगती हैं । सड़े मूषकों की बास उस घर के अंदर फैलती रहती है । बारिश के कारण कीचड़ होती है, तमाच्छादित रात्रि में राह सब कीचड़ से चिपचिपाती है । ऐसे में सिर्फ एक दीप टिमटिमा रहा है, जिसके मार्गदर्शानुसार सब चल रहे हैं । ऐसे टूटे-फूटे छप्पर के घर में दो बहन प्रति पल ठंडे के मारे काँप रहे हैं, जिसकी छाया दीवार पर पड़ रही है, वह छाया कवि और उसकी गृहस्वामिनी की है । उस टूटे घर के छत पर बारिश गिरने से वही एक मात्र आवाज सुनाई दे रही है ऐसे, जिन्दगी के मलिन से आवृत्त अंधकारयुक्त घर में स्नेह हैं । उन्हें आराम नहीं है, वे नित्य मेहनत करनेवाले है । स्नेह के प्रति उनमें आस्था है । यह एक जीवन का कठिन संग्राम है । इस प्रकार यहाँ पर मुक्तिबोध ने शोषित के घर के संबंध में बताते उसके जीवन पर दृष्टि डाली है ।

"स्त्री के व बच्चों के सोने पर, रात में
तारों भरी मध्यरात्रि बीच वह
कुत्तों की नाराज भोके सुनता हुआ
करता था काम वह
किन्तु कभी जबरदस्त नींद के झोके में
गिरफ्तार होकर वह
पीली-लाल लौ की काली-काली जीभवाली लालटेन
के समीप लुढ़क जाता रामू था
पत्थर-सा, सिल-सा ।"[1]

शोषित अपनी बीबी और बच्चे के सोने के बाद रात में कुत्तों की नाराज ध्वनि सुनता हुआ श्रम करता रहता है । उसको नींद आने पर भी उसे रोककर काम करता है । उसके लिए आराम भी नहीं, उसको नींद के जबरदस्त झोंके मारते रहते हैं । अंत में वह लालटेन के समीप ही नींद से पत्थर की तरह एकाएक लुढ़क जाता है । कितनी बेबसी है ! कडी महेनत के बाद नींद भी उसके नसीब में नहीं है ।

---

1. मुक्तिबोध रचनावली (प्रथम खण्ड), जिन्दगी का रास्ता, पृ.246

"सटर-पटर सामान को घरे हुए शीर्ष पर
पुरूष उबारता -
धरे हुए टोकरियों में बिलखते बच्चों को
नारियाँ सँवारती
बची-खुची जिन्दगी के कराहते पलों की !
सुखी हुई जांघों की लंबी-लंबी अस्थियाँ
हिलाता हुआ चलता है
लंगोटी धारी यह दुबला मेरा हिन्दुस्तान
रास्ते पर बिखरे हुए
चावल के दानों को बीनता है लपककर
मेरा यह साँवला इकहरा हिन्दुस्तान
सटर-पटर सामान को धरे हुए शीर्ष पर
रोते हुए बच्चों को कंधे पर बिठाये हुए
जिन्दगी को ढोता है बहादुर हिन्दुस्तान..... ।"[1]

शोषित अपने सर पर 'सटर-पटर सामान' को ढोये चला है । नारियाँ टोकरी में रोते हुए बच्चों को संवारती हैं । शोषित अपने क्षीण काच के सहारे अस्थि-पंजर सा चला जा रहा है । कवि ने शोषितों को लंगोटधारी हिन्दुस्तानी कहकर संबोधित किया है । वह लंगोटधारी हिन्दुस्तानी रास्ते पर चावल को देखकर उन्हें लपककर चुन लेता है । भार सामान सिर पर ढोये रोते बच्चों को कंधों पर लिए वह बहादुर हिन्दुस्तानी भार जिन्दगी को ढोये चला जा रहा है ।

"बौनी कुटिया में मानव है कि अकारथ श्रम के
फटे बाँस से, जीवन का चिथड़ो का छाजन छप्पर थामे ।"[2]

इस छप्परवाली कुटिया में निरन्तर श्रम करते जीवन का छप्पर अपने हाथ में थामें खड़ा है । इस पद्य में मुक्तिबोध ने शोषित के अद्भुत तथा अनथक श्रम का उल्लेख करना चाहा है । इतना श्रम करने के बावजूद भी वह झोपड़ी में निर्धन दलित पीड़ित जर्जर बनकर ही रह जाता है ।

---

1. मुक्तिबोध रचनावली (प्रथम खण्ड), सूरज के वंशधर, पृ.267
2. वही, मानवता का चेहरा, पृ.274

3.9 शोषित मन :

शोषित के सम्बन्ध में पहले ही उल्लेख हो चुका है । शोषित के मन के रूप और शोषित के मन में उपजनेवाले भाव विचारों का उल्लेख मुक्तिबोध की कविताओं में पाया जाता है ।

> **"यही दुःख है,**
> **सेवाओं की कीमत किनसे लूँ मैं**
> **उनसे नहीं कि जिनकी मैंने सावा की है**
> **अरे मूल्य देने लायक वे कभी नहीं थे ।"[1]**

शोषित अपने आपसे कहता है, मेरे लिए केवल दुःख ही है । मेरी सेवा की व श्रम की मजदूरी किन से माँगू ! जिनकी मैंने सेवा की है उनमें से मैं नहीं ले सका क्योंकि वे लोग मुझे मूल्य देने को भी कभी तैयार नहीं थे, वे लोग नहीं देंगे । इस प्रकार शोषित मन व्याकुल होकर अपने आपसे प्रश्न करता है ।

> **"जिन्दगी के भयानक दृश्यों से सुपरिचित**
> **रामू का गरीब मन**
> **दुखते हुए फोड़े पर**
> **काँपते-से रक्त के लाल-गोल**
> **उभरे हुए बिन्दु-सा**
> **थरथराता रहता है ।"[2]**

शोषित जिन्दगी के भयंकर दृश्यों से अवगत हैं । यहाँ पर शोषित मन के रूप का वर्णन है । कवि कहता है कि शोषित मन दर्दभरे फोड़े पर काँपता सा लाल-गोल रूधिर बिन्दु सा थरथराता रहता है । इसका मतलब यही हुआ कि शोषित का मन हंमेशा डरता तथा काँपता रहता है । एतदर्थ शोषित मन-संबंधी विचार एवं अनुभव अभिव्यक्त हुए हैं ।

3.10 शोषित परिवार :

व्यक्तियों के वर्ग के समूह को समाज कहते हैं । परिवार समाज का एक अविभाज्य अंग है । समाज का प्रभाव परिवार में अवश्य प्रतिबिम्बित होता

---

1. मुक्तिबोध रचनावली (प्रथम खण्ड), सूरज के वंशधर, पृ.267
2. वही, मानवता का चेहरा, पृ.274

है शोषित के घर में जो कुछ भी होता है वह सब शोषित के परिवार के संबंध में कहा जा सकता है ।

“.....उर में सँभाले दर्द
गर्भवती नारी का
कि जो पानी भरती है वजनदार घड़ो से
कपड़ों को धोती है भाड़-भाड़
घर के काम बाहर के काम सब करती है,
अपनी सारी थकान के बावजूद ।
मजदूरी करती है,
घर की गिरस्ती के लिए ही,
पुत्रों के भविष्य के लिए सब ।”[1]

यहाँ पर कवि मुक्तिबोध ने अपनी एक सुन्दर मर्मस्पर्शी कविता द्वारा शोषित परिवार का सुन्दर चित्रण प्रस्तुत किया है । गर्भवती स्त्री वजनदार घड़े से पानी भरती है, कपड़े धोती है, बाहर के काम के साथ अपने बच्चों के भविष्य के लिए मजदूरी भी करती हैं ।

“......दुःखती हुई पसलियों, थकी हुई पीठ ओ’
अलसाये गात की
माँगों का गला घोंट ।
स्त्री के व बच्चों के सोने पर, रात में
तारों भरी मध्यरात्रि बोध वह
कुत्तों की नाराज भोंके सुनता हुआ
करता था काम वह,
किन्तु कभी जबरदस्त नींद के झोंके में
गिरफ्तार होकर वह
पीली-लाल लौ की काली-काली जीभवाली लालटेन
के समीप लुढ़क जाता रामू था
पत्थर-सा, सिल-सा ।”[2]

---

1. मुक्तिबोध रचनावली (प्रथम खण्ड), मुझे याद आते हैं, पृ.212
2. वही, जिन्दगी का रास्ता, पृ.246

शोषित अपने घर में अपनी स्त्री और बच्चे सोने के बाद भी नहीं सोता। वह रात भर कुत्तों की नाराज ध्वनि सुनता हुआ, गहरी नींद आने पर भी उसको रोककर अपना काम करता रहता है अर्थात् परिश्रम करता है। अधिक नींद आने पर बेसुध पत्थर-सा गिर जाता है। उसने तो वैसे दिन भर काम किया होता जिसके कारणवश उसकी पसलियाँ पीठ और देह दर्द होती रहती हैं। अपने अरमानों का वह गला घोंटकर जीता है। रात में भी उसको नींद करने के बजाय परिश्रम करना पड़ता है। इस पद्य में मुक्तिबोध ने अपनी दृष्टि एक शोषित के परिवार पर डाली है।

"…..परित्यक्त अपनों-सा लगता रहता है वह
अधनंगी माँ, नंगे बच्चे
धुन्धभरी प्रातः से ही सरदी की ऋतु की
बबूल पेड़ों के नीचे खोजने अन्न के
दाने, चिथड़े आदि वस्तुएँ….. ।"[1]

शोषित अपने परिवार से परित्यक्त-सा लग रहा है। जहाँ पर अपनी माँ और बच्चों के लिए पूरे कपड़े नहीं है सुबह होते ही बच्चे अन्न, चिथड़े आदि के लिए काँटों में घूमते रहते हैं। यहाँ मुक्तिबोध ने शोषित के परिवार करूणाजनक चित्र खींचा हैं।

इस तरह मुक्तिबोध की अनेक कविताओं में शोषित के परिवार का उल्लेख यत्र-तत्र उपलब्ध होता हैं।

3.11 शोषित जनता :

इस उपभाग में कवि के काव्य में अभिव्यक्त शोषित जनता का उल्लेख हुआ है। शोषित के संबंध में पहले ही बताया गया है। शोषितों का समूह ही शोषित जनता कहलाती है। शोषित जनता को केवल परिश्रम करने का हक मात्र दिया गया है। उत्पादन तथा उत्पादित लाभ से सदा वह वंचित रहता है। मुक्तिबोध ने अपनी कविताओं में शोषित जनता के क्रुद्ध रूप का उल्लेख किया है।

---

1. मुक्तिबोध रचनावली (प्रथम खण्ड), हे प्रखर सत्य : दो, पृ.196

"जनता को ढोर समझ
ढोरों की पीठ भरे
घावों में चोंच मार
रक्त-भोज मांस-भोज
करते हुए गर्दन भटकाते दर्प-भर कौओं सा
भूखी अस्थि - पंजरशेष
नित्य मार खाती-सी
रंभाती हुई अकुलाती दर्दभरी
दीन मलिन गौओं-सा
शब्दों का अर्थ जब;
दुनिया को हाट समझ
जन-जन के जीवन का
माँस काट,
रक्त-मांस विक्रय के
प्रदर्शन की प्रतिभा का
नया ठाठ,
शब्दों का अर्थ जब
नोच-खसोट लूट-पाट ।"[1]

प्रस्तुत पद्य में शोषकों के शोषण का चरमोत्कर्ष बीभत्स रूप में व्यक्त हुआ है । यहाँ मजदूर जनता की परिगणना जानवरों में की गई है । जिस तरह जानवारों की पीठ पर भक्षक पक्षी बैठकर उनका रक्त मांस अपनी तेज चोंच से बार-बार नोंचकर खाती है । उसी तरह निसहाय निर्बल तथा निराश्रित मजदूर को खतरनाक तरीके से बार-बार शीर्षक सताते हैं । गरीबों के परिश्रम को शोषक बाजारों में मनचाहे बेचते हैं । ये परिश्रम नहीं हकीकत में मजदूरों का पसीना, रक्त तथा मांस का ही व्यापार है ।

"सत्ता के लोहे के डन्डे से घबराकर
जनता की दिग्वीजय क्षमता से कतराकर
सज्जन के पंच-प्राण

1. मुक्तिबोध रचनावली (द्वितीय खण्ड), शब्दों का अर्थ जब, पृ.43

करते जब अविश्वास
जन-बल में अश्रद्धा
स्वयं उन्हें देती हैं
आत्म-विश्वास-हानि
सज्जन की आत्मा सब
विधवा बन जाती है
विधवा के प्राणों से
या विधवा की
कोख से अवैध समझा गया जन्म
जब सत्यों का होता है
तो भय के अंधेरे में
नपुंसक नदी-तीर
आत्मजात शिशुओं की अपने ही हाथों से
मरोड़ी ही गर्दन जो जाती है..... ।"[1]

शोषित जनता, पूँजीपति सत्ता जो अपने सर पर सवार है उस डण्डे से डरती है । इसी डर के कारण से अपनाी शोषण विरोधी शक्ति से कतराती है, अपनी शक्ति पर ये शोषित सज्जन अविश्वास करते हैं । जनबल में अश्रद्धा खुद में भी विश्वास खो बैठते हैं । अतः शोषितों की आत्मा विधवा बन जाती है । इस विधवा आत्मा से सत्य का शिशु जन्म लेता है तो शोषित पूँजीपति के डर से खुद अपने हाथों से उस सत्य के शिशु की गर्दन मरोड़ देते हैं । वह सत्य को जानते हुए भी पूँजीपति का विरोध कर नहीं सकते ।

"वे धंसे हुए जलते नेत्रों वाले जन-जन
पीले कपोलवाले स्वदेश की मानवता
अपना गरीब जन-रार देश का चित्र लिये
सूखे कुएँ में गिरी बालटी टूटी-सी
त्यों परित्यक्त असहायावस्था में जीकर
भी अधिकाधिक मानव बनने की कोशिश में
जिनका कपाल खताल हुआ, कीट टूटी-सी
वे भी आगे बढ़ने की हिम्मत रखते हैं ।"[2]

---
1. मुक्तिबोध रचनावली (द्वितीय खण्ड), शब्दों का अर्थ जब, पृ.43

इसके पूर्व पद्य में शोषित जनता विवश थी और पूँजीपति के डर के मारे शोषण से जूझती रहती थी, उसका विरोध भी करने से डरती थी । परन्तु यहाँ पर शोषित जनता के जलते नेत्रों धँसे हुए हैं । गरीब जनराष्ट्र की शोषित जनता अपने पीले कपोल पर स्वदेश की मानवता लेकर जैसे कि सूखे कुएँ में गिरी बालटी टूटी-सी की तरह असहाय होते हुए भी जीती है और पूर्ण मानव बनने की कोशिश में है । उसका गाल लाल हो गया, कमर टूटती-सी होने पर भी ये आगे बढ़ने के लिए हिम्मत बाँधे खड़े हैं । शोषित जनता यहाँ पर शोषण से मुक्त होने के लिए बिलख रही है ।

इस प्रकार शोषित जनता की विभिन्न यातनाओं तथा शोषकों के प्रबल प्रहारों का विविध वर्णन किया गया है ।

3.12 शोषितों के भेद :

पूँजीपतियों के शोषण जाल में परिबद्ध शोषित अनेक प्रकार के हैं । जैसे - मजदूर, किसान, नारी, शिशु आदि । शोषित गण शोषण के निरन्तर दबाव से दबा हुआ रहता है । अतः शोषण की नीति जारी रहती है ।

3.12.1 मजदूर :

"श्रम मनुष्य के जीवनोपयोगी कार्यकलाप का सर्वाधिक मानवीय और मौलिक रूप है ।"[1] श्रम जीवीकोपार्जन का साधन मात्र है । मज़दूर मज़दूरी के बलबूते जीता है । उसके पास कोई उत्पादन नहीं है । श्रम एक मात्र उसकी पूँजी है । वह श्रम को पैसों के लिए बेचता है । मजदूर कारखाने में अपना खून जलाकर, पसीना टपकाकर कड़ी मेहनत से परिश्रम करता है । वास्तव में मजदूर ही उत्पादन का स्वामी है । "सच में तो यह सम्यक दर्शन सुलभ बनाया जाना चाहिए कि मनुष्य की असली पूँजी श्रम है । श्रमिक ही सच्चा उत्पादक और समाज का हितकर्ता हैं । श्रम में से धन पैदा होता है और इसलिए धनिक श्रमिक के दोयम हो सकता है । परिस्थिति वह कृत्रिम है जहाँ धनिक प्रधान और श्रमिक अधीन बना दीखता है ।"[2]

1. डॉ. लल्लनराय : मुक्तिबोध का साहित्य, विवेक और उनकी कविता, पृ.186
2. जैनेन्द्रकुमार : समय, समस्या और सिद्धांत, पृ.204

"हाँ अन्धेर - कारखाना यह

जिसकी लाल भड़क बेताब घमनभट्टी में

झोंक, खुद ही को रोज़

आत्महत्या करता है व्यक्ति

किन्तु वह मरता नहीं

वरन् वह पुनर्जन्म पा..... ।"[1]

अंधकारमय कारखाने में मजदूर ने इतना कठिन परिश्रम किया है जिससे ऐसा प्रतीत होता है कि नित्य आत्महत्या करता है । ऐसे परिश्रम से वह न जीता है न मरता । मज़दूर का जीवन श्रम-जीवन है । उसके लिए विश्रांती की कोई गुंजाइश ही नहीं ।

"इतने भीम जड़ीभूत

टीलों के नीचे हम दबे हैं,

फिर भी जी रहे हैं ।"[2]

श्रमिक मजदूर वर्ग पूंजीपतियों के प्रभुत्व के नीचे दब जाते हैं और दबकर भी जिन्दा हैं ।

".....खाई - खड्डों - टीलों - चट्टानों पर चलता

उस जिद्दी पगडण्डी-सा मैं टूटा-बिखरा

हूँ यद्यपि अदेखा अनजाना अन-पहचाना ।"[3]

मजदूर ऐसा घोर परिश्रम करता है जैसे कि बड़ी-बड़ी खाई में, खड्डों में, टीलों पर, चट्टानों पर जिद्दी पगडण्डी चलती है वैसे ही वह टूटा-फूटा बिखरा है । अतः न उसको कोई देखता, न जानता न पहचानता ।

".....हम वे टीले हैं

जिन्दे घाव-ही-घाव हैं

टूटे हैं तड़के हैं

फिर भी ठहराव है..... ।"[4]

---

1. मुक्तिबोध रचनावली (द्वितीय खंड) ओ प्रस्तुत श्रोता, पृ.104
2. वही, एक भूतपूर्व विद्रोही का आत्मकथन, पृ.151
3. वही, घर की तुलसी, पृ.59
4. झरने पुराने पड़ गये, पृ.191

मजदूरों को श्रम करने से उन्हें देह पर घाव-ही-घाव है । उनका शरीर परिश्रम के फलस्वरूप जर्जर हो गया है । फिर भी वह दुर्बल शरीर से जिन्दा खड़ा है ।

"मैं कनफटा हूँ हेठा हूँ
शेव्रलेट-डॉज के नीचे मैं लेटा हूँ
तौलिया लिबास में पुरजे सुधारता हूँ ।
तुम्हारी आज्ञाएँ ढोता हूँ ।"[1]

श्रमिक व मजदूर खुद कह रहा है कि मैं भिखमंगा हूँ, मैं नीच वर्ग का हूँ । मैला तेलिया लिबास पहनकर शेव्रलेट-डॉज के नीचे लेटकर पुरजों को जुड़ाता हूँ । आपकी आज्ञाओं का पालन करता हूँ ।

"कुली वे कि जिनके कन्धे पर हो सवार
यात्रा करते हैं बड़े-बड़े होंशियार
जाते हैं पुलक भरे ठाठ से बदरीनाथ..... ।"[2]

शोषित-मजदूरों के कन्धों पर, शोषक पूँजीपति सवार होकर अपनी यात्रा करते हैं । होंशियार बदरीनाथ (पूँजीपति) सगर्व ठाठ से चलते हैं । कुली (मज़दूर) पूँजीपतियों की आज्ञायें ढोये घूमते हैं ।

"फैले गये हाथ दो
चिपका गये लम्बे-चौड़े पोस्टर
बाँके-तिरछे वर्ण और
लाल-नीले घनघोर
हड़ताली अक्षर !!
तड़के ही मज़दूर
पढेंगे ध्यान से
रास्ते में खड़े-खड़े लोग-बाग
पढ़ेंगे जिन्दगी की झल्लाई हुई आग ।"[3]

---

1. मुक्तिबोध रचनावली (द्वितीय खंड) मैं तुम लोगों से दूर हूँ, पृ.238
2. वही, सुनहले बादल में जिन्न, पृ.250
3. वही, चाँद का मुँह टेढ़ा है, पृ.301

पूँजीपति के विरोध में मजदूर हड़ताल कर रहे हैं । कारखाने को ताला लगा है । मज़दूर लोग रात में हड़ताली पोस्टर लगाते घूम रहे हैं । इस हड़ताल के लिए पेण्टर और कारीगर दोनों मिलकर साथ-साथ पोस्टर लगा रहे हैं । सुबह होते ही मजदूर इन पोस्टरों को पढेंगे । पोस्टर पढ़ने से हड़ताल की ज्वाला भड़केगी ।

"…..अपने काम पर से घर लौटते हुए
रामू, घिरी साँझ के सुदूरतम
गेरूए किनारे पर
मिल के काले धुएँ के बलखाते बादलों को देखता हुआ
बढ़ाता हुआ पैर, तै करता है
धुल-भरा रास्ता !
रामू सोचता है कि व्यर्थ गया सारा दिन,
…..अरे ! यह मेरा दिन जीने की प्रेरणा लिये हुए
भी पूरा न कर पाया अपना काम ।"[1]

मज़दूर (रामू) कारखाने से अपने घर को लौटते समय मिल के काले धुएँ के बलखाते बादलों को देखता हुआ धुल भरे रास्ते पर आगे बढ़ता है । सोचने लगा कि आज का दिन बेकार में गया क्योंकि आज वह अपना पूरा काम नहीं कर पाया, उसकी पूरी मज़दूरी नहीं मिलेगी । मज़दूर को एक बार भी भर पेट खाना नसीब नहीं होता । वह हंमेशा भूखा पेट रहता है । उसकी मज़दूरी उसके परिवार के लिए पर्याप्त नहीं होती । अतः वह अभावग्रस्त जिन्दगी बिताते रहता है ।

शोषित मजदूर की विवशता बहुमुखी है । अभाव की वजह से अनेकानेक कष्ट झेलने पडते है । विभिन्न दुःखमयी घटनायें घटित होकर शोषितों की दशा असहनीय हो जाती हं । शोषकों के प्रहार के वैविध्य के कारण शोषितों की दशा अनेकानेक प्रभेदों में परिवर्तित होती है । कवि मुक्तिबोध उपर्युक्त घटनाओं से भली-भाँति अवगत हैं ।

---

1. मुक्तिबोध रचनावली (द्वितीय खंड) जिन्दगी का रास्ता, पृ.233-34

3.12.2 किसान :

भारत कृषिप्रधान देश हैं । कृषि के उत्पन्न से ही सभी का जीवन निर्वाह होता है । हिन्दुस्तान में 75% लोग कृषि कार्य में प्रवृत्त हैं । इनमें अल्पतम लोग मात्र अपनी खुद की खेती में काम करते हैं ।

किसान जग का अन्नदाता है, जग पालक हैं । किसान को कृषि स्वामी भी कहते हैं । जो सुबह से शाम तक बैलों के साथ खेत में परिश्रम करके फसल उगाकर धान्य का उत्पादन करता है । सारी जनता उसी धान्य पर जीती है । इस अन्नदाता को खुद के पेट भरने के लिए, मुट्ठी भर अन्न के लिए तरसना पड़ता है । बड़े-बड़े खेत, जमींदार, जहगीरदार, पूँजीपत, धनपति, साहूकार के कब्जें में रहकर उनकी संपति बन गई है । उन खेतों में किसान मजदूर की हैसियत से काम करता है । कम मज़जूरी पर अधिक परिश्रमम करना पड़ता है । यहाँ किसानों का भी शोषण चल रहा है । किसानों के शोषण के वर्णन का बाहुल्य मुक्तिबोध की कविताओं में पाया जाता है ।

"...मेहनत के पुतले
शोषण-इत युग खाने वाले
दुःख के स्वामी
अविश्रान्त के काले-काले हाथ व्यस्त हैं
रिक्त पेट की आँखों में दुःख के प्रवाह ले...।"[1]

किसान मेहनत की प्रतिमा के प्रतिरूप है । दुःख सहिष्णु किसान दुःख का स्वामी भी है क्योंकि शोषण निरन्तर उस पर जारी है । उनके अविश्रान्त हाथ अथक काम करते हैं । उनके भूखें किसान भूखे पेट दुःख को बर्दाश्त करके पूँजीपतियों की घोर नीति में भी अविश्रान्त कार्यमग्न हैं । मजदूर की तरह ही किसान का भी पूँजीवादी व्यवस्था में लगातार शोषण होता है ।

"ओ चीन के किसानों
खेतों में काम के सँग

---

1. मुक्तिबोध रचनावली (प्रथम खंड), पृ.148

गीतों में तानके तंग

उड़ते हो तुम गगन में...।"[1]

चीन के किसान स्वतंत्र तथा समृद्ध इसलिए हैं कि उनके यहाँ समाजवादी व्यवस्था कार्यरत हैं । वे खेतों में काम करते समय गीत गाते हुए खुशीयाँ मनाते हैं । समाजवादी राष्ट्र में किसान को समुचित स्थान प्राप्त होता हैं । परन्तु पूँजीवादी व्यवस्था में इसके विपरित दशा देखी जाती है । अतः मुक्तिबोध ने समाजवादी राष्ट्र चीन के किसानों की परिस्थिति पर प्रसन्नता व्यक्त की हैं ।

"धूप-तपी राहों की
धूलीमय सफेदी में
एक जगह श्याम लता,
पेड़ तले छाया में बैठे हैं
होरी ओ धनिया,
धनिया है नीलांचल
श्रम-सिक्ता श्याम लता ।"[2]

यहाँ प्रेमचन्द के गोदान के होरी और धनिया, किसान और किसान की पत्नी के प्रतीकात्मक रूप में अवतरित हुए हैं । चिलचिलाती धूप में रास्ते तक अंगार बन गये हैं । ऐसे वातावरण में 'श्याम लता' पेड़ की छाँव में किसान सपत्निक आनंद बैठा है । अभी तक इस बालू की भूमि में श्रम किया है । श्रम के बाद थकान होने से विश्राम के लिए पेड़ तले छाया में बैठे हैं ।

इस प्रकार मुक्तिबोध की कविताओं में कुछ स्थानों पर शोषित किसान के दर्द को वाचा मिली है ।

3.13.3 नारी :

"मार्क्स की नज़र में प्रकृति की वही रूप काव्य का कथ्य बनाया जाये समाज की अर्थव्यवस्था में क्रान्ति लाने की प्रेरणा दे सके । इसी तरह नारी को

---

1. मुक्तिबोध रचनावली (प्रथम खंड) ओ चीन की किसानों, पृ.345
2. वही (द्वितीय खंड) शब्दों का अर्थ जब, पृ.48

भी उपभोग्या के रूप में न चित्रित करके, उसे समाज में पुरूष के बराबर के स्थान में प्रतिष्ठित करने का प्रतिपादन करना चाहिए ।"[1]

शोषित के अनेक रूपों में शोषित नारी का स्थान भी महत्वपूर्ण हैं । परिवार के निर्माण में नारी का सहयोग तथा योगदान गणनीय है । नारी के बगैर परिवार बेबुनियाद है । नारी और पुरूष दोनों भी शोषण के शिकार होते हैं । मजदूरों में गरीब परिवार की अनेक नारियाँ होती हैं । शोषकों का शिकंजा नारियों पर विशेषतः फ्रायड के तर्क के तहत अग्रसर होता है । सौन्दर्य तथा यौवन के मोहपाश में परिबद्ध शोषक गण स्त्री को सस्ती मजदूरी देकर उसके शरीर के उपयोग की अभिलाषा रखते हैं ।

पुरातन काल में स्त्री मनु के 'न स्त्री स्वातंत्र्य अर्हती' के अनुसार परावलम्बी थी । समाज में उसका पात्र उपेक्षित रहा । सामाजिक मर्यादा और नैतिकता का दायित्व नारी पर ही निर्भर था । वह वासना-तृप्ति और संतानोत्पति का साधन मात्र थी । दास और सामन्त युग में उसका स्थान दासीके रूप में था । पूँजीवादी अवस्था में स्त्री-पुरूष की दासी न रहकर उसकी साथी में परिवर्तित हुई । "पूँजीपति धन के प्रलोभन से निर्धनों को पत्नी - पुत्री - माता - बहनों आदि पर आँखें गडाये रहते हैं और बेचारी लोभ-वश अपना आत्म-समर्पण कर देती हैं । पूँजीवादी पद्धति में वैवाहिक संबंध प्रेम पर आधारित न होकर संपति पर आधारित होते है । मार्क्स का कहना है कि पूँजीपति अपनी स्त्री को उत्पादन अर्थात् संतानोत्पत्ति का एक साधन मात्र समझता है । वह तो द्रव्य पर आधारित इस पति-पत्नी संबंध का ही विच्छेद कर डालना चाहता है ।"[2] यह भौतिकवादी दृष्टिकोण हैं ।

पूँजीवाद के नष्ट होने से बेकारी मिटेगी, वेश्यायें अपनी वेश्यावृत्ति छोड़कर काम में लगेगी । धनी और निर्धन के बीच की खाई मिटेगी । स्त्री और पुरूष में समानाधिकार प्राप्ति के लिए दोनों को शिक्षा प्रवेश, कार्यालयों में नौकरी, इच्छानुसार वैवाहिक संबंध स्थापना, विच्छेद का भी पूर्ण अधिकार और दोनों पराधीन के बदले स्वावलंबी होंगे । स्त्री के शोषण के निवारण में ये सभी सहायक हैं ।

1. डॉ. सम्पत ठाकुर : हिन्दी की मार्क्सवादी कविता, पृ.28-29
2. डॉ. भक्तराम शर्मा : मार्क्सवाद और हिन्दी कविता, पृ.44

शोषित नारी का चित्र और उसके प्रति कवि मुक्तिबोध की सहानुभूति दृष्टव्य हैं ।

“उर में संभाले दर्द
गर्भवती नारी का
कि जो पानी भरती हैं वज़नदार घड़ों से,
कपड़ो को धोती है भाड़-भाड़,
घर के काम बाहर के काम सब करती है,
अपनी सारी थकान के बावजूद ।
मज़दूरी करती है,
घर की गिरस्ती के लिए ही
पुत्रों के भविष्य के लिए सब ।”[1]

“शारीरिक श्रम निम्न मज़दूर वर्ग की जीविका के साधन के रूप में नारी को कोमल काया के लिए भी अपरिहार्य सा हो जाता हैं । ऐसी ही कृषकाया विवश नारी का चित्र है ।”[2] डॉ. शशि शर्मा का वक्तव्य यथार्थ जान पड़ता है ।

गर्भवती स्त्री हृदय में गम संभालकर ‘वज़नदार घड़ो से’ पानी भरती है, ‘भाड़-भाड़ कपड़े धोती है’ । इस थकानके बावजूद घर के और बाहर के सभी काम अकेली ही करती है । घर की दयनीय परिस्थिति और अपने बच्चों के भविष्य के लिए वह मज़दूरी तक करती हैं ।

“किन्तु, हाय ! गसीबिन माँ ने ही बेचे हुए,
खाते हुए मार और करते हुए काम नित,
उदास पाँच बरस के बालक के
दर्द भरे फटेहाल जीवन-सा जिसमें
पुचकार का रस
नारी का मन पीले पत्ते-सा काँपता,
रोग ग्रस्त बालक की साँस टूट जाती है ।”[3]

---

1. मुक्तिबोध रचनावली (प्रथम खंड) मुझे याद आते हैं, पृ.212
2. डॉ. शशि शर्मा : मुक्तिबोध का साहित्य एवं अनुशीलन, पृ.158
3. मुक्तिबोध रचनावली (प्रथम खंड) जिन्दगी का रास्ता, पृ.140-41

गरीब परिवार की शोषिता नारी शोषण के पहारों से आहत होकर भी अपने श्रम को बेचती रहती है । उसके साथ उसका पाँच साल का बालक पीड़ामय जीवन में फटे हाल जीवित है । पूँजीपतियों की शोषण नीति से नारी का कोमल मन भयग्रस्त होकर काँपता है । उसके रोगग्रस्त बालक की साँस उस घोर शोषण के दमन-नीति से टूट जाती है । शोषक की त्रासदायक नीति गरीब के बच्चों को मौत के मुँह में ढकेलती हैं ।

"सामन्त घराने की जागीरदार
बूढ़ी-सी सास ज्यों
स्वयं पिशाचिनी का प्रचण्ड रूप ले
विद्रोहिणी विधवा निज बहू को पीटी गयी
पीठ पर बैठकर
जबरदस्त हाथ में
गरम-गरम लोहे को शलाका ले
पीठ दागती है...।"[1]

सामान्त घराने में सांस अपनी विद्रोहिणी बहू को पीटकर, उसकी पीठी पीठ पर बैठकर जबरन् गरम लोहे से पीठ दागती है । यहाँ शोषकों का निर्दयी तथा कठोर हृदय का उल्लेख और घोर शोषण दमन नीति गोचर हुई हैं ।

"उस अंधकार-न्यग्रोध-तले वे कोई सो रहे हैं !!
ऊपर डालों पर भूतों की-सी परछाई
हिलती, डुबती,
नीचे, तल में,
पागल स्त्री के
स्तन के चिपकी
बालक झाई,...।"[2]

शोषित नारी अंधकार में बरगद के नीचे अपने बालक को दूध पिलाते सोई हुई है । यह गृहहीन शोषित नारी का चित्र है ।

---

1. मुक्तिबोध रचनावली (प्रथम खंड) जिन्दगी का रास्ता, पृ.235
2. वही (द्वितीय खंड) ओ काव्यात्मन् फणिधर, पृ.195

"वह पागल युवती सोयी है
मैली दरिद्र स्त्री अस्त-व्यस्त
उसके बिखरे हैं बाल व स्तन है लटका-सा,
अनगिनत वासना-ग्रस्तों का मन अटका था ।
उनमें जो उच्छृंखल था, विश्रृंखल भी था,
उसने काले पल में इस स्त्री को गर्भ दिया !
शोषित व व्यभिचारिता आत्मा को पुत्र हुआ
स्तन मुँह में डाल, मरा बालक ! उसकी झाई,
अब तक लेटी है पास उसी की परछाई ।"[1]

नारी की अभाव ग्रस्तता के रूप का काव्य में निखार हुआ है । उच्छृंखल समाज अपनी वासना पूर्ति के लिए नारी का नाजायज उपयोग करता है । शोषित नारी मैली और दरिद्र दिखती है, उसका रूप आस्तव्यस्तता में लुप्त हुआ है । उसके यौवन पर पूँजीपतियों की कामुक आँखें गड़ी हुई है । उसके फलस्वरूप वह काले पल में गर्भवती होती है । पुत्र जन्मा भी तो वह स्तन मुँह में डालते ही मर जाता है । शोषित नारी का दारिद्रय तथा अति करुणाजनक परिस्थिति पराकाष्ठा पर पहुँची हैं ।

"...साँवली सिवन्ती, श्याम गुलाब सो रहे है,
निद्रा में खुला-खुला आँचल,
सिरहाने पत्थर है
स्तन उधरा-सा ।"[2]

यह शोषित नारी तथा नर का निद्रावस्था का यथार्थ वर्णन है । 'साँवली सिवन्ती' शोषित नारी का प्रतीक है तो 'श्याम गुलाब' शोषित नर का प्रतीक है । इन दोनों को समुचित शयन सामग्री भी उपलब्ध नहीं होती । पत्थर ही उनका आसरा बना है । उनके पहने हुए वस्त्र रात में नींद में अस्तव्यस्त हो गये हैं ।

"जिन्दगी की कोख में जन्मा
नया इस्पात
दिल के खून में रंगकर,

1. मुक्तिबोध रचनावली (द्वितीय खंड) ओ काव्यात्मन् फणिधर, पृ.197
2. वही, पृ.200

उपेक्षित काल-पीड़ित सत्य के घर में ।
सुना तुमने !!
अँधेरी, कोयले की खान की काली
बहुत ही तंग नीची-छत व पेचीदा,
गली की भीत पर, तीखी कुदाली मार
खिसकाकर बड़े-से स्याह पत्थर
देवकी
ज्यों ही बढ़ी आगे
अचानक पेट के भीतर.
नुकीली चीरती-सी छटपटाहट और...
पुत्रोत्पति !!
शिशु की देह माँ के खून में लथपथ ।
भयानक स्याह भीतों से घिरे
उस शून्य में पीला
अकेला काँच का दीपक,
उदासी से भरा गुम सुम उजाला
और, माँ का एक नंगा गृश्य पाताली ।"[1]

इस पद्य द्वारा मुक्तिबोध ने शोषिता नारी को पुत्रोत्पति तथा निसहायता का ब्योरा दिया है । वह पुत्र को यहाँ 'नया इस्पात' (लोहा) का जन्म कहा है । जिस प्रकार कोयले की खान में कुदाली मारकर स्याह पत्थर गिराते हैं । उसी प्रकार प्रसव वेदना का बाहुल्य स्त्री को तड़पा रहा है, जिसकी इस्पाती खानों से तुलना की गई हैं । खून में लतपताया हुआ वह अभागी शिशु वहाँ की नग्नता को निहरता-सा प्रतीत होता है ।

व्यभिचार :

जर्मनी के कवि जार्ज बोर्थ के अनुसार "कवि उन बातों का स्वाभाविक और उन्मुक्त चित्रण प्रस्तुत करे, जिन्हें वे अपने जीवन में हर दिन और हर रात करते हैं । प्रणय का एक स्वस्थ और स्वाभाविक मानवीय व्यापार मानते थे, अतः नैतिकता के नाम पर इस चित्रण के संबंध में उन्हें छायावादी, रहस्यवादी किस्म

1. मुक्तिबोध रचनावली (द्वितीय खंड) उस दिन, पृ.423

का दुराव-छिपाव पसंद नहीं हैं ।"[1] अतः कवि जार्ज बीर्थ मार्क्स और ऐंजिल्स का प्रिय कवि था ।

अद्यतन आलोचक सेक्स संबंधी विवरण को यथार्थवादी प्रस्तुतीकरण में निषेध नहीं मानते । मुक्तिबोध की अनेक कविताओं के व्यभिचार वेश्या संबंधी उल्लेख मिलता है ।

"...प्रासाद के अन्तर कहीं
अति श्वेत वक्षों की खुली भीतों-घिरे
निजकज में
नंगा छुपा व्यभिचार हो ।"[2]

पूँजीपति के प्रासाद के अंदर खुले रूप में नंगा छुपा व्यभिचार चलता है ।

"साँवली गन्दी गली की छाँह में भर
भाप-भाषी, गन्द बासी मुँह-अंधेरे
फैलती बीमार इन वेश्या घरों से
मलिन ठण्ड़ी ज़िन्दगी के बाँझ अन्तर ।"[3]

कवि ने उपर्युक्त पंक्तियों में वेश्याओं की गलियों के वर्णन करके शोषकों की बदमाशी का चित्र प्रस्तुत किया है । यह गली अंधेरा तथा गन्दगीले से भरी हुई है । वहाँ उजाले की अपेक्षा घनी छाया अंधेरे को अपने में समेटी हुई हैं । उस गली की बासी बदबू शहर में बीमारी फैलाती है । वेश्याओं की जिन्दगी बहूत ही मलिन युक्त और बाँझ की है ।

"....बड़े-बड़े नेतागण, बड़े-बड़े ईश्वर !
दुनिया का उदरम्भरी मध्यवर्ग धरकर
(रोटी की तलाश में)
बेचता है आत्मा को
वेश्या के देह-सा व्यभिचार के लिए ।"[4]

1.
2. डॉ. सम्पत टाकुर की मार्क्सवादी कविता, पृ.29
3. मुक्तिबोध रचनावली (प्रथम खंड) वह दिवस भी क्या दिवस है, पृ.149
4. वही, स्याह धब्बों-सी निशाएँ सब बिदा है, पृ.173

प्रस्तुत पद्य में नारी व्यभिचारियों की तरह मध्य वर्ग के जन, रोटी की तलाश में अपने आपको पूँजीपति को बेचा करते हैं ।

"किराये पर मुसकराती
कामिनी स्त्रियों के
यूरोपियन पैण्टों के बटन चमकते-से लगते थे
कामुक इशारों-से ।"[1]

वेश्यायें पैसे की प्रलोभी होती है । उसका मुसकुराना धनाश्रित तथा कृत्रिम है । कामासक्त भाव भंगियों पर आधुनिक वस्त्र विकृत होते हैं । वेश्याओं के प्रति पूँजीपतियों में काम भाव जागृत होता था ।

"वेश्या के देह से
तैरते-उतरते चढ़ते हुए कम्यभरे
भड़कीले वस्त्रों-सा
संकुवाता सिहर जाय,
...किराये के श्रृंगार-दागों-सा उभर आय आदतन
शैया की चमकीली
चादर-ता फुसकाता हँस जाये,
बिके हुए कमनीय गोर कपोलों पर
पापों के फूलों-सा मुस्काये ।"[2]

वेश्या के तन के कपड़े पैसों के आधार पर तैरते-उतरते व चढ़ते रहते हैं । उनका टटर-मटर करना, इटलाना, भौवें चढ़ाना, आँखें नचाना आदि धनार्जन हेतु ही होता है । धन सुन्दर गोल कपोल एवं जबानी के तत्काल कुछ क्षण खरीद सकता है । इस कटु सत्य का कवि मुक्तिबोध ने रहस्योद्घाटन किया है ।

"खूबसूरत कमरों में कई बार,
हमारी आँखों के सामने,
हमारे विद्रोह के बावजूद,
बलात्कार किये गये

1. मुक्तिबोध रचनावली (प्रथम खंड) जिन्दगी का रास्ता, पृ.236
2. वही, (द्वितीय खंड), बारह बजे शत के, पृ.27

नक्शीदार कक्षों में ।
भोले निर्व्याज नयन हिरनी-से
मासूम चेहरे
निर्दोष तन-बदन
दैत्यों की बाहों के शिकंजो में
इतने अधिक
इतने अधिक जकड़े गये
कि जकड़े ही जाने के
सिकुडते हुए घेरे में वे तन-मन
दबते-पिघलते हुए एक भाफ बन गये ।"[1]

"पूँजीवादी सभ्यता ने न केवल शोषित मजदूर वर्ग को जन्म दिया है बल्कि उसके शोषित होने का मनचाहा उपभोग भी किया है । इस प्रक्रिया में नारी भी अपनी विवश रूप में शोषक वर्ग की वासना का शिकार बनी है ।"[2] हालात की विवशता का सही चित्र बिम्बित हुआ है । सुसंपन्न पूँजीपति अपने अलंकृत शयनागार में शोषित नारी के इनकार के बावजूद जबरन् उस पर अत्याचार करता है । ये निर्दोष भोले हिरन के आँखोवाले मासूम चेहरे राक्षस रूपी दैत्याकार शोषकों की बाहों के सिकंजों में इतना भयंकर जकड़ गये कि जकड़कर वहीं सिकुड़ते तन-मन से पिघलते-पिघलते भाप बन गये यानि शोषित नारियाँ शोषकों के जाल में जकड़कर जबरदस्ती बलात्कार से बर्बाद हो गई ।

उपर्युक्त संदर्भ में कवि मुक्तिबोध ने शोषित, निराश्रिता, बेबस, बेसहारा स्त्री की बर्बरता एवं विवशता के साथ-साथ उसके साथ घटित घटनाओं का वर्णन किया है ।

3.12.4 शिशु :

पूँजीवादी समाज में शोषण ने केवल युवक और युवती तक ही सीमित हैं अपितु निरीह मासूम बच्चों पर भी उसकी क्रुर शोषण नीति जारी रहती है । मुक्तिबोध के काव्य में शिशु संबंधी उत्पीड़न तथा अनैतिक प्रताड़ना का यथोचित यत्र-तत्र सुनिश्चित शब्दावली में स्पष्ट रूप में उल्लेख किया गया है ।

1. मुक्तिबोध रचनावली (द्वितीय खंड) शब्दों का अर्थ जब, पृ.38-39
2. वही, एक भूतपूर्व विद्रोही का आत्मकथन, पृ.149

"...धुग्धू का स्वर सुन
नारी का मन पीले पत्ते-सा काँपता,
रोग ग्रस्त बालक की साँस टूट जाती है ।
रोती है धाड़ मार
आँसू भरी छाती नयी बहू की ।"[1]

यहाँ 'धुग्धू' पूँजीपति के प्रतीक के रूप में आया है । पूँजीपति के घोर शोषण नीति से स्त्रियों का मत पतझड के पत्तो-सा डर के मारे काँपकर झड़ जाता है । शोषितों के रोगग्रस्त बालकों के प्राण पूँजीपति की ध्वनि को सुनकर निकल जाते हैं । शोषित के घर की नव पुत्र-वधु पूँजीपति की गिरी नजर से डर के मारे रोती है । मुक्तिबोध ने शोषित बालक के संग नारी की शोषणग्रस्त जीवन पर अपनी दृष्टि डाली है ।

"...रास्ते पर चलते हुए ग्रहहीन
बालकों की स्त्रियों की निगाहों में
कि भावी की बाँहों में
तू गृहहीन विद्रोही वर्तमान काल होकर समा जा
तेरे सह-अनुभवी हजारों साथियों के हाथों में
मानवीय संताप की ज्वालाओं के अवलम्ब थमा जा ।"[2]

पूँजीपतियों के घोर शोषण नीति में मजदूर को अत्यल्य मजदूरी मिलती है जिससे उन्हें जीवननिर्वाह करना दुर्लभ होता है । शोषित बालक तथा स्त्रियाँ बेघर बनकर रास्तों पर घूमते रहते हैं । इनकी दृष्टि में ये आगामी समाज के जीवन में गृहहीन विद्रोही वर्तमान होकर रहेंगे और अपने हजारों साथियों के हाथों में मानवीय दुःख की ज्वाला थामें रखते है ।

"पूँजीवादी शोषण से पीड़ित वर्ग के बालक अपनी शैशवास्था को ही कितनी अभावग्रस्तता अवस्था में बिताते हैं, इसका उल्लेख मुक्तिबोध ने अपनी कविता में कई बार किया हैं । एक प्रदीर्घ कविता में संकलित 'डूबता चाँद कब

---

1. मुक्तिबोध रचनावली (प्रथम खंड) जिन्दगी का रास्ता, पृ.235
2. वही, सूरज के वंशधर, पृ.266

डूबेगा' शीर्षक कविता में तो मुक्तिबोध ने उसके कुरूप और दयनीय जन्म को भी सहानुभूतिपूर्वक चित्रित किया है ।"[1]

"...है गर्भपात को तेज़ हवा
बीमार समाजों की जो थी,
इन माँओं के गहरे कराहते गर्भो से
मृत बालक ये कितने जन्में
बीमार समाजों के घर में
जितने भी हल हैं प्रश्नों के
वे हल जीने के पूर्व मरें
शोषण के वीर्य-बीज से अब जन्में दुर्दम
दो सिर के चार पैर वाले राक्षस बालक
सो चुका अरे किन-किन करके कुछ रो-रोके
चिथड़े में सधोजात एक बालक सुन्दर ।"[2]

रुग्णग्रस्त समाओं के गर्भपात की तेज हवा के कारण माँओं के गर्भ से जितने भी बालक जन्मे हैं उसमें बहुत सारे जन्म के पूर्व मरे, जो मृत नहीं थे, वे ऐसे थे कि 'शोषण वीर्यबीज' के 'दो सिर और चार पैरवाले' राक्षस बालक थे । शोषित बालक पीड़ितावस्था में किन-किन करके रो-रोकर चिथड़े में सोया है ।

"रेफ्रिजरेटरों, विटेमनों, रेडियो ग्रैमों के बाहर की
गतियों की दुनिया में
मेरी वह भूखी बच्ची मुनिया है शून्यों में
पेटों की आँतों में न्यूनों की पीड़ा है
छाती के कोषों में रहितों की क्रड़ा ।"[3]

बाल्य जीवन पर प्रभावित वर्ग-विषमता का चित्र यहाँ पर जीवन्त ही प्रदीप्त हुआ है । जब कि पूँजीपति अपने ऐश-ओ-आराम तथा विलासी वस्तुओं को उपभोग करते आनंदित रहते हैं । उसी समय शोषित की बच्ची 'मुनिया' अन्न के अभाव से भूख की पीड़ा से साँस तोड़ती है ।

---

1. डॉ. शशि शर्मा : मुक्तिबोध का साहित्य एक अनुशीलन, पृ.156
2. मुक्तिबोध रचनावली (द्वितीय खंड) एक प्रदीर्ध कविता, पृ.330-31
3. वही, मैं तुम लोगों से दूर हूँ, पृ.238

मुक्तिबोध की कविताओं में शोषित शिशु तथा बालक की अवस्था जीवंत रूप में देखने मिलता है ।

3.13 शोषित समाज :

शोषित समाज का अस्तित्व पूँजीवादी देशों में होता है । शोषितों के जनसमुदाय के निवेशन को शोषित समाज कहते है । इसमें शोषकों का सर्वेसर्वा अधिकार होता है और उनका शोषण इन शोषितों पर चलता ही रहता है । कवि ने शोषित समाज संबंधी अनेक कविताएँ रची हैं ।

"...हम वे टीले हैं
जिन्हें घाव-ही-घाव हैं
टूटे हैं तड़के हैं
फिर भी ठहराव हैं...।"[1]

'टीले' रुपी शोषित समाज को प्रबल शोषक वर्ग घायल कर देता है । घायल मजदूर अत्यंत घोर कष्ट सहते हुए फिर भी उदरम्भरण हेतु परिश्रम करते हैं ।

"...दुबला श्यामल जन-समाज-सम्मर्द देखकर
एक सौ दस डिग्री
उसको बुखार आया ।"[2]

शक्तिशाली शोषक अत्याचार तथा अन्याय से मजदूरों को निरन्तर दबाते रहते हैं ।

"जमाना खराब है,
हवा बदमस्त है;
बात साफ साफ है,
सब यहाँ त्रस्त हैं;
दरों में भयानक चोरों की गश्त है ।"[3]

शोषितों के समाज में कभी-कभी वक्त बहुत बुरा होता है । वहाँ की

1. मुक्तिबोध रचनावली (द्वितीय खंड), झरने पुराने पड गये, पृ.191
2. वही, चुप रहो मुझे सब कहने दो, पृ.398-399
3. वही, चम्बल की घाटी में, पृ.444

हवा नशे में चूर होती है, सब-के-सब कष्टों से दुःख व यातनाओं में त्रस्त हैं । गली कूचों में पूँजीपति के जासूसों की गश्त जारी रहती हैं ।

"...परित्यक्त अपनों-सा लगता है वह
अधनंगी माँ, नंगे बच्चे
धुन्ध भरी प्रातः से ही सरदी की ऋतु को
बबूल पेड़ों के नीचे खोजते अन्न के
दानें, चिथड़े आदि वस्तुएँ
धूरे से फैले ढेरों पर
गहन मानवात्मा औ' उसकी गहन क्षुधाएँ
आत्मपूर्ति के साधन
छिछलें मध्य वर्ग में रही खोजती...।"[1]

शोषित समाज में व्यक्ति अपने अधनंगी माँए और नंगे बच्चों से दूर किया हुआ लगता है । शोषित समाज में शोषित की हालत इस प्रकार है कि सर्दी की ऋतु में कालिमा से युक्त प्रातःकाल में काँटों के पेड़ बबूल के नीचे अन्न को खोजते अर्थात् बहुत कष्टों का सामना करते, अनाज और कपड़ों के टुकडे ढूँढतें हुए परिलक्षित होते हैं । कूडे के ढेरों पर मानव आत्मा अपनी भूख को आत्मपूर्ति के साधन मानकर ये छिछोला मध्य वर्ग ढूँढता रहता हैं ।

"..है गर्भपात की तेज़ हवा
बीमार समाजों की जो थी,
दुर्घटना से ज्वाला काँपी कन्दोलों में
अंधियारे कमरों की मद्दिम पीली लौ में
जब नाच रहीं भीतों परभुत ही छायाएँ
आशंका की
इन माँखों के गहरे कराहते गर्भो से
मृत बालक ये कितने जन्मे
बीमार समाजों के घर में ।"[2]

---

1. मुक्तिबोध रचनावली (प्रथम खंड), प्रखर सत्य ! दो, पृ.196-97
2. वही, एक प्रदीर्ध कविता, पृ.330

प्रस्तुत कविता में शोषित समाज को बीमार समाज कहकर संबोधित किया है । शोषित समाज में शोषकों द्वारा अन्याय एवं अत्याचार किया जाता है और शोषित नारियों पर शोषक वर्ग अत्याचार करता है उसका दृश्य मुक्तिबोध ने अपनी पंक्तियों में प्रकट किया है ।

"चीख निकालना भी मुश्किल है,
असम्भव...
हिलना भी ।
भयानक है बड़े-बड़े ढेरों को
पहाड़ियों - नीचे दबे रहना और
महसूस करते जाना
पसली की टूटी हुई हड्डी ।
भयंकर है ! छाती पर वजन टीलों का रखे हुए
ऊपर से जडीभूत दबाव से दबा हुआ
अपना स्पन्द
अनुभूत करते जाना,...।"[1]

शोषित समाज में शोषितों पर इतना घोर शोषण का प्रहार अव्याहत रूप में प्रचलित रहता है जिसके कारण शोषित को दर्दभरी आवाज की अभिव्यक्ति दुसाध्य हुई है । भयानक तथा बोझिल कष्टों तले वह तड़प रहा है। घोर यातनाओं के मध्य अपनी पीड़ाभरी स्पन्दन मात्र शोषित महसूस कर सकता है ।

"दूर-दूर मुफलिसी के टूटे-टूटे घरों में
सुनहले चिराग बल उठते हैं;
आधी-अँधेरी शाम
ललाई में निलाई से नहाकर
पूरी झुक जाती है
थूहर के झुरमुटों से लसी हुई मेरी इस राह पर !
धुंधल में खोये इस
रास्ते पर आते-जाते दिखते हैं
लठधारी बूढ़े-से पटेल बाबा
ऊँचे-से किसान दादा

1. मुक्तिबोध रचनावली (द्वितीय खंड), एक भूतपूर्व विद्रोही का आत्मकथन, पृ.146-47

ये दाढ़ी धारी देहाती मुसलमान चाचा और

बोझा उठाये हुए,

माएँ, बहनें, बेटियाँ ।"[1]

प्रस्तुत पद्य में मुक्तिबोध ने शोषित समाज का यथावत करुणा जनक मर्मभेदी तथा हृदयद्रावक वर्णन किया है । निर्धनों के टूटे-फूटे घरों में दिये टिमटिमा रहे हैं । रात अँधेरी होती चली जा रही है । यहाँ पर लठधारी बूढ़े पटेल बाबा, किसान दादा, मुसलमान चाचा और भार ढोये हुए माएँ, बहनें, बेटियाँ भी हैं । इन सब व्यक्तियों का एक साथ उल्लेख करके वहाँ के समाज का वास्तविक चित्र दिया हैं ।

इस तरह शोषित समाज का करुणाजनक वर्णन देखने को मिलता है, जिसमें अत्याचारी शोषक का भी अविभाज्य पात्र विद्यमान हैं ।

3.14 शोषक और शोषित :

उत्पादन सामग्री और साधन पर अधिकार जमाये, अन्य अधिक से अधिक सामान्य जनता पर (जिसका हक न उत्पादन सामग्री पर है न उत्पादन साधनों पर) रौब जमाये चन्द लोग शोषक कहलाते हैं । शोषक के रूप में पूँजीपति, जमींदार, धनवान, मिल मालिक आदि आते हैं । इनकी एक मात्र अभिलाषा धन कमाना होता है ।

शोषक वर्ग से पीड़ित, दूषित, बेसहारा, निसहाय और दुर्बल जिसको न कोई संपत्ति न कोई उत्पादन साधन जीवन पर्यन्त श्रम के सहारे जीनेवाला श्रमिक वर्ग ही शोषित वर्ग कहलाता है ।

शोषक और शोषित दोनों तद्विरुद्ध वर्ग हैं और उन दोनों में जमीन-आसमान का फासला है (गुण और अन्तस में) लेकिन इन दोनों में बहुत नजदीक का रिश्ता है । पूँजीपति के बगैर मज़दूर को मजदूरी नहीं अतः रोटी से वंचित हो जाते हैं, उसी प्रकार मज़दूर के बगैर पूँजीपति का अस्तित्व नहीं, क्योंकि मज़दूरों के बगैर पूँजीपति के बृहत् उत्पादन केन्द्र कारखाना, बृहत् खेती, मिल आदि बन्द हो जायेगी ।

---

1. मुक्तिबोध रचनावली (प्रथम खंड), मुझे याद आते हैं, पृ.223

कवि अपनी अधिकांश कविताओं में शोषक और शोषित वर्ग को संयुक्त रूप में दर्शाया हैं ।

"...युगों की छाती पर नंगे, बिवाइयों भरे
रुधिर-आप्लुत चरणों का,
जन-जन का, उनके प्राणों का,
मुझे जकड़ लेता हैं
काला स्याह नाग ज्यों चन्दन की डाली को ।"[1]

युग-युगान्तर विवरण में, शोषण के क्रुर रक्तमय कदम जो शोषित की छाती पर सवार होता हैं उसीका चित्रांकन हुआ है । जहरीला शोषक काला स्याह नाग-सा है जो चन्दन की डाली से लिपटे रहते है । यहाँ चन्दन की डाली का प्रतीकात्मक अर्थ विनम्र शोषित वर्ग होता है ।

"पूँजीवादी स्याह रेल के नीचे आकर
मरा पड़ा लोहे की पटरी पर यह मानव,
हुई भीड़ एकत्र, देखने मृत्यु-भीष्म शव ।"[2]

जालिम (स्याह) परिवहन (रेल) के रुप में पूँजीपति हैं, जिनकी शोषण नीति के चंगुल में फंसकर भोली पीड़ित जनता मृत्यु के मुँह में घँस जाती है और निसहाय जन सागर उस करुणाजनक दृश्य देखने टूट पड़ता है ।

"...अंधकार के अत्याचारी प्रेत-करों ने
अकस्मात जब कण्ठ दबाया बहुत जोर से
निद्रा की काली छाया के क्षेत्रों में -
मैं जाग उठा चीखता हुआ,...।"[3]

तिमिर में घूमनेवाले भूतरुपी कातिल शोषणगत रात्रि के अंधकार में मजदूरों का शोषण करते हैं । घने अंधेरे में स्वार्थ परायण दैत्याकार प्रबल पूँजीपति के भूताकार हस्त निसहाय मजदूरों का गला बेरहमी से एकाएक दबा देते हैं । प्रतिक्रिया के रूप में संवेदनशील कवि की अनुभूतियाँ जागृत होकर उसकी आत्मा को उजागर करती हैं तथा कवि व्याकुल हो उठता है ।

1. मुक्तिबोध रचनावली (प्रथम खंड), बबूल, पृ.147
2. वही, मध्य वित्त, पृ.176
3. वही, हे प्रखर सत्य : दो, पृ.194

"आँखों के सामने, दूर...
ढँका हुआ कुहरे से
कुहरे में से झाँकता-सा दीखता पहाड़...
स्याह !
देखकर चिहुँकते हैं प्राण,
डर जाते हैं ।"[1]

छल, कपट, गबन, धोखा आदि से अभ्यस्थ शोषक वर्ग तिमिराच्छादित शैल माला सा प्रतीत होता है । दुर्गुणों से युक्त होकर वह विकृत दिखता है । उसको देखने से शोषित वर्ग के प्राण काँपते हैं और भयग्रस्त हो जाते हैं ।

"धुग्धु का स्वर सुन
नारी का मन पीले - पत्ते - सा काँपता,
रोगग्रस्त बालक की सांस टूट जाती है ।"[2]

अशुभ (धुग्धु) रुपी पूँजीपति की क्रुर शोषण-नीति के कारण नारी का मन भयग्रस्त हो गया है । जिसकी उपमा झड़ जानेवाले पीले कमजोर पत्ते से की गई है और रुग्णाधीन बालक का दम घुट रहा है । जुल्म का रुद्रावतार अपनी चरम सीमा पर पहुँचकर भयंकर उत्पीड़न का रुप धारण कर चुका है ।

"सामन्त घराने को जागीरदार
बूढ़ी-सी सास क्यों
स्वयं पिशाचिनी का प्रचण्ड रुप ले
विद्रोहिणी विधवा निज बहू की पीटी गयी
पीठ पर बैठकर
जबरदस्त हाथ में
गरम-गरम लोहे की शलाका ले
पीठ दागती है...।"[3]

सामन्त घराने की जागीरदार बूढ़ी सास भी बड़ी क्रुर तथा पत्थर दिल

1. मुक्तिबोध रचनावली (प्रथम खंड), मुझे याद आते हैं, पृ.209
2. वही, जिन्दगी का रास्ता, पृ.240-41
3. वही, मानवता का चेहरा, पृ.275

होती है । वह भी शोषक का प्रतीक बनकर आई है । अपनी विद्रोहिणी विधवा बहू को पीटी हुई पीठ पर बैठ के गरम लोहे से पीठ दागती है । त्रस्त शोषितों का शोषक और भी बुरी शोषक नीति से उन्हें बहुत कष्ट पहुँचाता है ।

पहाड़ बनते चले जा रहे हमीं लोग (हम न कुछ, निम्न जन) है आतंक-ग्रस्त शोषण की सत्ताओं के भूत थे ।

"हवालात में आसमान को रखना चाह रहे नेतागण ।"[1]

शोषित निम्न-जनता की संख्या अधिक से अधिक पहाड़ बनती चली जा रही है । शोषण की शक्तियाँ भूत बनकर शोषितों को आतंकग्रस्त बना देती हैं ।

"...आँखों के सामने ही तैर जाती जनता की झाँकी और
शैतानों की तसवीर
केवल जिसे देख ही
दानवी शक्तियों के विरुद्ध अधीर हो
लपकती हैं प्राणों को दमकती शमशीर
नीली-नीली तड़ित-सी खिंचती है प्राणों की बांकभरी करवाल
लपकती है युद्धोत्सुक तड़पती हुई पीर ।"[2]

शैतान स्वरूप शोषक शोषितों के सम्मुख गुजरने पर शोषित मन में अनेक भावनायें उठती हैं । दानवी शक्तियों के विरुद्ध क्रोध की दमकती शमशीर आंतरिक दर्द के कारण युद्धोत्सुक होकर लपकती है ।

"एक दूसरे से हैं कितने दूर कि जैसे
बीच सिन्धु है, एक देश के शैल-कूल पर खड़ा हुआ मैं
और दूसरे देश-तीर पर खड़ी हुई तुम ।।"[3]

शोषक और शोषित के बीच का अंतर प्रस्तुत काव्यांश में प्रतिबिम्बित होता है । दोनों के बीच सिन्धु हैं एक देश के शैल कुल पर खड़ा है । (शोषक) तो दूसरा शोषित देश के तीर पर खड़ा है । दोनों में मध्यान्तर है ।

---

1. मुक्तिबोध रचनावली (प्रथम खंड), मानवता का चेहरा, पृ.275
2. वही, मेरे मित्र, सहचर, पृ.277-78
3. वही, एक दूसरे से हैं कितने दूर, पृ.292

"लंबे-लंबे, ऊँचे-ऊँचे विस्तृत समूह
अथवा दूहों के चक्रव्यूह ।।
उनके गहरे विवरों से उठती हैं काली मृत्यु की हुइ ।।
गहरे-गहरे कुओं में
हो रही आत्महत्याएँ
इस रात को कशल;
ओ', हाय ! दूसरी ओर, तीसरी मंजिल के
वासी परन्तु -
स्वार्थान्ध सभ्यता के शासक दानवी जन्तु
(निज कोषागार-स्थित रक्षक नाग-से सजग प्रतिपल सतर्क)
चाहते कि दुनिया
रहे मूर्छना में विजडित निःशेष गई ।"[1]

उपर्युक्त पद्यांश में शोषण नीति एवं उसके परिणाम का चित्र दिखाई देता है । शोषण नीति चक्रव्यूह जैसी है जिसके अन्तर से विकराल मृत्यु उठती है । शोषित भूख के मारे आत्महत्या कर लेते हैं । महलों के वासी, शोषक जन्तु चाहते हैं कि दुनिया हमेशा बेहोशी में हो रहे ।

"हे बँधे खड़े,
ये महत्, बृहत्,
जिनके मुँह से प्रज्जवलित दैस-सी साँस-आग
ये इस जमीन में गड़े-खड़े;
यह खूँटा स्वर्ण-धातु का है,...।"[2]

विद्रोही शोषित अविवेकी सबल बैल तगड़े-तगड़े अपने-अपने खूँटों से सारे बँधे खड़े हैं याने पेट भरने की मजबूरी के कारण मिल मालिकों के शिकंजे में फँसकर तड़प रहे हैं । शोषण की अनीति के कारण ये स्वर्ण धातु के खूँटों से (पूँजीपति शक्ति से) बंधित हैं । परिश्रम से थके-माँदे इन मजदूरों की आह में क्रोधग्नि समाहित है । शोषकों से शोषित बदला लेना चाहते हैं ।

---

1. मुक्तिबोध रचनावली (प्रथम खंड), साँझ रंगी ऊँची लहरों में, पृ.304
2. वही, चुप रहो मुझे सब कहने दो, पृ.292

धनवानों को भूख लगते ही भोजन का समय होता है; पर दलितों को जब अन्न मिलता है तभी भोजन का समय होता है ।

"रेफ्रिजरेटरों, विटेमिनों, रेडियोग्रामों के बाहर की
गतियों की दुनिया में
मरी वह भूखी बच्ची मुनिया है शून्यों में
पेटों की आँतों में न्यूनों की पीड़ा है
छाती के कोषों में रहितों की क्रडा है ।"[1]

डॉ. शशि शर्मा के अनुसार "शहरी सभ्यता में वर्ग-वैषम्य का अन्तसंघर्ष इन पंक्तियों में सजीव होकर प्रस्तुत हुआ है ।"[2]

शोषकों की विलासी दुनिया रेफ्रिजरेटरों, विटेमिनों, रेडियोग्रामों आदि सुविधा संपन्न हैं । उन्हें अभाव, कष्ट, दर्द, भूख कुछ भी मालूम नहीं, उसी दुनिया में शोषितों के घर में क्या बीतता रहता है ? शोषितो की भूखी बच्ची मुनिया ना काबिले बर्दास्त भूख की पीड़ा से मर गयी । अतः शोषकों का जीवन वैभवपूर्ण तथा विलासमय जीवन होता है और शोषितों के यहाँ कष्टमय, अभावग्रस्त, दर्दभरा व्याकुल का ही जीवन होता है । इस प्रकार शोषित और शोषक में विरोधी तत्त्व काम करते हैं । इसको प्रस्तुत कविता को आधे पंक्ति में उपर्युक्त भाव का पल्लवन हुआ है ।

"मैं तुम लोगों से इतना दूर हूँ
तुम्हारी प्रेरणाओं से मेरी प्रेरणा इतनी भिन्न है
कि जो तुम्हारे लिए विष है, मेरे लिए अन्न है ।"[3]

शोषकों का जो अन्न है शोषितों को वह विषयुक्त खाद्य हो जाता है । अतः शोषित कहता है मैं तुम लोगों से दूर हूँ तुम्हारी प्रेरणा से मेरी प्रेरणा अति भिन्न है ।

"चाहे जिस देश प्रान्त पुर का हो
जन-जन का चेहरा एक !
एशिया की, यूरोप की अमरिका की
गलियों की धूम एक ।

1. मुक्तिबोध रचनावली (द्वितीय खंड), मैं तुम लोगों से दूर हूँ, पृ.238
2. शशि शर्मा : मुक्तिबोध का साहित्य एक अनुशीलन, पृ.152
3. मुक्तिबोध रचनावली (द्वितीय खंड), मैं तुम लोगों से दूर हूँ, पृ.237

कष्ट-दुःख सन्ताप की,
चेहरों पर पड़ी हुई झुर्रियों का रुप एक ।
जोश में यो ताकत से बँधी हुई
मुट्ठियों का एक लक्ष्य ।
पृथ्वी के गोल चारों ओर के धरातल पर
है जनता का दल एक, एक पक्ष ।
दानव दुरात्मा एक,
मानव की आत्मा एक ।
शोषक और खूनी और चोर एक ।
जन-जन की शीर्ष पर,
शोषण का खड्ग क्षति घोर एक ।
दुनिया के हिस्सों में चारों ओर
जन-जन का युद्ध एक,
मस्तक की महिमा
व अन्तर की ऊष्मा
से उठती है ज्वाला अति कृुद्ध एक ।
संग्राम का घोष एक,
जीवन संतोष एक ।
क्रान्ति का, निर्माण का, विजय का सेहरा एक,
चाहे जिस देश, प्रान्त, पुर का हो
जन-जन का चेहरा एक ।"[1]

"मुक्तिबोध मानव-मानव में कोई अंतर नहीं पाते वह चाहे संसार के किसी भी भाग का हो । शोषक एवं शोषित दो वर्गो में ही बँटा हुआ है मानव समुदाय और दोनों में निरन्तर संघर्ष चला करता है । दोनों का रूप सभी जगह एक-सा है । चाहे वह भारत का हो, चाहे रुस और अमेरिका हो चाहे जिस देश प्रान्तपुर का हो ।"[2] तात्पर्य यह है कि मानव-मानव के भेद नहीं, चाहे वह देशी हो या विदेशी । सबके चेहरों पर पडे कष्ट, दुःख, संताप की झुर्रियों का रूप

1. मुक्तिबोध रचनावली (प्रथम खंड), जन-जन का चेहरा एक, पृ.110-11
2. डॉ. जनक शर्मा : गजानन माधव मुक्तिबोध व्यक्तित्व एवं कृतित्व, पृ.152

एक ही है । सबके जोश की मुट्ठीयों में लक्ष्य एक ही होता है । एक धरती पर रहनेवाले मानव-मानव में भेद नहीं है ।

लेकिन शोषकों को दानव दुरात्मा एक है तो मासूम शोषितों की मानव आत्मा एक है । शोषक खूनी है, चोर है । शोषित जनता पर शोषण का खडग है । इसके कारण शोषक-शोषित में संघर्ष तथा युद्ध होता रहता है । शोषण के कारण अंतर की आग धधकती है । इस जीवन संग्राम से जीवन में संतोष लाना चाहिए । क्रान्ति निर्माण विजय का उद्देश्य एक है, वैसे ही देश, प्रान्त पुर की जनता का चेहरा एक है ।

इस कविता के अंतर्गत कवि शोषक और शोषित में जो अंतर और संघर्ष होता है उसका उल्लेख किया है । शोषण का दमन चक्र निरन्तर गरीब मजदूरों पर चलता रहता है । शोषक तथा शोषित उत्पादक दुनिया के अविभाज्य अंग है । एतदर्थ कवि ने इनके व्यवहार का युग्म रूप विभिन्न घटनाओं के मध्य प्रस्तुत किया है । शोषण के निर्मूलन के साथ शोषितों के कष्टों का निर्मूलन हो सकता है । कवि इस मार्ग पर अग्रसर जान पड़ता है ।

3.15 विद्रोही शोषित :

पूर्व चर्चित शोषित से यह शोषित भिन्न है । क्योंकि यह परंपरागत रूप से रौंदे जानेवाला मौन तथा एक शोषित नहीं है । यह विद्रोही शोषित है जिसमें विद्रोह के अंकुर सामाजिक प्रज्ञा के सहारे प्रस्फुटित हुए हैं । अतः उसी प्रज्ञा का रूप धृणा विद्रोह क्रान्ति तथा अवज्ञा आदि के रूप में पल्लवित तथा पुष्पित हुआ है । पूँजीपति की पकड़ से मुक्त होना चाहता है । विद्रोही शोषित के विभिन्न रूपों को मुक्तिबोध की कविता में दर्शाये गये हैं ।

"...मनस्वी क्रान्तिकारी वह
सहजता से
दृढ़ता से
दिशाएँ कर निर्धारित
उषाएँ कर उद्घाटित
जन-जन को पुकारता जगाता है निशाओं में
तो उसकी उस कण्ठ-रुँधी बन्धु-भाव

भरी हुई वाणी में काँप रही

जगमगाती आग और

छलकते हुए पानी-सा...।"[1]

विद्रोही शोषित शोषण के विरूद्ध भडक उठकर क्रान्ति की कामना करते हुए निर्दिष्ट दिशा को निश्चित करके क्रान्तिभाव का उद्घाटन करते हुए जनता में जागरण भाव भरते हुए अंधकार में प्रकाश पुंज को भर देता है । विद्रोही शोषित की ध्वनि में बन्धुत्व भाव को भी अनवरत स्पन्दन हो रहा है जिसमें रह रहकर चिनगारी भड़क रही हैं ।

"...जाली नहीं बनूँगा मैं बोस की

चाहिए मुझे मैं

चाहिए मुझे मेरा खोया हुआ

रुखा-सूखा व्यक्तित्त्व...।"[2]

शोषित कहता है कि मैं न किसी बॉस का निरुपयोग जाली बनूँगा, मुझे मेरा अपना अस्तित्व चाहिए । मुझे मेरा जैसा भी हो व्यक्तित्त्व चाहिए ।

"मेरे आये में कण्ड़ो की गोल पांत यह धधक रही है

उसमें रक्खे लोहे का यह वर्तुल भी तो लाल हो चुका

यह अनुभव-विवेक का लोहा

जलते-जलते

दिल की लकड़ी के चक्के पर चढ़ता जाता

(जी हाँ, दिल की लकड़ी है ।)

बुद्धि, प्राण, आत्मा नाम के तीन व्यक्ति ये

ठोक रहे हैं तीन ओर से

गोल लौहा पट्टिका फँसाने उस चक्के पर

ज्वलत लोह-पट्टिका पहनता जाता वह चक्का अजीब है ।"[3]

शोषित को निर्दयता से जो अनुभव हुआ है; उससे अपनी हानि तथा

---

1. मुक्तिबोध रचनावली (द्वितीय खंड), शब्दों का अर्थ जब, पृ.49-50
2. वही, चाहिये मुझे मेरा असंग बबूलापन, पृ.54
3. वही, नहीं चाहिए मुझे हवेली, पृ.55

आपत्ति के प्रति विद्रोह करने की हिम्मत आ गई है । बुद्धि एवं शक्ति अब इनके प्राणों में क्रान्ति उत्पन्न कर रही है । खुलकर विरोध करने में उन्हें अपना लाभ दीख रहा है । विद्रोह की भावना दिन-दुगनी रात चौगुनी बढ़ते जा रही है और शोषितों के आयोजन में इसी बढ़ती हुई विद्रोही भावनाओं के कारण चार चाँद लग रहे हैं ।

"जड़ी भूत चट्टानी टीला ही न होते हम,
डाकू क्यों
सीने पर बैठता ।
देखो तो । उसके पास कितनी बड़ी विंचेस्टर...
कितनी बड़ी रायफल ।"[1]

प्रस्तुत पंक्तियों में आत्म चिन्तन द्वारा अपनी पीठ आप वे ठोक रहे हैं । विद्रोह की दिशा में की गई सारी कोशिशों की वे सराहना कर रहे हैं । उन्हें सफलता बिलकुल पास ही नजर आ रही है । विद्रोही शोषित अपने साथियों को संबोधित करके कहता है कि हम सब जड़ चट्टान के टीले न होते तो वह शोषक डाकू हमारी छाती पर अधिकार जमायें कहाँ बैठता था ? देखिये ना शोषक हमारे सीने पर बड़ी भारी रायफल लेकर अधिकार सत्ता जमाये बैठा है ।

"...घनीभूत कुहरे के लक्ष-मुख
लक्ष-वक्ष, शत-लक्ष-बाहु ये रूप, अरे
लगते हैं घोरतर ।
...काले-काले पत्थर
व काले-काले लोहे के लगते हैं वे लोग ।
...उनके वे स्थूल हाथ
मन माने बलशाली
लगते हैं खतरनाक; ।"[2]

विद्रोही शोषित पूँजीपति को नष्ट भ्रष्ट करने चले हैं । इन विद्रोहियों का रूप पूँजीपतियों को लक्ष-मुख, शतलक्ष बाहु से घोरतम लगता है । विद्रोही

---

1. मुक्तिबोध रचनावली (द्वितीय खंड), एक टीले और डाकू की कहानी, पृ.228
2. वही, लकड़ी का रावण, पृ.404-5

शोषितदल काले पत्थर और काले लोहे से लगते हैं और उनके स्थूल हाथ बलशाली और खतरनाक लगते हैं । अतः इस पद्य में कवि मुक्तिबोध ने विद्रोही शोषितों का भयानक रूप प्रस्तुत किया है । विद्रोही शोषितों का सामूहिक आक्रमण तथा उनका प्रगल्भ क्रोध अब शोषकों के संहार करने के लिए प्रवृत्त हो रहा है ।

"...मैं न चमकने दूँगा अरे, चाँद पूनम का
चौपाटी के महानील सागर के तल पर...।"[1]

विद्रोही शोषित का कहना है कि चाँद के रूप में चमकनेवाले उस पूँजीपति की शोषण नीति को खत्म करूँगा । उस पूनम के चाँद की चमकाहट को नष्ट करूँगा । विद्रोही शोषित शोषकों के वैभव-विलास एवं सुख-चैन आदि का संपूर्ण निर्मूलन करने का दृढ़ संकल्प कर रहा है ।

"...मैं एक धमा हुआ मात्र आवेग,
रूका हुआ एक जबर्दस्त कार्यक्रम,
मैं एक स्थगित हुआ अगला अध्याय
अनिवार्य,
आगे ढकेले गयी प्रतीक्षित
महत्त्वपूर्ण तिथि,
मैं एक शून्य में छटपटाता हुआ उद्देश्य
मुझे अफसोस है गहरा,
बर्फ है दिल, और स्याह है चेहरा,
सदियों की खून-रँगी भूलों के
किस्सों का किस्सा,
मेरी अंतरात्मा का अंश,
मेरी जिन्दगी का हिस्सा ।"[2]

विद्रोही शोषित के मन में निम्नलिखित भावनाएँ होती हैं । वह मज़बूरी से रूका हुआ आवेग है, वह जबर्दस्ती से रोका गया एक कार्यक्रम हैं, स्थगित किया गया आगामी अध्याय है, वह एक शून्य रूपी पिंजड़े में बंधित उदेश्य है;

1. मुक्तिबोध रचनावली (प्रथम खंड) हे प्रखर सत्य !! एक, पृ.193
2. वही (द्वितीय खंड), चम्बल की घाटी में, पृ.440

इसलिए उसको बहुत गम है । उसका दिल बर्फ-सा और चेहरा काला हो गया है । पुराने जमाने से वह बंधित स्वतंत्रहीन बन चला आया हैं ।

"दे तोड़ तिलस्मी शासन के शत चक्र व्यूह
दे जला खंडेरों के पोपल
कर मुक्त
श्वान स्यारों के तन,
चिमगादड़ तन में अब तक जो मानवबन्दी
तोड़ दे, द्वार शत रुद्ध किये जो खड़ी शिलाएँ सी अन्धी
शोषक की आवश्यकताएँ, दे तोड़ तिलिस्मी सत्ताएँ
हे महाश्रमिक
जीवन के मर्म हरे खेतों के आनंदित लावण्य मधुर विस्तारों से
आँखों समुद्र फैले, फैले
जिनमें तेरी परछाई का सौन्दर्य पले ओ हिले हुले
और सबके सबके गले मिले ।"[1]

विद्रोही शोषित का कहना है कि शोषण की तिलिस्मी शासन के शतचक्रव्यूह को जलाकर ढहा दो । कुत्तों, स्यारों के तन, चिमगादड तन में जो भी मानव बन्दी है उस बन्धन को तोड़कर उन्हें मुफ्त करो, शोषण की तिलिस्मी सत्ताएँ तोड़ दो । शोषितों के जीवनरूपी समुद्र में लावण्य मधुरता का विस्तार हो, सौन्दर्य पले ।

"मुक्तिबोध इस पूँजीवादी व्यवस्था को नष्ट हुआ देखना चाहते हैं । इस शोषण की धारा को सर्वहारा वर्ग (श्रमिक वर्ग) ही तोड़ सकता है और मानवता को मुक्त करा सकता है ।"[2] शोषितों का उन्मोचन करना स्वच्छन्दता प्रिय कवि का मूल ध्येय हैं ।

"बुद्धि आलस त्याग
भर ली यत्न की हमने चमकती धूल
जिसमें जगमगाते रत्न के शतखण्ड ।"[3]

शोषित अपनी दरिद्रता को त्यागकर प्रयत्न पर ज्ञान की चमकती धूल

1. मुक्तिबोध रचनावली (प्रथम खंड), सूखे कठोर नंगे पहाड़, पृ.228-29
2. डॉ. जनक शर्मा : गजानन माधव मुक्तिबोध व्यक्तित्व एवं कृतित्व, पृ.154
3. मुक्तिबोध रचनावली (द्वितीय खंड) नक्षत्र, पृ.34

को अपने में भर लिया है, जिसमें ज्ञान के जगमगाते रत्न के शत खण्ड हैं । इस ज्ञान को पाकर शोषित शोषण का कड़ा विरोध करता है । शोषण हीन स्वतंत्र मानव होकर शोषण से मुक्त होना चाहता है ।

“मुझे अब खोजने होंगे साथी -
काले गुलाब व स्याह सिवन्ती,
श्याम चमेली,
सैवलाये कमल जो खोहों के जल में,
अब अभिव्यक्ति के सारे खतरे
उठाने ही होंगे
तोड़ने होंगे ही मठ और गढ सब ।
पहुँचाना होगा दुर्गम पहाड़ो के उस पार..।”[1]

विद्रोही शोषित अनेक प्रकार के अपने साथी खोज रहा है, जैसे कि ‘काले गुलाब, स्याह सिवन्ती, श्याम चमेली और संवलाये कमल ।’ ये सब अनेक प्रकार के शोषित हैं, उन्हें यहाँ फूलों के प्रतीकात्मक रूप में पेश किया गया है । इन शोषितों को अपना साथी बना लेता है, शोषण के विद्रोही को अभिव्यक्ति करने में जो भी खतरा आये उनका हम सामना करेंगे । पूँजीपतियों के मठ और गढ़ व महलों को तोडेंगे और इस दुर्गम पहाड़े रूपी शोषण की पूँजीवादी अवस्था से पार होकर जाना है । अतः विद्रोही शोषित का मन शोषण से मुक्त होने के लिए लालायित है ।

इस प्रकार मुक्तिबोध ने अपनी कविताओं में विद्रोही शोषित द्वारा नीति का अंत करके शोषित का जीवन आनंदोल्लास से पुलकित बनाना चाहता है ।

निष्कर्ष :

इस प्रकार मुक्तिबोध की कविताओं का मुख्य स्वर वर्ग संघर्ष है । मुक्तिबोध अपने काव्य में शोषण के विविध रूपों और आयामों को अभिव्यक्ति देते हैं जिसमें शोषणतंत्र धीरे-धीरे इतना व्यापक हो जाता है कि इसकी पकड़ में शिशु, नारी, साहित्यकार, कलाकार तथा विचारक तक आ जाते हैं । सर्वहारा तो शोषण की चक्की में पूर्णरूप से पिसता ही है । शोषण का आधार पूँजी ही होती

1. मुक्तिबोध रचनावली (द्वितीय खंड), अंधेरे में, पृ.379-80

है । इसी आधार पर सामाजिक वर्ग बनते और परिभाषित होते है । मुक्तिबोध को इस शोषण तंत्र का व्यावहारिक अनुभव भी था और सैद्धांतिक बोध भी । सर्वहारा वर्ग जो जीवन जी रहा है वह पशुओं से भी बदतर है । उसको केवल इसलिए जीवित रखा जाता है कि उसके बिना पूँजीवादी तंत्र भी चल नहीं सकता, किन्तु शोषक वर्ग वह प्रयत्न करता है कि शोषित वर्ग इतना शक्तिशाली न हो जाय कि पूँजीपति के अस्तित्व को ही संकट में डाल दे । इसके लिए वह कितनी ही चाले चलता है; शोषण के कितने नये प्रकारों का वह आविष्कार करता है । अपने तंत्र को सुरक्षित रखने के लिए अनेक छल-छद्‌मों की सृष्टि करके उनकी आड़ भी लेता है । मुक्तिबोध जैसे प्रगतिवादी कवि के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि वह शोषण के तंत्र को उखाड़कर रख दें । इसके लिए मुक्तिबोध ने शोषित समाज का, समीप से अध्ययन किया है और उसको यथार्थवादी शैली में प्रस्तुत किया है । अंत में शोषित की विद्रोही के रूप में देखने की कामना मिलती हैं ।

इस प्रकार मुक्तिबोध की कविताओं में वर्ग-संघर्ष साकार हो उठा है । वर्ग-संघर्ष के पात्र और परिवश सजीव लगते हैं ।

अध्याय-4

मुक्तिबोध के काव्य में क्रान्ति चेतना

4.1 प्रस्तावना

4.2 क्रान्ति का स्वरूप

4.3 क्रान्तिकारी श्रमिक वर्ग

4.4 क्रान्ति का भेद

4.5 क्रान्ति का मसीहा

4.6 क्रान्ति पुरूष : भयानक वर्णन

4.7 क्रान्ति के 'लाल-लाल' शब्द

4.8 रुसः उद्वेलन और क्रान्ति सम्बन्धी भावना

4.9 क्रान्ति का उद्गम स्थान तथा शक्ति प्रवाह

4.10 क्रान्ति का आह्वान

4.11 क्रान्ति का उदय

4.12 क्रान्ति का प्रसार और विस्तार

4.13 सफल क्रान्ति का परिणाम

4.14 उपसंहार

अध्याय-4
मुक्तिबोध के काव्य में क्रान्ति चेतना

4.1 प्रस्तावना :

शोषण, संताप, असंतोष, अकेलेपन और बेपहचान को जन्म देता है । आखिर यह सवाल सर्वहारा को पीड़ित करने ही लगता है कि रात-दिन परिश्रम करने के बाद भी उसको आधा पेट भोजन ही मिलता है और वह अधनंगा रहता है । उसे धीरे-धीरे आर्थिक वैषम्य का बोध सताने लगता है । उसे यह भी 5ात हो जाता है कि इन सबका कारण शोषक पूँजीपति है । वही उसका सामाजिक शत्रु का स्पष्ट बोध हो जाने पर उसके मन में क्रांति के विचार जाग उठते है । वह अपने प्रतिरोधी से जूझने के लिए तैयार हो जाता है । व्यक्ति असंतोष एक दिन सामूहिक असंतोष बन जाता है और सामूहिक असंतोष क्रान्तियों की शक्तियों को जन्म देता है ।

एक बार क्रान्ति का उदय होने पर वह अप्रतिहत हो जाती है । अंत में क्रान्ति का विजय होता है और शोषक वर्ग को कहीं गहराई में दफना देती है । शक्ति का हस्तांतरण होता है । क्रान्तिशील कवि और लेखक का यह कर्तव्य हो जाता है कि वह क्रान्ति को और क्रान्तिकारी को सशक्त बनायें । क्रान्ति को दुर्बल पड़ने न दे । क्रान्ति के स्वरूप को जन-जन तक पहुँचायें । क्रान्ति के लक्ष्य को दृष्टि से ओझल न होने दें । इन्हीं क्रान्तिचेतना कवियों में मुक्तिबोध भी हैं जिनके काव्य में क्रान्ति साकार हो उठी है । मुक्तिबोध की क्रान्ति चेतना को विश्लेषित करना प्रस्तुत अध्याय का लक्ष्य है ।

4.2 क्रान्ति का स्वरूप :

क्रान्ति के अनेक रूप परिस्थितिजन्य होते हैं । अतः परिस्थितियों का रूप क्रान्ति के स्वरुप में बदल जाता है । परिस्थितियों के रूप अनिश्चित तथा अनियंत्रित होते हैं, जिसके कारण उनमें उत्पन्न क्रान्ति के स्वरूप भी अनिश्चित तथा अनियंत्रित होते हैं । अनिश्चित इस शब्द की व्याख्या की परिधि में अनेक अनिश्चित, अनहोनी, दुर्घटनात्मक, विकृत, विध्वंस, दारुण, दुःखमयी, नष्टकारी तथा परिवर्तनशील अनेक घटनायें आती है । अनियंत्रित शब्द में क्रान्ति के

स्वरुप की प्रखरता की अभिव्यक्ति होती है । अनियंत्रित से मतलब बेकाबू, सोच तथा समाधान होता है । उपर्युक्त क्रान्ति के स्वरुप के दर्शन कवि मुक्तिबोध के काव्य में होते है ।

समाज में वर्गभेग का मूल कारण भौतिक उत्पादन में खोजना चाहिए । मार्क्स ने 'साम्यवादी घोषणा-पत्र' में लिखा है - "सभी समाजों का इतिहास (आदिम समुदाय को छोड़कर) वर्ग-संघर्ष का इतिहास है ।... शोषण और शोषित में आपसी विरोध की भावना थी और प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में अनवरत संघर्ष तथा युद्ध होता रहा ।"[1]

"रे क्षितिज-रेखा पर चमकती एक नीली आग की तलवार
वह लावण्य की असि-सी हँसी
है काँपती दुःस्वप्न-सी
आशंकितों के प्राण में छायी हुई भय-भार-सी
लावण्य सी अपराजिता असि-धार
उसकी यह विसुध मुसकान
मेघों के सघन गुरु सर्व-तम को चीर,
पैनी पैठती ही गयी तन्मय तीक्ष्णतम गंभीर ।
दोनों क्षितिज को खींच अपने अंक में
वह खींच गयी क्षण मात्र में इस पार से उस पार ।
कोमल तीव्र अधरों में जमी
प्रतिशोध की दृढ़ वक्रता की स्वामिनी
उन्मादिनी मुसकान वह लावण्य की असि-धार ।
वह फुफकारता नीला भयंकर नाग
लहराता हुआ
अति क्षुब्ध हो, संतप्त अंतर खोजता अपना शिकार ।
रे, वेदना का नाग बल खाता हुआ
अब नष्ट कर देना पुराना विश्व सौ-सौ बार;

1. कम्युनिस्ट घोषणा पत्र, पृ.33-34

व्याकुल काँपती है क्षितिज-मस्तक पर
भयानक एक नीली आग की तलवार ।"[1]

प्रस्तुत पंक्तियों में क्रान्ति के स्वरूप की आग का वर्णन किया है । हथियारों की ललकार, दुःखमयी स्वप्न, ग्लानी तथा भय आदि भावों को क्रान्ति में आरोपित किया गया है । एक क्षितिज से क्रान्ति चमकती हुई दूसरे क्षितिज तक पहुँच जाती है । यह क्रान्ति का प्रसार एक क्षण में ही हो जाता है । कोमल अधरों के शोषित गण में क्रान्ति का संचार होने से वे भी क्रोधित होकर प्रतिशोध की भावना से ओतप्रोत हुए । वह क्रान्ति क्रोध से नाग के रूप में फुफकारती हुई लहरा रही है । दुखित, क्षुब्ध तथा व्याकुल मन अपने शिकार सभी शोषकों को खोज रहा है । इस पूँजीवादी राज्य की शोषण नीति को क्रान्ति द्वारा नष्ट कर देंगे । अतः सारे क्षितिज पर काँपती हुई क्षुब्ध भयानक नीली आग की तलवार यानी क्रान्ति लहरा रही है । उपर्युक्त भावार्थ में क्रान्ति की प्रारंभिक, मध्य तथा अंतिम अवस्था के स्वरूप का क्रोध, जोश, भावुकता तथा दृढ़ संकल्पशीलता आदि का प्रासंगिक उल्लेख हुआ है ।

यह पंक्तियों में कवि ने अपने विचारों को अनेक प्रतीकों के माध्यम से प्रदर्शित किया है । शुरुआत ही 'क्षितिज' याने कि निम्न और उच्च वर्ग का अंतर बतानेवाली सीमा रेखा । जैसे आसमाँ और जमी के बीच का बटवारा क्षितिज करती है ऐसी ही एक क्षितिज उच्च और निम्न वर्ग के बीच खडी है । यह क्षितिज को कवि ने आग की तलवार इसलिए कहा है कि दोनों वर्गो को यह कभी एक नहीं होने देती । इन शब्दों से कवि ने ऐसे लोगों की ओर संकेत किया है जो अपने अच्छे के लिए यह भेद रखना चाहता है । भावुक होकर कवि आगे कहते है कि कई निम्न वर्ग के लोगों की उम्मीदों की हँसी उसके आशंकित भय के कारण दब गई है । यह जीवन जैसे एक दुःस्वप्न बनकर रह गया है, फिर भी निम्न वर्ग अपने दुःखों को सहज भाव से स्वीकार कर अपने चेहरों पे स्मित का लावण्य फैलाते है । उसके कोमल अधरों में कवि को एक अन्य खिंचाव भी दिखता है । वह उनके मन में छिपे प्रतिशोध के भावों को प्रकट कर रहा है । ऐसे शोषितो के चेहरे पे हँसी और दिल में संघर्ष की भावना का नाग

---

1. मुक्तिबोध, रचनावली (प्रथम खंड) एक नीली आग, पृ.130-32

फुँफकारता है । यह विरोधाभास कवि ने भली-भाँति परखकर पाठकों के समक्ष रखा है । जैसे साँप अपना शिकार ढुँढ रहा हो वैसे शोषितों की यह प्रतिशोध भावना पुराने विश्व की सारी व्यवस्थाएँ कई बार नष्ट कर दे इतनी गहरी है । यह वर्ग संघर्ष की चरम सीमा बताते हुए कुछ समय में सब भेदभावों को तुटने की आशंका बतायी है । स्थापित हीत के लोगों को इसका संकेत हो गया है ।

"...आसमान छूती हुई धरती पर चलती हुई
बिखराकर नीले-नीले स्फुलिंग - समूह
वह बिनती है अकस्मात्
विराट मनुष्य-रूप
नहीं जान पाता कि छूकर मुझे मुझमें समा गयी कि
उसमें समा गया मैं !
सुनहली काँपती-सी सिर्फ एक लहर रह जाती है
कि जिसे क्रान्ति कहते है
कि कहते हैं जन क्रान्ति !"[1]

सर्वव्यापी क्रान्ति कवि के मन में भी प्रवेश करती है और प्रतिक्रिया के रूप में क्रान्ति-काव्य का सर्जन होता है । शक्तिशाली क्रान्ति कभी गगन को छूती है तो कभी धरती पर चलती हुई अपने नीले-नीले प्रकाश की आग के स्फुलिंग-समूह बिखेरते हुए, कभी एक क्रान्तिकारी विराट मनुष्य का रूप धारण करती है । कवि कहते है कि कभी मेरे अनजाने में मुझ में समा गयी और मैं उसमें समा गया । यह कवि का अनुभवजन्य कथन है । क्रान्ति के साथ कवि आत्मसात् हो गया और क्रान्ति में कवि, कवि में क्रान्ति नज़र आ रही है ।

"क्रान्ति की पगध्वनि गीत की टेक-सी
क्षितिज की जलती हुई भौंहो की रेख-वह
तुम्हारे प्राणों की बन जाती लेख है...।
...नव क्रान्ति मानव के प्राणों का सन्देश
काँपती है सुरों की नयी लौ

1. मुक्तिबोध, रचनावली (प्रथम खंड) सूरज के वंशधर, पृ.270

गगन की किरनों की वीणा के तारों पर
शरीर पर लाल-लाल जलती हुई शलाका के स्पर्श-सी
विचारों की वेदना
दुखती हुई चिलकती रंगों का सहलाती दुःख है ।"[1]

क्रान्ति जब चलने लगती है तो उसकी पगध्वनि गीत के लय जैसी लगती है । क्रान्ति क्षितिज की जलती हुई रेखा जैसी लगती है । वह शोषितो के प्राणों की सन्देश वाहक है जिससे सुरों में कंपन उत्पन्न होता है, क्रान्ति को कवि ने शोषितों के विचारों की वेदना जैसी बतायी है । वह क्रान्ति हंमेशा दुःखती, चिलचिलाती तथा सहलाती रहती है । यहाँ पर कवि ने गर्म जलते लोहे से दागे हुए दाग जैसी शोषित वेदना का जीवन्त उल्लेख किया है ।

"दिन-रात कष्टमय जीवन की
संत्रस्त अंधेरी दुनिया में
संघर्ष-विवेकों की तुम रक्तिम
ज्वाल-पुंज
कितनी सुन्दर,
तुम गुँथी हुई स्वाभाविकता
की ज्ञान-स्मिता
अनुभव-विशेषता लौ ।"[2]

हर दिन शोषितों के लिए नयी मुश्किलें लेकर आता है । दिन का आगमन दीनता का आगमन-सा दिखता है । संत्रस्तों की दुनिया अंधकार में होती है । उसके संघर्ष में क्रान्ति विवेक के रूप में रहती है । यह लाल रंग की ज्वाला-पुंज है जो यथार्थ का सौन्दर्य वक्त के साथ करवटें बदलता है । क्रान्ति में ज्ञान-स्मिता स्वाभाविक रूप में गुंथी रहती है ।

"...हृदय में खिला है
दहकते हुए लाल अंगार का फूल

---

1. मुक्तिबोध, रचनावली (प्रथम खंड) मेरे मित्र सहचर, पृ.282
2. वही, जब प्रश्न चिन्ह बौखला उठे, पृ.327

मौलिक महासूर्य का सत्य आमूल...।
....धने वृक्ष पर नील
ज्वाला-रुचिर भव्य स्वर्णिम विहक एक
जलते दमकते हुए पंख फैला
कि बोला विषम शब्द विकराल
भावी किसी रक्त-गम्भीर घटनावली का
क्रिया तीव्र संकेत ।"[1]

क्रान्ति का रूप अंगार का फूल जैसा है, जो क्रांतिकारी योद्धा एवं संघर्षशील व्यक्ति के हृदय में खिलता है । वह प्रखर सूर्य जैसा प्रकाशयुक्त और मूल सत्य का संकेत है । यहाँ पर अंगार के फूल को क्रांतिकारी योद्धा के हृदय रूप लिया है । वह घने वृक्ष के घनघोर पर नीली ज्वाला के रूप में तथा पक्षी के रूप में प्रखर प्रकाश से जलते दमकते अपने पंख फैलाकर बोल रही है कि भविष्य में रक्त गंभीर घटनाएँ तथा वैषम्य फैलने की संभावना है ।

"विराट प्रकाश एक, क्रान्ति की ज्वाला एक,
धड़कते वृक्षों में सत्य का उजाला एक ।
लाख-लाख पैरों की मोच में है वेदना का तार एक,
हिये में हिम्मत का सितारा एक ।
चाहे जिस देश, प्रान्त पुरा का हो
जन-जन का चेहरा एक ।"[2]

उपर्युक्त पंक्ति में कवि ने क्रान्ति के विभिन्न रूपों का उल्लेख किया है । विराट प्रकाश, क्रान्ति की ज्वाला धड़कते वृक्षों में सत्यरूप प्रकाश, लाखों के पैरों की मोंच में वेदना का तार तथा हृदय में हिम्मत का सितारा सब एक ही है । प्रत्येक पुर, प्रान्त तथा राष्ट्र के व्यक्ति में मानवीय साम्यता अवश्य दिखाई देती है और उसके जीवन की आवश्यकता भी एक ही है । अतः उससे उत्पन्न क्रान्ति का रूप विभिन्न हो नहीं सकता ।

1. मुक्तिबोध, रचनावली (प्रथम खंड) जब प्रश्न चिन्ह बौखला उठे, पृ.336

2. वही, जन-जन का चेहरा एक, पृ.111

कवि ने अपने सिद्ध हस्त से कई प्रतिकों को यहाँ प्रस्थापित किया है । यह पंक्तियों का प्रमुख विचार जनमानस में प्रवर्तमान भावात्मक ऐक्य है । कवि ने विराट प्रकाश के माध्यम से ईश्वरीय तत्व का निर्देश किया है । उसने सब लोगों के भीतर एक ही ईश्वर का दर्शन किया है, चाहे वह राजा हो या रंक । इस प्रकार भेदभाव को दुर करने की ईच्छा भी सभी लोगों में एक सी है । जिसको क्रान्ति की ज्वाला प्रतीक के माध्यम से प्रस्तुत किया है । 'धडकते वृक्ष' प्रतीक उन पीड़ित लोगों का निर्देश करता है जो जीवित होकर भी उनके साथ नीर्जिव सा व्यवहार किया जाता है । लाखों लोगों के पैरों की मोच की वेदना के माध्यम से कवि ने हमारे समाज के वह अत्याचार के प्रति निर्देश किया है । यह सब होकर भी सबके दिल में हिम्मतरुपी आशावाद को भी प्रतिकात्मक रूप दिया है । अंत में वैश्विक भावना से प्रेरित होकर 'जन-जन का चाहरे एक' प्रतीक मानव ऐक्य को दिखाता है ।

"काली गलियों, ढ़हे मुहल्लों, अन्ध गुहाओं के नगरो पर
तिरते आये अग्नि-ज्वाल से दिशा-प्रकाशी मेघ सुनहले ।
चले ठट्ठ जोश में, सागर उमड़ पड़ा डगरों पर ।
महा क्रान्ति की ज्वालाओं का रूधिर काँपता है वृक्षों में
संघर्षो के अग्नि-फूल (शत-शत स्फूलिंग) बरसा करते हैं,
हृदय रक्त के लाल-लाल किरणीले कमलों के दृश्यों में ।
मानवता का यह अंतिम संग्राम सामने आता-जाता
जीवन मुक्ति दिवस का ज्वाला-ध्वज नभ में मंडराता जाता
कष्ट - क्रोध - वेदना - क्षोभ के भूकंपों की अंगड़ाई में
शोषण-दुर्गो पर गहरा-गहरा काला धुआँ मंडराता ।"[1]

शोषितों की गन्दी बस्तियों से, टूटे-फूटे मुहल्लों से निराशाजनक घटनाएँ घटित होती है । वह भड़क उठकर क्रान्ति का रूप धारण करती है, जो शहर को ध्वंस कर देती है । क्रान्तिकारी युवकों में महाक्रान्ति की प्रेरणा से उनका खून दौड़ने लगता है । क्रान्तिकारियों के हृदय का लाल रंग उनकी भावनाओं में छिपी

1. मुक्तिबोध, रचनावली (प्रथम खंड) मानवता का चेहरा, पृ.275-76

उग्रता को व्यक्त करता है । यह मानवता की क्रान्ति है जिससे शोषण की संपूर्ण श्रृंखलाये छिन्न-छिन्न हो सकती है । शोषितों के कष्ट, क्रोध, वेदना और क्षोभ में क्रान्ति छिपी है । प्रस्तुत भाव में क्रोध की अभिव्यक्ति की लिए ज्वाला आदि का प्रयोग हुआ है । प्रकृति का प्रकोप ज्वालामुखी की तरह बताया गया है । ज्वालामुखी, वहाँ की भूमि पर स्थित सभी को बर्बाद कर देती है । क्रान्ति में छिपी इस भीषणता को दर्शाने के लिए क्रान्ति का एक स्वरूप ज्वालामुखी के रूप में व्यक्त हुआ है ।

"...जोरदार
मार एक
अग्नि का गोला वह
बीच ही में दमदमाता तमककर
प्रतिकूल क्षितिज के पेट में
धड़ाको है ध्वसं का !!!
क्षितिजो से लाल खून
बिकीरित करता हुआ सर्वतः ज्ञान-रश्मि !!
रूधिर से बिकीरित होती है किरणें
क्रान्तिकारी युग की ।"[1]

यहाँ पर अग्नि के गोले के रूप में क्रान्ति को प्रकट किया है, जो शोषण नीति पर आधुनिक बमबारी के समान है । क्षितिज में क्रन्ति का लाला खून सर्वत्र ज्ञान-रश्मि की तरह फैल रहा है । कवि ने अपनी कल्पना में वैज्ञानिक प्रहारो की उपमाओं का प्रयोग किया है ।

"अग्नि के काष्ठ
खोतजी माँ,
बीनती नित्य सूखे डण्ठल
खूनी टहनी, रुखी डालें

1. मुक्तिबोध, रचनावली (प्रथम खंड) जमाने का चेहरा, पृ.90-91

घूमती सभ्यता के जंगल
घूमती सभ्यता के जंगल
वह मेरी माँ
खोजती अग्नि के अधिष्ठान...।''[1]

क्रान्ति का चित्र माँ के रूप में प्रकट किया गया है, जो अपनी ममता से समस्त बच्चों का कल्याण करती है । क्रान्तिकारी माँ अग्नि के काष्ठ (ईंधन) ढूँढ रही है । सूखे डण्ठल, सूखी टहनी, डण्ठल, काष्ठ, डालें तथा टहनी से आग लगती है वैसे ही क्रान्ति अपने कष्टमय तथा शोषणयुक्त जीवन से उत्पन्न होती है । अतः क्रान्ति सभ्यता के जंगलो में अग्नि के अधिष्ठानों यानी क्रान्तिकारियों को ढूँढते घूमती है ।

"खिले जन-संघर्षो की ज्वालाओं के शतदल
ज्वलन्त कमल खिले मानवीय रुधिर के हास के
मानवीय रुधिर में तेजोमय उवस
की किरनें समा गयीं....।"[2]

उसकी ज्वालायें सभी दिशाओं में अविश्रान्त धधकती हुई फैलती है । क्रान्ति के बाद प्राप्त होनेवाले संतोष की भावना तीव्र होती जा रही है । जिसकी प्रेरणा से क्रान्तिकारी क्रान्ति के क्षेत्र में निर्भीकता से अग्रसर हो रहे है । प्रारंभिक आशायें तेजोमय होती जा रही है ।

क्रान्ति और कवि इन दोनों के बीच का अंतर लुप्त हुआ है । कवि का कर्म तथा मुक्ति सब कुछ क्रान्ति में ही दिखती है । क्रान्ति के विभिन्न स्वरूपों में परिस्थितियों के मानवीकरण के साथ-साथ प्रकृतिकरण भी हुआ है । आधुनिक भीषण बल और प्रहार के उपकरणों का प्रस्तुतीकरण हुआ है । प्रकृति के प्रकोप को भी समाविष्ट किया गया है । कटु अनुभव तथा यथार्थ कष्टों का अनुपम सौन्दर्य प्रतिबिम्बित हुआ है ।

---

1. मुक्तिबोध, रचनावली (प्रथम खंड) एत अन्तर्कथा, पृ.153

2. वही, मेरे मित्र सहचर, पृ.287

4.3 क्रान्तिकारी श्रमिक वर्ग :

"भयंकर दुष्टशक्ति की नाशकारिणी, कमजोर शोषितों की पालनकारिणी और जीवन प्रदान करनेवाली क्रान्ति का वाहक क्रान्तिकारी श्रमिक वर्ग है ।"[1]

जैनेन्द्र कुमार के अनुसार **"क्रान्तिकारी वह होगा जो होने की हिम्मत रखेगा । मजदूर होने से ही कोई क्रान्तिकारी हो जाता तो क्रान्ति फिर सस्ती और बिल्ले की ही हो गयी । क्रान्ति किसान के हक के अन्तर बंद नही है । ये विशेषतः क्रान्ति की रूसी और माओ धारणाओं के प्रतीक हो गए हैं । मजदूर के पास कुछ नहीं होता, सिर्फ हाथ की मेहनत होती है । इस तरह के मजदूरों का वर्ग जिसे सर्वहारा कहा गया है । क्रान्ति के लिए अच्छा और उपयुक्त साधन सिध्द हो सकेगा, ऐसा अनुभव किया गया ।"**[2]

ये क्रान्तिकारी श्रमिक वर्ग भी एक रूप में शोषित वर्ग ही है । इसीलिए यह वर्ग शोषण के विरोध में विद्रोह करता है और शोषण से मुक्ति पाने के लिए एक महान् क्रान्ति कर शोषण नीति के साथ शोषक वर्ग का निर्मूलन करना चाहता है । ये क्रान्तिकारी श्रमिक वर्ग क्रान्ति को समाज में फैलाकर सारे शोषित वर्ग को अपने में शामिल कर शोषकों के विरोध में क्रान्ति करवाता है । इन क्रान्तिकारी श्रमिक वर्गो का चित्र कवि मुक्तिबोध की कविताओं में सजीव हुआ है ।

"चमकती चीरती तू जा रही
गंभीर मेघों के भयानक दानवों - से व्यूह,
मैं भी काटता चलता चलूँगा अन्य - मेघ - समूह
मानव देश के संपूर्ण तन की शक्ति से,
जलती हुई दृढ़ भक्ति से,
मैं चीरता चलता चलूँगा ।"[3]

चमकती हुई बिजली जिस प्रकार काले बादलों को काटते-चीरते चलती है उसी प्रकार क्रान्तिकारी वर्ग शोषण एवं शोषक को काटते चलना चाहता है ।

1. मुक्तिबोध : कवि और काव्य, पृ.75
2. जैनेन्द्रकुमार : समय, समस्या और सिद्धांत, पृ.257-58
3. मुक्तिबोध रचनावली (प्रथम खंड) दमकती दामिनी, पृ.119

यहाँ पर मेघ-व्यूह को दानवों-सा बताया गया है । क्रान्तिकारी कहता है कि मैं अपनी देह की शक्ति से, अपनी पक्की लगन तथा निष्ठा से उस शोषण जाल को चीरता हुआ चलूँगा ।

"किसी चौराहे पर
घनघोर क्रान्तिकारी पुराना कार्यकर्ता फटेहाल
संघर्षी जनता की रहा है मीटिंग ले
अन्याय के खिलाफ
सारे शोषण के विरूद्ध
नये समाज की स्थापना की आवाजें बुलन्द हैं ।"[1]

क्रान्ति के चौराहे पर क्रान्तिकारी वर्ग मीटिंग करता है । अन्याय और शोषण के विरुद्ध विद्रोह उत्पन्न होता है और नये समाजवादी समाज की स्थापना की आवाज बुलंद होती है ।

"मजे में आते हुए पेन्टर ने हँसकर
कारीगर से कहा तब-
हाँ सही-सही जगह
पोस्टर लगे हैं ।
तड़के हो मजदुर
पढ़ेंगे ध्यान से
रास्ते में खड़े-खड़े लोग-बाग
पढ़ेगे जिन्दगी की झल्लाई हुई आग !!"[2]

क्रान्तिकारी श्रमिक वर्ग के प्रतिनिधि पेण्टर और कारीगर मिलकर रात में हडताली पोस्टर यहाँ-वहाँ रास्तो पर, पेडो पर और दीवारों पर लगा रहे हैं जिन्हें मजदूर वर्ग सुबह जागते ही देखेंगे और उन्हें भी हड़ताल की प्रेरणा प्राप्त होगी ।

"अब अभिव्यक्ति के सारे खतरे
उठाने ही होंगे ।

---

1. मुक्तिबोध रचनावली (प्रथम खंड) सूरज के वंशधर, पृ.269
2. वही (द्वितीय खंड) चाँद का मुँह टेढ़ा है, पृ.308-9

तोड़ने होंगे ही मठ और गढ़ सब

पहुँचना होगा दुर्गम पहाड़ो के उस पार ।"[1]

क्रान्तिकारी श्रमिक वर्ग अपने ही से कह रहा है कि अब हमको क्रान्ति के जरिये जो भी खतरे आये उनका सामना करना ही होगा । पूँजीपतियों की मीनारें, महलो और मठों को नष्टकरना ही होगा । शोषण के इन दुर्गम पहाड़ों को पार करके क्रान्ति द्वारा शोषण को नष्ट करना ही होगा । इस तरह क्रान्तिकारी श्रमिक वर्ग अपने लोगों को आदेश देता है ।

"पहले

पत्थरी ढाँचे से छुटकारा मिल जाय ।

पत्थरी ढाँचे में कैदी हैं हम सब ।"[2]

क्रान्तिकारी श्रमिक वर्ग शोषक वर्ग के घोर शोषण से मुक्त होना चाहते है; क्योंकि उन सबको पत्थरी ढाँचे से छुटकारा पाना है । पत्थरी ढाँचा, पूँजीवादी शोषण नीति का प्रतीक है जिसमें सब कैद है । यहाँ कवि मुक्तिबोध क्रान्तिकारी शोषितों से यह अपेक्षा करता है कि शोषण से मुक्त होकर स्वतंत्र जीवन बितायें । शोषित वर्ग शोषण का विद्रोह कर रहा है और शोषण से मुक्त होना चाहते है ।

इन पंक्तियों में उन पूँजीवादी लोगों के संवेदनाहीन ह्रदय को कवि ने पत्थऱ समान दिखाया है । जिस प्रकार पत्थर पे वातावरण या कोई अन्य तत्व से परिवर्तन नहिवत् होता है वैसे ही निम्न स्तर के लोगों की चीखे पूँजीवादी के कान तक नहीं पहुँचती । इस प्रकार पूँजीवादी शोषण व्यवस्था एक पत्थरी ढाँचा बन गया है उनसे सभी बंधक मुक्ति पाना चाहते है ।

"लाया अरे, आज गृह में नया एक कर्तव्य

संघर्ष की शक्ति संघर्ष का स्वप्न

संघर्ष का श्वास...।"[3]

---

1. मुक्तिबोध रचनावली (द्वितीय खंड) अंधेरे में, पृ.380
2. वही चम्बल की घाटी में, पृ.455
3. वही (प्रथम खंड) पीत ढलती हुई साँज, पृ.339

क्रान्तिकारी योद्धा का कहना है कि मैं आज अपने घर में एक नया कर्तव्य लाया हूँ, वह कर्तव्य है संघर्ष को शक्ति और संघर्ष का स्वप्न तथा संघर्ष का श्वास । तात्पर्य यह है कि क्रान्ति के लिए वह कमर कस खड़ा है और क्रान्ति के लिए सर्वसिद्ध खड़ा है ।

"नये मनुज को वक्र भृकुटि
जलती आँखों में
एक विश्वव्यापी सपने के मद को
चिर दिन तिरते देखा ।"[1]

कवि क्रान्तिकारी श्रमिक को देखकर कह रहा है कि उसकी भृकुटि शोषण के खातिर क्रोध से वक्र बन गई है और उसके जलते हुए, आग-से नेत्रों में शोषण को नष्ट करने का विश्वव्यापी सपना तैर रहा है ।

"साँवली त्वचा से ढँची हुई छाती की
अस्थियों के पंजर में पाले हुए
प्रकाश का शतदल
कि भावी के सपनों की ज्योति को सँभाले हुए
मारता है हथौड़ा
यह क्रान्ति का कारीगर कि वज्रकाय हिन्दुस्तान
खंडहरनुमा जिन्दगी के आँगन में एक ओर
शक्तिशाली विचारों की
लहलहाती तुलसी खड़ी है आज !!
ढोलक की विदारक घुहराती ताल पर
जोश के आँसुओं में तैरती है भारत की तसवीर
गाता है समता के गीत जन-कबीर का नया साज !!"[2]

क्रान्तिकारी श्रमिक वर्ग तो शोषित ही है । उनके शरीर की त्वचा काली ही होती है । उनकी छाती की अस्थियों में शोषण के प्रति घृणा और क्रोध ही

1. मुक्तिबोध रचनावली (प्रथम खण्ड) आ आकर कोमल समीर, पृ.107
2. वही, सूरज के वंशधर, पृ.267-68

होता है । वे अपने कमजोर शरीर जो निरे अस्थिपंजर सा है उसमें पाले हुए क्रान्ति के प्रकाश शतदल से उतेजित होकर क्रान्ति का हथौड़ा मारते है । इन शोषितों का यह शक्तिशाली विचार एक तुलसी की तरह अचल खड़ा है । क्रान्तिकारी शोषितों के क्रान्तिकारी ढोलक पर हथौड़ा मारकर क्रान्ति का संदेश दे रहा है क्योंकि हिन्दुस्तान में शोषण-नीति के अस्तित्व के कारण शोषितों में दुःख के आँसू ढुलक रहे है । अतः क्रान्तिकारी कबीर के गीतों को मानव समता के लिए नये साज से गाते है । अब क्रान्ति के कारण हिन्दुस्तान गंभीर बन गया है ।

"....स्वाभिमानी शिखरों के पहाड़
दहाडते बगावत का महामंत्र ।
साम्राज्यवादियों का काँपता है युद्ध-तंत्र
संघर्षो-समुद्रों की
शैलेय लहरों को
चूमता है हँसता हुआ चन्द्रमा
मानवी मुक्ति की पूनों का चाँद वह !"[1]

यहाँ पर क्रान्तिकारी श्रमिक वर्ग स्वाभिमानी शिखरों के पहाड़ के रूप में महान और दिव्य हैं । वे पूँजीवादी शोषण नीति के विरोध में बगावत के महामंत्र जप रहे हैं जिससे साम्राज्यवादियों का कुटिल युद्ध तंत्र डर के मारे काँप रहा है । इस संघर्ष के समुद्र की लहरों को मुक्तिरुपी चन्द्रमा हँसते हुए चूमता है । वह पूनम का चाँद पूर्णता, संतृप्ति तथा मानव-मुक्ति का संकेत है ।

"अंगारी चेतना के बुद्धिमान
भव्य देह कारीगर
पहाडों की शीर्षस्थित चट्टानों को काट
खड़ी करते है विराट मूर्ति
श्रमशील कष्टजीवी मानव की महामूर्ति !
पहाडी कगारों की दीवालो पर
खोदे गये चित्र नयी जनता के,

1. मुक्तिबोध रचनावली (प्रथम खण्ड) जमाने का चेहरा, पृ.83

ममता के शिलालेख मानव - मुक्ति - युद्ध की गाथा के
सिरजते हैं नयी कला
नये अक्षर नये स्वर
अंगारी चेतना के क्रान्तिकारी कारीगर !"[1]

क्रान्तिकारी कारीगर की भव्य देह अंगारी चेतना से युक्त दिखाई देती है । कष्टमय कर्म करके यानि पहाडों की चट्टानों को काटकर विराट मूर्ति का निर्माण करते है । पहाडों को काटने से कवि का अर्थ है कि इतिहास के कुछ प्रमुख बदलाव जो सालों तक सबकी मिशाल बन रहेंगे । यहाँ पर श्रमजीवी वर्ग ऐसा शिलालेख लिखेगा, जिसमें उनके शोषण और मुक्ति की कहानी हो । मानव समाज भविष्य में इन्हें पढ़कर आवश्यकता हो तब यह लेख मार्गदर्शक रहेगा । यह सर्जन नयी कला, नये अक्षर, नये स्वर तथा अंगारी चेतना के क्रान्तिकारी कारीगर करते है ।

"**....वह ताकत मुझ को दो**
वह गरमी मुझ को दो
मुझे बना तुम खैबर की
काली-भूरी ऊँची गरम चट्टान !!
ऐसी शक्तिमान रूपाकृति मुझके दो,
वह संस्कृति मुझ को दो !!"[2]

क्रान्तिकारी श्रमिक क्रान्ति के लिए शक्ति तथा क्रोधाग्नि माँग रहा है । खुद को काली-भूरी और ऊँची गरम, चट्टान बनाना चाहता है । शक्ति की आकृति बनना चाहता है और उस प्रकार की संस्कृति की माँग करता है ।

इस प्रकार कवि मुक्तिबोध ने अपनी कविताओं के माध्यम से क्रान्तिकारी श्रमिक वर्ग के प्रति सहानुभूति की है । उनके संपूर्ण किया है तथा क्रान्तिकारी श्रमिक वर्गनी विशेषताओं को उजागर किया है ।

---

1. मुक्तिबोध रचनावली (प्रथम खण्ड), मेरे मित्र, सहचर, पृ.286
2. मुक्तिबोध रचनावली (प्रथम खण्ड), भूरी-भूरी खाक धूल, पृ.343-44

4.4 क्रान्ति के भेद :

आधुनिक काल में क्रान्ति के अनिश्चित भेद हैं जिनमें सामाजिक क्रान्ति, आर्थिक क्रान्ति, राजनीतिक क्रान्ति आदि प्रमुख हैं ।

आर्थिक क्रान्ति अन्य क्रान्तियों को भी जन्म देती है तथा मनुष्य के अनेक अभावों की परिपूर्ति करती हैं । रोटी, कपड़ा और मकान जो दैनदिन जीवन के लिए अति आवश्यक है केवल आर्थिक क्रान्ति से उपलब्ध हो सकते हैं । इसके परिवेश में रूढ़ि, परंपरा, वंशाधिकार, मिथ्या-शोषण-नीति तथा मानवता विरोधी खोखले तत्त्वों आदि का खुला विरोध किया जाता है जिसके फलस्वरूप सामाजिक तथा राजनीतिक क्रान्ति की शुरूआत एकाएक हो जाती है । आर्थिक क्रान्ति सर्वहारा के हित में तथा देश के पुर्ननिर्माण में सहायक होती है ।

कार्ल मार्कस के अनुसार काव्य के दो प्रमुख लक्ष्य हैं ।

1. "जन सामान्य और सामाजिक क्रान्ति के प्रति सजग करना और
2. ऐतिहासिक परिस्थितियों के परिप्रेक्ष्य में समाज का यथार्थ चित्रण करना ।"[1]

आधुनिक युग में जगत के दो तिहाई देश मार्क्सवादी विचारधारा से प्रभावित हैं । प्रगतिशील कवि मुक्तिबोध वैचारिक क्रान्ति का संपूर्ण अवलोकन कर चूके हैं । उनका संवेदनशील मन सर्वहारा का जीवन तथा उसकी व्यवस्था के प्रति व्याकुल हैं । परंपरागत काव्य-सौन्दर्य एवं लालित्य को कवि ने मार्क्सवादी कटु सत्य की वास्तविक एवं जीवनोपार्जन आदि माध्यमों द्वारा व्यक्त किया है ।

उपर्युक्त तर्क के परिप्रेक्ष्य में कवि आर्थिक क्रान्ति उत्पन्न करना चाहता है । उनके काव्य में क्रान्ति के विभिन्न विचार, स्वरूप, परिणाम तथा प्राप्ति आदि को दर्शित किया गया है । क्रान्ति के विभिन्न भेद है उनकी चर्चा भी अगले अध्याय में की गई है ।

4.5 क्रान्ति का मसीहा :

मसीहा दीन, दलित, दुर्बल, जर्जर तथा पीड़ित जनता को शक्तिशाली बनाकर उनके जीवनोद्धार के लिए उत्पन्न होता है । जैसे कि बुद्ध, महावीर,

1. डॉ. सम्पत ठाकुर : हिन्दी की मार्क्सवादी कविता, पृ.27

ईसा, पैगम्बर तथा कार्ल मार्क्स आदि । वह इस दुर्बल वर्ग का नायक एवं नेता के रूप में खड़ा होकर दुर्बल जनता को मार्ग दिखाता है । वह निस्वार्थ भाव से शोषित जनता का कल्याण और उनकी प्रगति व सुखमय जीवन सोद्देश्य परिश्रमशील रहता है । वह महान पुरूष, मानव चिंतक तथा युग पुरूष भी कहलाता है ।

अतः ऐसे मानव चिंतक मसीहा का उल्लेख भी मुक्तिबोध के काव्य में व्यक्त हुआ है ।

"मसीहा का तेजस्वी
भाल-सूर्य होता है जगमगाते टोन-सा
चेहरा-चन्द्र बनता है उपमा के प्रयोग में,
भाव-नदी बनते हैं आँगन में पानी की लकीर से,
हृदय-सिन्धु बनता है दल-दल का.....।"[1]

प्रस्तुत पद्य में मसीहे के रूप और गुणों का संकेत हुआ है । उसका तेजोमय भाल सूर्य समान जगमगाता हुआ लगता है । उनका मुख शीतल चन्द्र शुभ्र ज्योत्सनायुक्त और शान्त, निर्मल तथा स्वच्छ रहता है । उसकी भावनायें नदी की तरह गतिमान, दिव्य वेगवान होती है । हृदय सिन्धु यानि सागर-सा विशाल, भव्य-दिव्य तथा महान् रहता है ।

"दमकता था सूर्य एक
ज्योतिर्मय ललाट चमकता विश्व भर
संकट में पड़ी जिन्दगी का मसीहा
ब्रिटेन में फ्राँस में
भारत में रूस में
हृदय के सर्वोच्च
शिखर पर खड़ा था....।"[2]

---

1. मुक्तिबोध रचनावली (खंड-2), शब्दों का अर्थ जब, पृ.45

2. वही, पृ.75

समाजवादी महान मानव चिन्तक कार्ल मार्क्स सूर्य के रूप में इस कविता में प्रकट किया गया है । मसीहा 'सूर्य' के सदृश्य है । वह अपना प्रकाश विश्व भर में फैलाता है अर्थात् समाजवादी विचारधारा को विश्व के समस्त देशों पर फैलाता है । शोषित के संकट को हरनेवाला मसीहा (मार्क्स) ब्रिटेन, भारत, रूस तथा फ्राँस के मजदूरों के ह्रदयों में गौरव समान है ।

इस लक्ष्य में मुक्तिबोध ने मसीहे के रूप तथा गुण का वर्णन किया है और क्रान्तिकारी, शोषण विरोधी, साम्यवादी तथा सर्वहारा का शुभ चिंतक कार्ल मार्क्स का भी अप्रत्यक्ष रूप में बोध हुआ है ।

4.6 क्रान्ति पुरूष : भयानक वर्णन :

जैसे क्रान्ति का रूप भयानक होता है वैसे ही क्रान्तिकारी पुरूष का भी भयंकर रूप होता है । कवि मुक्तिबोध अपनी कविता के अनेक स्थलों पर उसका रोमांचकारी वर्णन करता हुआ नजर आता है ।

डॉ. जनक शर्मा के अनुसार "मार्क्स की तरह जन-क्रान्ति एवं जन-संघर्ष में मुक्तिबोध का विश्वास है । समाज में फैली अव्यवस्था, सत्ताधारियों की निरंकुशता को समाप्त करने के लिए क्रान्ति आवश्यक है । उनका विश्वास है कि एक क्रान्ति-पुरूष आयेगा, जो नया सवेरा लाने में सफल होगा । उसी का रक्त प्लावित स्वर पीड़ित मानव समुदाय की पराजय का बदला चुकायेगा ।"[1]

"हमारी हार का बदला चुकाने आयेगा
संकल्प-धर्मा चेतना का रक्त प्लावित स्वर,
हमारे ही ह्रदय का गुप्त स्वर्णाक्षर
प्रकट होकर विकट हो जायेगा !!"[2]

शोषित जनता एक दिन जरूर रक्त क्रान्ति करेगी; शोषक गण से अपना बदला लेगी । क्रान्ति का एक दिन आयेगा । अभी तक क्रुर शोषण की बाधा को बर्दाश्त करते आई है । अतः वह क्रान्ति कर अपना बदला जरूर लेगी ।

---

1. डॉ. जनक शर्मा : गजानन माधव मुक्तिबोध व्यक्तित्व एवं कृतित्व, पृ.159
2. मुक्तिबोध रचनावली (खंड-2) भूल-गलती, पृ.429

"....फिर बादल में मानव - मुख - रेखा उर्जास्वल
भव्याकृति, स्वेदायित,
रक्तांकित मुखमंडल
धीरे-धीरे आ मेरे इतने निकट की वह
आँखों पर झुकता आता है,
इतना समीप झुकता कि
त्वचा की रेखाएँ
रक्तिम घावों में कटी-पिटी,
मेरी आँखों में उभर रहीं ।
क्रान्तिदर्शी कोई
बैठा है पत्थर-कुरसी पर आ आजानुबाहु,
वह सहसा उठ
आँधी-बिजली-पानी के क्रुद्ध देवता - से
घुस पड़े भव्य उतर का अभिवादन प्रचण्ड़
उससे विशाल आलिंगन कर
सहसा वह बहस छेड देता
मानव समाज रूपान्तर विधि
की धाराओं में मग्न
मानवी प्राणों के
मर्मो की व्यथा - कथा... अंगार तपस्या पर
मानव-स्वभाव के प्रश्नों पर, मानव-सभ्यता-समस्या पर ।"[1]

क्रान्तिकारी पुरूष का मुख तेज, सबल तथा विशाल आकृति और प्रस्वेदयुक्त है, उनका मुख रक्तिम है यानि उनके मुख पर क्रोध का भाव दिखाई दे रहा है । वह क्रान्तिकारी पुरूष पत्थर की कुरशी पर बैठा है । वह आँधी, बिजली तथा पानी के देवता सा दिख रहा है । वह मानव समाज रूपान्तरण पर शोषित प्राणों के साथ बहस छेड़ता है । शोषक को व्यथा-कथा, भयंकर तपस्य

---

1. मुक्तिबोध रचनावली, मेरे सहचर मित्र, पृ.269-70-71

और मानव के शोषण की सभ्यता, स्वभाव, समस्या तथा प्रश्नों पर विचार करता हुआ दिखाई दे रहा है । यहाँ पर कवि मुक्तिबोध ने क्रान्तिकारी पुरूष का क्रोध से भरे हुए व्यक्तित्व का परिचय दिया है ।

"घसती है लाल-लाल मशाल अजीब-सी,
अन्तराल - विवर के तम में
लाल-लाल कुहरा;
कुहरे में, सामने रक्तालोक स्त्रात-पुरूष एक,
रहस्य साक्षात !!
किन्तु, वह फटे हुए वस्त्र क्यों पहने है ?
उसका स्वर्ण-वर्ण मुख मैला क्यों ?
वक्ष पर इतना बड़ा घाव कैसे हो गया ?
उसने कारावास दुःख झेला क्यों ?
उसकी इतनी भयानक स्थिति क्यों है ?
रोटी उसे कौन पहुँचाता है ?
कौन पानी देता है ?
फिर भी उसके मुख पर स्मित क्यों है ?
प्रचण्ड शक्तिमान क्यों दिखाई देता है ?"[1]

क्रान्तिकारी पुरूष जिस जगह बैठा है उस जगह का यहाँ वर्णन है । क्रान्ति के लाल-लाल अग्नि के मशाल अंधकार में घुसते है । 'लाल-लाल कुहरे' के सामने वह क्रान्तिकारी पुरूष साक्षात बैठा है । कवि उस क्रान्तिकारी पुरूष के आकार के संबंध में कह रहा है कि उनके वस्त्र फट गये हैं, उसका सोने जैसा मुख मैला हो गया है, उसके वक्ष पर अनेक घाव हो गये हैं, उसने कारावास में अपार दुःख झेला है, उसकी स्थिति दारुण हो गई है, न कोई उसे रोटी पहुँचाता है न पानी, इसके बावजूद भी उस क्रान्तिकारी पुरूष के मुख पर स्मित है और वह अत्यंत शक्तिमान दिखाई देता है ।

इन पंक्तियों के माध्यम से कवि ने क्रान्तिकारी की तुलना लाल-लाल अग्नियुक्त मशाल से की है । लाल रंग रक्तरंजित क्रान्ति का प्रतीक है । जब

1. मुक्तिबोध रचनावली (खंड-2) अँधेरे में, पृ.351-52

यह मशाल-सा क्रान्तिकारी उच्च वर्गो के इलाकों में प्रवेश करता है तब वहाँ एक सन-सनी फैल जाती है और जैसे इस तरफ लाल प्रकाश फैल जाता है । यह क्रान्तिकारी पुरूष एक रहस्य-सा प्रतीत होता है । उसके फटे वस्त्र दरीद्रता की निशानी है । उसका मुख स्वर्णरंगी है यानी कि ईश्वर ने उसे भी मूल्यवान बनाया है किन्तु हमारी समाज व्यवस्था ने उस स्वर्ण मुख को मैला कर दिया है । कवि को यहाँ कई प्रश्न होते है जैसे - उसके वक्ष पर इतने घाँव क्यों पड गये है ? उसने कितना कारावास झेला होगा ? उसकी भावनाएँ कैसी होगी ? उनका खाना-पीना कौन पहुँचाता होगा ? इन प्रश्नो द्वारा क्रान्तिकारी ने झेले अत्याचारों को दिखाने का प्रयत्न है । कवि ने अंतिम पंक्तियों में इन अत्याचारों के बावजूद क्रान्तिकारी के मुख पर स्मित दिखाकर उनके होंसलों का परिचय दिया है । यह शक्ति उसे कहाँ से मिलती है उसका आश्चर्य भी व्यक्त किया है ।

"चौड़े माथे वाला, भोला, प्रतिभा का पुत्र
दुबला बाल-मुख !
पहचाना मुझे, और हँस चुपचाप,
मेरे खाली हाथों में रख गया
दीप्तीमान रत्न ।"[1]

क्रान्तिकारी पुरूष क्रान्ति का प्रचार करते घूम रहा है उसका रूप है - चौड़ा माथा, 'भोला प्रतिभा का पुत्र-सा' और 'दुबला बाल मुख' । यह कवि के (शोषित के) खाली हाथ में क्रान्ति का दीप्तिमान रत्न रख गया ।

"यहाँ वहाँ, यहाँ वहाँ
चीजों में लगी हुई
ज्वाला की झाल रे रंगीन
किसी काले खंभो ने पहनी है अंगारी पगड़ी ।"[2]

समाज में क्रान्ति शुरु हो गई है । क्रान्ति की आग सर्वत्र फैल गई है । क्रान्तिकारी पुरूष काले खंभे के रूप में यहाँ 'अंगारी पगड़ी' पहनकर खड़ा है ।

---

1. मुक्तिबोध रचनावली (खंड-2) एक आत्म वक्तव्य, पृ.431
2. वही, चम्बल की घाटी, पृ.451

इस तरह मुक्तिबोध ने अपनी कविता में अनेक स्थलों पर क्रान्तिकारी पुरूष का भयानक रूप वर्णन करने में सफल रहे है ।

4.7 क्रान्ति के "लाल-लाल" शब्द :

मुक्तिबोध ने क्रान्ति को संबोधित करने के लिए, क्रान्ति का संकेत देने के लिए और कम्युनिस्ट झंडे को प्रकट करने के लिए लाल-लाल शब्द का समयानुसार तथा संदर्भानुसार अपने काव्य में अधिक मात्रा में प्रयोग किया है ।

"...वह बंगला है, लाल भवन है, क्योंकि
कोई रक्तिम चन्द्र उसी केन्द्र को तलाश में चुपचाप
घूम रहा...।"[1]

"वह बंगला क्रान्तिकारी विचारधारा का केन्द्र-सत्य बन जाता है ।"[2]
प्रस्तुत 'लाल भवन' क्रान्ति का जन्मस्थान और केन्द्रस्थान है ।

"लोगों की मुट्ठियाँ बंधी हैं ।
उंगली-सन्धि से फूट रहीं किरने
लाल-लाल...।"[3]

क्रान्ति से प्रोत्साहित होकर शोषित वर्ग कहता है कि मुझे अब अपने साथी खोजने होंगे तथा अभिव्यक्ति के सारे खतरे उठाने ही होंगे, मठ और गढ सब तोड़ने ही होंगे । इस क्रान्ति की जोश से उनकी बंधी मुट्ठियों की अंगुली से क्रान्ति के लाल-लाल फिरंगे फूट निकलती है ।

"...उग चलूँ अंधेरे के निःसंग सरोवर में
पंखुरियाँ खोलता लाल-लाल अग्निम सर सिज..."[4]

'सरसिज' यानी कि 'कमल' प्रतीक के माध्यम से कवि ने उन निम्न वर्ग का निर्देश किया है जो हंमेशा गरीबी में ही अपना जीवन व्यतित करते है ।

---

1. मुक्तिबोध रचनावली (खंड-2) इस चौड़े ऊँचे टीले पर, पृ.409
2. चंचल चौहान : मुक्तिबोध : प्रतिबद्ध कला के प्रतीक, पृ.30
3. मुक्तिबोध रचनावली (खंड-2) अंधेरे में, पृ.382

जिस प्रकार कादव में कमल खिलते है उस प्रकार दारुण्य में भी निम्न वर्गो की अंतरात्म पवित्र और सुन्दर है । यह बात प्रतीकात्मक ढंग से लिखी गई है ।

"धरती के लाल-लाल सुहाग की आग के
सिन्दूरी बिन्दु-सा लाल-लाल रवि ज्यों
युद्धमान जनता के हृदय में उगा त्यों
मानव का मुख एक
स्वयं की प्रतिभा का
स्वयं की श्री का ।"[1]

योद्धाओं के उर में क्रान्ति भावना उजागर हो रही है । इस क्रान्ति भावना को कवि ने 'लाल-लाल सुहाग की आग', 'सिन्दूरी बिन्दु', 'लाल-लाल रवि' आदि प्रतीकों के माध्यम से व्यक्त किया है ।

"फैल गये हाथ दो
चिपका गये लम्बे-चौड़े पोष्टर
बाँके-तिरछे वर्ण और
लाल-नीले घनघोर
हडताली अक्षर !!"[2]

श्रमिक वर्ग पूँजीपति के विरोध में हडताल कर रहा है । हड़ताल में विद्रोह के संकेत को प्रकट करने के लिए लाल-नीले रंग के अक्षर से लिखे हुए पोस्टर रात के समय श्रमिक वर्ग चिपकाते हैं । यहाँ क्रान्ति भाव कार्यरत नजर आता है ।

"धन्धाकार के कठोर वक्ष
दंश-चिन्ह-से
गंभीर लाल बिम्ब-प्राण ज्योति के
गंभीर लाल इन्दु-से
सगर्व भीम शान्ति में उठे आयास मुसकरा...।"[3]

1. मुक्तिबोध रचनावली (खंड-2) जमाने का चेहरा, पृ.75
2. वही, (खंड-2) चाँद का मुँह टेढ़ा है, पृ.301
3. वही, (खंड-1) मुझे पुकारती हुई पुकार, पृ.181

कवि ने गाढ अंधकार के माध्यम से निम्न वर्ग के दुःखमय जीवन की ओर संकेत किया है । उन पर मानवीय और वातावरणीय अत्याचार दंश की तरह चिन्ह छोड गये है । यह दुःखों से छायी गंभीरता ने उसके प्राण रक्तरंजित किये है । लाल रंग से कवि का मतलब 'क्रान्ति' है जो सारे दुःखों का अन्त है । क्रान्ति पहले का वातावरण भीम शांति जैसा है । जिसको तूफान पहले की शांति भी कहा जाता है ।

औद्योगिक युग में मजदूर जनता का शोषण होने से शोषित मजदूरों में शोषण के प्रति विद्रोह की भावना उत्पन्न होती है उसका उल्लेख प्रस्तुत पद्यांश में प्रदीप्त हुआ है ।

"...सेमल का ऊँचा-ऊँचा वह पेड़ रूचिर
सम्पन्न लाल फूलों को लेकर खड़ा हुआ
रक्तिमा प्रकाशित करता सा....।"[1]

लाल रंग जो क्रान्ति से जुड़ा हुआ है वह कम्युनिस्ट पार्टी का निशान भी है । इस कविता में सेमल के पेड़ के प्रतीक में क्रान्ति रूपी माँ क्रोध से उग्र रूप में खड़ी है और अपने सुत क्रान्तिकारी को सुनाती है और उन शोषित लोगों से, पड़ोसियों से, मित्रों से मिलकर समाजवादी व्यवस्था को लाने की दिशा में आगे बढ़ो ।

"...क्रान्ति की मुसकाती आँखों
पर, लहराती अलकों में बिंध
आँगन की लाल कनेर खिली ।"[2]

शोषित जनता के जीवन में अनेक कष्टों को झेलने से उनमें क्रान्ति की, विद्रोह की तथा संघर्ष की भावना उमड़ती है । उस भावना को कवि ने इस कविता में सूत्र-बद्ध किया है । शोषितों के घर के आँगन में क्रान्ति के चिन्हरूप 'लाल कनेर' के फूल खिलते है ।

"घुसती है लाल-लाल मशाल अजीब-सी,
अन्तराल-विवर के तम में

---

1. मुक्तिबोध रचनावली (खंड-2) एक अन्तर्कथा, पृ.159
2. वही, (खंड-2) जब प्रश्न चिन्ह बौखला उठे, पृ.319

लाल-लाल कुहरा;
कुहरे में, सामने, रक्तालोक स्नात-पुरूष एक,
रहस्य साक्षात् !!"[1]

" 'अँधेरे में' शीर्षक कविता में क्रान्तिकारी विचारों की लाल ज्योतिबद्ध वाचक के अंतर में घुसती है, तब उसे वस्तुगत यथार्थ के सही रूप का आभास होने लगता है ।"[2] यहाँ पर क्रान्ति का भाव प्रकट हुआ है ।

"भारतीय अंधेरी गहरी-गहरी गलियों में आज कल
भयानक सर्दी को काली-काली रातें है व
उनके किनारों पर
ज्वालाएँ लाल-लाल कि धधकते जल रहे
विद्रोह के अंगार ।"[3]

भारत में भी पूँजीपतियों की संख्या आजकल बढ़ रही है । शोषितों की अँधेरी गलियों में अब विद्रोह की आग भड़क रही है । शोषित लोग अब जाग्रत हो गये है । वे विद्रोह, संघर्ष, क्रान्ति के हेतु उतावले हैं ।

मुक्तिबोध ने क्रान्ति भावना को व्यक्त करने के लिए लाल रंग को आवश्यक माना है, क्योंकि लाल रंग केवल क्रान्तिमात्र का चिन्ह नहीं अपितु कम्युनिस्ट सरकार का चिन्ह भी है । वह भय, क्रोध का भी चिन्ह है । अतः कवि किसी भी क्रान्ति संबंधी चीज का उल्लेख करते समय उसको लाल रंग से जोड़ देता है । जैसे कि लाल अग्नि, लाल कमल, रक्तास्त्रात पुरूष, रक्त में डूबा सूरज, लाल भवन, लाल मशाल, लाल कनेर आदि । कवि ने लाल शब्द को अपनी अधिकाधिक कविताओं में क्रान्ति के हेतु प्रयोग किया है जिससे उनकी कविता और भी रोमांचकारी बन निखर गई है ।

4.8 रूस : उद्वेलन और क्रान्ति सम्बन्धी भावना :

रूस में जार सरकार की प्रारंभिक अधिकार अवस्था में शोषण तथा

1. मुक्तिबोध रचनावली (खंड-2) अंधेरे में, पृ.351
2. चंचल चौहान : मुक्तिबोध : प्रतिबद्ध कला के प्रतीक, पृ.61
3. मुक्तिबोध रचनावली (खंड-1) सूरज के वंशधर, पृ.295

अत्याचार से जनता उत्पीड़ित थी । 7 नवम्बर 1917 में घटित रूस की महाक्रान्ति के कारण शोषण का निर्मूलन हुआ । शोषण हीन समाजवादी सरकार की प्रतिस्थापना हुई, जो मजदूरों की पक्षधर थी । इसका प्रभाव विश्व के अनेकानेक राष्ट्रों पर अवश्य पड़ा । नये समाजवादी-साम्यवादी विचारधारा का विकास हुआ । अधिकाधिक साहित्यकारों ने रूस की रक्त क्रान्ति के संबंध में अपने साहित्य में कहीं-न-कहीं जिक्र किया है । कवि मुक्तिबोध भी उनमें से एक है । उनका योगदान मार्क्सवादी साहित्य के रचयिताओं में श्रेष्ठ है ।

मुक्तिबोध अपनी 'लाल सलाम' शीर्षकवाली कविता में रूस क्रान्ति संबंधी विचार प्रकट किया है ।

"मानव-सभ्यता की संस्कृति की बजी नफीरी आज
अरे वहाँ से जिसको कहते मजदूरों का राज ।
लाल सोवियत देश की नूतन मानव की वह आग
दुनिया के मजलूमों का वह जलता एक चिराग ।
मानव समता की संस्कृति के ये रणमत जुझार
ये कजाक, उज्बैक व रूसी उक्रेनी तैयार ।
ये किसान के मजदूरों के पुत्र रक्त से स्त्रात,
एक सचाई के सैनिक, ये विश्व-क्रोध-आघात ।
मानव समता की संस्कृति की नदियाँ नोपर डोन
हैं पवित्र उतनी ही जितनी गंगा-सिन्धु महान ।
रामायण के एक युद्ध में हुई, राम की कीर्ति
मानवता के महायुद्ध में आदर्शो की जीत ।
साम्य-सभ्यता के संगर में मजदूरों की शान,
मजलूमों का हुआ भयंकर क्रोध, क्षोभ, अभिमान ।
...नतून यही सत्य चमका है मजदूरों के देश
फासिस्टी के असत्य पर जय का यही साम्य आदेश,
मजदूरों के क्रुध्द सोवियत का है खूनी वेश ।
लाल क्रान्ति की लड़नेवाली मजूर-सेना आम,
उनको, उनके स्त्री-पुरूषो को मेरा लाल सलाम ।"[1]

1. मुक्तिबोध रचनावली (खंड-1) लाल सलाम, पृ.99-100-101

4, जून 1944 की बम्बई में भारत सोवियत संघ की पहली कांग्रेस के अधिवेशन के समय रची गई 'लाल सलाम' कविता के रूस क्रान्ति संबंधी प्रेरणात्मक भावना अभिव्यक्त हुई है । सर्वप्रथम रूस में मानव समता का स्वर उठा । समाजवाद के परिप्रेक्ष्य में मजदूरों के प्रतिनिधियों को अधिकार प्राप्त हुआ। शनैः शनैः विश्व के अनेक देशों में मजदूरों के संगठन का बल बढ़ता गया । राम के संस्मरण के साथ मानवतावादी धरातल पर मजदूरों के आदर्श निर्माण के लिए सभी मजदूरों कमर बाँध उठ खड़े हो जायेंगे । हालाँकि रूस के मजदूर योद्धा मानव समता के युद्ध में अपना बलिदान दे चुके हैं । इसलिए कवि रूस की समस्त जनता को सादर सलाम करते हुए अपने श्रद्धा व्यक्त करता है । लाल शब्द कम्युनिस्टों का संकेत है । कवि उसी संकेत के रंग में रंगे जाकर सलाम में भी लाल रंग जमाना चाहते है ।

उसी की आवाज
भीतर से उठती हुई
वोल्गा के सैनिक ने सुनी थी
अपने की जंगलों में
निग्रो ने सुनी वह
मलाया के जंगल के योद्धा ने सुनी थी
मालवे में बैठे हुए
मैंने भी सुना उसे ।
स्तालिनग्राद जीतकर
जन-मुक्ति सेनाएँ आगे बढ़ गयी जब...।
युरोपीय राख और
एशियायी खाक से
जनता की शक्ति का दरख्त उठा है एक
उसकी घनी काल व्यापी छायाओं में बैठकर
वक्र स्मित मुद्रा में तेजस्वी तल्लीन
भव्य-भाल दृष्टा के गम्भीर विवेक-सा
मानवीय मुक्ति का देव एक

वर्तमान-भविष्य के दृश्य रहा आँकता...।

...मानवता एक हुई देखकर

साम्राज्यवादियों के साँप और सँपोले...।"[1]

साम्राज्यवादियों के हीत के लिए बड़े नियम-नियमावली और लोगों के खिलाफ मानवता एक होकर लडने को प्रतिबद्ध होती हुई दिखाई देती है ।

5.9 क्रान्ति का उद्‌गम स्थान तथा शक्ति प्रवाह :

क्रान्ति का जन्म, विकास, प्रसारण तथा प्रचलन की पृष्ठभूमि में कोई न कोई कारण आवश्यक होता है । कार्य तथा कारण में अन्योन्य संबंध है, कारण के बिना कार्य असंभव है । अतः क्रान्ति के उदय के मूल में एक सबल कारण अवश्य होता ही है । कवि मुक्तिबोध ने अपनी कविताओं में क्रान्ति के कारणों के रहस्य का उद्‌घाटन किया है । युग का प्रायोगिक प्रांगण ही क्रान्ति का सबल कारण है । युगधारा में मार्क्सवाद के प्रभाव की जड़े बहुत गहराई तक पहुँच चुकी हैं । विश्वव्यापी आर्थिक शोषण विरोधी भावना भारत में भी क्रान्ति के परिप्रेक्ष्य में आगे बढती रही । व्यक्ति के जीवन के मूल आधार के अभाव की परिपूर्ति क्रान्ति के कारणों में प्रमुख रही । अतः शोषण विरोधी क्रान्ति का एक नया अध्याय सामने आया ।

"प्रशस्त - ललाट वह वज्रबाहु युग-काल

अरे, सृष्टि करता है

युद्ध के, मुक्ति के भव्य महा स्वप्नों की

गाँव की मटमैली भीतों पर अनेकश;

लिखे हैं गेरुए अक्षरों में नये स्वर

जीवन संघर्ष के घोष-वाक्य भयंकर !!

प्राणों के अँधेरे में खेलती हुई

भैरवी ज्वालाएँ...।"[2]

---

1. मुक्तिबोध रचनावली (खंड-2) जमाने का चेहरा, पृ.79-80

2. वही, मेरे मित्र सहचर, पृ.289-299

समाज के यथार्थ क्रान्ति तथा युद्ध के प्रेरणा सूत्र हैं । समय-समय पर घटित घटनायें क्रान्ति को प्रज्जवलित करती हैं तथा द्वंद्व छिड जाता है । क्रान्ति का आधार जीवन की परिस्थितियाँ हैं । युद्ध का आरंभ क्रान्ति से होता है, उससे एक समाधान निकल आता है और लोग मुक्त साँस लेते हैं । गाँव की दीवारों पर लिखे गये क्रान्तिकारी वाक्य लोगों के मस्तिष्कों में क्रान्ति के बीज बो देते है और वो बीज ही अंकुरित होकर क्रान्ति का उद्‌भव करता है । शोषितों की ग्लानीभरी आत्माओं में क्रान्ति की ज्वाला भड़क उठती है । उनकी पीड़ित, दूषित तथा व्यथित आत्मा क्रान्ति का आधार बन जाती है ।

"रक्तिम संघर्षो की घाटी में धीर वेग
से बहती है सरिता अजस्त्र
आधुनिक कष्ट जीवी जीवन की क्रान्तिशील
उस घाटि के नव-क्षितिज-तीर
पर स्तब्ध धधकता हुआ गोल
अंगार चन्द्र ।"[1]

कवि की दृष्टि में जहाँ सामान्य संघर्ष नहीं वहाँ रक्तिम संघर्ष होते हैं, वहाँ क्रान्तिरूपी नदियाँ निरंतर बहती रहती है । यह क्रान्ति आधुनिक कष्ट जीवियों की है । रक्तिम संघर्ष की घाटी में धधकता हुआ गोल अंगार चन्द्र क्रान्ति का प्रतीक है । कवि के अभिमत में कष्टजीवियों का रक्तिम संघर्ष क्रान्ति का आधार है ।

"...पीड़ा के प्रकाश का
यों तड़पता है महासूर्य
मानवीय मुक्ति के प्रचण्ड लक्ष्यों का...।"[2]

असहनीय पीड़ा क्रान्ति का मूल आधार है । उसके निवारण के लिए लोग क्रान्ति की शरण में आते है । व्याकुल प्रताप मानवता की भलाई का संकेत है । यह उदेश्य ही क्रान्ति की मंजिल है ।

---

1. मुक्तिबोध रचनावली (खंड-1) साँझ रंगी ऊँची लहरों में, पृ.309
2. वही (खंड-2) मेरे मित्र सहचर, पृ.83

क्रान्ति का निरंतर प्रवाह तथा उसकी शक्ति मुक्तिबोध की कविताओं में प्रतिबिम्बित हुई है ।

"अग्नि के काष्ठ
खोजती माँ,
बीनती नित्य सूखे डण्ठल
सूखी टहनी, सूखी डालें
घूमती सभ्यका के जंगल
वह मेरी माँ
खोजती अग्नि के अधिष्ठान...
....सूखी टहनी की अग्नि क्षमता
ही गाती है पक्षी स्वर में
वह बन्द आग है खुलने को ।
घर के आँगन में मैं सुलगाऊँगी
दुनिया भर को उनका प्रकाश दिखलाऊँगी ।
माँ परम्परा-निर्मित के हित
खोजती जिन्दगी के कचरे में भी
ज्ञानात्मक संवेदन
पर, रखती उनका भार कठिन मेरे सिर पर
चल इधर बीन रूखी टहनी
सूखी डालें,
भरे मण्डल,
पहचान अग्नि के अधिष्ठान
जा पहुँच स्वयं के मित्रों में
कर ग्रहण अग्नि-भक्षा
लोगों से पडोशियों से मिल ।"[1]

" 'एक अन्तर्कथा' शीर्षक कविता में मुक्तिबोध ने श्रमशीला नारी के मातृत्व रूप को करूण, आस्था और क्रान्ति प्रेरणा के प्रतिरूप में प्रस्तुत किया है । वह अग्नि काष्ट चुनने के लिए केवल सूखे डण्ठल, सूखी टहनी, सूखी डाले ही

1. मुक्तिबोध रचनावली (खंड-2) एक अर्न्तकथा, पृ.153-54-56-57-59

बीनती है । क्रान्ति या सामाजिक बदलाव के लिए किये जानेवाले संघर्ष में अभावग्रस्त जीवन, जीनेवाला शोषित वर्ग ही उसकी खोज का लक्ष्य है, क्योंकि 'आग' उसी में तुरन्त सुलगाई जा सकती है । वह दृढ अस्थिधारिणी जीर्ण नील वस्त्र (उत्साह का प्रतीक) पहने हुए गतिमति व्यक्तिमता सी दृष्टिगत होती है । कविता के हाथ समझौता परस्त नायक को श्रम का पाठ पढाकर वह उसे जीवन संघर्ष में निरन्तर आस्थावान रहते हुए क्रान्ति के मार्ग पर चलने का उपदेश देती है । उसकी कमज़ोरियों से उसे सचेत कराती है । वह माँ, परम्परा निर्मित के लिए जिन्दगी के उपेक्षित पक्ष में भी (कचरे में भी) ज्ञानात्मक संवेदन खोलती है और काव्य नायक को उस ज्ञानात्मक संवेदन के व्याहारिक दायित्व से गतिमान बनाना चाहती है ।"[1]

क्रान्ति के प्रेरणात्मक बिन्दु अन्य समस्याओं को एकत्रित करके जनशक्ति के बल पर व्यवस्था में परिवर्तन लाने के कार्य में व्यस्त है । उसकी प्रसारित चिनगारियाँ सर्वत्र आग भड़का देती हैं और संपूर्ण परिवर्तन की ओर परिस्थिति झुक जाती है ।

4.10 क्रान्ति का आह्वान :

कवि मुक्तिबोध समाज में शोषण के भयोत्पादक रूप को देखकर समाजवादी समाज सृजनकारी क्रान्ति का खुले हृदय से आह्वान करता है । इस क्रान्ति के आह्वान के गीत मुक्तिबोध की कविता में दिखाई देते है ।

"हे रहस्यमय, ध्वंस-महाप्रभु,
जो जीवन के तेज सनातन,
तेरे अग्निकणों से जीवन,
तीक्ष्ण बाण से नूतन सर्जन ।
हम घुटन पर, नाश-देवता
बैठे तुझे करते हैं वन्दन,

---

1. डॉ. शशि शर्मा : मुक्तिबोध का साहित्य एक अनुशीलन, पृ.158

मेरे सिर पर एक पैर रख

नाप तीन जग तू असीम बन ।"[1]

यहाँ पर श्रमिक वर्ग नाश देवता का स्वागत कर रहे हैं, जिससे शोषण के सारे कष्ट दूर हो जायें । 'ध्वंस महाप्रभु' तुम अपनी क्रान्ति के अग्निकणों के तीक्ष्ण बाणों से नूतन समाज और समाजवादी समाज का निर्माण करो । हम तुझे घुटने टेक वन्दना करते हैं । हम सब में समा जाओ और हर तरफ फैलकर इस जग का निर्माण करो । इस प्रकार कवि अपनी कविता में क्रान्ति का उपासक होते हुए उससे वन्दना कर उसके आह्वान के लिए प्रार्थना कर रहा है । कवि द्वारा अभिव्यक्ति क्रान्ति का आह्वान सामान्य जन के हित में है ।

"हुकारेंगे प्राण
क्षितिज भी बोलेंगे सब
बदलेंगे निज भान
हमारे भूरे पथ पर
गूँजेगा भूरे पथ पर
गूँजेगा नव ज्ञान
विकम्पित द्वारों में से
महाक्रान्ति आह्वान
नमित दीवारों में से
बरगद की सुनसान
छाँह-खंडहरों में से
गलियों के तम-म्लान
अन्ध गहरों में से
गूँजेगा वह भान
हृदय के विवरों में से
भाफ भरा अभियान...।"[2]

---

1. मुक्तिबोध रचनावली (खंड-1) नाश-देवता, पृ.91
2. वही, जब तक ये हैं प्राण, पृ.252

कवि की आह्वान सम्बन्धी अन्य पंक्तियाँ प्रस्तुत की है । शोषित प्राण हुंकार रहे हैं, क्षितिजों से क्रान्ति की आवाज गूँज रही है । जिससे ज्ञान का प्रकाश अपना रूप बदल रहा है । काँपते द्वारों से महाक्रान्ति का आह्वान हो रहा है । शोषित जनता के घर की दीवारों से बरगद की सुनसान छाँह-खंडहरों में से दलित जनता की गन्दी बस्तियों में से, वहाँ की अँधेरी काली घाटी में क्रान्ति का प्रकाश व्याप्त हो रहा है । मजदूरों के हृदय में से क्रान्ति के अभियानों का अस्तित्व दिखाई दे रहा है । अतः कवि ने अपनी कविता में शोषित जनता में क्रान्ति का आह्वान अभिव्यक्ति किया है ।

> **"काली गलियों, ढहे मुहल्लों, अन्ध गुहाओं के नगरों पर**
> **तिरते आये अग्नि-ज्वाल से, दिशा-प्रकाशी मेघ सुनहले**
> **चले ठठ्ठ-के ठठ्ठ जोश में, सागर उमड़ पड़ा डगरों पर ।**
> **ठुटी कुटियों ढहे मकानों के अतुलाये हृदयों में से,**
> **उठी एक आवाज दिशाओं की गहराई छुनेवाली**
> **उठो, बढ़ चलो, पर्वतों को लाँघना, गुजर चलो सौ प्रलयों में से ।"[1]**

क्रान्ति का स्वागत काली गलियों, ढहे मुहल्लों, अन्ध गुफाओं में होता है । इन दलितों की बस्तियों में क्रान्ति के अग्नि ज्वाल रूपी सुनहले मेघ अवतरित होते हैं । जिससे सागर के रूप में क्रान्ति सारे नगरों में फैलती है । निराश्रित शोषित बस्ती की टुटी कुटियों में ठहे मकानों और अकुलाये हृदयों से क्रान्ति का आह्वान करते हैं और क्रान्ति के लिए ये शोषित गण अन्य अज्ञानी शोषितों की आवाज देते हैं - 'उठो बढ़ चलों, शैल चलो चलो, गुजर चलो सौ प्रलयों में से ।' क्रान्ति के लिए आगे बढ़ो, घोर कष्टों का सामना करके आगे चलो तथा विपत्तियों के प्रलयों से गुजर चलो । दृढ़ संकल्पशील होकर अनेक कष्टों का सामना करते हुए क्रान्ति पथ पर आगे बढ़ने की चुनौति का प्रतिबिम्ब यहाँ पर नजर आता है ।

---

1. मुक्तिबोध रचनावली (खंड-1) मानवता का चेहरा, पृ.275

"मुझे अब खोजने होंगे साथी -
काले गुलाब व स्याह सिवन्ती,
श्याम चमेली
सँवलाये कमल जो खोहों के जल में,
भूमि के भीतर पाताल तल में
खिले हुए कब से भेजते हैं सकेत
सुझाव-सन्देश भेजते रहते !!
अब अभिव्यक्ति के सारे खतरे
उठाने ही होंगे ।
तोड़ने होंगे ही मठ और गढ़ सब ।
पहुँचना होगा दुर्गम पहाड़ो के उस पार
तब कहीं देखने मिलेंगी हम को
नीली झील की लहरीली थाहें
जिसमें की प्रतिपल काँपता रहता
अरुण कमल एक,
घँसना ही होगा
झील के हिम-शीत सुनील जल में ।
जादुई झील को करनी ही होगी मेरी प्रतीक्षा ।"[1]

क्रान्ति की आवश्यकता शोषण को मिटाने के लिए है । क्रान्ति के उपासक कवि मुक्तिबोध उपर्युक्त अपनी कविता में कहते हैं कि अब मुझे मेरे क्रान्तिकारी साथियों को खोजना है । 'काले गुलाब, स्याह सिवन्ती, श्याम चमेली तथा सँवलाये कमल' ये सब शोषण के खातिर सुन्दरता को खोकर कुरूप काले बन गये हैं और ये क्रान्ति के स्त्रोत भी हैं जिससे क्रान्ति के संदेश और सुझाव मिलते हैं । क्रान्ति की राह पर जो भी खतरे आये उनसे डटकर सामना करने के लिए तैयार होना पड़ता है । खतरों का जोखिम उठाते हुए पूँजीपतियों के दृढ़ केन्द्री की नीव ढीली करनी होगी । शोषण के इस पहाड़ को पार करने की

1. मुक्तिबोध रचनावली (खंड-2) अँधेरे में, पृ.379-80

आवश्यकता होगी और क्रान्ति में शामिल होकर शोषण का दमन करने की अनिवार्यता उत्पन्न होगी । अतः कवि मुक्तिबोध शोषण को मिटाने के लिए शोषित गण में मिलकर क्रान्ति में भाग लेकर शोषणहीन समाज का निर्माण करने की अपेक्षा करता हैं । अतः कवि अपनी इस कविता में शोषण को मिटाने के लिए क्रान्ति को आवश्यक मानकर उसका आह्वान करता है ।

आगे की पंक्तियों में दुर्गम पहाडों के उस पार यानी दुःख और संघर्ष खत्म करके मिलनेवाली आनंदमय दुनिया का वर्णन है । 'नीली झील', 'लहरीली थाहें' के आनंद को जैसे 'अरूण कमल' लेकर कंपन की अनुभूति करता है वैसे ही क्रान्ति के बाद की दुनिया दिखाकर कवि प्रेरणात्मक शक्ति का आह्वान करता है । भविष्य में होनेवाली शांति को हिमाच्छादित और शीतल जल दिखाकर उनका एकमात्र उपाय क्रान्ति वर्णन किया है । क्रान्ति के बाद का वातावरण जादुई झील जैसा होगा, किन्तु यहाँ तक पहुँचने के लिए क्रान्ति ही आवश्यक है ।

4.11 क्रान्ति का उदय :

क्रान्ति की शुरूआत, विकास, प्रसार तथा स्वरूप के विविध सोपान कवि के हृदय में दृष्टव्य हैं । उसके उदय की विभिन्न परिस्थितियों की झलक से पाठक को स्पष्टतः क्रान्ति के दर्शन होते हैं । शोषितों के समाज में आर्थिक विषमता, अभाव, अतृप्ति, अविश्वास तथा शोषण नीति के कारण, परिस्थितियों के कारण क्रान्ति का उदय होता है । उदय का समय और उसके परिणाम बिलकुल अनजाने होते हैं । उन अनजानी बातों में आर्थिक अभाव मात्र माना जाता है ।

"पीत क्षितिज के गहन गहवरों से तब सहसा
सूर्य - किरण - वीणा के चमकीले तारों पर गूँजा
दिग्-दिगन्त कम्पित कर
एक भयद जयगान
दृगों के सम्मुख अग्निलताओं के शत तेज स्वर्णि
पुष्प खिलाता हुआ समुद्र जयगान....।"[1]

1. मुक्तिबोध रचनावली (खंड-1) क्रान्ति, पृ.129-30

'पीत क्षितिज' से सूर्य की किरणें वीणा के तारों पर गूँजने से समग्र दिशायें भी कम्पित हो जाती है और एक भयरूप जयगान होता है । सब के नेत्रों के सामने अग्नि लताओं के तेज विकसित होते है । सभी जगह उसका जयगान और जयघोष होता है ।

"चीर अंधियारा उगा रवि-बिम्ब नूतन
जब विचारों के पहाड़ों के शीखर पर,
साँवले भीते पुरानी सफेदी की
शहर भर की दिख गयी बिमार, बेमन ।
सील-खाये इन घरों बेरोक में से
आग तूफानी लगी है शहर भर में;
लाल-लाल गुलाब ! अंगारे उगे हैं
इस उपेक्षित मृतिका की कोख में से ।"[1]

जिस प्रकार ज्ञान के किरण से अज्ञान का अंधकार हट जाता है । उसी प्रकार क्रान्तिरुपी सूर्य का उदय होने से शोषण का अंधकार जाल टूट जाता है । क्रान्ति के सूरज उगने से शोषितों के साँवले पुराने घर की दीवारें प्रकाशमान होकर दिखायी देने लगती है और शहर में बसे शोषण के बीमार भी दिखाई देने लगे । शोषितों के घर में से क्रान्ति की आग का तूफान चलने लगा वही शहर भर में व्याप्त हुआ । जिससे लाल-लाल गुलाब अंगारे उगे । यहाँ पर लाल-लाल गुलाब क्रान्ति के प्रतिक रूप में लिया गया है । यह क्रान्ति की ज्वाला उपेक्षित शोषितों की कोख से उदय हुई है । शोषण के उदय से क्रान्ति का प्रारंभ होता है । शोषण निश्चित दिशा में प्रारंभ होकर तूफानी लपेट से तीव्र हो जाता है ।

"फूटे हुए घरों और ढही हुई मेहराबों के
धँसे हुए पुलों पार
झुलसे हुए खेतों गाँवों मैदानों के आर-पार
दहकती धूम भरे सुनहले प्रसार में से
आती है इनकार, उभरती है झनकार

1. मुक्तिबोध रचनावली (खंड-1) स्याह-धब्बों सी निशाएँ, पृ.172-73

गूँजती है घावों भरी,
जीवनानुभवों भरी जिन्दगी की झनकार...।
....बहते हुए पसीने की ढुलते हुए लोहू की
आपस में मिलती हुई धार के मर्म-गीत
ज्ञान के, क्रान्ति के, मुक्ति के कर्म-गीत
वृक्षों की छांहों से पहाड़ो की खोहों से
उठती है झनकार....।"[1]

शोषितों के फूटे घरों, धँसे हुए पुलों, खेतों तथा गाँवों में शोषण की नीति के कारण क्रान्ति की झनकार गूंजती है । शोषितों के कष्टमय जीवन के कारण क्रान्ति का जन्म होता है । शोषितों की मेहनत के पसीने की और लहू की धार आपस में मिलती है जिससे मर्म-गीत उत्पन्न होते है तथा ज्ञान की वृद्धि होती है । अतः क्रान्ति का जन्म हो जाता है । शोषण से मुक्ति प्राप्त करने के लिए क्रान्ति मुक्ति के कर्मगीत सुनाती है और क्रान्ति की झनकार उठती ही रहती है । क्रान्ति अन्याय निवारण का एक निश्चित उपाय है । उस क्रान्ति से ही अन्याय और अत्याचार मिटा सकते है । इस कर्म के रूप में क्रान्ति को मुक्ति के कर्मगीत सुनाती है और क्रान्ति की झनकार उठती ही रहती है । क्रान्ति अन्याय निवारण का एक निश्चित उपाय है । उस क्रान्ति से ही अन्याय और अत्याचार मिटा सकते है । इस कर्म के रूप में क्रान्ति को स्वीकारना ही शोषण की जड़े ढ़ीली करना है ।

"दिन-रात कष्टमय जीवन की
संत्रस्त अंधेरी दुनिया में
संघर्ष-विवेकों की तुम रक्तिम
ज्वाला-पुंज
कितनी सुंदर
तुम गुंथी हुई स्वाभाविकता

---

1. मुक्तिबोध रचनावली (खंड-1) मेरे मित्र, सहचर, पृ.278

की ज्ञान स्मिता

अनुभव - विशेषता लौ ।"[1]

क्रान्ति के उदय के स्थानों का निर्देश उपर्युक्त कविता में प्रस्तुत किया गया है । ऐसी संत्रस्त शोषितों की दुनिया में क्रान्ति का जन्म होगा । कवि ने यहाँ क्रान्ति को 'रक्तिम ज्वाला पुंज' कहा है । शोषण के परिधान में कठिन से कठिन कार्य करने पर भी शोषितों को पेट भर अन्न प्राप्त नहीं होता । भूखा पेट क्रान्ति के उदय का केन्द्र बन जाता है ।

"....हृदय में खिला है

दहकते हुए लाल अंगार का फूल

मौलिक महा सूर्य का सत्य आमूल

दिन के नीरे व्यर्थ श्रम और उपरान्त...।"[2]

उत्पीडित शोषित के मन में क्रान्ति का उदय होता है । उसका स्पष्ट उल्लेख कवि मुक्तिबोध ने प्रतिक्रियात्मक रूप में जागतिक प्रतीकों के द्वारा अभिव्यक्त किया है । यह क्रान्ति महासूर्य की तरह मौलिक और सत्य होती है, जो हंमेशा विद्रोही क्रान्तिकारी शोषितों के हृदय में उत्पन्न होती है ।

"...मा कहती -

सूखी टहनी की अग्नि-क्षमता

ही गाती है पक्षी स्वर में

वह बन्द आग है खुलने को ।"[3]

'एक अन्तर्कथा' शीर्षक कविता में कवि मुक्तिबोध ने माँ के द्वारा अपने शोषित पुत्र को क्रान्ति को प्रेरणा दी है । थोड़ी देर में उत्पन्न होनेवाली क्रान्ति का संकेत माँ देती है । 'सूखी टहनी' यानी शोषण के कटु अनुभव से क्रान्ति अग्नि पक्षी के स्वर में गाकर सुना रही है । अब यह 'बन्द आग' यानी शोषितों की क्रान्ति खुलने को है व जन्म लेने को है ।

---

1. मुक्तिबोध रचनावली (खंड-1) जब प्रश्न चिन्ह बौखला उठे, पृ.327
2. वही, पीत ढलती हुई साँझ, पृ.336-37
3. वही (खंड-2) एक अन्तर्कथा, पृ.154

इस कविता द्वारा मुक्तिबोध ने क्रान्ति के उदय काल की सूचना का सूक्ष्म संकेत दिया है ।

"प्राणों की म्यान में से जबर्दस्त
तड़पी बिजली-सी अलमस्त
चमकती शमशीर युगान्तर-वाहिका
कि दिल की दराज में से
निकलता है भरा हुआ रिवाल्वर
व निकलती है तसवीर
आज की जिन्दगी की
भावी कार्यक्रमों की ।"[1]

शोषित के प्राणों के म्यान में से शोषण के प्रति क्रोध और विरोध की तलवार निकलती है । दिल में से गोली भरा हुआ रिवाल्वर निकलता है । भविष्य में होनेवाले कार्यक्रमों की तसवीर तक ही प्रारंभ में निकल आती है । इस प्रकार क्रान्ति का उदय शोषित हृदय में होता है ।

कवि ने अपने विशिष्ट शब्दप्रयोग 'शमशीर युगान्तर-वाहिका' द्वारा एक ऐसी तलवार की कल्पना की है जो युग को बदलने की वाहक हो । इस प्रकार तलवार को क्रान्तिवाहिनी बनाकर कवि ने युग परिवर्तन का उपाय क्रान्ति सूचित किया है । यह क्रान्तिरूपी तलवार की रहने की जगह यानि की म्यान कवि ने प्राणों को दिखाया है । यह प्राण निम्न वर्ग के लोगो के है । इस प्रकार भावि कार्यक्रमों को कवि ने सूचित किया है ।

शोषित का उद्विग्न मन क्रोधाग्नि रूपी रिवाल्वर से तुरन्त शोषक पर वार कर देता है । मन के क्रोध में ही जोश तथा शक्ति समाहित होती है । अतः क्रान्ति का उदय मजदूर के मन की क्रोध की अवधि में छिपा हुआ रहता है । क्रान्ति के उदय के कारण विषमता के विरुद्ध युद्ध थम जाता है और विभिन्न स्थानों पर समानता का भाव तक छा जाता है । इस तरह शोषितों में क्रान्ति के उदय से समानता तथा न्याय आदि का आगमन होता है ।

---

1. मुक्तिबोध रचनावली (खंड-1) मेरे मित्र, सहचर, पृ.285

4.12 क्रान्ति का प्रसार और विस्तार :

साम्राज्यवाद की विनाशकारी और समाजवाद की निर्माणकारी क्रान्ति के आगमन को कवि मुक्तिबोध ने अपनी कविताओं में अभिव्यक्त किया है ।

"हलचल बने, नर्तन-कुशल
ये आज शंकर जग गये ।
री ! भावना जन खौलता
दृग-द्वार फिर भी लग गये !
ज्वालामुखी का ह्रास कटु,
भूकम्प भीषण है प्रकट
तिमिरमय संसार है....।"[1]

क्रान्ति नृत्य करती है इसलिए महारुद्ध, भूतनाथ, भयंकर, चन्द्रचूड शंकर प्रभु जाग गये । भावनालोक का जल त्याग क्रोधित हुए, फिर आँखे मूँद ली । ज्वालामुखी जैसी भयंकर मुस्कान, भयंकर भीषण भूकंप प्रकट होनेवाला है ।

"...यकायक डस लेती है मेरा वक्ष
हृदय दहलाने वाली बिजली
उस विराट् गति-मुग्ध प्रभंजन के मटमैले क्षुब्ध वक्ष की
और तुरन्त ही में परिवर्तित हो जाता हूँ ।"[2]

क्रान्ति के आगमन के समय सर्वप्रथम वह भाव कवि के उर को धक्का देता है उसकी प्रतिक्रिया ही क्रान्तिकारी काव्य है । यह क्रान्ति हृदय को दहलानेवाली भयभीत करनेवाली बिजली है, उसकी गति बिजली की तरह विराट तेजवाली है । शोषित के मटमैले वक्ष पर मुग्ध है तुरन्त कवि में परिवर्तन आ जाता है । अतः क्रान्ति का आगमन होता है ।

"दक्षिणी - ध्रुवी समुद्रों का ठण्डा अंधियारा
चीर रही है लम्बी बाहें नील अनल की,
भिदी निराशा, घुसी शलाका मेरे बल की ।"[3]

---

1. मुक्तिबोध रचनावली (खंड-1) कल्पना री, पृ.39
2. वही, क्रान्ति, पृ.128
3. वही, मध्य वित, पृ.178

क्रान्ति यहाँ पर पवन के रूप में है जो दक्षिण ध्रुवी समुद्रों में जमा ठण्ड़ा अँधियारा चीरते हुए फाडते हुए आ रही है । क्रान्ति के आगमन से निराशा टल जाती है और बल की शक्ति प्रवेश करती है ।

"...इसी कर्म-पथ पर मिलती है
बड़ी पसीने से तर छाती भाई की अपने भाई से
इस जीवन-पथ पर अकुलाकर भभक उठा है
दहक उठा है दूर क्षितिज वह
और क्षोभ के अंगोरों के सहस्त्रदल-सा
दमक उठा है ज्वालामय सरसिज सूरज वह ।
इस रास्ते पर धरती के पोरों की गरमी
पुरूष वक्ष की शक्ति-गन्ध-सी महक उठी है
गरम-गरम सूरज के फावे
टूटी हुई हाथ की हड्डी
मोच पाँव की
मोच शहर की, मोच गाँव की
जब श्रम की सुगन्ध उठती है
तभी महकती है आत्माएँ
मुक्ति, खोल निज द्वार
देखती है सब ओर...।"[1]

क्रान्ति उस पथ से आ रही है जिस पथ पर शोषित भाई-जन अपने पसीने से तरबतर छातियों से परस्पर मिलते हैं । इस शोषण से उबकर भड़क उठा दूर क्षितिज में क्रान्ति का सहस्त्रदल-सा कमल । वह क्षोभ के अंगारों का सहस्त्रदल है, वह क्रान्ति-ज्वाला सूर्य की तरह दमक उठ रही है । यह क्रान्ति क परिणाम स्वरूप हाथ की हड्डियाँ टूटी, पाँव मोच गये और शहर तथा गाँव तक मोच गये यानी त्रस्त हो गये । क्रान्ति द्वारा पूँजीवादी का दमन किया गया और

---

1. मुक्तिबोध रचनावली (खंड-1) बड़े वेग से चला रही है, पृ.262

समाजवाद का निर्माण हुआ । सम्मिलित शोषित वर्ग की मेहनत की खुशबू महकने लगी । समग्र शोषित आत्मायें आनन्द विभोर होती हैं और मुक्ति अपना द्वार खोलकर सभी ओर निहारती है । समाजवाद में श्रम को श्रेष्ठ स्थान मिलता है वहाँ पर सारी प्रजा सुखी रहती है और स्वतंत्र रहती है इसका ब्यौरा उपर्युक्त पद्य में दृष्टव्य होता है ।

"जितनी तेज निगाहों के रवि - किरण - ज्वाल में
निम्न - मध्यवर्गीय उदासी की छाहों के
छिन्न-छिन्न हो बिखर गये अँधियारे बादल
मुक्ति-सेतु बिछ गये क्रान्तियों की बाहों के ।"[1]

'रवि - किरण - ज्वाल' क्रान्ति के प्रतीक हैं, जिनमें निम्नमध्यवर्गीय की जो भी उदासी, पीड़ा तथा कष्ट वे छिन्न-भिन्न होकर बिखर गये । शोषितों के शोषणरूपी बादल तितर-बितर हो गये । शोषण का निवारण हुआ । यह सब क्रान्ति के फलस्वरूप ही हुआ । क्रान्ति के सुचारु संचालन से प्रगतिशील जीवन निर्वाह के अनेक द्वार अपने आप खुल गये ।

"कष्ट वेदना करुणा की आँखों में रवि किरणें दमकी
मुख पर जीवन-संग्हामों की लाल-लाल छायाएँ सिहरी
(खुली क्रान्ति की पलकें, आँखों से संघर्षो की दोपहरी)"[2]

क्रान्ति का जन्म और आगमन कष्ट, वेदना और करुणा की परिस्थितियों से होता है । यहाँ क्रान्ति को रविकिरण कहा गया है । क्रान्ति के आगमन के कारण की हर शोषित के मुख पर शोषण के विरूद्ध जूझने की प्रबल आशा उत्पन्न होती है । अतः क्रान्ति की पलके खुलती हैं और उसकी आँखों में सोषण के प्रति संघर्ष करने की धधकती अग्नि-सी भावना जाग उठती है ।

इस तरह मुक्तिबोध ने क्रान्ति के आगमन के संकेत स्पष्ट किये हैं ।

---

1. मुक्तिबोध रचनावली (खंड-1) म्युनिसिपालिटी का कन्दोल, पृ.273
2. वही, मानवता का चेहरा, पृ.275

4.13 सफल क्रान्ति का परिणाम :

क्रान्ति का उद्भव, विकास एवं स्वरूप के अध्ययन बाद अब उसके परिणामों की दिशा में प्रयत्न किया जा रहा है । क्रान्ति का परिणाम यह है कि पूँजीवादी समाज के समस्त दोषों का निवारण एवं मूलतः शोषण नीति का भंडाफोड़ हो जाता है । क्रान्ति से शोषण रहित समाज का निर्माण नये सिरे से प्रारंभ होता है अर्थात् समाजवाद की प्रतिस्थापना अमल में आती है । अतः पूँजीवादी राज्य में शोषण नीति के निवारण के लिए क्रान्ति अति आवश्यक है । मार्क्सवादी कवि मुक्तिबोध ने अपनी कविताओं में क्रान्ति के परिणामों का दर्शन करवाया है ।

"भीषण बहुत है वह अन्धड और बवण्डर
आसमानी नीले रेगिस्तान में
बह रहा है या कि उड़ा रहा है जो कि
अस्तप्राय साम्राज्यवादी पशु-सूर्य की
किन्तु फिर भी लडती हुई
आधी देह !!"[1]

क्रान्ति का 'अन्धड और बवण्डर' भीषण रूप में आसमान में साम्राज्यवादी 'पशु-सूर्य' को उड़ा रहा है जो कि अस्तप्राय है । अतः यहाँ क्रान्ति का भीषण बवण्डर साम्राज्यवादी पशु-सूर्य को आकाश में बहाकर या उड़ाकर दूर कर रहा है यानी साम्राज्यवाद की शोषणनीति को सर्वत्र दूर कर रहा है । यहाँ क्रान्ति के परिणाम स्वरूप साम्राज्यवाद की शोषण नीति नष्ट हो गई ।

"...है फैलती सन्तप्त नीली ज्वाला
बढ़ते जा रहे श्रमिक कृषकों के
सुसज्जित युद्धपोत विशाल
दारुण क्रान्ति की अनिवार्यता...।"[2]

---

1. मुक्तिबोध रचनावली (खंड-2) जमाने का चेहरा, पृ.91-92
2. वही, अपने कवि से, पृ.165

क्रान्ति शोषितो को उत्तेजित करती है जिसके कारण क्रान्ति की सन्तप्त नीली ज्वाल फैलती है । क्रान्तिकारी योद्धाओं, विशाल श्रमिकों और किसानों को युद्ध के लिए क्रान्ति के लिए तैयार होना पड़ता है । क्रान्ति की उत्पति के कारण शोषित और शोषकों के बीच में भयंकर संघर्ष चलता है । अतः क्रान्ति श्रमिकों और किसानों को शोषण के विरोध में संग्राम करने को उकसाती है । वर्ग रहित समाज का स्थापना करना चाहती है । कुल मिलाकर क्रान्ति के उद्वेलन ही दमन को जाता है तथा शोषितों को अपने जीवनोपार्जन का मार्ग मिल जाता है ।

"राह पर एक वह धुआँधार
कोलाहल करता सगर्व उद्धत मजदूरों का जुलूस
प्राण के बन्ध देता विदार
है उष्ण स्पर्श
शतदल प्रात सूर्यो की छवि का वह
भरता उभार ।
भग्न गुंबजों की धन मूर्छा
छप्प की गिरने की इच्छा
कितने छप्पर, कितने गुंबज
टूटे हैं देखा गिन-गिन के ।
विश्व व्यापिनी ज्वालाओं की जिहवाओं से
नये वेद-मंत्रों के छन्दोचरित सत्य को
जगते देखा ।
नये मनुज की वक्र भृकुटि
जलती आँखों में
एक विश्वव्यापी सपने में मद को
चिर दिन तिरते देखा ।"[1]

मजदूरों में कार्यरत शोषण नीति विरोधी क्रान्ति के कारणवश मजदूरों का जुलूस कोलाहल करता हुआ गर्व से शोषित प्राणों को बन्धन से मुक्त कर देता

1. मुक्तिबोध रचनावली (खंड-1) आ-आकर कोमल समीर !, पृ.105-7

है । वह क्रान्ति तप्त लोहे की तरह है । क्रान्तिकारी शोषितों में 'शर्त-लक्ष प्रात सूर्यो की छवि' का उत्तेजन भरा जाता है । गुंबज और छप्पर दोनों को ढहते जा रहे है क्योंकि क्रन्ति के परिणाम स्वरूप शोषक और शोषितों में संघर्ष चला है । शोषकों के गुंबज, मीनार तथा महल सभी नष्ट किये जा रहे हैं । उसी के साथ दीन शोषितों के छप्पर भी संघर्ष में नष्ट होते जा रहे है । इस महाक्रान्ति के उत्पन्न होने से विश्वभर में क्रान्ति की ज्वालाएँ भडकने लगी जिसके कारण नये वेद-मंत्र के छन्दोचरित सत्य और नयी मानवता के मूल्य जग में जन्म लेने लगे । भीतर क्रान्ति के कारण क्रान्तिकारियों की आँखों में विश्वव्यापी मानवीयता के सपने तैरने लगे । इस प्रकार इस पद्य में मुक्तिबोध ने क्रान्ति के अद्वितीय प्रगतिदायक परिणाम का सूत्र दर्शाया है ।

"सहसा प्राचीरें, मीनारें
महलों की दीवारें काँपी और गिर पड़ी,
मरे कबूतर प्राचीरों के छेदों-छेदों रहनेवाले ।
दीवारों से घिरे अँधेरे में चुपचाप रेंगनेवाले ।
जीव-जन्तु मर गये घिनौने ।
काँपी किरने, डोला सूरज ।
प्रखर प्रकाश ज्ञान का सब पर
तुरंत फैलकर
घोर भग्न अज्ञान प्रकाशित करता है,
केवल एक तुम्हारे कारण
अंगारे हो गये कमल-से सुन्दर कोमल,
लाल स्फुलिंग नवल किंशुक के फुल हो गये,
मेरे भारत के वृक्षों ने
ज्वालाओं के नये सुनहले कंकण पहने
माला पहनी
कूल नदी के लाल हो गये ।
देश-देश प्रज्वलित
सुनहली क्रुर भव्य दावा में जलता
यह मानव हो गया फैलकर
महान व्यापक ।"[1]

1. मुक्तिबोध रचनावली (खंड-1) ओ विराट स्वप्नो, पृ.143-45

क्रान्ति के जन्म से प्राचीरें, मीनारें, महलों, सबकी दीवारें काँपने लगी और टूट-टूटकर नीचे गिर पड़ी, आसमान भी काँपने लगा । क्रान्ति के परिणाम स्वरूप मासूम नन्हें पशु-पक्षियों से निशाचर जीवजन्तु भी मर गये, सूरज तक क्रान्ति से डोलने लगहा । क्रान्ति के कारण ज्ञान का प्रकाश सभी तरफ फैलने लगा । अज्ञान का अंधकार भी ज्ञान के प्रकाश से प्रकाशित हुआ । क्रान्ति के कारण कोमल सुन्दर कमल जैसे मासूम मुग्ध शोषित अंगार बन गये । 'लाल स्फुलिंग' सुन्दर 'किंशुक' पेड के फूल बन गये । भारत के वृक्षो ने यानी शोषित गण ने ज्वाला के कंकण और माला पहने । क्रान्ति के कारण नदी के किनारे तक लाल हो गये और देश में क्रान्ति होने से वह भी प्रज्वलित दिखाई देने लगा। क्रान्तिरूपी दावाग्नि में क्रान्तिकारी धधकता सभी जगह फैलकर व्यापक बन गया और महान बन गया ।

कवि ने प्रकृति में क्रान्ति के स्वरूप को पल्लवित एवं पुष्पित कर संतोष पाया है । प्रकृति में क्रान्ति के परिणामों से परिवर्तन झलक रहा है ।

"...क्रान्ति की मुसकराती आँखों पर लहराती अलकों में बिंध,
पर लहराती अलकों में बिंध,
आँगन की लाल कनेर खिली ।
भूखे चूल्हे के भोले अंगारों में रम,
जनपथ पर मरे शहीदों के
अन्तिम शब्दों में बिलग-बिलग,
लेखक की दुर्दम कलम चली ।
यों दावाग्नि लगी
मानो बूढ़ी दुनिया के सिर पर आग लगी
सिर जलता है, कन्धे चलते ।
यह अग्नि विश्वजित फैली है जिन लोगों की
वे नौ जवान ।"[1]

1. मुक्तिबोध रचनावली (खंड-1) जब प्रश्न चिह्न, बौखला उठे, पृ.319-20

क्रान्ति के मुस्कुराने से उसके संकेतात्मक रूप में उसकी आंखों से लाल कनेर खिली । अभावग्रस्त भूखे शोषित क्रान्ति में संघर्ष करते-करते शहीद हुए । आखिर लेखक ने अविरत अपनी कलम चलाई है ।

क्रान्ति की आग ऐसे लग रही है कि बूढ़ी दुनिया के सर पर लगी आग-सी जिसके कारण सिर लगी आग-सी जिसके कारण सिर और कन्धे जल रहे हैं; क्रान्ति दिखने लगी । समस्त विश्व में क्रान्ति की आग धधकने लगी उससे सारी दुनिया दग्ध-सी लग रही थी । नौ जवान इस क्रान्ति के संचालक थे । क्रान्ति के परिणाम से शोषित क्रान्ति में संघर्ष करते प्राण त्याग दिये ।

क्रान्ति दुनिया भर में विस्तृत होने के सारी दुनिया जाज्वल्यमान दिखाई देने लगी । आग के धधकने में क्रान्ति के प्रगल्भ रूप के चित्र प्रस्तुत होते है । जाज्वल्यमान से विराट् परिणाम का अर्थ निकलता है ।

क्रान्ति के रवि-किरण ज्वाल से निम्न मध्यवर्गीय शोषित वर्ग शोषण के काले बादल छिन्न-भिन्न हो गये और शोषण से मुक्ति मिली तथा मुक्ति-सेतु बिछ गये । अतः क्रान्ति के कारण शोषण नीति का दमन हुआ, शोषितों को मुक्ति मिली; मुक्तिबोध के काव्य में दिखाई देता है ।

सफल क्रान्ति के परिणामरूप कवि ने गहरा आशावाद अपनी पंक्तियों में वर्णित किया है । उसके मुताबिक क्रान्ति के अंत में शोषित और निम्न वर्ग के स्वप्न सही साबित होगे । वह सच्ची आजादी पा सकेंगे । बंधन, आँसू, अत्याचार और दुःख के दीन खत्म हो जायेंगे । आजादी की सुबह सूर्य रोमांचित होकर निकलेगा, हवाओं में हल्की खुश्बु महसुस होगी । हर तरफ समता का माहौल दिखाई देहा कहीं चीखे नहीं सुनाई देती । इस प्रकार कवि ने क्रान्ति के विधायक परिणाम सूचित किये है ।

कवि की यह कल्पना उस युग का सूचन है जिसका स्वप्न गाँधी, मंडेला और कई युग पुरूषों ने देखा है । यहा परिणाम की कल्पना करनेवाला कवि निश्चित तोर पर जीवन का स्वीकार करनेवाले युगपुरूष दिखते है ।

4.14 उपसंहार :

कवि गजानन माधव मुक्तिबोध ने क्रान्ति के सारे स्वरूप को अत्यंत उग्र शैली में स्पष्ट किया है । ऐसा लगता है कि जलते हुए क्रान्ति के उद्‌गारों को दहकते हुए शब्दों में कवि प्रस्तुत कर रहा हो - सब कुछ प्रज्वलित और लाल । क्रान्ति के बाद उनका परिणाम सफळ आता है यह भी कवि ने बताया है । शोषित वर्ग शोषको के शासन में से मुक्त हो जाते है ।

प्रगतिवादी कवि की समग्र शव्दावली, बिम्ब-योजना और प्रतीक-योजना सब कुछ मुक्तिबोध के काव्य में देखा जा सकता है । मुक्तिबोध क्रान्ति का ऐसा चित्रण इसलिए कर सके है कि उनका जीवन क्रान्ति की ओर स्वयं उन्मुख होता रहा । क्रान्ति की अभिव्यंजना उनके जीवन क्रम से ही स्वयं निकली । उनकी चेतना पर अध्यारोपित नहीं । इस रूप में मुक्तिबोध की काव्य चेतना का मूल्यांकन होना चाहिए ।

अध्याय-5

मुक्तिबोध के काव्य का भावगत सौन्दर्य

❒ प्रस्तावना

5.1 मुक्तिबोध के काव्य का भावपक्ष

5.2 मुक्तिबोध के काव्य में अनुभूतिगत विचार

5.2.1 संघर्ष का कवि

5.2.2 जन के साथ गहरे जुडाववाला कवि

5.2.3 क्रान्ति का कवि

5.2.4 वादमुक्त कवि

5.2.5 अंगारी पिड़ा का कवि

5.2.6 अवसरवादी बुद्धिजीवियों की कडे शब्दों में निन्दा करनेवाला कवि

5.2.7 कविता के प्रति सचेत कवि

5.2.8 अभिव्यक्ति का खतरा उठानेवाला कवि

5.2.9 प्रकृतिचित्रण

❒ उपसंहार

अध्याय-5

मुक्तिबोध के काव्य का भावगत सौन्दर्य

प्रस्तावना :

मौलिकता के कारण कला में वैशिष्ट्य नजर आता है । इसी कारण एक ही वस्तु की निर्मिति अनेक कलाकारों द्वारा होने पर भी उसमें भिन्नता होती है । यह मौलिकता के कारण ही संभव होता है । अनेक चित्रकारों ने शिवाजी के राज्याभिषेक के चित्र अंकित किए है परंतु उन सबकी अपनी अलग विशिष्टता है । वैसे ही रामकथा को अनेक रचयिता ने अपनाया परंतु हर एक का अलग वैशिष्ट्य है । हर कलाकार को अपनी सांस्कृतिक परंपरा का ज्ञान होना आवश्यक है । संस्कृति और कला का परस्पर सम्बन्ध है । यह भी आवश्यक है कि कलाकार अपनी पूर्ववर्ती कृतियों या रचनाओं का परिचय प्राप्त करें । सम्वेदनशील व्यक्ति ही कलाकार होता है और वह समाज का अत्यंत सूक्ष्मता से अवलोकन करता है । उसके लिए समाज ही प्रेरक तत्व के रूप में उपस्थित होता है । वह समाज से प्रेरणा लेकर अपनी अनुभूतियों को व्यक्त करता है ।

मनुष्य के जीवन में कला का स्थान महत्वपूर्ण है । किसी भी वस्तु की यथातथ्य अभिव्यक्ति कला नहीं हो सकती । उसमें सौन्दर्य बोध भी होना आवश्यक है । कला ही सौन्दर्य को व्यापक बनाती है, परन्तु स्वयं कला भी सौन्दर्य की प्रेरणा से अभिव्यक्त होती है । कलाकार सृष्टि के अनेक रहस्यों को मोहकता से प्रस्तुत करता है । सृष्टि सौन्दर्य से परिपूर्ण है । उसने अपनााा संपूर्ण सौन्दर्य मनुष्य के सामने रखा है । कलाकार उसी सौन्दर्य को अलग-अलग रूपों में ढ़ाल देता है । जिस सौन्दर्य को कलाकार अपनी अनुभूतियों तथा कल्पनाओं के आधार से व्यक्त करता है उसकी विशिष्टता ही कला है और उसका महत्व मौलिकता में है ।

साहित्य का निर्माण सौन्दर्य द्वारा होता है और सौन्दर्य की सृष्टि साहित्य के द्वारा । जगत की प्रत्येक वस्तु में कवि को सौन्दर्य दिखाई देता है । कवि मुक्तिबोध ने भी अपने काव्य में भावगत सौन्दर्य का अत्यंत सुन्दर ढ़ंग से निरूपण किया है ।

5.1 मुक्तिबोध के काव्य का भावपक्ष :

स्वर्गीय गजानन माधव मुक्तिबोध ने सन् 1935 से नियमित रूप से लेखन-कार्य किया है । विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में उनकी रचनाएँ प्रकाशित हुई है । मुक्तिबोध की प्रारंभिक रचनाएँ कवि के युवक मन की रचनाएँ हैं । मुक्तिबोध की प्रारंभिक रचनाएँ कवि के युवक मन की रचनाएँ हैं । मुक्तिबोध रोमान्टिक प्रकृति के थे । वह रोमान्स को मनुष्य का प्राकृतिक गुण मानते थे । 'साहित्य के दृष्टिकोण' नामक निबन्ध में उन्होंने इसकी चर्चा करते हुए लिखा है - "मनुष्य की प्रकृति में क्या रोमान्स का स्थान नहीं है ? रोमान्स तो प्रवाहमान जीवनधारार का self assertion है । जिस तरह बसन्त ऋतु वृक्षों के अन्दर तरूण ओज द्वारा फूल-पत्तियों का सृजन करता है वैसे ही वही तरूण ओज स्त्री-पुरूष के अन्तर्जगत में रोमान्स उत्पन्न करता है, उनके स्वस्थ शरीर में वह नवजीवन बनकर बनने लगता है ।"[1] एक युवा ह्रदय सौन्दर्य एवं प्रेम, विरह और मिलन के गीत गाता है और कल्पना के आकाश में विचरण करता है - बस इन रचनाओं में मुक्तिबोध की चिन्तनधारा यहीं तक सीमित है ।

मुक्तिबोध ने छायावाद के सौन्दर्य एवं प्रेमपक्ष को ही अपनी रचनाओं में स्थान दिया है । वैसे छायावादी कवि ने सौन्दर्य को प्रकृति के विराट प्रांगण में अनुभूत किया है एवं प्रकृति का मानवीकरण उसके चिन्तन का एक पक्ष रहा है । मुक्तिबोध की पंक्तियों में न तो सौन्दर्य को इस धरातल तक पहुँचाया गया है और न मानवीकरण वाला चिन्तन पक्ष दृष्टिगोचर होता है । उसमें एक स्थूल सी बात है जो उतने ही स्थूल ढंग से कही गयी है । उनकी रचनाओं की पंक्तियाँ देखिए -

"इस सीमा पर मैं हूँ औ,
तुम उस सीमा पर स्पर्श करूँ क्यों ?
नन्दन जग के मूक पुलक में अपना दुःख उत्कर्ष भरू क्यों ?
चिर पतझर यह जीवन जग में अपनी साध लिये आई है ।
स्मृति-विस्मृति की तान मुखरर है
बंधनमय आदर्श हरूँ क्यों ?"[2]

---

1. नये साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र, मुक्तिबोध, पृ.110
2. मुक्तिबोध : कवि और काव्य, डॉ.अय्युब पठाण, पृ.120

कवि कहता है कि मैं इस सीमा पर हूँ और तुम उस सीमा पर हो, मैं तुम्हारी सीमा स्पर्श क्यों करूँ ? तुम्हारे नन्दन अर्थात् स्वर्ग के मौन उल्लास में मैं अपने दुःख के उत्कर्ष को क्यों प्रतिबिम्बित करूँ ? मेरा जीवन तो चिर पतझर है जो तुम्हारी कामना भी लिए हुए है । लेकिन फिर भी मैं उस कामना के लिए अर्थात् तुम्हारे लिए अपने इस बंधनमुक्त आदर्श का जिसमें स्मृति एवं विस्मृति का संयोग है, परित्याग क्यों करूँ ? भाव यह है कि वह जीवन के दुःख एवं बन्धनों को छोड़कर प्रिय के सुखी और उल्लासित नन्दन-जग में नहीं जाना चाहता । उसके लिए यह बन्धनयुक्त जीवन ही आदर्श है । छायावादी कवियों में भी ऐसे भावों की अभिव्यक्ति हुई है । किन्तु छायावादी कवियों की पंक्तियों के सम्मुख मुक्तिबोध की ये पंक्तियाँ फीकी जान पड़ती है ।

इसका कारण बहुत स्पष्ट है मुक्तिबोध जब छायावादी काव्य के अनुकरण पर कविताएँ कर रहे थे, उस समय छायावाद अपने उत्कर्ष की चरम सीमा पर पहुँच चुका था । साहित्यकारों को मार्क्सवाद का स्वर आकर्षित करने लगा था तथा छायावादी हवाओं की कल्पनाओं और मान्यताओं का पतन समीप था । स्वयं छायावादी कवियों ने मार्क्सवाद का पथ प्रशस्त किया, निराला, पंत आदि के काव्य में मार्क्सवादी स्वर सुनाई देते हैं । ऐसी स्थिति में मुक्तिबोध जैसा उभरता कवि छायावाद का अधिक समय तक अनुकरण नहीं कर सकता था ।

सिर्फ मुक्तिबोध ही नहीं संपूर्ण साहित्यिक वर्ग का झुकाव मार्क्स के यथार्थवादी चिन्तन की ओर होने लगा था । युग की सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक परिस्थितियों की ही यह अनिवार्य माँग थी और कोई भी साहित्यकार अपने युग की माँग से अधिक समय तक अलग नहीं रह सकता था । जैसा कि डॉ. शिवकुमार मिश्र ने लिखा है - “सन् 1936 के आसपास फैलनेवाला समाजवादी प्रभाव, दूसरा महायुद्ध, उसके परिणाम स्वरूप उत्पन्न आर्थिक, राजनीतिक संकट, महंगाई, बेकारी, सन् 1942 की क्रान्ति उसका दमन, मजदूरों की ऐतिहासिक हडतालें, किसानों के जागृत अभियान और सबसे बढकर बंगाल का अकाल - आदि वे कारण हैं जिन्होंने हमारे राष्ट्रीय आन्दोलन को नयी गति देकर उसे अधिक सचेष्टता से मात्र राजनीतिक ही नहीं प्रत्युत आर्थिक स्वाधीनता के

लिए भी सक्रिय रूप से प्रयत्नशील होने को बाध्य किया । उन्होंने हमारे साहित्यकारों को भी एक ऐसे पथ की ओर अग्रसर होने को प्रेरित किया, जिस पर चलकर वे अपने साहित्य को इन युगीन परिस्थितियों का प्रतिबिम्बित बनाते हुए, जन मानस की आशाओं-आकांक्षाओं को मूर्त रूप दे सके तथा समाज की प्रगति में साहित्य को एक अनिवार्य अस्त्र तथा माध्यम के रूप में प्रस्तुत कर सके ।"[1]

मुक्तिबोध ने 'नयी कविता का आत्मसंघर्ष एवं अन्य निबन्ध' में कविता एक मार्क्सवादी दृष्टिकोण से विचार विमर्श किया है । उनके शब्दों में - "काव्य रचना केवल व्यक्तिगत मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया नहीं वह एक सांस्कृतिक प्रक्रिया है और फिर भी वह एक आत्मिक प्रयास है । उसमें जो सांस्कृतिक मूल्य परिलक्षित होते हैं, वे व्यक्ति की अपनी देन नहीं, समाज की या वर्ग की देन है ।"[2]

मार्क्स ने समाज के विकास के इतिहास को वर्ग-संघर्ष का इतिहास कहा है । समाज में दो वर्ग है - एक शोषक तथा दूसरा शोषित वर्ग । साहित्यकार भी इन्हीं वर्गो से सम्बन्धित होता है । इसी बात को स्वयं मुक्तिबोध ने अनुभव किया हैं । वे लिखते है - "हिन्दी में इन दिनों दो प्रकार के वर्ग काम कर रहे हैं । एक उच्च मध्यवर्गीय जन, दूसरे निम्न मध्यवर्गीय जन । इन दोनों के बीच की खाई लगातार बढ़ती जा रही है ।"[3]

मुक्तिबोध सबके व्यक्तित्व का विकास चाहते हैं । वह पूँजीवादी समाज व्यवस्था की तीव्र आलोचना करते हैं । इतना ही नहीं वह वर्ग संघर्ष एवं वर्गहीन समाज की स्थापना की बात बार-बार करते हैं । मुक्तिबोध की रचनाओं में भी शोषक वर्ग के प्रति धृणा, शोषित वर्ग के प्रति सहानुभूति, जनक्रान्ति की भावना, समाज में फैले अनाचार, अवसरवाद की भर्त्सना, दुःख एवं दारिद्रय के प्रति क्षोभ तथा मध्यवर्गीय जीवन की समस्याओं का चित्रण हुआ है ।

मुक्तिबोध पूँजीवादी व्यवस्था का घोर विरोध करते हैं । यह व्यवस्था मानवता के सत्य का गला घोंटकर, असत्य को, अवसरवाद को आश्रय देती है ।

1. नया हिन्दी काव्य, डॉ. शिवकुमार मिश्र, पृ.147
2. नयी कविता का आत्मसंघर्ष एवं अन्य निबन्ध, मुक्तिबोध, पृ.5
3. वही, पृ.28-29

जन-जन का शोषण, दमन ही उसकी नीति है, बड़े-बड़े साहित्यकार, कलाकार, राजनीतिज्ञ इसके शिकंजे में हैं और थोड़ी सी सुविधाएँ प्राप्त करने के लिए अपने आदर्शों को भुला देते हैं, अपने आपको शोषकों के हाथों बेच देते है - यथा -

"राजनीतिक, साहित्य और कला के प्रतिष्ठित महासूर्य ।
बड़े-बड़े मसीहा ।
सरकस के जोकर-से रिझाते हैं निरन्तर ।
नाचते हैं, कूदते हैं ।
शोषण में सिद्धहस्त स्वामियों के सामने ।
व्यक्तिगत आर्थिक निज ।
क्षमता की हवेली पर ।
सुखों की चाँदनी पर ।
तारों नीचे सोने के हेतु वे ।
नये बाथरूमों में नहाने हेतु वे ।
चुपचाप आदर्शों को बाजू रख या भूलाकर ।
अवसरवादी बुद्धिमत्ता ग्रहण कर ।
औ जिन्दगी को भूल कर ।
बिलकुल बिक जाते हैं ।"[1]

मुक्तिबोध की समस्त सहानुभूति श्रमिक, दलित वर्ग के प्रति है । यहाँ पर सरकस के जोकर के रूप में शोषित वर्ग का चित्रण किया है । जोकर बड़े-बड़े व्यक्तियों के सामने नाचते-कूदते है और उनको आनंद कराते है । दलित वर्ग ही कवि की आस्था है, उनका विश्वास है, जो कर्मशील हैं, दुख की आग में तपे हैं ।

"एक गाँव है, वहाँ नदी है ।
नदी कूल से दूर दिशा तक खेत बिछे हैं ।
हरे-हरे ये श्यामल श्यामल ।
जिनमें छिपी-छिपी फिरती है लाल ओढ़नी ।
मुँह की श्यामल चमक सुरीली ।

1. भूरी-भूरी खाक धूल, मुक्तिबोध, पृ.187

साथ-साथ मेहनत के पुतले ।
शोषण हत गम खाने वाले ।
दुःख के स्वामी ।
अविश्रान्त के काले-काले हाथ व्यस्त हैं
रिक्त पेट की आँतो में दुःख के प्रवाह ले,
जिनकी वेक्स कर्मशीलता ने युग-युग के ।
गौर कपोलों में लाली की मदिरा भर दी ।
आहा त्याग की उत्कट महिमा होरी महतो ।
भोली धनिया ।
काम कर रहे हैं अब भी खेतों में ।
उनकी श्वेत अस्थियों से इस युग का बल बनेगा भयंकर ।
वह बबूल ।
जो चिर निर्वासित ।
एक प्रतीक बना है केवल जन-जन के निःसीम त्याग का ।
मेरी खिड़की से देखती है ।
होरी की वह याद ।"[1]

कवि मुक्तिबोध ने उपर्युक्त कविता में दलित वर्ग के प्रति सहानुभूति प्रकट की हैं । उन्होंने यहाँ पर प्रेमचंद रचित 'गोदान' के पात्र होरी और धनिया को फिर से याद किया है । एक गाँव है, वहाँ नदी है, आसपास हरे हरे खेत लहराते है । खेत में धनिया लाल ओढ़नी पहनकर काम कर रही है । पेट में भूख लगी है फिर भी उनके श्यामल मुँह की चमक जैसी की वैसी ही है । यहाँ पर 'बबूल' के पेड़ को लोगों के त्याग का प्रतीकरूप लिया गया है, जो निर्वासित खड़ा है । इस तरह आज भी कवि को होरी की याद आ रही है ।

कहने का तात्पर्य यह है कि मुक्तिबोध का मार्क्सवादी चिन्तन उनकी संपूर्ण रचनाओं में व्याप्त है । उनकी रचनाओं को देखकर कोई भी उन्हें मार्क्सवादी आस्था का कवि स्वीकारने में नहीं हिचकिचायेगा । लेकिन मुक्तिबोध सिर्फ

---

1. हंस-1946 ('हंस' में प्रकाशित 'बबूल' कविता का अंश)

मार्क्सवादी आस्था के कवि नहीं है । उनका चिन्तन केवल मार्क्सवाद तक ही सीमित नहीं है - उसकी सीमाओं से कहीं आगे बढ़ जाता है और यही वे मार्क्सवादी साहित्यकारों से विशिष्ट हो जाते हैं । इसी विशिष्टता को लक्ष्य करते हुए अशोक बाजपेयी ने कहा है - "मुक्तिबोध ने सामाजिक यथार्थ के अपने गहन काव्यान्वेषण के लिए मार्क्सवाद का इस्तेमाल किया है, उनके विश्लेषणों और रूपकों का भी । लेकिन उन्हें मार्क्सवादी कवि कहनाा उनके काव्य के कलात्मक और मानवीय अर्थो और परिणतियों को अकारण सीमित लगभग विकृत करना होगा । मार्क्सवादी कवि उनके लिए बिल्कुल अधूरी और अपर्याप्त संज्ञा होगी ।"[1]

मुक्तिबोध की रचनाएँ या कविताएँ नयी कविता की सीमा के अन्तर्गत आती है । किन्तु नयी कविता को विस्तृत मानना होगा जितना विस्तृत मुक्तिबोध का आत्मविस्तार है और यह आत्मविस्तार कभी न समाप्त होनेवाली यात्रा है ठीक कविता की यात्रा की तरह जो वैचारिक क्रान्ति के रूप को बरकरार रखती हुई चलती है । यथा -

"नहीं होती, कहीं भी खतम कविता नहीं होती ।
कि वह आवेग-त्वरित काल यात्री है ।
व मैं उसका नहीं कर्ता, पिता-धाता ।
कि वह कभी दुहिता नहीं होती
परम स्वाधीन है, वह विश्व-शास्त्री है ।
गहन-गम्भीर छाया आग मिस्यत की ।
लिये, वह जन-चरित्री है ।"[2]

अन्ततः डॉ. महावीर दाधीच का निम्न कथन भी मुक्तिबोध के काव्य के सत्य रूप को प्रकाश में लाता है । दृष्टव्य है - "मुक्तिबोध प्रगतिवादी है या रहस्यवादी या अस्तित्ववादी ? यह प्रश्न खेमों का अधिक हैं, काव्य व्यक्तित्व का कम ।..... वस्तुतः वे 'रचवादी' हैं अन्तर्मुख है, अपनी पीड़ा और संघर्ष के कवि हैं ।"[3] सचमुच कवि मुक्तिबोध अति साहसी रचनाकार हैं । उन्होंने कभी भी

1. फिलहाल, अशोक बाजपेयी, पृ.135
2. चाँद का मुँह टेढ़ा है, मुक्तिबोध, पृ.169-170
3. चिती- मुक्तिबोध का काव्य लोक, डॉ. महावीर दाधीच, सितम्बर-अक्टूबर 1971, पृ.16

समाज में फैले अवसरवाद का साथ नहीं दिया । वास्तविक मानवीय जीवन मूल्यों और आदर्शों के मार्ग पर चलते-चलते दम तोड दिया । वास्तविक मानवीय जीवन मूल्यों और आदर्शों के मार्ग पर चलते-चलते दम तोड दिया । उनका चिन्तन एक मार्क्सवादी चिन्तन है । यह चिन्तन मानों युग चिन्तन प्रतीत होता है ।

5.2 मुक्तिबोध के काव्य में अनुभूतिगत विचार :

गजानन माधव मुक्तिबोध जिस समय काव्य रचना में प्रवृत हुए वह समय छायावादी काव्य परम्परा का अन्त और दूसरी ओर प्रगतिशील काव्य-परम्परा के आरंभ का समय था । मुक्तिबोध ने छायावादी काव्य-परम्परा से सौन्दर्य की परम्परा को आत्मसात कर, प्रगतिशील काव्य परम्परा से यथार्थ और जनपक्ष को ग्रहण कर अपने काव्य को अतिशय प्रासंगिक बनाया है । छायावादी संस्कारों की भी स्पष्ट झलक मुक्तिबोध की कविताओं में दृष्टिगोचर होती है किन्तु मुक्तिबोध ने छायावादी कल्पना के स्थान पर अपनी कविता में जीवन के यथार्थ को अभिव्यक्त किया है । अनुभूति के स्तर पर मुक्तिबोध के काव्य के कुछ प्रमुख विचार निम्नरूप हैं -

5.2.1 संघर्ष का कवि :

कवि की रचना-प्रक्रिया तथा काव्य-संसार के अंतर्गत हम संकेत रूप में उनके भीतरी संसार की चर्चा कर चुके है । वस्तुतः मुक्तिबोध का समस्त काव्य-लोक अन्तः और बाह्य का द्वन्द्ध है, भावों तथा विचारों की टकराहट है । इसमें कवि का भीतरी संसार या संवेदनात्मक पक्ष अधिक गहन एवं हृदय को स्पर्श करता है ।

'काँप उठता दिल' कविता के आरंभ में ही दिल की कँपकँपी तथा माथा फटने का संकेत है -

"काँप उठता दिल अरे, जिस बात से
वह दृश्य बनकर छा गयी,
दु:ख, निराशा, क्षय, विवश-सी वेदना
तसवीर बनकर आयी !

दिल हुआ तसवीर का ही चौखटा
दिन-दहाड़े बुद्धि का माथा फटा !!"[1]

कवि स्वयं को निराशा के जहर के रूप में मानता है । वह जीवन में सुविधा एवं स्वार्थ का मार्ग नहीं अपनाता, इसीलिए भय, निराशा तथा वदना को आत्मसात किए है, उसके हठधर्मी स्वभाव का परिचय इस कविता में स्पष्टतः मिल जाता है । कविता के अन्त में वह इस निष्कर्ष पर पहुँचता है उसकी समस्त वेदनाएँ उसे खड्डे में गिराती गयी है - अपनी प्रेरणाओं को पागल मानता हुआ वह कहता है -

"देह-मन सब तोड खाली हो गयी !!
ईमान धक्का दे हमें सरका गया ।
जिन्दगी का अस्थि-पंजर खा गय ।
ईमान के संवेध पथ पर हम बढे
चाबुक हमें उतने पड़े
और जब चिल्ला उठे हम चीखकर
उतने नसीहत-फेंकडे
हमको जबर्दस्ती खिलाये ही गये दुधर ।
जिन्दगी का खूब है गररा चक्कर ।"[2]

'एक टीले और डाकू की कहानी' नामक कविता में कवि ने अपने भीतर की पहचान व्यापक रूप में की है । यहाँ टीला उसके भीतरी संसार का परिचायक है । कवि का भीतरी संसाार बहुत संघर्षमय था । उनके कई काव्य में अपने ही जीवन संघर्ष का भाव दिखाया गया है । हवारूपी लहर उसे अविरत असंतुलन एवं असाधारण मनःस्थिति में भी बाधाएँ प्रदान कर रही है । कभी-कभी टेली के स्वर में वह अपनी विवशता, संत्रस्त स्थिति का संकेत भी देता है। वह कहते है कि जिन्दगी में इमानदारी के राह पर चलने के कारण कई कठिनाईयों का सामना करना पड़ा उसमें चाबुक भी उतनी पड़ी यानी कि बाधाएँ भी आई फिर भी मैं कुछ बोल नहीं सका । कवि कहता है कि जिन्दगी का चक्कर इस तरह बहुत गहरा है । यहाँ पर कवि ने संघर्ष का भाव प्रस्तुत किया है ।

1. मुक्तिबोध रचनावली (खंड-2) पृ.60
2. वही, पृ.62

मुक्तिबोध की कविता किसी विशिष्ट संदर्भ की परिचायक है । इसमें कवि व्यक्तित्व और काव्य व्यक्तित्व की प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष झलक अवश्य मिलती है । साथ ही प्रत्येक चिन्तन एवं समस्या को प्रस्तुत करती है । 'चम्बल की घाटी' कविता में कवि अनेक कल्पना करता है । भयानक वातावरण में कवि के अंतर में अनेक भाव जाग उठे है । केवल इसी कविता में भावों का प्रकटीकरण चित्रात्मक ढ़ंग से किया गया है । यथा -

"यों मेरी कविता है बिना-घर
बिना छत की गिरस्तिन
जिसमें मेरा भाव
ज्वलन्त जागता
जिसे लिये हुए मैं देख रहा जमाने की गयी परिपाटियाँ
चम्बल की घाटियाँ ।"[1]

मुक्तिबोध का काव्य संघर्ष का काव्य है । कवि भीतरी और बाहरी दोनों स्तरों पर संघर्ष करता है । मुक्तिबोध के 'चाँद का मुँह टेढ़ा है' नामक काव्य-संग्रह में संकलित कविता 'ब्रह्मराक्षस' प्रसिद्ध कविता है । यह कविता उक्त समस्या को प्रस्तुत करती है । यथा -

"पिस गया वह भीतरी ।
औं बाहरी दो कठिन पाटों बीच,
ऐसी ट्रेजेडी है नीच ।
सुनते हो करौंदी के सुकोमल फूल ।
सुनता है उन्हें प्राचीन औदुम्बर,
सुन रहा हूँ मैं वही,
पागल प्रतीकों में कही जाती हुई ।
वह ट्रेजेडी,
जो बावडी में अड गयी है ।"[2]

---

1. मुक्तिबोध रचनावली (खंड-2) पृ.226
2. वही, पृ.41

यही भीतरी और बाहरी संघर्ष मुक्तिबोध के काव्य के मूल में है । वे गहन मानसिक अन्तद्वन्द्वों और सामाजिक अनुभवों के कवि है । मुक्तिबोध के आत्मसंघर्ष की कई दिशायें हैं । विश्वनाथ प्रसाद तिवारी ने अपनी पुस्तक 'समकालीन हिन्दी कविता' के भीतरी और बाहरी संघर्ष का काव्य शीर्षक से मुक्तिबोध के बारे में लिखा है - "विचारों को आचारों में परणित करना" आत्मसत्य को चरितार्थ करना है । मुक्तिबोध ने अपनी ही बैचेनी को अपने अनुभव सत्य से जन तक पहुँचाने का सफल प्रयास किया है । यथा -

"तब हम भी अपने अनुभव के ।
सारांशो को उन तक पहुँचाने हैं जिसमें
जिस पहुँचाने के द्वारा हम, सब साथी मिल ।
दण्डक वन में से लंका का पथ खोज निकाल सके ।"[1]

अपने पाठकों को सम्बोधित करते हुए मुक्तिबोध ने जो अपनी कविता का विश्लेषण किया है उसमें उनके आत्मसंघर्ष की वह दशा स्पष्ट है । जिसका संकेत ऊपर किया गया है ।

मुक्तिबोध अपने भीतर को ँऔर मन को बार-बार भावभूमि में ले जाते है । ऐसा वे इसलिए करते है जिससे वे अपने वास्तविक रूप, अपने भीतर के सत्य से साक्षात्कार करा सकें । मुक्तिबोध भीतर को बहुत महत्व देते हैं । इसे वे जीवन शक्ति का रूप मानते हैं । उसमें से वे उन चमकदार रत्नों को प्राप्त करना चाहते हैं । जिनका उपयोग आत्म और जन के लिए सार्थक है । उनकी पंक्तियाँ -

"भूमि की सतहों के बहुत-बहुत नीचे ।
अँधियारों एकान्त ।
प्राकृत गुहा एक ।
विस्तृत खोह के साँवले तल में ।
तिमिर को भेदकर चमकते हैं पत्थर ।
मणि तेजस्क्रिय रेडियो-ऐक्टिव रत्न भी बिखरे ।"[2]

1. भूरी-भूरी खाक धूल - मुक्तिबोध, द्वितीय सं., पृ.159-160
2. चाँद का मुँह टेढ़ा है, मुक्तिबोध, पृ.274

मुक्तिबोध अपने जीवनकाल में भोगे गए कष्टों, संघर्षों और विरोधों से कभी घबराए नहीं वरन् प्रत्येक बाधा ने उन्हें और अधिक सचेत तथा आस्थामय बनाया तभी तो वह कह सके हैं -

"कोशिश करो
कोशिश करो
जीने की
जमीन में गढ़कर भी ।"[1]

इस प्रकार मुक्तिबोध के काव्य के अन्तर्गत संघर्ष से सम्बन्धित कई बातें हमें सूक्ष्म रूप से देखने पर दृष्टिगोचर होती है । सचमुच ही मुक्तिबोध ने संघर्षरत मानव के चित्र प्रस्तुत किये हैं । जीवनसंघर्ष की जैसी तथ्यात्मक प्रतीति मुक्तिबोध में हुई है, वैसी अन्यत्र दुर्लभ है । भाव-बोध और जीवन यथार्थ की जैसी योजना मुक्तिबोध ने प्रस्तुत की है, इतिहास की जैसी जीवंत व्याख्या उनके काव्य में है और मानवीय आत्म-पीड़न की अभिव्यक्ति जैसी उनके द्वारा संभव हुई है, हिन्दी कविता के क्षेत्र में किसी और कवि में नहीं पायी जाती ।

5.2.2 जन के साथ गहरा जुडाव वाला कवि :

मुक्तिबोध मार्क्सवादी चिन्तन से प्रभावित हिन्दी साहित्य की जनवादी परम्परा के सशक्त रचनाकार है । 'जन के साथ गहरा जुडाव' में उनके काव्य की एक प्रमुखता दिखाई देती है । उनके काव्य में आम आदमी की संवेदना धड़कती है । उनकी कविता आम आदमी के सत्य और यथार्थ से साक्षात्कार कराती है । मुक्तिबोध की कविता में शोषित पीड़ित जन-सामान्य का चित्रण है एवं उनसे सहानुभूति व्यक्त करने के लिए उनका कार्यक्षेत्र उस शोषित जन-जीवन का व्यवहारिक जगत है । मुक्तिबोध की कविता इसी सहानुभूति से शुरू होती है। अपरिचय तथा अकेलेपन के इस युग में भी उन्हें पूरा कस्बा एक बड़े परिवार के रूप में जीवन जीता दिखाई देता है । यथा -

"धुँधलके में खोए इस ।
रास्ते पर आते-जाते दिखते हैं ।

1. मुक्तिबोध : कवि और काव्य, पृ.124

लठ-धारी बूढे-से पटेल-बाबा ।

ऊँचे से किसान-दादा ।

वे दाढ़ी-धारी देहाती मुसलमान चाचा और

बोझा उठाये हुए माँये, बहिनें, बेटियाँ ।

सबको सलाम करने की इच्छा होती है,

सबको राम-राम करने का चाहता है जो ।

आँसुओं से तर होकर प्यार के ।"[1]

मानवीयता से जुड़ने का यह मुहावरा मुक्तिबोध के संसार को सार्थक तथा आत्मीय तो बनाता ही है, साथ ही तात्कालिक मनुष्य की असहाय मुद्रा भी प्रस्तुत करता है । मुक्तिबोध के हृदय में जन सामान्य के प्रति गहरी करूणा का भाव दृष्टिगत होता है । ये निराला के अधिक निकट पड़ते हैं । जीवन दोनों को ही एक कठिन चुनौती के रूप में मिला था, जिसका सामना दोनों ने अपनी-अपनी शक्ति के अनुसार किया था । निराला ने यदि दोपहर की चिलचिलाती धूप में पत्थर तोड़कर गुजारा करनेवाली मजदूरिन की आन्तरिक पीड़ा पहचानी है तो मुक्तिबोध ने गर्भवती नारी को वजनदार घडों से पानी भरते, कपडों को पटक-पटककर फींचते और मजदूरी करते हुए देखा है और उसकी विवशता पर सिहर उठे है । यथा -

"मुझे याद आती है ।

आँखों में तैरता है चित्र एक,

उर में सँभाले दर्द,

गर्भवती नारी का,

कि जो पानी भरती है वजनदार घड़ों से,

कपड़ों को धोती है भाड़्भाड,

घर के काम, बाहर के काम सब करती हैं,

अपनी सारी थकान के बावजूद ।"[2]

वही कारण है कि हिन्दी के प्रखर आलोचक डॉ. नामवरसिंह ने लिखा है

1. चाँद का मुँह टेढ़ा है, मुक्तिबोध, दसवा सं., पृ.11
2. वही, पृ.97

- "नयी कविता में मुक्तिबोध की स्थिति वही है जो छायावाद में निराला की थी। निराला के समान मुक्तिबोध ने भी अपने युग के सामान्य काव्य मूल्यों का प्रतिफलन करने के साथ ही उनकी सीमा को चुनौती देकर उस सर्जनात्मक विशिष्टता को चरितार्थ किया जिसमें समकालीन काव्य का सही मूल्यांकन संभव हो सके ।"[1]

मुक्तिबोध 'जन' के दुःखों को चित्रित करने वाला कवि था । फटेहाल जनता का दुःख और शोषण मुक्तिबोध के काव्य का प्रमुख काव्य है । हर वर्ग के शोषण का डरावना रूप अपनी कविता में वे चित्रित करते हैं । यथा -

"भीमाकार पुलों के बहुत नीचे, भयभीत ।
मनुष्य-बस्ती के बियाबान तटों पर,
बहते हुए पथरीले नालों की धारा में
धराशायी चाँदनी के होंठ काले पड़ गये ।
हरिजन गलियों में ।
लटकी हैं पेड पर
कुहासे के भूतों की साँवली चुनरी
चुनरी में अटकी है कंजी आँखे गंजे-सिर
टेढ़े मुँह चाँद की ।"[2]

अर्थात् चाँदनी भी जिस दुनिया में भर जाती है, वह दुनिया भी क्या कहलाने के काबिल है ? डॉ. विद्यानिवास मिश्र ने मुक्तिबोध के काव्य में जन के दुःख दर्द को अनुभव कर अपने विचार देते हुए कहा है - "मुक्तिबोध का काव्य ऐसा नर काव्य है, जिसमें नारायण के आँखों की व्यथा भरी है ।"[3]

मुक्तिबोध का शोषित, निम्न, सर्वहारा वर्ग के विपन्न मनुष्य का वर्णन हृदय को दहला देता है, जैसे -

"धोबी के मैले कपडों के गट्ठ रसा

1. कविता के नये प्रतिमान, नामवर सिंह, पृ.249
2. चाँद का मुँह टेढ़ा है, मुक्तिबोध, पृ.53
3. राष्ट्रवाणी - जनवरी-फरवरी, 1965

निर्जिव पड़ा है तेरा तन-मन

उष्ण रक्त के दीर्ध दाग-सा

अण्डाकार बना है जीवन...... ।"[1]

वास्तव में उनका जीवन ऐसा ही अण्डाकार होता है कि जिसमें कहीं पर दिवार ही नहीं होती, कोना नहीं होता, दम घुटता जाएगा इतना संकुचित और बन्द है । कहीं से भी कोई उसे फोड़ देगा...... अर्थहीन मनुष्य जीवन की इतनी अंतहीन और करूण जिन्दगी का यह यथार्थ वर्णन मन को सोच में डाल देता है कि वर्गीय सामाजिक रचना कब तक मनुष्य के मृदु भावों को कुचलता रहेगा ? 'पूँजीवादी समाज के प्रति' काव्य में भी उनका सारा क्षोभ, सारा क्रोध, धृणा शब्दों-शब्दों में व्यक्त हुई है,

"तेरे रक्त में भी सत्य का अवरोध

तेरे रक्त से भी धृणा आती तीव्र

तुझको देख मिलती उमड़ आती शीघ्र

तेरे हास में भी रोग-कृमि है उग्र

तेरा नाश तुझ पर क्रुद्ध, तुझ पर व्यग्र ।"[2]

पूँजीवादी समाज के अत्याचारों, जुल्मों में फंसे सर्वहारा वर्ग के मन में ऐसी ही भावनाएँ होती है । बीसवीं शती के दूसरे दशक में रूस में क्रान्ति हो गई । जुल्मी जारशाही का अन्त हुआ । जो नयी सत्ता स्थापित हुई वह आम, साधारण, श्रमजीवी जनों की थी । इसी सत्ता की एक नई सभ्यता का उदय हुआ, वहाँ का माहौल कैसा होगा ? मुक्तिबोध का अदम्य विश्वास, वर्गविहीन समाजरचना पर उनका दृढ़ विश्वास आगे की पंक्तियों में झलकता है -

"कोई नई सभ्यता है, वह सौ सूर्यो का प्रात ।

अब तो सौ समुद्र, सौ नदियाँ, सौ चन्द्रों की रात ।"[3]

सर्वहारा, शोषित, निम्न वर्ग के लिए मुक्तिबोध अत्यंत संवेदनशील है ।

1. मुक्तिबोध रचनावली (खंड-1) पृ.185
2. वही, पृ.117
3. वही, पृ.131

अत्याचार, जुल्म, शोषण के विरोधी थे । ऐसे लोगों का वर्णन वे इतनी आत्मीयता से करते थे कि जीवंतता उसकी विशेषता बन जाती थी । उनकी वह गन्दी नाली के पासवाली बस्ती, ईंट-पत्थरों के चूल्हें, बिखरे बालवाले बाल-बच्चे देखकर उनका मन व्यथित हो जाता है । उनके मन की करूणा जागृत हो उठती है, उनके शब्दों द्वारा प्रकट हुई आत्मग्लानि से पाठकों की करूणा अभिभूत हो जाती है ।

"मुझको है भयानक ग्लानि,
निज के श्वेत वस्त्रों पर
स्वयं की शील-शिक्षा सत्य दीक्षा के
विरोधी अस्त्र-शस्त्रों पर
कि नगरों के सुसंस्कृत सौम्य चेहरों से
उचटता मन..... ।"[1]

महानगरीय जीवन समस्या के बारे में और जन-जातियों के बारे में इतनी पारदर्शी सोच एक दुःखी मन की ही हो सकती है । वास्तव में जिन्दगी संघर्षो, कष्टों, दुःखभरे अनुभवों से लिप्त थी, उन्हीं को लेकर क्यों ना उनकी अभिव्यक्ति हुई हो ?

"चाहिए मुझे मेरा खोया हुआ ।
रूखा-सुखा व्यक्तित्व
चाहिए मुझे मेरा पाषाण ।
चाहिए मुझे मेरा असंग बबूलापन ।"[2]

अपनी, एक कवि की स्वतंत्र, सन्तप्त, क्षुब्ध अभिव्यक्ति को इतनी आत्मीयता से 'बबूल' कविता में व्यक्त किया है । वह कहते है कि 'बबूल' जैसे काँटेदार वृक्ष को भी कोई इतनी आत्मीयता से अपनाता है इस विचार से मन विस्मित हो जाता है । समाज में उच्चवर्णियों की नजर में सदा बहिष्कृत, उपेक्षित जनों का प्रतीक है बबूल !

---

1. मुक्तिबोध प्रतिनिधि कविताएँ, अशोक बाजपेयी, पृ.57
2. वही, पृ.72

‘इसी बैलगाड़ी को’ शीर्षक कविता में कवि ने एक देहाती किसान की बैलगाडी को जो ‘ढचर-ढचर’ चल रही है’ सारी शोषकपरक अमानवीय व्यवस्था के सामने ला खड़ा किया है । यह कविता प्रतीकात्मक है, जिसके अंतर्गत ग्रामीण संस्कृति का प्रतीक ‘बैलगाडी’ दृष्टिगोचर होती है । वस्तुतः ‘बैलगाड़ी’ शब्द का प्रयोग मुक्तिबोध ने सही अर्थ में सामान्य जनजीवन के संदर्भ में किया है । यही जीवन गाँव में भी सक्रिय है और नगरों में भी, फर्क केवल आबोहवा का है । शहरों की सामान्य जिन्दगी पर प्रकाश डालते हुए वे लिखते हैं -

“शहराती गलियों के धुप्प अँधेरे में ।
उदास उजाला है ।
बिजली की लटकती गर्दन का
बिजली के खंभे की पास की गटर में
पहियाँ एक धँस गया ।
खँभे में टकराती वे फँस गयी
बैलगाड़ी तुम्हारी !”[1]

शहर की गलियों के धुप्प अँधेरे में उदास उजाला फैला हुआ है । बिजली की गर्दन लटकाती हुई दिखायी दे रही है और उसी खंभे के पास गटर में जनता की बैलगाड़ी का पहिया धँस गया है, फँस गया है । गलियों में होहल्ला है, परेशानी और धकापेल है । यह पूरी गाड़ी खड्डे में जा गिरी है । सामान्य आदमी एक-दूसरे से ही लड़ते रहें, एक ही बैलगाड़ी है उसी को हाँकना है । सब भाई-भाई है, सब दुःखी है, सब कष्टग्रस्त है और सब लड़ भी रहे हैं ।

मुक्तिबोध अपने समय के मनुष्य की पीड़ा को बड़े बेबाक ढंग से शब्द देनेवाले रचनाकार हैं । उन्होंने अभिव्यक्ति के सारे खतरे उठाकर अपने समय के ‘जन’ के दुःख-दर्द को अपनी कविताओं में व्यक्त किया है । उनकी कविता समकालीन भारतीय मनुष्य के पीड़ा की ‘खण्डित रामायण’ है । डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी ने ‘हिन्दी साहित्य की अधुनातन प्रवृत्तियाँ’ में मुक्तिबोध के बारे में लिखा है - “मुक्तिबोध ने सामान्य निम्न मध्यवर्गीय जीवन को एक नया सम्मान

---

1. भूरी-भूरी खाक धुल, मुक्तिबोध पृ.9

और आत्मविश्वास का भाव दिया और भारतीय समा के इस बहुत बड़े और बहुत महत्वपूर्ण हिस्से को उन्होंने उसके सारे संस्कारों, मान्यताओं, कमजोरी और क्षमताओं के साथ उसी वर्ग की भाषा में रचा है । भाषा को पढ़ते ही उस जीवन से सीधा साक्षात्कार होने लगता है । इसी को मुक्तिबोध ने काव्य में जीवन की पुनर्रचना कहा है ।"[1]

5.2.3 क्रान्ति का कवि :

मुक्तिबोध के समूचे काव्य में 'क्रान्ति' का स्वर मुखरित हुआ है । 'क्रान्ति' उनके काव्य के मूल में है, जिससे उनकी कविता विस्तार प्राप्त करती है। 'क्रान्ति' के बहुत से दृश्य मुक्तिबोध की कविता में दिखाई देते है । मुक्तिबोध को क्रान्ति आवश्यक लगती है । वे 'भूरी-भूरी खाक-धूल' की निम्नांकित पंक्तियों में क्रान्ति की परिभाषा देते हुए कहते हैं -

"बिखराकर नीले-नीले स्फुलिंग-समुह ।
वह बनती है अकस्मात् ।
नहीं जान पाता कि छूकर मुझे मुझसे समा गयी कि ।
उसमें समा गया मैं ।
सुनहली काँपती-सी सिर्फ एक लहर रह जाती है ।
कि जिसे क्रान्ति कहते हैं ।
कि कहते हैं जन-क्रान्ति ।"[2]

मुक्तिबोध पूंजीवाद के विरूद्ध क्रान्ति का स्वर देनेवाले रचनाकार हैं । पूँजीवादी शक्तियों के शोषण तंत्र में भारत की जनता दम तोड रही है, इस यथार्थ सत्य से वे अच्छी तरह वाकिफ है । उनके अनुसार 'पूँजीवादी शक्तियाँ' जनता को दमन की भट्ठी में झोंककर उनकी अस्थियों से आराम का फर्नीचर बनाना चाहती है । यही कारण है कि मुक्तिबोध पूँजीवादी सत्ता को जड़ से उखाड़कर फेंकना चाहते हैं । बड़े आक्रमक ढंग से वे कहते हैं -

"कर मुक्त श्वान स्यारों के तन चमगादड तन ।

---

1. मुक्तिबोध : कवि और काव्य, पृ.126
2. भूरी-भूरी खाक धुल, मुक्तिबोध, पृ.175

में अब तक जो मानव बन्दी,

तोड़ दे द्वार सौ रूद्ध किये ।

जो खड़ी शिलाएँ है अन्धी ।

शोषक की आवश्यकताएँ -

दे तोड तिलिस्मी सत्ताएँ ।

हे कष्टजीवीयों के प्रतिनिधि ।

नष्ट कर लोक-शशि-ग्रास-मग्न ।

सौ राहु केतु ।"[1]

मुक्तिबोध की कविता में क्रान्ति की आग है । वे क्रान्ति को आह्वान करते हैं । 'चाँद का मुँह टेढ़ा है' की निम्न पंक्तियों में रूप दिखाई देता है । यथा -

"मेरे सामने है प्रश्न,

क्या होगा कहाँ किस भाँति,

मेरे देश भारत में

पुरानी हाय में से

किस तरह से आग भभकेगी,

उडेगी किस तरह भक से ।

हमारे वक्ष पर लेटी हुई

विरकाल चट्टानें ।"[2]

मुक्तिबोध इस बात को मानते है कि शोषित और पीड़ित व्यक्ति सदा दयनीय अवस्था में नहीं रह सकते । 'सुबह होगी कब और मुश्किल होगी दूर कब' सोचने वाले मुक्तिबोध आश्वस्त हैं क्योंकि क्रान्ति होगी लेकिन क्रान्ति के लिए उन्हें नेतृत्व की तलाश है । यथा -

"तुम्हारें शब्द में शब्द ।

मानव, देह धारण कर ।

---

1. भूरी-भूरी खाक धुल, मुक्तिबोध, पृ.227-228
2. चाँद का मुँह टेढ़ा है, मुक्तिबोध, पृ.165

असंख्य स्त्री-पुरूष-बालक ।

बने जग में भटकते हैं,

कहीं जनमें ।

नये इस्पात को पाने ।

झुलसते जा रहे हैं आग में,

या मुँद रहे हैं धूल-धक्कड़ में,

किसी की खीज है उनको,

किसी नेतृत्व की ।"[1]

मुक्तिबोध को विश्वास है कि अत्याचारी मरेगा और इस पूँजीवादी व्यवस्था का अन्त हो जायेगा । उनका विश्वास हिंसक क्रान्ति में है, गांधीजी के अहिंसक हृदय परिवर्तन के सिद्धान्त में नहीं क्योंकि वे हिंसात्मक क्रान्ति के पक्षधर है । यही कारण है कि वे 'नाश-देवता' की वन्दना करते हैं और वह मानते हैं कि 'बिना संहार के सर्जन असंभव है ।' मुक्तिबोध यह भी मानते है कि पूँजी से जुडा हृदय नहीं बदल सकता । वह स्पष्ट कहते हैं -

"कविता में कहने की आदत नहीं, पर कह दूँ ।

वर्तमान समाज में चल नहीं सकता ।

पूँजी से जुडा हुआ हृदय बदल नहीं सकता,

स्वातन्त्र व्यक्ति का वादी ।

छल नहीं सकता मुक्ति के मन को,

जान को ।"[2]

मुक्तिबोध का सपना सभी को शोषण मुक्त सुखी देखने का है । इसीलिए क्रान्ति के वे पक्षधर है । उनकी अभिलाषा है -

"समस्या एक -

मेरे सभ्य नगरों और ग्रामों में ।

---

1. चाँद का मुँह टेढ़ा है, मुक्तिबोध, पृ.106
2. वही, पृ.209

सभी मानवी सुखी, सुन्दर व शोषण-मुक्त ।

कब होंगे ?"[1]

डॉ. भगीरथ मिश्र ने मुक्तिबोध के बारे में अपना अभिमत व्यक्त करते हुए लिखा है - "मुक्तिबोध एक प्रगतिशील लेखक के रूप में हमारे सामने आते है । उनकी रचनाओं के अध्ययन के उपरांत ऐसा प्रतीत होता है कि इन्हें किसी भी घेरे में बाँधना व्यर्थ है ।"[2]

मुक्तिबोध ने अपने युग की सारी अमानवीयता और संकट के बीच से व्यवस्था को बदलने के प्रति आस्था प्रकट की है । मार्क्स का कहना है कि दार्शनिक अलग-अलग तरह से दुनिया की व्याख्या ही करते रहे हैं, मुख्य बात है उसे बदलने की । मुक्तिबोध इस प्रमुख तथ्य को जानते थे । इसीलिए उनकी कविताओं में समाज-व्यवस्था को बदले जाने की आवश्यकता तथा क्रान्ति चेतना का स्वर इतना अधिक मिलता है कि लगता है मुक्तिबोध की सारी कविताएँ क्रान्ति की व्यापक तैयारी है ।

5.2.4 वादमुक्त कवि :

स्वर्गीय गजानन माधव मुक्तिबोध को किसी 'वाद' की सीमा में आबद्ध करना उनकी व्यापक दृष्टि को कम करना होगा । कुछ विद्वानों ने मुक्तिबोध को 'मार्क्सवादी कवि' माना है, किन्तु वे हिन्दी के एक ऐसे कवि हैं जिनकी किसी कवि से तुलना नहीं की जा सकती, क्योंकि इनको अँधेरे में आत्मबोध की प्राप्ति होती है । अंधकार से प्रकाश में आना सभी चाहते हैं, पर प्रकाश से अंधेरे की ओर प्रस्थान केवल मुक्तिबोध सही अर्थो में कर सके हैं । इसीलिए मुक्तिबोध की काव्य-चेतना के विविध आयाम हैं, पडाव हैं - उसे किसी एक घेरे में आबद्ध नहीं किया जा सकता । कवि को गहरे से समझने, बार-बार पढ़ने एवं चिन्तन की अपेक्षा है, क्योंकि इनका काव्य-लोक गहरा, दुरूह एवं मर्मभेदी है ।

मुक्तिबोध की गरिमा का बखान करते हुए डॉ. हुकुमचन्द राजपाल ने कहा है - "जीवनसंघर्ष की जैसी तथ्यात्मक प्रतीति मुक्तिबोध में हुई है वैसी

1. चाँद का मुँह टेढ़ा है, मुक्तिबोध, पृ.169
2. मुक्तिबोध : कवि और काव्य, पृ.127

अन्यत्र दुर्लभ है । भाव-बोध और जीवन यथार्थ की जैसी समुन्नत और महाकाव्योचित योजना मुक्तिबोध ने प्रस्तुत की है, इतिहास की जैसी जीवन्त और संचेतनात्मक व्याख्या उनके काव्य में है और मानवीय आत्म-पीड़न और संत्रास की अभिव्यक्ति जैसे उनके द्वारा संभव हुई है, हिन्दी कविता के क्षेत्र में किसी और कवि में नहीं पायी जाती ।"[1]

मुक्तिबोध सचमुच 'वादमुक्त कवि' के रूप में हमारे सम्मुख आते हैं । इस दिशा में डॉ. ललिता अरोडा का मत सराहनीय है । उनके शब्दों में - कवि मुक्तिबोध न छायावादी कटधरे में बन्द हुए हैं, न प्रगतिवादी प्रयोगवादी ही उन्हें जबरदस्ती बनाया गया । उनकी रचनाओं में एक स्वाभाविक क्रम है जो प्रगतिशीलता की विविध सीढ़ियाँ लाँघता हुआ भी अपने विलक्षण और प्रभावी रूप में 'कविता' ही बना रहा । उसमें किसी वाद विशेष की गुणवत्ता ढूँढना और उस समीक्षा में उसे फिट करना संभव नहीं । स्वयं ही कवि उच्च कोटि का आलोचक है जो किसी कवि की काव्य रचना का मापदण्ड, उस काल की प्रवृत्ति विशेष को नहीं मानता बल्कि जीवन से जुड़ी अन्य स्थितियों को भी मानता है ।"[2]

डॉ. ललिता अरोडा आगे कहती है - "मुक्तिबोध ने वादों की घिसी-पिटी लकीर का अनुसरण नहीं किया है, न ही काव्य-प्रयोगों की दलदल में फँसे है बल्कि जीवन के आत्म-सत्य को अपना मित्र बनाकर, उसकी आस्थामयी पुकार सुनकर, जनसामान्य के दुःख-दर्द, भूख और गरीबी के प्रति सहानुभूति और मानवीयता का सम्बन्ध बनाये रखकर, शोषक सत्ता की विद्रुपताओं का चिट्ठा चिन्दी-चिन्दी कर अनेक रूपों में, अनेक प्रकार से बुद्धिजीवी समाज के समक्ष प्रस्तुत करते रहे हैं ।"[3]

मुक्तिबोध हिन्दी काव्य-क्षेत्र में प्रयोगशीलता एवं प्रगतिशीलता की समन्वित चेतना से मुक्त यथार्थ अभिव्यक्ति करनेवाले समर्थ कवि है । इनकी प्रगतिशीलता का सूत्र प्रकृति, रोमान्स, मार्क्सवाद, प्रयोगवादी आस्था और विश्वास

1. मुक्तिबोध की काव्यचेतना और मूल्य संकल्प, डॉ. हुकमचन्द राजपाल, पृ.40
2. मुक्तिबोध एक अध्ययन, डॉ. ललिता अरोड़ा, पृ.173
3. वही, पृ.176

पर पग रखकर विकसित हुआ है । कवि का चिन्तन रोमान्टिकता से प्रारंभ होकर यथार्थ सामाजिक धरातल को लाँघकर नवीन सन्दर्भों के प्रति आश्वस्त है । फिर भी इन सबसे परे मुक्तिबोध का दृष्टिकोण प्रगतिशील है । इसके साथ ही कवि को किसी एक 'वाद' तक सीमित नहीं रखा जा सकता । मुक्तिबोध एक प्रगतिशील लेखक के रूप में हमारे सामने आते है । उनकी रचनाओं को पढ़कर लगता है कि उनको किसी घेरे में बाँधना अन्याय है । वे एक विचारक और विचारभूमिका के व्यक्ति थे, जिनके अन्तर्गत सहस्त्र संवेदनाओं की तरंगे उठती रहती थी ।

5.2.5 अंगारी पीड़ा का कवि :

मुक्तिबोध की कविताओं में मूल चेतना के रूप में अंगारी पीड़ा का भाव आया है - अंगारी चेतना में उनका स्वर रक्तप्लावित या लाल है । साथ-ही-साथ 'पीड़ा' भी संयुक्त है । यही कवि की विलक्षणता है । यही कारण है कि 'भूरी-भूरी खाक धूल' कविता संग्रह की 'इस नगरी में' कविता में वे सम्बोधन एवं नाटकीय शैली के माध्यम से दुर्दान्त ऐतिहासिक स्पन्दन की अभिव्यक्ति करते हैं । यथा -

"दुर्दान्त ऐतिहासिक स्पन्दन
के लाल रक्त से लिखते तुलसीदास आज ।
अपनी पीड़ा की रामायण ।"[1]

इससे कवि का लक्ष्य स्पष्ट है । वह रामायणीय मूल चेतना को एक ही शब्द में व्यक्त कर देता है, वह है पीड़ा । फिर इस पीड़ा को यदि 'लाल रक्त' या रक्तप्लावित स्वर में प्रस्तुत किया जाता है ।

इस अंगारी पीड़ा में मुक्तिबोध का चिन्तक कवि रूप और राजनीति इतिहास में वर्तमान-परिवर्तन के प्रति सजग पक्ष दृष्टिगोचर होता है । उनका सहृदय कवि मन केवल ज्ञान को कविता का आधार नहीं मानता, उससे संवेदनशीलता स्पष्ट है । तभी तो वे 'लाल सलाम' में सामाजिक समझ को प्रस्तुत करते है, उसमें अंगारी निष्ठा को स्पष्ट करते है । कविता की अंतिम पंक्तियाँ निम्न है -

---

1. भूरी-भूरी खाक धुल, मुक्तिबोध, द्वितीय सं., पृ.159

"बरसाएँगे अपने अमृत जल का वैभव भार,

हरियाली रेगिस्तानों पर छायेगी सौ बार ।

उनको किसी लाल क्रान्ति की,

लड़नेवाली मजरू-सेना आम,

उनको, उनके स्त्री-पुरूषों को मेरा लाल सलाम ।"[1]

कवि की अंगारी चेतना अथवा पीड़ा का यह रूप परवर्ती कविताओं में और अधिक गहन रूप में व्यक्त हुआ है । उसे अब यह अंगारी पीड़ा इलेक्ट्रान के अनेक प्रवाह रूप में प्रतीत होती है । तभी वह मानता है -

"इलेक्ट्रान-धारा प्रवाहों की चोटों से ।

जडीभूत भीतों से घिरे हुए मर्म सब ।

इतने अधिक विचलित होते हैं कि ।

घर छोड देते हैं ।

नाच-नाच उठते हैं अंगारी पीड़ा में ।"[2]

वस्तुतः अनुभव, संवेदनात्मक ज्ञान तथा निजता, वैयक्तिकता को रचना में कवि ने अभिव्यक्त किया है । इसी निजता में उसे परिवेश की गहरी समझ की प्रक्रिया की ओर उन्मुख किया है । तभी तो 'पता नहीं.....' कविता में वह स्वीकार करता है कि जिन्दगी की राह में किसी सुबह अथवा सायं कब, कौन, किसे और कहाँ मिल जाएँ । अपने गहन अनुभव और भीतरी हलचल को वह अनेक स्थितियों में आत्मसात किए हैं ।

"मुख है कि मात्र आँखें हैं वे आलोक-भरी,

जो सतत तुम्हारी थाह लिये होती गहरी,

इतनी गहरी

कि तुम्हारी बाहों में अजीब हलचल,

मानों अनजाने रत्नों की ।

अनपहचानी-सी चोरी में ।

---

1. मुक्तिबोध रचनावली (खंड-1) पृ.101

2. वही, पृ.226

घर लिये गये

निज में बसने, कस लिये गये ।"[1]

मुक्तिबोध के काव्य में दुःखाभिव्यक्ति दोहरे रूप में हुई है । प्रथम वह रूप है जहाँ वह अन्तर्मुखी होकर छायावादी काव्य शैली को अपनाता है । द्वितीय दुःख का स्थूल अथवा यथार्थ रूप है । छायावादी ढंग की दुखाभिव्यक्ति निम्नलिखित पंक्तियों से की जा सकती है ।

"हम तर चले री !

बह रही दुख की यह विमल धारा ।

फूल के इस हास में ही अश्रु का भी हास प्यारा

इस देश के है हम नहीं, यह जगत नन्दन छोड दे क्या ?

बह चले इस धार में ही, पुलिस-बन्धन मोड़ दे क्या ?"[2]

प्रस्तुत पंक्तियों में मुक्तिबोध जीवन में आनेवाली बाधाओं, दुःखों को विमल धारा समझकर वहन करने की प्रेरणा देते है, उसमें छुटकारा या पलायन की स्थिति कहीं नहीं है । कवि के ये जीवन अनुभव जिन्हें वैयक्तिक से सामाजिक बना दिया गया है ।

वस्तुतः यह कविता क्रमिक रूप से गहन होती गई है, स्फुलिंगों के समूह को अग्रिव्यूह और फिर 'आत्मचेतस' से 'जिन्दगी के खतरों' तक कवि आत्मीय छवि के लिए भटकता रहता है । वास्तव में यही भटकाव, खतरा उनकी रचना-प्रक्रिया का आधार या केन्द्र है - उनकी अंगारी चेतना, रक्तप्लावित स्वर, जनक्रान्ति और भीतरी संत्रास, संशय, भय की विभिन्न स्थितियाँ है, जिनसे रचना को कलात्मक धरातल प्राप्त होता है । तभी तो वह प्रत्येक में 'महाकाव्य की पीड़ा' का अनुभव करता है, वहाँ सभी में चमकते हीरे की झलक पाता है । अपने वर्ग के लोगों को जहाँ अवसरवादी, स्वार्थी, शोषकों को दलाल-केकडें से सम्बोधित करता है, वहाँ इसी ब्रह्मराक्षसी चेतना या मानसिकता के बुद्धिजीवी से जनक्रान्ति की शुरूआत मानता है । यह उनकी मानसिकता है, वैचारिक पक्षधरता,

---

1. मुक्तिबोध रचनावली (खंड-1) पृ.42
2. चाँद का मुँह टेढ़ा है, मुक्तिबोध, पृ.33

प्रतिबद्धता, चिन्तक कवि का रूप हैं, जिसे किसी एक विचारधारा, वाद में आबद्ध नहीं किया जाना चाहिए । वह विसंगतियों, अन्तर्विरोधों में सही और सार्थक की पहचान का कवि है, तभी तो उसका विद्रोही स्वर, रक्तप्लावित चेतना, अंगारी वेदना, भयानक वेदना में बगावत की ओर विकसित होती है । उनकी अंगारी पीड़ा, उसके आत्मसंघर्ष, भीतर के उहापोह की परिचायक है ।

अंततः हम कह सकते है कि कवि आश्वस्त है उसका 'रक्तप्लावित स्वर' हमारी हार का बदला चुकाने अर्थात् शोषण और पीड़ा से मुक्ति देने आयेगा । यथा -

"हमारी हार का बदला चुकाने आयेगा
संकल्प-धर्मा चेतना का रक्तप्लावित स्वर
हमारे ही हृदय का गुप्त स्वर्णाक्षर
प्रकट होकर विकट हो जायेगा ।"[1]

5.2.6 अवसरवादी बुद्धिजीवियों की कड़े शब्दों में निन्दा करनेवाला कवि :

मुक्तिबोध ने बड़ी निर्भीकता के साथ अवसरवादी, बुद्धिवादी वर्ग की कड़े शब्दों में निन्दा की है । वे सुविधाभोगी बुद्धिजीवियों को व्यंग्य तथा सीधी शब्दावली के द्वारा फीका करते हैं । उनकी वास्तविकता का पर्दाफाश करते हैं तथा उनके दुहरे जनविरोधी चरित्र को बेनकाब करते हैं, जो सामान्य भोले-भाले जन को बेवकुफ बनाने के लिए छद्म आवरण ओढ़े पडे हैं । अपनी प्रसिद्ध कविता 'कहने दो उन्हें जो यह कहते हैं' में मुक्तिबोध तथाकथित सफलता प्राप्त करने के लिए बेचेन उन बुद्धिजीवियों को ललकारते है जो सामाजिक महत्व पाने के लिए, असत्य की कुर्सी पर आराम से बैठे हुए, मनुष्य की त्वचा का ओवरकोट पहने बन्दरों और रीछों के समान नयी-नयी अदाओं में नाचते हैं । बुद्धिजीवियों के मूल चरित्र को दिखाते हुए मुक्तिबोध कहते हैं -

"राजनीति, साहित्य और कला के प्रतिष्ठित महासूर्य ।
बड़े-बड़े मसीहा ।
सरकस के जोकर से रिझाते हैं निरन्तर ।

1. चाँद का मुँह टेढ़ा है, मुक्तिबोध, पृ.31

नाचते हैं, कूदते हैं ।

शोषण के सिद्धहस्त स्वामियों के सामने ।

व्यक्तिगत आर्थिक निज ।

क्षमता की हवेली पर ।

तारों नीचे सोने हेतु वे ।

चुपचाप आदर्शो की बाजू रख या भूलकर ।

अवसरवादी बुद्धिमत्ता ग्रहण कर ।

औं जिन्दगी को भूल कर ।

बिल्कूल बिक जाते हैं ।"[1]

उपर्युक्त पंक्तियों में बिना किसी लाग लपेट के बुद्धिजीवियों के वास्तविक चरित्र को उजागर किया गया है । मुक्तिबोध ने ऐसे यशलोभी बुद्धिजीवियों को 'अवसरवादी', 'पूँजीवादी उल्लू का साहित्यिक पट्ठा', 'मध्यवर्गीय बुद्धिशील अवसरवादी केकडा' इत्यादि कहकर इनके प्रति अपना अतिशय आक्रोश प्रदर्शित किया है । मुक्तिबोध इन्हें वर्ग शत्रु भी कहते हैं इसका कारण यह है कि ऐसे बुद्धिजीवी उस पतनोन्मुख सभ्यता का प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से समर्थन करते हैं जिसकी मृत्यु आवश्यक है । ऐसे बुद्धिजीवी कवि के ही वर्ग के हैं, इसलिए कवि इनको भयानक शत्रु स्वीकार करता है और ऐसे अवसरवादी बुद्धिजीवियों से अपने को अलिप्त समझता है क्योंकि मुक्तिबोध इनसे अलग हैं । यथा -

"तुम्हारे पास हमारे पास,

सिर्फ एक चीज है -

ईमान का डण्डा है ।

बुद्धि का बल्लम है,

अभय की गेती है ।

हृदय की तगारी है - तसला है ।

नये-नये बनाने के लिए भवन,

आत्मा के, मनुष्य के ।"[2]

---

1. भूरी-भूरी खाक धुल, मुक्तिबोध, पृ.187
2. वही, पृ.125

बुद्धिजीवियों के साथ-ही-साथ मुक्तिबोध पूँजीपतियों, सत्ता से जुड़े लोगों पर भी तीव्र प्रहार करते हैं । 'लकड़ी का रावण' नामक अपनी बहुचर्चित कविता में मुक्तिबोध पूँजीपतियों, सत्ताधारियों, साधन संपन्न प्रतिष्ठित व्यक्तियों तथा आर्थिक दृष्टि से पुष्ट वर्गो पर तीक्ष्ण प्रहार करते हुए लिखते हैं -

"बढ़ न जायँ
छा न जायँ
मेरी इस अद्वितीय ।
सत्ता के शिखरों पर स्वर्णाभ,
हमला न कर बैठे खतरनाक ।
कुहरे के जनतन्त्री ।
वानर ये, नर ये ।
समुदाय, भीड ।
डार्क मासेज ये मॉब हैं ।
श्यामवर्ण मूढों के दिमाग खराब हैं ।"[1]

मुक्तिबोध ने ऐसी बुनियादी बाते कहीं हैं, जिन्हें जन साधारण भी अपने में अनुभव करते हैं जैसे अन्याय का प्रतिकार, समझौता परस्ती इत्यादि का विरोध, बुद्धि बेच देने तथा धन द्वारा बुद्धि खरीदे जाने का विरोध आदि से बुद्धिजीवियों को जुटने की सलाह दी है । 'शर्म की सी शर्त' को नामंजूर किया है ।

5.2.7 कविता के प्रति सचेत कवि :

मुक्तिबोध की सभी कविताएँ सोदेश्य हैं तथा सार्थकता की पहचान कराती हैं । कथ्य की व्यापकता एवं विविधता के साथ-ही-साथ शिल्पगत नवीनता कवि को कविता के विकास में महत्वपूर्ण स्थान दिखलाती हैं । इनमें कुछ कविताएँ उनकी वैयक्तिक समस्याओं से सम्बन्धित होते हुए उनकी कुछ कविताओं की वास्तविक पहचान कराती प्रतीत होती है तो अधिकांश कविताएँ सामाजिक यथार्थ को जागृत करती है । जिन कविताओं में कवि अपने कथ्य एवं टेकनीक की सांकेतिक अभिव्यक्ति करता है, उनमें भी कुछ सीमा तक वह कविता निजी धरातल अपनाएँ रखती है और एकाएक कविता व्यापक रूप ले लेती है ।

1. चाँद का मुँह टेढ़ा है, मुक्तिबोध, पृ.49

जैसे - 'कहते हैं लोग बाग' कविता को संपूर्ण कथ्य की दृष्टि से विश्लेषित किया जा सकता है । कविता के आरंभ में कहते हैं लोग-बाग बेकार है मेहनत तुम्हारी सब/कविता रदी है' से स्पष्ट होता है कि वह समझता है कि लोगों की दृष्टि में उसकी कविताओं का कोई महत्त्व नहीं है - रदी अथवा महत्वहीन कविताओं का कोई महत्त्व नहीं है - रदी अथवा महत्वहीन कविताओं का कोई महत्त्व नहीं है - रदी अथवा महत्वहीन कविताओं का कारण वह उसमें भाषा की लचरता, उपमाओं की बेडौलता, कल्पनात्मक तसवीरों की विचित्रता, शब्दों एवं मुहावरों के प्रयोग में स्वच्छन्दता के साथ विचारों तथा शब्दों की खडखडाहट स्वीकार करते है । इतना ही नहीं उसे अपनी कविताएँ गड्ढों भरे उखडे रास्ते से गुजरती पत्थरों को ढोती हुई बैलगाडियाँ लगती है । जिसमें परंपरागत काव्य-गुणों का निर्वाह नहीं किया गया है । माधुर्यविहीन, लय-भाव-सुर से सर्वथा विमुख इन कविताओं को कौन पढ़ेगा - इसके प्रति कवि सचेत है, वह इन सब स्थितियों से भली-भाँति परिचित हैं ।

जिन्दगी के अनुभव मुक्तिबोध की कविता को सोदेश्यता प्रदान करती है । कवि के प्रत्येक अनुभव उसके गहन चिन्तन, सम्यक् ज्ञान-विवेक के साथ उसके भीतर के आक्रोश और तीव्र स्वर को मुखरित करता है । इसलिए अनेक कविता में जीवन और समाज के व्यापक अर्थो की अभिव्यक्ति करने के साथ-साथ कवि कर्म एवं काव्यानुभूति की वास्तविकता को बोध कराने में पूर्णतः सक्षम हैं । इसलिए जिन्दगी के सूरज और अनुभव को कवि अत्यंत गहन रूप से प्रस्तुत करता है -

"मानव लक्षणों का सहस्त्र - दल ।
नयी जिन्दगी का यह सूरज ।
बिखरता है अग्नि-रत्नी कण ।
संघर्ष की रक्तिम कोसर ।
जन-जन की गलियों राहों में ।
मानों कविता का युग अभिनव,
जलते रहते सूर्य खण्ड से ।
जब कि, जिन्दगी के सौ अनुभव ।"[1]

1. मुक्तिबोध रचनावली : खण्ड दो, पृ.170

वैसे तो मुक्तिबोध का प्रत्येक वक्तव्य, संदर्भ एवं प्रसंग सोदेश्य हैं । किसी-न-किसी प्रश्न अथवा समस्या को प्रस्तुत करता है, परन्तु कुछ कविताएँ तो स्पष्ट तौर पर समस्या की ओर ही पाठकों का ध्यान आकर्षित करती हैं । जैसे 'चकमक की चिनगारियाँ' कविता के अंतिम चरण में कवि ने अपनी कविताओं के दीर्ध आकार ही होने पर भी उन्हें 'अधूरी' माना है । वस्तुतः डॉ. मदान ने जिस 'अधूरी कविता' की ओर संकेत किया है वह अधूरापन कविता के निरन्तर प्रवाह की सूचना देता है । मुक्तिबोध का अनुभव, चिन्तन प्रक्रिया एवं रचना प्रक्रिया का एक अनवरत प्रवाह है । जो कभी भी अपने को पूर्णता की स्थिति में नहीं पाता, क्योंकि सचेत कवि के सामने कोई-न-कोई समस्या सदैव रहती है और वह स्वयं को भीतर और बाहर के द्रय में सदैव प्रस्तुत मानता है । इसलिए एक अनवरत प्रवाह कभी न समाप्त होने वाले भाव, अनुभव उसकी रचनात्मकता की ताजगी बनाए रखते हैं । तभी तो एक के बाद एक समस्या को अपने सम्मुख पाता है । इसलिए वह कहता हैं -

"मैं अपनी अधूरी दीर्ध कविता में ।
सभी प्रश्नोत्तरी की तुंग प्रतिमाएँ ।
गिराकर तौड़ देता हूँ हथौड़े से ।
कि वे सब प्रश्न कृत्रिम और
उतर और भी छलमय ।
समस्या एक,
मेरे सभ्य नगरों और ग्रामों में ।
सभी मानव ।
सुखी, सुन्दर व शोषण मुक्त ।
कब होंगे ?"[1]

वस्तुतः उपर्युक्त पंक्तियाँ कवि की सोदेश्यता का प्रत्यक्ष प्रमाण है । वह सचेत है और निरंतर इसी में वह सोदेश्यता की पहचान कराना चाहता है ।

'हे कविते, हे मर्मज्ञे' नामक कविता में कवि अपने संकल्प के प्रति

1. चाँद का मुँह टेढ़ा है, मुक्तिबोध, पृ.169

पूर्णतः सचेत है तथा उसे पूर्ण विश्वास है कि उसकी रचनाएँ जिस उदेश्य की ओर अग्रसर है, समय आने पर उनका सही मूल्यांकन होगा । यही कारण है कि वह परम्परित कविता और अपनी कविताओं के अंतर से भली-भाँति परिचित है । तभी तो कविता को सम्बोधित करता हुआ कहता है -

"हर बार नहाता आया हूँ
अपने भीतर की रस-स्त्रोतवती,
मीठी ज्योति; सरिताओं से ।
फिर तुम आत्माओं की आत्मा,
यदि निकली हो मेरी जी से
तो हे कविते, हे मर्मज्ञे
परवाह न कर मेरी कुछ भी
फिर भी मेरा अभिमान तुझे
तेरा आकर्षण मुझे सदा
बस इसलिए -
जिस एक डोर को पकड
अधबीच चढ़ गया हूँ पहाड ।
उस एक डोर का सिरा थाम
मुसकाती हो तुम कहीं आड़
ज्यों विराजिता है रश्मि माल
की वरमाला-सी लाल श्याम
गिरि-शिखरों पर ।"[1]

'बड़े वेग से चला रही है' कविता में कवि की रचना-प्रक्रिया का जहाँ एक नया पक्ष साक्षात है, वहाँ एक रूपक की योजना की है । सुख-दुःख की कंकर मिट्टी युग के मन का रास्ता बना रही है तथा युग-मन पीड़ा का मन है । इसी मन के संदर्भ में आगे बढ़ता हा कवि कहता है कि इस पीड़ारूपी मन धरती जैसा है तथा इस चट्टान को हथौड़ो से निखारा-संवारा जा रहा है । हृदय में मानव अनुभव तथा विचार पथ विकास की ओर अग्रसर है । अग्नि-परीक्षाओं को

1. मुक्तिबोध रचनावली, पृ.260-61

गहरे औजारों के समान माना है तथा इनसे मन की जमीन खोदी जा रही है । मन तथा अनुभव का यह पक्ष अत्यंत विस्तृत है तथा जीवन की अकुलाहट में भभकन और दहक है तथा उसे लगता है कि -

"और क्षोभ के अंगारों के सहस्त्र दल-सा
दमक उठा है ज्वालामय सरसिज सूरज वह
इस रास्ते पर धरती के पोरों की गरमी
पुरूष-वक्ष की शक्ति गंध-सी महक उठी है
गरम-गरम सूरज के फावे
टूटी हुई हाथ की हड्डी
मोच पाँव की
मोच गाँव की मोच शहर की
जब श्रम को सुगंध उठती है
तभी महकती है आत्माएँ
मुक्ति, खोल निज द्वार
देखती है सब ओर
किस मिट्टी में हरी चम्पा का
सौरभ मिला हुआ है ।"[1]

यहाँ 'मोच' तथा 'श्रम' दो शब्दों को विशेष रूप से कवि अपनी रचना-प्रतिबद्धता के संकेत रूप में प्रस्तुत करता है । 'मोच' वैयक्तिक अनुभव पीडा का, आकुलता का, जीवन पथ पर आगे बढ़ते समय आनेवाली बाधाओं का प्रतीक शब्द हैं । यह प्रसंग पूरे गाँव और शहर को अपने में सँजो लेता है और मुक्तिबोध को श्रम में से सुगंध महकती प्रतीत होता है ।

'मानवता का चेहरा' कविता में कवि का संकल्प उद्देश्य बिल्कुल स्पष्ट है । वह इस एक ही रचना में वर्गीय चेतना, जन साधारण की वास्तविकता का बोध, शोषकों नेताओं पर व्यंग्य-प्रहार तथा महाक्रांति और मानवता की नये

---

1. चाँद का मुँह टेढ़ा है, मुक्तिबोध, पृ.231

संदर्भों में व्याख्या करता है । इसमें उसके अनुभवशील चिन्तक रूप को देखा जा सकता है ।

"मुख पर जीवन संग्रामों की लाल-लाल छायाएँ सिहरी

खुली क्रांति की पलकें, आँखों में संघर्षों की दोपहरी ।"[1]

इतना ही नहीं, अब वह यह परिवर्तन होरी यानि की प्रेमचंद के गोदान का मुख्य पात्र को आधार बनाकर उसकी आत्मा के आँसू क्रान्ति के वज्र बन चुके हैं । मुक्तिबोध की सोदेश्यता और मूल्य संकल्प को इस एक ही पंक्ति में देखा जा सकता है । उसका विश्वास है कि क्रांति के मार्ग पर चलकर ही अपने अधिकार प्राप्त किए जा सकते है - दीनता, असहाय और आँसू की तरह अब संघर्ष, विश्वास, निर्भर, आत्म निर्भर तथा दृढ़ होना युग की माँग है, जीवन की सार्थकता है और मानवता की सही स्थिति है ।

5.2.8 अभिव्यक्ति का खतरा उठानेवाला कवि :

मुक्तिबोध के काव्य में सबसे विलक्षण बात 'खतरा' है - वह जानबूझकर इस खतरे की जिन्दगी का मार्ग अपनाता है, क्योंकि उसे इस प्रकार का जीवन खूबसूरत लगता है । वह अभिव्यक्ति के सारे खतरे उठाने का संकल्प लेता है । उसे सब तरफ खतरा ही खतरा दिख पड़ता है । यथा -

"खिड़की के शिशे की चौखट में से झाँकी ।
कई सूरत भय से पीली,
भय से खाकी ।
खतरें के धक्कों की रेखाएँ के चक्कर ।
उसे चेहरे पर ।"[2]

मुक्तिबोध की कविताओं में जिस खतरे की ओर बार-बार संकेत है, वस्तुतः उसका मूलाधार उनकी विचारधारा एवं अनुभवशील व्यक्तित्व है । वह अपनी रचनाओं में प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप में आत्म परिचय की प्रक्रिया से

---

1. मुक्तिबोध रचनावली, पृ.275
2. चाँद का मुँह टेढ़ा है, मुक्तिबोध, पृ.169

गुजरते समय समाज के अन्य वर्गो के लोगों की वास्तविकता को जानने का प्रयत्न करता है और कहीं-कहीं वह अपने दृढ़ संकल्प के प्रति संतोष व्यक्त करता है । जबकि खतरे की घंटी की आवाज से पहले मैदान छोड भाग खडे हुए लोगों की अच्छी खासी खबर कवि ने 'भविष्य धारा' में अति विस्तार से ली है । वह अपनी इस रचना-प्रक्रिया को जोखिम भरा मानता है, क्योंकि इसे वह 'नीला पौधा' के रूप में ग्रहण करता है जो आत्मज हृदय-धारित्री के रक्त से सिंचित है - जिनकी जड़ें ज्ञान और अनुभव के रक्त ताल में डूबे हैं तथा अनुभव का पान कर यह पौधा निरन्तर बढ़ रहा है - पर यह मार्ग निष्कंटक नहीं है । इसलिए तो कवि कहता है कि -

"इन नील सकण्टक पत्रों में हैं इत्र ।
प्रेम का ।
भव्य जिन्दगी का सत है ।
कि तेल प्रदाहक है प्राण के नेम का ।
पर काँटे हैं -
विक्षुब्ध ज्ञान के तीव्र ।
उद्विग्न वेदनापूर्ण क्षोभ को नोक,..... ।
वे चैन न लेने देंगे ।"[1]

कवि का संकल्प विचित्र है, कण्टकपूर्ण हैं । जब वह कहता है कि मैं घूमता फिरूँगा और प्रतिपल जलते हुए देश-क्लेश के नये-नये जीवन-प्रदेश देखूँगा ।

यही कारण है कि कवि सदैव खतरे का मार्ग अपनाता है, प्रकाश सुविधा की अपेक्षा । अंधकार कण्टक जीवन को अंगीकार करता है । इसे ही सार्थक जीवन मानता है । अनेक कविताओं में कवि ने अपनी अंगारी चेतना, रक्तप्लावित स्वर आदि प्रस्तुत करते समय इस 'खतरे' का संकेत किसी-न-किसी रूप में अवश्य किया है ।

'अँधेरे में' इस लम्बी कविता के अंतर्गत कवि ने आत्मचेतस के रूप में 'अभिव्यक्ति के खतरे' को उठाने के संकल्प का बखान किया है । यथा -

---

1. भूरी-भूरी खाक धुल, मुक्तिबोध, पृ.62

"अब अभिव्यक्ति के सारे खतरे ।
उठाने ही होंगे ।
तोड़ने होंगे ही मठ और गढ़ सब ।
पहुँचाना होंगा दुर्गम पहाड़ों के उस पार ।
तब कहीं देखने मिलेंगी हमको ।
नील झील की लहरीली थाहें ।
जिसमें कि प्रतिपल काँपता रहता ।
अरूण कमल एक ।
धँसना ही होगा ।
झील के हिम-शीत सुनील जल में ।
जादुई झील को करनी होगी मेरी प्रतीक्षा ।"[1]

अतः 'अँधेरे में' शीर्षक इस दीर्ध कविता की पंक्तियों में अभिव्यक्ति के खतरे के सन्दर्भ में अपना मत व्यक्त करते हुए नंदकिशोर नवलजी कहते हैं, "ये पंक्तियाँ मुक्तिबोध के संकल्प को ही हमारे सामने नहीं लाती हैं, उनके आत्मविश्वास से भी हमारा परिचय कराती हैं । 'जादुई झील को करनी ही होगी प्रतीक्षा' इसमें कविता के जादुई लोक का ही संकेत नहीं है, उनके आत्मविश्वास की भी अभिव्यक्ति हुई है । नई अभिव्यक्ति के खतरे तो होते ही हैं, उस तक पहुँचने के मार्ग में दुर्लध्य कठिनाईयाँ भी होती हैं । लक्ष्य करने योग्य यह भी है कि क्रान्तिकारी कविता भी मुक्तिबोध के लिए एक बहुत ही नाजुक और संवेदनशील चीज थी । इसी कारण उन्होंने उसे इस चित्र के माध्यम से उपस्थित किया है -

"नीली झील की लहरीली थाहें,
जिसमें कि प्रतिपल काँपता रहता,
अरूण कमल एक ।"[2]

देखना यह है कि अभिव्यक्ति के पुराने रूपों, मठों और गढ़ों को ध्वस्त कर वे नई अभिव्यक्ति तक पहुँच सके या नहीं ।

1. प्रतिनिधि कविताएँ, गजानन माधव मुक्तिबोध, पृ.161
2. मुक्तिबोध ज्ञान और संवेदना, नंदकिशोर नवल, पृ.412-13

आगे नंदकिशोर नवलजी कहते हैं कि - यहाँ मुक्तिबोध ने एक खतरे से आगाह किया है । वह खतरा यह है कि अभिव्यक्ति के संघर्ष में बार-बार सफलता मिलते देखकर और नए अभिव्यक्ति रूपों को सामाजिक मान्यता न प्राप्त होने से कभी-कभी रचनाकार का आत्म विश्वास लड़खड़ा जाता है, जिससे वह संघर्ष-विमुख और अंततः रचना-विमुख भी हो जाता है । रचनाकार अपने संघर्ष में सफल हो, इसके लिए उन्होंने 'अभिव्यक्ति के अभ्यास' का विशेष महत्व दिया है और उसे कलाकार का 'मुख्य कर्तव्य' कहा है ।"[1]

5.2.9 प्रकृति चित्रण :

प्रकृति अपना एक स्वतंत्र अस्तित्व लिए साहित्य क्षेत्र में स्थित है । प्रकृति की छाँव में मनुष्य जीवन विकसित होता रहता है और विसर्जित भी होता है । प्रकृति के सुन्दर, सुकोमल रूपों ने मनुष्य के काव्यसृजन को जिस तरह प्रेरित किया है उसी तरह उसके कठोर, विकराल रूप ने भी उसे भयचकित कर सृजनशील बनाया है । मानव की भयमिश्रित आदर की भावना ने प्रकृति के रौद्र रूप को भी काव्यसृजन में स्थान दिया है ।

मुक्तिबोध की कविता में प्रकृति एक अलग महत्व, स्थान लिए हुए है । वह कृषि संस्कृति की, सर्वहारा वर्ग की कर्मभूमि की तथा मुक्तिबोध की प्रेरणा के रूप में स्थान पा चुकी है । प्राकृतिक उपादानों को उन्होंने कविताओं में स्थान दिया है । उनके मूल गुणों और रूपों को आधारभूत मानकर उन्होंने जिस तरह मानवमूल्य स्थापित किए है उसी तरह अपनाो अन्तरंग के मृदु, कोमल भावों के साथ-साथ दृढ़ता, यातना, दुःख, वेदना, पीड़ा, आक्रन्द, संघर्ष, नीरसता और शुष्कता भी व्यक्त की है । मुक्तिबोध की कविता में प्राकृतिक उपादान और मनुष्य की स्वाभाविक प्रक्रियाओं का सम्बन्ध बहुत ही अनोखे ढंग से व्यक्त हुआ है । उनकी कविताओं में प्रकृति के मृदु, कोमल और उग्र, भीषण दोनों रूपों का समन्वय नजर आता है । प्रकृति के मात्र नाजुक, सुन्दर, कोमल रूपों ही हमें आनन्द प्रदान करते हैं ऐसी बात नहीं, उसके विकराल, विनाशक रूप भी हमें

---

1. मुक्तिबोध ज्ञान और संवेदना, नंदकिशोर नवल, पृ.410

भयमिश्रित आनन्द देते है । इसी आनन्द की अनुभूति मुक्तिबोध की उन कविताओं द्वारा होती है जिनमें प्रकृति के इन भयानक रूपों का उल्लेख मिलता है । यह आनन्द शुद्ध आनंद होता है ।

"हृदय की प्रसन्नता व्यक्त करनेवाले प्राकृतिक उपादान उनकी कविता में है । ऋतु वसन्त, आम्रमंजरी, भ्रमर, फूल आदि प्राकृतिक सौन्दर्य का आनन्द बढ़ाते है ।"[1] "ऋतुचक्र की अनवरतता बताते समय वे पतझर न होने का ही नहीं किन्तु बसन्त भी क्षणिक है यह अशाश्वतता बताते है ।"[2] "प्रकृति की उदासीनता का प्रभाव कवि के मन पर हो ही जाता है । मूक तिमिर में जब कोयल की कूक सो जाती है तब उसके जीवन की नादानी भी निराशाग्रस्त हो जाती है ।"[3]

चन्द्र तो परप्रकाशित ग्रह है । सूरज से रोशनी उधार लेके वह चमकता है । वैज्ञानिक सत्य मालूम होने पर भी साहित्यिकों, कवियों, लेखकों की चन्द्रप्रियता में कुछ न्यूनत्व नहीं है । चन्द्र की तरह मुक्तिबोध का सूर्य भी कविताओं में अपना स्वतंत्र अस्तित्व रखे हुए पाठकों के सामने पेश होता है । कभी वह 'धूंधले क्षितिज में डूबा हुआ 'रवि' है तो कभी 'श्रावण के दिवस का चुम्बन लेते' उसका अस्त हो जाता है । कभी-कभी मुक्तिबोध का सूर्य, चन्द्र भी दोनों मनुष्यों की तरह दुसरों पर लुब्ध हो जाते है..... मानो वासना के शिकार हो जाते है । इतने अथाह आकाश के प्रति चमकने दमकनेवाले चंद्रसूर्य भी वासना के शिकार हो जाते है । इस कठोर सत्य की प्रस्तुती कितनी सहजता से मुक्तिबोध ने करायी है -

"अमीत, नीला, जामुनी, अतिलाल सुन्दर
दिवस की बरसात को सूर्यास्त का चुम्बन ।
ये सूर्य - चन्द्र,
नभवृक्ष लुब्ध,

---

1. मुक्तिबोध रचनावली (खंड-1), पृ.61
2. वही, पृ.50
3. वही ।

वे अमित वासना के शिकार ।

मैं स्वागत करता हूँ सबका

क्योंकि प्रकृति से सूर्य सत्य हूँ ।"[1]

आदिम युग में प्रकृति के सारे रूप मनुष्य के लिए सुन्दर नहीं अपितु भयकारी थे । उसके विकराल रूप देखकर मनुष्य को सौन्दर्य नहीं किन्तु भय की भावना से कम्पित हो जाता था । यह भय उसने अपनी बुद्धि से प्रयत्नपूर्वक कम करके प्रकृति के साथ अपने रागात्मक, परिवर्तनशील, हृदय सम्बन्ध स्थापित किए । इन रागात्मक सम्बन्धों के अधिष्ठान पर स्थित कविता की दो पंक्तियाँ लिखकर मुक्तिबोध ने प्रकृति और मनुष्य की अमिट, शाश्वत, चिरंतन एकात्मिकता सिद्ध की है -

"मैं हूँ नम्र धूलि के कण-सा

मैं हूँ अजस्त्र पृथ्वी के मन-सा..... ।"[2]

उपसंहार :

मुक्तिबोध के काव्य की प्रमुख प्रेरणा मानव का जीवन है । उन्होंने ऐसे चरित्र को आदर्श माना है, "जो मानवीय वास्तविकता का चित्रण करके सामान्य जनों के गुणों और उनके संघर्षो से प्रेरणा और प्रकाश ले ।" मुक्तिबोध की कविता की मूल प्रेरणा है मनुष्य का जीवन जो रोज लिया तथा भोगा जाता है । इन्हीं मूल स्त्रोतों को हम कविता में देख सकते हैं ।

मुक्तिबोध ने अपने काव्य में भीतरी और बाहरी दोनों स्तरों पर संघर्ष प्रस्तुत किया है । साथ-साथ मुक्तिबोध को जन कवि भी कहा जाता है क्योंकि उनके मतानुसार काव्य में अभिव्यक्त हुए भाव, विचार तथा चित्र यदि जनमानस से जुड़े हुए न हो तो वे मूल्यहीन है । वे अपनी समाज व्यवस्था से पूरी तरह परिचित थे । उनके काव्य में आम आदमी की संवेदना है । मुक्तिबोध की कविता में शोषित, पीडित जन सामान्य का चित्रण है । उन्होंने पूँजीवादी समाज के सामने क्रांति करने की प्रेरणा दी है । उनके कई काव्य में क्रान्ति का स्वर

---

1. मुक्तिबोध रचनावली (खंड-1), पृ.78
2. वही, पृ.121

मुखरित हुआ है । साथ-साथ बुद्धिजीवियों के साथ-साथ मुक्तिबोध ने पूँजीपतियों, सत्ता से जुड़े लोगों पर भी तीव्र प्रहार किया है ।

संक्षेप में, हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते है कि मुक्तिबोध के काव्य की मूल प्रेरणा भी पीडित मानव जाति रही है तथा प्रयोजन पीड़ित मानव की वेदना का संवेदनशील चित्रण तथा उद्देश्य शोषणकारी व्यवस्था का विरोध तथा मानवतावादी शोषणहीन समाजवादी व्यवस्था की स्थापना काव्य के माध्यम से करना रहा है । मुक्तिबोध के काव्य का भावपक्ष हृदय के भाव को छुनेवाला है ।

अध्याय-6

मुक्तिबोध के काव्य का कलागत सौन्दर्य

❑ प्रस्तावना

6.1 बिम्ब योजना

6.2 प्रतीक योजना

6.3 अलंकार योजना

6.4 भाषाशैली योजना

6.5 छन्द योजना

6.6 व्याकरणिक योजना

6.7 व्याकरणिक दोष

❑ उपसंहार

अध्याय-6

मुक्तिबोध के काव्य का कलागत सौन्दर्य

प्रस्तावना :

काव्य में अभिव्यक्ति पक्ष का भी विशेष महत्त्व होता है । अभिव्यक्ति पक्ष प्रभावी बनाना आवश्यक होता है । प्रत्येक कवि की काव्यभाषा व्यक्तित्व एवं विषय के अनुरूप अलग-अलग होती है । काव्य में भाषा का अत्यंत महत्त्व रहता है । शब्दों के माध्यम से काव्य या साहित्य में जगत् तथा जीवन के विभिन्न पक्षों का चित्रण हुआ है । कला का एक उपकरण शब्द भी है । शब्द कला के क्षेत्र में सबसे सूक्ष्म तथा सशक्त माध्यम है । अतः काव्य कला को सर्वश्रेष्ठ मानने में कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी । मानव मन के भाव को समृद्ध बनाने का साधन कला है । वह केवल सौन्दर्यानुभूति या आनंद नहीं है, वह मानव मन के भावों को सशक्त ढंग से अभिव्यक्त करने का साधन है । कवि विभिन्न माध्यमों - वर्णो, ध्वनियों, शब्दों या क्रियाओं तथा रेखाओं के आधार पर भावाभिव्यक्ति करता है । उसमें इतनी क्षमता होती है कि वे ही भाव वह दूसरों के मन में भी जागृत कर सकें ।

काव्य केवल भावनाओं की अभिव्यक्ति नहीं है तो रूप की रचना है इसके लिए कला का ज्ञान अनिवार्य है । कवि की प्रतिभा तथा कुशलता के कारण उसके मन के विचार एक विशिष्ट रूप धारण करते है एवम् काव्य का उद्गम हो जाता है ।

6.1 बिम्ब योजना :

'बिम्ब' शब्द का प्रयोग हिन्दी में अंग्रेजी के 'इमेज' (Image) शब्द के पर्याय के रूप में होता रहा है । 'इमेज' शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम पश्चिम में हुआ । पश्चिम में बिम्बाावादियों के आन्दोलन के परिणामस्वरूप कथा का प्रचलन गौण हो गया और उसका स्थान धीरे-धीरे बिम्ब लेता गया । इस तरह आधुनिक कविता में बिम्ब रचना का आविर्भाव हुआ । फलतः पूर्ण कविता बिम्ब के रूप में लिखी जाने लगी ।

कविता के स्वरूप विधान में बिम्बों का महत्वपूर्ण स्थान होने के कारण कविता में अत्यन्त सूक्ष्म भावों की अभिव्यक्ति होती है । आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इस सन्दर्भ में लिखा है - "कविता के अर्थग्रहण से काम नहीं चलता, बिम्ब-ग्रहण भी अपेक्षित होता है ।"[1] कविता में बिम्बों के साहचर्य से संक्षिप्तता, मूर्तता एवं दीप्ति का होना स्वीकार किया जाता है । वैसे बिम्ब का काम कविता को अलंकृत और बोझिल बनाना नहीं है । संवेदनानुभूति को नये स्तर पर पुनर्निर्मित करना बिम्ब की सार्थकता है । बिम्ब भाव और विचारों के संवाहक होने के साथ-साथ अपने पीछे के कवि मानस की संपूर्ण उलझनों और संघर्षों की भी सूचना देते हैं । इस प्रसंग में बिम्ब के सम्बन्ध में नागेश्वरलाल के विचार "एक सफल बिम्ब, पूर्ण परिपक्व विचार की अपेक्षा उसकी परिपक्वावस्था के घात-प्रतिघातों, अन्तर्विरोधों और विकल्पों को पूरी गहराई से प्रतिबिम्बित करता है ।"[2]

"नये युग की सौन्दर्य चेतना ने तथा नवीन दृष्टिकोण ने आज के कवि को नए उपमानों के अन्वेषण, सृजन और प्रयोग के लिए बाध्य सा कर दिया है । वर्तमान मानव जीवन में यौन वर्जनों के कारण नयी कविता में नवीन उपमानों और बिम्बों का आना स्वाभाविक है । परम्परागत बिम्ब जब निर्जीव और केवल अभिधा बनकर रह जाते हैं, तब उनमें इतना सामर्थ्य नहीं रह जाता कि वे कवि की संवेदना को मूर्त रूप प्रदान कर सकें अतः ऐसी अवस्था में नवीन बिम्बों की खोज एक अनिवार्यता हो जाती है ।"[3]

सफल बिम्ब योजना के लिए उर्वर कल्पना तथा अनुभव समृद्धि की आवश्यकता होती है । "उत्कृष्ट बिम्ब वही होते हैं जो हमारी संवेदनाओं को छू सकें । बिम्ब की उत्कृष्टता किसी दृश्य की संयोजना भर करने में नहीं अपितु हमारे अन्य रागबोधों को छूने में निहित है, अतः वे समस्त बिम्ब जो एक दृश्य उपस्थित करने के साथ ही हमारी अन्य इन्द्रियों को संवेदित करते हैं, काव्य-शिल्प विधि की दृष्टि से उत्कृष्ट बिम्ब हैं ।"[4]

---

1. चिन्तामणि भाग-1, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृ.100
2. आधुनिक हिन्दी कविता में बिम्ब विधान, नागेश्वरलाल, पृ.27
3. तार सप्तक के कवि-काव्य शिल्प के मान, कृष्णलाल, पृ.153
4. आधुनिक हिन्दी कविता में शिल्प, डॉ. कैलाश बाजपेयी, पृ.79

काव्य में बिम्ब महत्त्वपूर्ण साधन होते हैं । जो कवि के भाव पाठक के हृदय तक पहुँचा सकते है - "कवि का उद्देश्य यह होता है कि वह अपने द्वारा अनुभूत-तत्त्व की वैसी ही प्रभाव क्षमता के साथ पाठक के हृदय में पहुँचा सके और उसे रसलीन कर सके । कवि की इस उद्देश्यपूर्ति में बिम्ब-सृष्टि सर्वाधिक मात्रा में सहायक होती हैं ।"[1]

बिम्ब की दृष्टि से मुक्तिबोध का काव्य अतिशय समृद्ध है । उनकी कविताओं में बिम्बों का वैविध्य दृष्टगत होता है । स्वयं मुक्तिबोध ने भी बिम्ब की महत्ता को उजागर किया है - "कल्पनाचित्र स्वयं एक बोधात्मक या ज्ञानात्मक (जीवन ज्ञानात्मक) पक्ष रखते हैं और उनका दूसरा पक्ष निःसंदेह संवेदनात्मक होता है । इस प्रकार दोनों पक्षों के संयोग से कल्पना चित्र में सौन्दर्य और सार्थकता उत्पन्न होती है । कल्पना चित्र या बिम्ब-विधान स्वयं वस्तु सत्यों के ज्ञान की एक विशेष प्रणाली है, जो सृजन प्रक्रिया में अपना एक महत्वपूर्ण स्थान रखती है ।"[2]

मुक्तिबोध का काव्य, बिम्ब योजना की दृष्टि से बहुत सम्पन्न है । यहाँ तक कि किसी-किसी ने तो मुक्तिबोध को बिम्ब कवि की संज्ञा दे डाली है । डॉ. देशराजसिंह भाटी के शब्दों में मुक्तिबोध के काव्य की विशिष्टता एवं विलक्षणता उनके विलक्षण बिम्ब-योजना तथा प्रतीक योजना के कारण ही है - "इन्होंने अपने कलात्मक सौन्दर्य की प्रतिष्ठा के लिए जितना परिश्रम किया है, नये काव्य में कहीं भी ऐसा परिश्रम परिलक्षित नहीं होता । अंग्रेजी कवि टी.एस. इलियट के विषय में कहा जाता है कि उनका काव्य उस कक्ष की भाँति है जिसमें अनेक दर्पण विभिन्न पंक्तियों में सजा कर रख दिये गये हैं । यही मंतव्य मुक्तिबोध के काव्य पर भी पूर्णरूप से चरितार्थ होता है । अपने विलक्षण बिम्ब विधानों और प्रतीक विधानों के द्वारा उन्होंने अपने काव्य को वास्तव में विशिष्ट और विलक्षण ही बना दिया है ।"[3]

1. प्रगतिशील हिन्दी कविता, डॉ. दुर्गाप्रसाद झाला, पृ.255
2. नयी कविता का आत्म-संघर्ष तथा अन्य निबन्ध, मुक्तिबोध, पृ.133
3. समकालीन हिन्दी कविता, डॉ. दुर्गाप्रसाद झालाक, पृ.255

मुक्तिबोध की समस्त कविता बिम्बमय है । इस विधा में वे अद्वितीय हैं । उनका कविता माध्यम ही बिम्ब है । प्रत्येक प्रकार का बिम्ब मुक्तिबोध की कविता में सहज ही प्राप्त होता है । इतना ही नहीं उनकी कविताओं में सर्वत्र इतने बिम्ब दृष्टिगोचर होते है कि इन्हें बिम्बों का नगर कहा जा सकता है । निःसंदेह मुक्तिबोध की कविताओं में लगभग प्रत्येक आठवीं पंक्ति पर एक बिम्ब मिलता है । बिम्ब के संदर्भ में मुक्तिबोध की यह विशेषता है कि वे शब्द बिम्बों का लयात्मक उपयोग करते हैं । दूधनाथ सिंह के शब्दों में - "मुक्तिबोध शब्द बिम्बों का लयात्मक उपयोग तो करते ही हैं इसके अलावा वे पूरे वर्णन को एक समग्र बिम्ब बना लेते हैं । इन दोनों तरीकों की अद्‌भूत समाहार शक्ति मुक्तिबोध में मिलती है । उनके यहाँ एक पूरा का पूरा स्टेज एक बिम्ब होता है । उसे आप बीच से नहीं तोड़ सकते । वह अन्त में जाकर फिर संपूर्णतः शुरू की ओर लौटता है और शुरू की ओर जाकर फिर अन्त की ओर घूम जाता है । मुक्तिबोध की कविता 'अंधेरे में' ऊपरी तौर पर घटनाओं और विवरणों से भरी पड़ी है लेकिन इसका अनुमान कहीं-कहीं होता कि हम विवरण की सपाटता में फँस गये हैं, क्योंकि यहाँ हर घटना और हर लम्बा विवरण एक पूरा बिम्ब है । इसके भीतर शब्दों के छोटे-छोटे लयात्मक बिम्ब भी भरे हुए है । एक तरफ से सारा लम्बा बिम्ब अंदर से टिमटिमाता हुआ अन्त में अर्द्ध सौन्दर्य के विस्फोट प्रकाश से चमक उठता है । यह एक प्रकार से तह-दर-तह बिम्ब योजना की पद्धति है ।"[1]

मुक्तिबोध की कविता में शोषित, पीड़ित जन सामान्य के साथ ही साथ पूँजीवादी सभ्यता के बिम्ब भी उपस्थित होते हैं । कहीं-कहीं सैनिक जीवन, विज्ञान, गणित, तर्कशास्त्र और प्राकृत आदि भी इनकी कविता में उभर आये है । वैसे मुक्तिबोध के काव्य में सभी प्रकार के बिम्बों को देखा जा सकता है ।

6.1.1 प्रकृति से सम्बन्धित बिम्ब :

मुक्तिबोध की आरंभिक कविताओं में छायावादी बिम्ब सृजना के प्रभाव के कारण प्रकृति सम्बन्धी बहुत से बिम्ब दृष्टिगत होते है । छायावादियों के

1. निराला : आत्महंता, दूधनाथ सिंह, पृ.156

काव्य में प्राकृतिक संसार के बिम्बों की अधिकता है । 'तार-सप्तक' में संग्रहीत 'आत्मा के मित्र मेरे' शीर्षक की निम्नांकित पंक्तियों में नवयौवना के मूर्त बिम्ब के माध्यम से प्रातः और सन्ध्या को स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है । यथा -

"उस जलधि की श्याम लहरों पर जुड़ा आता ।
सघनतम श्वेत, स्वर्गिक फेन, चंचल फेन ।
जिसको नित लगाने निज मुखों पर,
स्वप्न की मृदु मूर्तियों-सी ।
अप्सराएँ साँझ-प्रात ।
मृदु हवा की लहर पर से
सिन्धु पर रख अरूण तलुए ।
उतर आतीं, कांतिमय नव हास लेकर ।"[1]

मुक्तिबोध की यायावरी प्रवृत्ति ने उनके प्रकृति सम्बन्धी बिम्बों की सृजना में पर्याप्त सहयोग दिया है । कवि के काव्य में पहाड़, पठार, गुहा आदि के बिम्ब की अधिकता है । प्राकृतिक बिम्ब का उदाहरण दृष्टव्य है -

"भूमि की सतहों के बहुत-बहुत नीचे ।
अँधियारी एकान्त ।
प्राकृत गुहा एक ।
विस्तृत खोह के साँवले तले में ।
तिमिर को भेदकर चमकते पत्थर
मणि तेजस्क्रिय रेडियो एक्टिव रत्न भी बिखरे,
झरता है जिन पर प्रबल प्रपात एक ।"[2]

6.1.2 गत्यात्मक बिम्ब :

मुक्तिबोध की कविताओं की विशेषता उनकी गत्यात्मकता है । किसी भी तथ्य का सजीव चित्रांकन करने में वे सिद्धहस्त हैं । जिसका भी चित्रण

1. तार सप्तक, संपा. अज्ञेय, तृतीय सं., पृ.44
2. चाँद का मुँह टेढ़ा है, मुक्तिबोध, पृ.274

करते, उसमें सजीवता भर जाती है । जन-जीवन का एक सामान्य मानवीय भावनाओं से ओतप्रोत गत्यात्मक बिम्ब -

"रास्ते पर आते-जाते दिखते हैं ।
लठ-धारी बूढ़े से पटेल बाबा ।
ऊँचे-से किसान दादा ।
वे दाढ़ी-धारी देहाती मुसलमान चाचा और
बोझा उठाये हुए ।
माएँ, बहने, बेटियाँ -
सबको ही सलाम करने की इच्छा होती है ।
सबको राम-राम करने को चाहता है जी ।
आँसुओं से तर होकर प्यार के..... ।
(सबका प्यारा पुत्र बन)
सभी ही का गीला-गीला मीठा-मीठा आशीर्वाद ।
पाने के लिए होती है अकुलाहट ।"[1]

6.1.3 ध्वनि बिम्ब :

मुक्तिबोध ने ध्वनियों को पूरी तरह शब्दबद्ध किया है । ध्वनियों की शब्दों में व्यंजना जैसी मुक्तिबोध के काव्य में मिलती है वैसी बहुत कम अन्यत्र दिखाई देते है । 'ब्रह्मराक्षस' कविता की निम्नांकित पंक्तियों में 'छपाछप' शब्द की ध्वन्यात्मकता स्वतः ही 'ब्रह्मराक्षस' के स्त्रान की क्रिया को पूर्णतया मूर्त कर देती है ।

"ब्रह्मराक्षस ।
घिस रहा है देह ।
हाथ के पंजे, बराबर ।
बाँह, छाती, मुँह छपाछप ।
खूब करते साफ ।
फिर भी मैल ।
फिर भी मैल ।"[2]

---

1. चाँद का मुँह टेढ़ा है, मुक्तिबोध, पृ.99
2. वही, पृ.36

'चकमक की चिनगारियाँ' कविता में ध्वनि का यह उत्कृष्ट बिम्ब देखने योग्य है । दृष्टव्य -

"थपाथप पिटते हैं जोर से तबला ढ़पाढ़प, और ।
झंकृत नाद-गतियों की गगन में याम ।
तुम - तुम - तोम तम्बूरे,
विलक्षण भोग अपनी वेदना के क्षण,
मिलाते सुर हवाओं से,
कि बिल्डिंग गूँजती है, काँप जाती है ।
दिवाले ले रही आलाप ।
पत्थर गा रहे हैं तेज,
तूफानी हवाएँ घूम करती गूँजती रहती ।
उखड़ते चौखटों में ही ।
खड़ाखड़ खिड़कियाँ नाचती,
भड़ाभड़ सब बजा करते खड़े बेडोल दरवाजे ।"[1]

यहाँ ध्वनि बिम्बों के माध्यम से एक विशिष्ट वातावरण को मूर्त किया गया है । थपाथप, ढपाढप, तुम-तुम-तोम, खड़ाखड़, भड़ाभड़ ऐसे ध्वन्यात्मक शब्द हैं जो कवि के लिए अपेक्षित वातावरण मूर्त करने में सहायता करते हैं ।

6.1.4 भाव बिम्ब :

भावों की अभिव्यक्ति के लिए मुक्तिबोध ने भाव बिम्बों का बड़ी कुशलता से अपने काव्य में करूण, विषाद, बीभत्स, उत्साह, भयानक आदि भाव बिम्बों का प्रचुरता से प्रयोग मिलता है ।

6.1.5 करूण बिम्ब :

मन में दया की भावना उत्पन्न करनेवाला एक मार्मिक करूण बिम्ब दृष्टव्य हैं -

".....मैं अपनो कमरे में ।
यहाँ पड़ा हुआ हूँ ।

1. चाँद का मुँह टेढ़ा है, मुक्तिबोध, पृ.168

आँखें खुली हुई हैं,
पीटे गये बालक-सा मार खाया चेहरा ।
उदास इकहरा,
स्लेट-पट्टी पर खींची गई तसवीर ।
भूत-जैसी आकृति
क्या वह मैं हूँ ।
मैं हूँ ?"[1]

6.1.6 विषाद-बिम्ब :

विषाद बिम्ब की अभिव्यक्ति के लिए कवि ने कहीं-कहीं पर प्रकृति का सहारा लिया है । यथा -

"सूनी है राह, अजीब है फैलाव,
सर्द अँधेरा ।
ढीली आँखों से देखते हैं विश्व ।
उदास तारे ।
हर बार सोच और हर बार अफसोस ।
हर बार फिक्र,
के कारण बढ़े हुए दर्द का मानों कि दूर वहाँ,
दूर वहाँ अंधियारा पीपल देता है पहरा ।
हवाओं की निसंग लहरों में काँपती ।
कुत्तों की दूर-दूर अलग-अलग आवाज,
टकराती रहती सियारों की ध्वनि से ।"[2]

6.1.7 बीभत्स बिम्ब :

मुक्तिबोध ने 'ओ काव्यात्मन् फणिधर' कविता में पाठकों के मन में धृणा निर्मित कर देने वाला बीभत्स बिम्ब प्रस्तुत किया है । यथा -

"वह बड़ा तन, मोटी डालें,

---

1. चाँद का मुँह टेढ़ा है, मुक्तिबोध, पृ.263
2. वही, पृ.261-262

अधजले फिंके कण्डे व राख ।

नीचे तल में ।

वह पागल युवती सोयी है ।

मैली दरिद्री स्त्री अस्त-व्यस्त

उसके बिखरे हैं बाल व स्तन है लटका-सा,

अनगिनत वासना-ग्रस्तों का मन अटका था !

उनमें जो उच्छृंखल था, विश्रृंखल भी था,

उसने काले पल में इस स्त्री को गर्भ दिया !

शोषिता व व्यभिचरित आत्मा को पुत्र हुआ ।

स्तन मुँह में डाल, मश बालक ! उसकी झाई,

अब तक लेटी है पास उसी की परछाई !!"[1]

मुक्तिबोध की 'शब्दों का अर्थ जब' कविता में भी बीभत्स बिम्ब को उजागर किया हुआ दिखाई देती है । यथा -

"जनता को ढोर समझ ।

ढोरों की पीठभरे ।

घावों में चोंच मार ।

रक्त भोज, मांस-भोज ।

करते हुए गर्दन भटकाते दर्प-भर

कौओं-सा भूखी अस्थि-पंजर शेष ।

नित्य मार खाती-सी ।

रँभाती हुई अकुलाती दर्द भरी ।

दीन मलिन गौओं-सा ।

शब्दों का अर्थ जब ।"[2]

---

1. चाँद का मुँह टेढ़ा है, मुक्तिबोध, पृ.144
2. भूरी-भूरी खाक धूल, मुक्तिबोध, द्वितीय सं., पृ.133

6.1.8 भयानक बिम्ब :

भयानक बिम्बों की सृष्टि करने में तो मुक्तिबोध कुशल हैं, 'चकमक की चिनगारियाँ' शीर्षक कविता की पंक्तियों में इस बिम्ब को देखा जा सकता है । यथा -

"अनेकों मंजिलों के तंग घेरों में ।
घने धब्बे कि सदियों का पुराना मेल -
लेटे धूल-खाते प्रेत ।
जिनकी हड्डियों के हाथ में पीले ।
दबे कागज ।
भयानक चिट्ठियों का जाल,
रॉयफल-गोलियों का कारतूसी ढेर ।
फैले युद्ध के नक्शे,
समुद्री पक्षियों की उग्र, जंगली आँख,
भीषण गन्ध घोंसलों में से ।
कि जिनमें पंख-दल की वे ।
घनी भीतें लटकती हैं ।"[1]

भयानक बिम्ब की पंक्तियों के दर्शन 'अँधेरे में' कविता में भी दृष्टिगोचर होते हैं । दृष्टव्य है -

"तालाब के आस-पास अँधेरे में वन-वृक्ष ।
चमक-चमक उठते हैं हरे हरे अचानक ।
वृक्षों के शीश पर नाच-नाच उठती हैं बिजलियाँ,
शाखाएँ, डालियाँ झूमकर झपककर ।
चीख, एक दूसरे पर पटकती हैं,
सिर की अकस्मात ।
वृक्षों के अँधेरे में छिपी हुई किसी एक ।
तिलस्मी खोइ का शिला-द्वार ।
खुलता है धड़ से ।"[2]

---

1. चाँद का मुँह टेढ़ा है, मुक्तिबोध, दसवाँ सं., पृ.164
2. वही, पृ.257

6.1.9 उत्साह-बिम्ब :

क्रान्तिकारियों की राह में फूल बिछाने वाला एक सुन्दर उत्साह-बिम्ब निम्न पंक्तियों में दृष्टव्य है -

> **"जन-संघर्षों की राहों पर ।**
> **आँगन के नीमों ने मजरियाँ बरसायी ।**
> **अम्बर में चमक रही बहना-बिजली से भी ।**
> **थी ताकत हिय में बरसायी ।**
> **जन-संघर्ष की राहों पर ।**
> **गंभीर घटनाओं ने ।**
> **युग जीवन सरसाया ।"[1]**

6.1.10 स्पर्श बिम्ब :

स्पर्श की संवेदना को अभिव्यक्त करने वाले बिम्ब स्पर्श बिम्ब की कोटि में रखे जाते हैं । मुक्तिबोध के काव्य में इस कोटि के खूब बिम्ब मिलते है । यथा -

> **"स्वयं की ग्रीवा पर ।**
> **फेरता हूँ हाथ कि ।**
> **करता हूँ महसूस ।**
> **एकाएक गरदन पर उगी हुई ।**
> **सघन अयाल और ।**
> **शब्दों पर उगे हुए बाल तथा ।**
> **वाक्यों में ओराँग-उटाँग के ।**
> **बढ़े हुए नाखून !!"[2]**

'डूबता चाँद कब डूबेगा' शीर्षक कविता की पंक्तियों में भी स्पर्श बिम्ब के दर्शन होते हैं । यथा -

---

1. चाँद का मुँह टेढ़ा है, मुक्तिबोध, दसवाँ सं., पृ.146
2. वही, पृ.44

"अपने ही कृत्यों - डरी ।

रीढ़ हड्डी ।

पिचपिची हुई ।

वह मेरे साँप के तन-सी ही लुचलुची हुई ।"[1]

6.1.11 रस बिम्ब :

कवि ने अनुभव को स्वादगत प्रतिक्रिया के रूप में व्यक्त होनेवाले या करनेवाले बिम्ब रस-बिम्ब कहलाते हैं । मुक्तिबोध के काव्य में रस बिम्बों का भी कुशल प्रयोग हुआ है ।

"बड़ी अजीब (आँसुओं सी नमकीन)

वह मिट्टी की सुगन्ध ।

मेरे हिये में समाती हैं ।"[2]

उपर्युक्त उदाहरण में हृदय में समाती हुई मिट्टी की सुगन्ध को आँसुओं-सा नमकीन बताया है । निम्नांकित पंक्तियों में हृदय में घँसती हुई लहरें असहनीय रूप से मीठी हैं -

"मेरे ही उर पर, धँसती हुई सिर,

छटपटा रही हैं शब्दों की लहरें ।

मीठी है दुःसह !!"[3]

6.1.12 गन्ध बिम्ब :

गन्ध से सम्बन्धित बिम्बों को गन्ध-बिम्बों के अन्तर्गत रखा जाता है । ध्राण-शक्ति के आधार पर इसमें वातावरण का चित्रांकन होता है । 'चाँद का मुँह टेढ़ा है' इस शीर्षक कविता में उत्कृष्ट मिलता है । यथा -

"अजगरी मेहराब ।

मरे हुए जमानों की संगठित छायाओं में ।

बसी हुई ।

---

1. चाँद का मुँह टेढ़ा है, मुक्तिबोध, दसवाँ सं., पृ.74
2. वही, पृ.98
3. वही, पृ.256

सड़ी-बुसी बास लिये ।
फैली है गली के ।
मुहाने में चुपचाप ।"[1]

6.1.13 मिश्रित बिम्ब :

जहाँ एक से अधिक इन्द्रिय, संवेदना को एक साथ अभिव्यक्त किया जाता है वहाँ मिश्रित बिम्ब होता है । ऐसे बिम्ब मुक्तिबोध के काव्य में अधिक मात्रा में नहीं मिलते । निम्न उदाहरण में रस, गन्ध, स्पर्श तथा शब्द की मिश्रित संवेदना दृष्टिगोचर होती है । यथा -

"अजी, इस मोड़ पर ।
बरगद की घनघोर शाखाओं की गठियल ।
अजगरी मेहराब -
मरे हुए जमानों की संगठित छायाओं में ।
बसी हुई ।
सड़ी-बुसी बास लिये ।
फैली है गली के ।
मुहाने में चुपचाप ।
लोगों के अरे !
आने-जाने में चुपचाप ।
अजगरी कमानों से गिरती है टिप-टिप ।
फड़फड़ाते पक्षियों की बीट ।"[2]

'मुझे याद आती है' कविता में भी मिश्रित बिम्ब के दर्शन होते हैं । दृष्टव्य हैं -

"प्रश्न पूछता हूँ मैं ।
आँखों के कोनों पर उतर के प्रारम्भिक ।
कडुए से आँसू ये मिठास छू ही लेते हैं ।"[3]

1. चाँद का मुँह टेढ़ा है, मुक्तिबोध, दसवाँ सं., पृ.53
2. वही, पृ.53
3. वही, पृ.97

6.1.14 स्मृति बिम्ब :

इस प्रकार के बिम्ब अनुभूति के पुनरूत्पाद होते हैं । मुक्तिबोध की कविताओं में ऐसे पर्याप्त बिम्ब हैं । 'मुझे याद आते हैं' कविता में कवि की स्मृति से जुड़ा हुआ बिम्ब -

"मुझे याद आती है ।
आँखों में तैरता है चित्र एक ।
उर में सँभाले दर्द ।
गर्भवती नारी का ।
कि जो पानी भरती है वजनदार घड़े से,
कपड़ों को धोती है भाड़-भाड़ ।
घर के काम बाहर के काम सब करती है,
अपनी सारी थकान के बावजूद ।"[1]

6.1.15 द्वन्द्वात्मक बिम्ब :

मुक्तिबोध के समुचे काव्य में द्वन्द्व की प्रधानता है । परस्पर विरोधी अवधारणों तथा विचारधाराओं का द्वन्द्व इस कवि के काव्य में स्पष्ट रूप से दृष्टिगत होता है । यही कारण है कि द्वन्द्वात्मक बिम्ब मुक्तिबोध के काव्य में देखे जा सकते हैं । निम्नांकित पंक्तियों में द्वन्द्व को व्यंजित किया जा रहा है । यथा -

"…..ये गरजती, गूँजती, आन्दोलिता ।
गहराइयों से उठ रहीं ध्वनियाँ अतः ।
उदभ्रात शब्दों के नये आवर्त में ।
हर शब्द निज प्रति शब्द को भी काटता ।
वह रूप अपने बिम्ब से भी जूझ ।
विकृताकारकृति ।
है बन रहा ।
ध्वनि लड़ रही अपनी प्रतिध्वनि से यहाँ ।"[2]

1. चाँद का मुँह टेढ़ा है, मुक्तिबोध, दसवाँ सं., पृ.97
2. वही, पृ.38

6.1.16 दृश्य-बिम्ब :

मुक्तिबोध ने अपने काव्य में दृश्य बिम्ब या चाक्षुष बिम्बों की बड़ी सुन्दर सृजना करके शिल्प पक्ष को सशक्त बनाया है । 'ब्रह्मराक्षस' कविता की कुछ पंक्तियाँ दृष्टव्य हैं -

"किन्तु गहरी बावड़ी ।
की भीतरी दीवार पर ।
तिरछी गिरी रवि-रश्मि ।
के उड़ते हुए परमाणु, जब ।
तल तक पहुँचते हैं कभी ।
तब ब्रह्मराक्षस समझता है सूर्य ने ।
झुककर 'नमस्ते' कर दिया ।"[1]

6.1.17 शब्द-बिम्ब :

जहाँ शब्दों के माध्यम से बिम्ब उपस्थित होते हैं वहाँ शब्द-बिम्ब होता है । यथा -

"पिछवाड़े ढेरों में खड़्खड़ ।
कोई गड़बड़ ।
सर सर करता छत चढ़ा,
फांद दीवार बढ़ा ।
वह नाग,
एक भयजनक श्याम-संवेदन कोब्रा ।"[2]

यहाँ सर सर शब्द कोब्रा की गति का द्योतक हैं । 'खडखड़' शब्द साँप के रेगने से उद्‌भूत है । ये सब कुछ 'गड़बड़ी' भी सूचित करते हैं ।

6.1.18 व्यक्ति-बिम्ब :

मुक्तिबोध के काव्य में व्यक्ति-बिम्ब के भी दर्शन होते हैं । 'भूल-गलती' कविता की निम्न पंक्तियों में व्यक्त बिम्ब दृष्टव्य है -

1. चाँद का मुँह टेढ़ा है, मुक्तिबोध, पृ.37
2. वही, पृ.141

"सामने

बेचैन घावों की अजब तिरछी लकीरों से कटा ।

चेहरा

कि जिस पर काँप

दिल की भाप उठती है.....

पहने हथकड़ी वह एक ऊंचा कद,

समूचे जिस्म पर लतर ।

झलकते लाल लम्बे दाग ।

बहते खून के ।

वह कैद कर लाया गया ईमान..... ।

कुलतानी निगाहों में निगाहें डालता,

बेखौफ नीली बिजलियों को फेंकता ।

खामोश !!"[1]

6.1.19 कारागार सम्बन्धी बिम्ब :

मुक्तिबोध के काव्य में कारागार सम्बन्धी बिम्ब भी बहुत हैं । ज्ञात हो मुक्तिबोध के पिता उज्जैन में पुलिस अफसर थे और थाने के भीतर ही उनका मकान भी था । मुक्तिबोध कैदियों को दी जानेवाली यंत्रणाओं को देखते-सुनते थे इसीलिए यह बिम्ब उनकी काव्य चेतना पर बार-बार आघात करता है । यथा -

"टेढ़े-मुँह चाँद की ऐयारी रोशनी भी खूब है ।

मकान-मकान घुस लोहे के गजों की जाली ।

के झरोखों को पार कर ।

लिये हुए कमरे में ।

जेल के कपड़े-सी फैली है चाँदनी,

दूर-दूर काली-काली ।

धारियों के बड़े-बड़े चौखट्टों के मोटे-मोटे ।

कपड़े-सी फैली है ।

---

1. चाँद का मुँह टेढ़ा है, मुक्तिबोध, पृ.29

लेटी है जालीदार झरोखे से आयी हुई ।

जेल सुझाती हुई ऐयारी रोशनी !!"[1]

6.1.20 सैनिक जीवन से सम्बन्धित बिम्ब :

'अँधेरे में' शीर्षक कविता में सैनिक-शासन की आतंकपूर्ण भयावहता का प्रभावशाली चित्र खींचा गया है । यथा -

"उनके पीछे चल रहा ।
संगीन, नोंकों का चमकता जंगल,
चल रही पदचाप, ताल-बद्ध दीर्ध पाँत ।
टैंक-दल, मोर्टार, ऑर्टिलरी, सन्नद्ध,
धीरे-धीरे बढ़ रहा जुलूस भयावना,
सैनिकों के पथराये चेहरे ।
चिढ़े हुए, झुलसे हुए, बिगड़े हुए, गहरे !"[2]

6.1.21 साहित्य सम्बन्धी बिम्ब :

मुक्तिबोध ने साहित्य सम्बन्धी बिम्बों का भी निर्माण किया है । यह एक विशिष्ट उपलब्धि है । यथा -

"घबराये प्रतीक और मुसकाते रूपचित्र लेकर
मैं घर पर जब लौटता ।
उपमाएँ द्वार पर आते ही कहती हैं ।
सौ बरस और तुम्हें ।
जीना ही चाहिये ।"[3]

6.1.22 रंग-बिम्ब :

मुक्तिबोध के काव्य में अनेक रंग-बिम्ब की योजना भी दृष्टिगोचर होती है । स्याह, काले और सांवले रंगों के बिम्ब तो उनके काव्य में बा-बार उभरते हैं । निम्नलिखित पंक्तियों में मुक्तिबोध की रंग-चेतना का सुन्दर उदाहरण है -

---

1. चाँद का मुँह टेढ़ा है, मुक्तिबोध, पृ.57
2. वही, पृ.266
3. वही, पृ.74

"फूड़ पड़ी नारंगी, कत्थई गेरूएँ ज्वाला ।
लाल-लाल चादरें, सिन्दुरी झण्डियाँ,
सुनहली पताकाएँ फरफरा रही हैं ।"[1]

वस्तुतः मुक्तिबोध के काव्य में बिम्बों की जो नवीनता तथा विविधता दृष्टिगत होती है, वह अन्यत्र दुर्लभ है । बिम्बों में समस्त प्रकारों को अपने में समेटे हुए मुक्तिबोध का काव्य बिम्बधर्मिता के गुण से पूरी तरह ओतप्रोत है । शमशेर बहादुरसिंह ने मुक्तिबोध के बिम्बों की विशेषता बताते हुए 'चाँद का मुँह टेढ़ा है' की भूमिका में लिखा है कि - "मुक्तिबोध की हर इमेज के पीछे शक्ति होती है, वे हर वर्णन को दमदार, अर्थपूर्ण और चित्रमय बनाते हैं ।"[2]

6.2 प्रतीक योजना :

"काव्य-भाषा के अन्तर्गत भावाभिव्यक्ति को सक्षम और प्रभावशाली बनाने के लिए 'प्रतीक' का प्रयोग किया जाता है । 'प्रतीक' के द्वारा कवि कम शब्दों में अधिक की व्यंजना करने में समर्थ होता हैं । दूसरे शब्दों में 'प्रतीक' विस्तार को संक्षेप में कहने का माध्यम है ।"[3]

प्रतीकों के विषय में विचार करते हुए सी.एम. बावरा ने कहा है - "ऐसा लगता है, मानवता को अभिव्यक्त करने के लिए प्रतीक खोजना पड़ा है । वास्तव में अभिव्यक्ति ही प्रतीकत्व है ।"[4]

कलाकार अपने जिस अनुभूत अंश को सामान्यतया व्यक्त नहीं कर पाता, उसकी अभिव्यक्ति वह प्रतीकों के सहारे करता हैं । इस रूप में यह भाषा की विशिष्ट प्रयोग विधि के रूप में सामने आता है । "जिस बोध को हम अभिधा में नहीं बाँध पाते, उसे आत्मसात करने या प्रेषित करने के लिए प्रतीकों का प्रयोग करना पड़ता है ।"[5]

---

1. चाँद का मुँह टेढ़ा है, मुक्तिबोध, पृ.238
2. आधुनिक हिन्दी कविता में शिल्प, डॉ. कैलाश वाजपेयी, पृ.75
3. हेरिटेज ऑफ ऐम्थेक्टिस, सी. एम. बावरा, पृ.73
4. चाँद का मुँह टेढ़ा है, मुक्तिबोध, पृ.23
5. आत्मनेपद, अज्ञेय, पृ.45

वस्तुतः हम यहाँ प्रतीकों को व्याख्यायित या परिभाषित करने के बजाय स्थूल रूप से देखें तो पता चलता है कि - "प्रतीक अप्रस्तुत, अप्रमेय, अगोचर अथवा अमूर्त का प्रतिनिधित्व करने वाले उस प्रस्तुत या गोचर वस्तु विधान को कहते हैं जो देश-काल एवं मान्यताओं के कारण हमारे मन में अपने चिर साहचर्य के कारण किसी तीव्र भावना को जागृत करता हैं ।"[1]

बिम्बों तथा प्रतीकों पर गहन चिन्तन-मनन करनेवाले विद्वान केदारनाथ सिंह का मत निम्न रूप से है - "प्रतीक एक प्रकार से रूढ़ उपमान का ही दूसरा नाम है, जब उपमान स्वतन्त्र न रहकर पदार्थ विशेष के लिए रूढ़ हो जाता है तो वह प्रतीक बन जाता है । इस प्रकार प्रत्येक प्रतीक अपने मूल रूप में उपमान होता हैं, धीरे-धीरे उसका बिम्ब रूप या चित्र रूप संचरणशील न रहकर स्थिर या अचल हो जाता है । अतः प्रतीक एक प्रकार का अचल बिम्ब है जिसके आयाम सिमट कर अपने भीतर हो जाते हैं ।"[2]

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने प्रतीकों के महत्व को पहचान कर ही लिखा था कि - "प्रतीक काव्य की अच्छी सिद्धि ही करते हैं ।"[3]

स्वर्गीय गजानन माधव मुक्तिबोध द्वारा प्रतीकों का बड़ा ही सटीक इस्तेमाल अपने काव्य में किया गया है । मुक्तिबोध के प्रतीक विधान के विषय में चंचल चौहान का मत निम्न है - "मुक्तिबोध के प्रतीक ही उनके अर्थ के स्त्रोत हैं । मुक्तिबोध का प्रतीक विधान अपनेपन की वर्षा करता है और साथ ही हमारे सबके अपने-अपने तृप्त अनुभवों की तुलना करने में सक्षम होता हैं । उसकी अपनी धक्-धक् में दर्दीले फैलेपन की मिठास हैं ।"[4]

मुक्तिबोध के काव्य में प्रतीकों की अधिकता ही उनकी प्रमुख विशेषता हैं । उनके प्रतीक परिचित होते हुए भी नवीन प्रतीत होते हैं । मुक्तिबोध की प्रतीक योजना के सम्बन्ध में डॉ. राजपाल शर्मा का कथन है - "मुक्तिबोध की

---

1. आधुनिक काव्य में प्रतीक विधान, डॉ. नित्यानंद तिवारी, पृ.21
2. आधुनिक हिन्दी कविता के बिम्ब विधान का विकास, डॉ. केदारनाथ सिंह, पृ.68
3. चिन्तामणि भाग-II, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृ.121
4. मुक्तिबोध - प्रतिबद्ध कला के प्रतीक, चंचल चौहान, पृ.32

अभिव्यक्ति शैली सुनियोजित व्यवस्थित और सुसम्बद्ध होती है । वह कदाचित वस्तुवाद और विज्ञान के आधार पर एक साहित्य दर्शन का निर्माण करना चाहते हैं । इसीलिए उनकी कविता में एक व्यवस्था हैं । फेण्टेसी मानवीकरण और प्रतीक उनको प्रिय हैं । ये फेण्टेसी का माध्यम ग्रहण करते हैं और प्रतीकों को मानवीकरण और प्रतिमाओं से सजाते हैं ।"[1]

कवि मुक्तिबोध का काव्य-साहित्य प्रतीकों से जड़ा हुआ भव्य-भवन प्रतीत होता है । प्रत्येक प्रतीक उनके चिन्तन का दर्पण है जिसमें अनुभूति का प्रतिबिम्ब दिखाई देता है ।

मुक्तिबोध की रचनाओं में विभिन्न प्रकार के प्रतीक दृष्टिगोचर होते हैं । मुख्य रूप से प्राकृतिक, पौराणिक, आध्यात्मिक, ऐतिहासिक, सैद्धान्तिक, शास्त्रीय साथ-ही-साथ ब्रह्मराक्षस, ओराँग-उटाँग, भैरों, चाँद, धुग्घू, टीला आदि दिखाई देते हैं ।

6.2.1 प्राकृतिक प्रतीक :

मुक्तिबोध ने प्रकृति से भी प्रतीकों को ग्रहण किया है । प्राकृतिक प्रतीकों में मुक्तिबोध ने निसर्ग के प्रायः हर कोने में झाँका है । पर्वत, पठार, घाटी, बरगद, कमल आदि कवि के अत्यंत प्रिय प्रतीक है । 'बरगद' उनका बहुचर्चित प्रतीक है, जो विभिन्न अवसरों पर विभिन्न अर्थ रखता है । कहीं स्नेह का, कहीं पूँजीभूत निराशा का, कहीं विषादमय जीवन का तो कहीं आतंकित जनपद का प्रतीक बन कर आया है । यथा -

"यह सही है कि चिलचिला रहे फासले,
तेज दुपहर भूरी ।
सब और गरम धास-सा रेंगता चला ।
काला-बाँका-तिरछा,
पर, हाथ तुम्हारे में जब भी मित्र का हाथ ।
फैलेगी बरगद-छाँह वहीं ।"[2]

---

1. नयी कविता के प्रतिनिधि कवि, राजपाल शर्मा, पृ.49
2. चाँद का मुँह टेढ़ा है, मुक्तिबोध, दसवा सं., पृ.32

'अँधेरे में' शीर्षक कविता में 'बरगद' एक तरह से परम्परा बोध का प्रतीक है । दृष्टव्य है -

"भयंकर बरगद ।
सभी उपेक्षितों, समस्त वंचितों,
गरीबों का वही घर वही छत ।"[1]

मुक्तिबोध ने 'बरगद' के साथ-ही-साथ 'कमल' का प्रयोग भी विभिन्न अर्थो में किया है । विवेक के रूप में कमल दृष्टव्य है -

"जिन्दगी के दलदल कीचड़ में धँस कर ।
वक्ष तक पानी में फँसकर ।
मैं वह कमल तोड़ लाया हूँ ।"[2]

'अँधेरे में' नामक अपनी कविता में कवि ने 'अरूण कमल' के प्रतीक का सृजन किया है । दृष्टव्य हैं अत्यन्त प्रसिद्ध पंक्तियाँ -

"अब अभिव्यक्ति के सारे खतरे ।
उठाने ही होंगे मठ और गढ़ सब ।
पहुँचना होगा दुर्गम पहाड़ों के उस पार ।
तब कहीं देखने मिलेंगी बाँहे ।
जिसमें कि प्रतिपल काँपता रहता,
अरूण कमल एक ।"[3]

इस प्रकार कवि मुक्तिबोध ने प्राकृतिक प्रतीकों का आश्रय लेकर अपने कथ्य को अत्यंत प्रभावशाली तथा सारगर्भित बनाया हैं ।

6.2.2 पौराणिक प्रतीक :

पौराणिक प्रतीकों में प्रायः रामायण, महाभारत या उपनिषदों से सहायता ली गई है । मुक्तिबोध ने पौराणिक प्रतीकों का चयन करके उसे आधुनिक सन्दर्भों से जोड़कर नये अर्थ में प्रयुक्त किया है । कुछ उदाहरण दृष्टव्य हैं -

---

1. चाँद का मुँह टेढ़ा है, मुक्तिबोध, दसवा सं., पृ.269
2. वही, पृ.139
3. वही, पृ.289

"इस नगरी में कौरव के घर ।
वीर द्रोण की थकान भरी है भूरी-भूरी ।
पीली है सूरत अनचाहों की सेवा में ।
कुन्ती-पुत्र कर्ण-कृप-सात्यकि की ग्रीवा में ।
कुत्ते की गर्दन का पट्टा ।
दुखते हुय से भीष्माचार्यो की मजबूरी ।
कौरव के घर !!"[1]

यहाँ सारे प्रतीक महाभारत से ग्रहीत हैं जहाँ कौरव के घर शोषण संस्थान हो गये हैं, जिसमें द्रोण, कृप, सात्यकि, कर्ण जैसे प्रतिभा संपन्न जन न चाहते हुए भी कुत्ते के समान उनकी चाकरी करने पर मजबूर हैं । अन्य उदाहरण निम्नरूप हैं -

"जाने कितने कारावासी वसुदेव
स्वयं अपने कर में, शिशु आत्मज ले ।
बरसाती रातों में निकले,
धँस रहे अँधेरे जंगल में ।
विक्षुब्ध पूर में यमुना के ।
अति-दूर अरे, उस नन्दग्राम की ओर चले ।
जाने किसके डर स्थानान्तरित कर रहे वे ।
जीवन के आत्मज सत्यों को,
किस महाकंस से भय खाकर गहरा-गहरा ।"[2]

उपर्युक्त उदाहरण में महाकंस शोषण का प्रतीक है । वसुदेव शोषित एवं शिशु आत्मज सत्य का प्रतीक है ।

6.2.3 आध्यात्मिक प्रतीक :

प्रायः पौराणिक तथा आध्यात्मिक प्रतीकों को सांस्कृतिक प्रतीकों के अन्तर्गत रखा जाता है । मुक्तिबोध ने आध्यात्मिक प्रतीक का भी सृजन किया है । दृष्टव्य है -

---

1. चाँद का मुँह टेढ़ा है, मुक्तिबोध, दसवा सं., पृ.72
2. भूरी-भूरी खाक धूल, मुक्तिबोध, द्वितीय सं., पृ.151

"तब धरती की महानाडियाँ,
इड़ा-पिंगला फड़क रही थीं ।
और सुषुम्ना के अभ्यन्तर ।
उन अंगारी प्राण-पथों पर ।
हम भी घूम रहे थे मानों ।
निर्णय - निश्चय ।
जीवन-संचय की कुण्डलिनी,
पृथ्वी के भीतर की ज्वालामुखी कमलिनी की ।
विवेकमय पंखुरियों पर ।
हम जा लेटे !!"[1]

उपर्युक्त उदाहरण हठयोगी आध्यात्म से युक्त है । जो शब्द प्रतीकों के रूप में प्रयुक्त हैं ।

6.2.4 ऐतिहासिक प्रतीक :

इतिहास के व्यक्ति एवं घटनाओं को विशिष्ट भाव, विचार आदि का प्रतिनिधित्व करते हुए वर्णित किया जाता है वहाँ ऐतिहासिक प्रतीक दृष्टिगोचर होते हैं । शिल्प की नवीनता तथा काव्य की उत्कृष्टता के लिए मुक्तिबोध ने ऐतिहासिक प्रतिकों का प्रयोग किया है ।

"अम्बर के पलने से उतार रवि राजपुत्र ।
ढाँककर सांवले कपड़ों में ।
रख दिशा-टोकरी में उसको
रजनी-रूपी पन्ना ढाई ।
अपने से जन्मा पुत्र-चन्द्र फिर
सुला गगन के पलने में ।
चुपचाप टोकरी सिर पर रख ।
रवि-राजपुत्र ले खिसक गयी ।
पुर के बाहर पन्ना दाई ।

1. चाँद का मुँह टेढ़ा है, मुक्तिबोध, दसवा सं., पृ.124

यह रात-मात्र उसकी छाया ।

घबराहट जो कि हवा में है ।

इसलिए कि अब ।

शशि को हत्या का क्षण आया ।"[1]

उपर्युक्त उदाहरण से ज्ञात होता है कि आज भी मालिकों के लिए अपने पुत्रों का बलिदान न जाने कितनी पन्ना दाईयों ने इस समाज में किया है । सिर्फ बलिदान के रूप बदल गये हैं, परम्परा ज्यों की त्यों कायम है । जैसे - माँ का मजदूर बेटा अपने रक्त से मिल मालिक के बेटे की दुनिया आबाद करता ही है । एक और ऐतिहासिक प्रतीक दृष्टव्य है -

"दुर्दान्त ऐतिहासिक स्पन्दन ।

के लाल रक्त से ळिकते तुलसीदास आज ।

अपनी पीड़ा की रामायण ।"[2]

उपर्युक्त पंक्तियों में कवि द्वारा तुलसीदास की रामायण काले अक्षरों में न लिखी जाकर लाल अक्षरों में लिखी जा रही है, बतलाकर लेखकीय चरित्र के क्रान्तिधर्मी होने के प्रतीकों को व्यक्त किया है ।

6.2.5 सैद्धान्तिक प्रतीक :

मुक्तिबोध ने कुछ ऐसे प्रतीकों की भी सृजना की है जिन्हें सैद्धान्तिक प्रतीकों की कोटि में रखा जा सकता है । आज के यांत्रिक परिवेश को वे ऐसे प्रतीकों के माध्यम से चित्रित करते हैं । कवि ने 'सहचर मित्र' नामक अपनी कविता में रिवाल्वर, पिस्टन, स्टीम, रोलर, लौइचक्र इत्यादि का प्रयोग करके यांत्रिक जीवन को बिल्कुल मूर्त कर दिया हैं । यथा -

"इस दिल के भरे रिवाल्वर में ।

बैचेनी जोर मारती है, इसमें क्या शक ।

क्यों ताकतवर उस मशीन के ।

पिस्टन की-सी दिल की धक्-धक् ।

---

1. चाँद का मुँह टेढ़ा है, मुक्तिबोध, पृ.73
2. भूरी-भूरी खाक धूल, मुक्तिबोध, द्वितीय सं., पृ.159

उदाम वेग से चला रही ।

ये लौहचक् ।

मन-प्राण-बुद्धि के विक्षोभी,

यह स्याह स्टीम-रोलर जीवन का,

सुख-दुःख की ।

कंकर गिट्टी यक-साँ करके,

है, एक रास्ता बना रहा युग के मन का ।

मेरे मन का !!"[1]

मुक्तिबोध ने क्रान्ति और आह्वान के प्रतीक के रूप में 'नाग' का आश्रय लिया है । कवि की 'ओर काव्यात्मन् फणिधर' कविता में 'नाग' ही नायक के रूप में प्रतिष्ठित है जो कवि के अतिशय प्रभावशाली होने का प्रमाण है । यथा -

"जन, उत्पीड़न विभ्राट-व्यवस्था के सम्मुख !!

उसके आशय का विष पी लो ।

ओ काली-काली भान-आग ।

ओ नागराज ।

इस वट की शाखाओं पर तुम करवट बदलो !!"[2]

6.2.6 शास्त्रीय या वैज्ञानिक प्रतीक :

जब शास्त्रों या विज्ञान के क्षेत्र में प्रतीकों का चयन कर काव्य में प्रयुक्त होते हैं, तब वे प्रतीक शास्त्रीय या वैज्ञानिक प्रतीक होते हैं । मुक्तिबोध ने शास्त्रीय प्रतीकों का भी बड़ी कुशलता के साथ प्रयोग किया है । उनके द्वारा प्रयुक्त शास्त्रीय प्रतीक निम्नवत् हैं -

"ये हस्ताक्षर वैज्ञानिक के ।

काल्पनिक राशियाँ क्वाण्टम की ।

ये पी.के.जे. ।

---

1. चाँद का मुँह टेढ़ा है, मुक्तिबोध, पृ.118-119
2. वही, पृ.143

यह आर. रेडियम का ।

ये अंब-पंक्ति के चित्र अनेकों रूप में !!

पर यह क्या है ?"[1]

भविष्य दृष्टि के चिन्तन में विकास के स्वरूप एवं सिद्धान्तों के प्रतीक रूप में वैज्ञानिक प्रतीक प्रयुक्त हैं । इसी प्रकार के उदाहरण निम्नवत् हैं -

"सुमैरी-बैबिलोनी जन कथाओं से ।

मधुर वैदिक ऋचाओं तक ।

व तब से आज तक के सूत्र ।

छन्दस्, मन्त्र, थियोरम,

सब प्रमेयों तक ।

कि मार्क्स, एंजेल्स, रसेल, टॉएन्वी ।

कि हिडेग्गर व स्पेंग्लर सार्त्र, गान्धी भी ।

सभी के सिद्ध-अन्तों का ।"[2]

इस उदाहरण में प्रतीक समाज एवं दर्शनशास्त्र से लिए गये हैं । इन प्रतीकों के अतिरिक्त और नये प्रतीक भी पाये जाते हैं । जैसे - 'ब्रह्मराक्षस' स्वयं मुक्तिबोध के व्यक्तित्व का प्रतीक है, 'लकड़ी का रावण', 'सूखे कठोर नंगे पहाड' शोषण सत्ता का प्रतीक है, तो 'ओरॉंग-उटॉंग' मानव के मन में छिपी हुई स्वार्थी तथा हिंसक प्रवृत्ति का प्रतीक है, 'भैरों' विद्रोही चेतना का प्रतीक है, 'चाँद पूँजीवादी व्यवस्था का प्रतीक है', 'बबूल' सर्वहारा वर्ग का प्रतीक है तो 'धुग्धू' पूँजीवादी व्यवस्था के वाहकों का प्रतीक है, 'टीला' मध्यम वर्ग का प्रतीक दिखाई देता है ।

1. ब्रह्मराक्षस :

'ब्रह्मराक्षस' मुक्तिबोध के व्यक्तित्व का प्रतीक है । मुक्तिबोध ने 'ब्रह्मराक्षस' का अनेक बार प्रयोग किया है । वह आज के बाह्य एवं आंतरिक संघर्षों के बीच पिसते हुए मानव का प्रतीक भी बनकर आया है -

---

1. भूरी-भूरी खाक धूल, मुक्तिबोध, द्वितीय सं., पृ.52
2. चाँद का मुँह टेढ़ा है, मुक्तिबोध, पृ.37

“पिस गया वह भीतरी ।
औ बाहरी दो कठिन पाटों बीच,
ऐसी ट्रेजेडी है नीच !!”[1]

इस अर्थ में ‘ब्रह्मराक्षस’ स्वयं मुक्तिबोध के व्यक्तित्व का प्रतीक बन जाता है क्योंकि मुक्तिबोध भी बाहरी और भीतरी दो कठिन पाटों के बीच पिसे हुए कवि है । इतना ही नहीं, वह स्वयं ‘ब्रह्मराक्षस’ के शिष्य बनकर उसके अधूरे कार्य को पूर्ण करना चाहते है ।

2. लकड़ी का रावण :

‘लकड़ी का रावण’ मुक्तिबोध का शोषण सत्ता का प्रतीक है । मुक्तिबोध को विश्वास है कि जनवादी क्रान्ति शोषण की इस सत्ता को उखाड़ देगी, नष्ट कर देगी । यथा -

“बढ़ न जायँ ।
छा न जायँ ।
मेरी इस अद्वितीय ।
सत्ता के शिखरों पर स्वर्णाभ,
हमला न कर बैठे खतरनाक ।
कुहरे के जनतन्त्री ।
वानर ये, नर ये !!”[2]

3. सूखे कठोर नंगे पहाड :

यह युगों-युगों से चली आ रही शोषण-व्यवस्था का प्रतीक हैं । जिसमें लाभ-लोभ, मोह और आतंक का प्रभाव दिखाकर भोले-भाले जनों का शोषण करते दिखाई देता हैं । कवि इस प्रतीक को निम्नरूप से स्पष्ट करता है -

“ये अहं-गर्भ ज्ञान-प्राण, शोषण-प्रसन्न ।
युग-युग की सचित ‘संस्कृति’ के ये सड़े रूप ।
हैं खड़े हुए उद्धत अखण्ड ।

1. चाँद का मुँह टेढ़ा है, मुक्तिबोध, पृ.41
2. वही, पृ.49

उद्दण्ड बिजड़ खल्वाट-शीर्ष ।

रख आसमान में दर्पपूर्ण,

काले पत्थर का तान धृष्टतापूर्ण,

दुष्ट सीना कठोर ।

हैं रहे रोक आतुर वर्षा लेकर आती व्याकुल समीर ।

इनसे टकरा आहत होकर वापिस जाती ठण्डी बयार ।

कर गिरफ्तार ये शिला-वक्ष-शैतान घोर !!

सूखे पहाड़ नंगे कठोर ।"[1]

यहाँ कवि दुष्ट व्यवस्था के प्रतीक ऐसे पहाड़ों की तिलस्मी सत्ता और मायावी शक्ति के दुर्ग को पूरी तरह ध्वस्त कर देना चाहता है ।

4. ओराँग-उटाँग :

'ओराँग-उटाँग' मानव के मन में छिपी हुई स्वार्थी हिंसक प्रवृत्ति का प्रतीक है, जिसे हम सभ्यता के आवरण में, किसी भीतरी प्रकोष्ठ में, भारी भरकम सन्दूक में छिपाये रखना चाहते हैं । मुक्तिबोध ने इस आदिम प्रवृत्ति का 'ओराँग-उटाँग' के माध्यम से प्रभावशाली चित्रण किया है । दृष्टव्य है -

"कक्ष के भीतर ।

एक गुप्त प्रकोष्ठ और ।

कोठे के साँवले गुहान्ध कार में ।

मजबूत..... सन्दूक ।

दृढ़, भारी-भरकम ।

और उस सन्दूक भीतर कोई बन्द है ।

यक्ष ।

या कि ओराँग-उटाँग हाय ।

अरे ! डर यह है..... ।

न ओराँग..... उटाँग कहीं छूट जाय,

कहीं प्रत्यक्ष न यक्ष हो ।

---

1. भूरी-भूरी खाक धूल, मुक्तिबोध, द्वितीय सं., पृ.218-219

करीने सेसजे हुए संस्कृत..... प्रभामय ।

अध्ययन-गृह में ।

बहस उठ खड़ी जब होती है -

विवाद में हिस्सा लेता हुआ मैं ।

सुनता हूँ ध्यान से ।

अपने ही शब्दों का नाद, प्रवाह और ।

पाता हूँ अकस्मात ।

स्वयं के स्वर में ।

ओराँग-उटाँग की बौखलाती हुंकृति ध्वनियाँ ।"[1]

5. भैरों :

गजानन माधव मुक्तिबोध ने 'भैरों' को विद्रोही चेतना का प्रतीक बतलाकर अभावग्रस्त वर्ग की विशेषताओं से मुक्त होने की आशंका व्यक्त की हैं । दृष्टव्य हैं -

"पोस्टर पहने हुए ।

बरगद की शाखें ढीठ ।

पोस्टर धारण किये ।

भैरों की कड़ी पीठ ।

भैरों और बरगद में बहस खड़ी हुई हैं ।

जोरदार जिरह की कितना समय लगेगा ।

सुबह होगी कब और ।

मुश्किल होगी दूर कब ।"[2]

यहाँ 'सुबह' शोषण पर आधारित सामन्ती व्यवस्था के समाप्त होने का प्रतीक है ।

6. चाँद :

'चाँद' प्रतीक का प्रयोग परंपरागत रूप से सौन्दर्य के लिए होता हैं

1. चाँद का मुँह टेढ़ा है, मुक्तिबोध, पृ.42-44
2. वही, पृ.68

किन्तु मुक्तिबोध ने उसे परंपरागत अर्थ में प्रयुक्त न कर पूँजीवादी व्यवस्था का प्रतीक माना है । यथा -

> **"रवि निकलता ।**
> **लाल चिन्ता की रुधिर-सरिता ।**
> **प्रवाहित कर दीवारों पर,**
> **उदित होगा चन्द्र ।**
> **श्वेत-धौली पट्टियाँ ।**
> **उद्विग्न भालों पर ।"[1]**

7. धुग्धू :

'धुग्धू' पूँजीवादी व्यवस्था के वाहकों का प्रतीक है । रात्रि के अन्धकार में कार्य करता हैं । दिन के प्रकाश में यथास्थिति का हिमायती बना फिरता है । दो उल्लुओं की बातचीत से स्पष्ट होता है । यथा -

> **"गान्धी के पुतले पर ।**
> **बैठे हुए आँखों के दो चक्र ।**
> **यानी कि धुग्धू एक-तिलक के पुतले पर ।**
> **बैठे हुए धुग्धू से ।**
> **बातचीत करते हुए ।**
> **कहता ही जाता है -**
> **..... मसान में ।**
> **मैंने भी सिद्धी की ।**
> **देखो मूठ मार दी ।**
> **मनुष्यों पर इस तरह..... ।"[2]**

---

1. चाँद का मुँह टेढ़ा है, मुक्तिबोध, पृ.39
2. वही, पृ.58

8. बबूल :

मुक्तिबोध ने 'बबूल' को सर्वहारा वर्ग के प्रतीक के रूप में व्यक्त किया है । 'चकमक की चिनगारियाँ' की निम्नवत् पंक्तियाँ देखिए -

"जहाँ सूखे बबूलों की कँटीली पाँत ।
भरती है हृदय में धुन्ध डूबा दुःख,
भूखे बालकों के श्याम चेहरों साथ ।
मैं भी घूमता हूँ शुष्क ।"[1]

9. टीला :

यह मध्यम वर्ग का प्रतीक हैं । पूँजीवाद के नष्ट हो जाने पर समाजवादी व्यवस्था का जन्म होता है । मध्यवर्गीय व्यक्ति अपने से निम्न वर्ग की उपेक्षा न कर उसे अपनाता है तो ज्ञान नये सत्य के रूप में दीप्त होता है और उसे नये रत्न की प्राप्ति होती है । यथा -

"अतः हमने अपरिचिय, बेरूखेपन ।
औ' उपेक्षा की ।
खड़ी भूरी पहाड़ी खोद डाली और
उसमें से निकाले जगमगाते रत्न ।"[2]

10. रवि :

रवि प्रतीक को भी भिन्न-भिन्न सन्दर्भ में कवि ने अभिव्यक्त किया है । 'देख कीर्ति के नितम्ब इठलाते' कविता में रवि प्रतीक 'ऐतिहासिक अनुभवात्मक ज्ञान' के प्रतीक के रूप में प्रयुक्त है । यथा -

"लेकिन, जन-गलियों में जलता ।
सूरज का प्राचीन दिया,
किस दिन किसको कैसे किसने ।
कहाँ व कितना खून दिया ।"[3]

---

1. चाँद का मुँह टेढ़ा है, मुक्तिबोध, पृ.167
2. वही, पृ.154
3. भूरी-भूरी खाक धूल, मुक्तिबोध, द्वितीय सं., पृ.74-75

11. गिद्ध दल :

'गिद्ध दल' उस विचारधारा और मानसिकता का प्रतीक है जो पूँजीवादी व्यवसायिक सभ्यता तथा संस्कृति के आश्रय में जी रहा है । ये वे लोग हैं, जो जनसामान्य को गुमराह बनाते हैं । ये गिद्ध-दल सत्तापोषित बुद्धिजीवियों के प्रतीक हैं । यथा -

"…..अँधेरे स्याह धब्बे सूर्य के भीतर ।
बहुत विकराल ।
धब्बों के अँधेरे विवर तल में-से ।
उभरकर उमड़कर दल बाँध ।
उड़ते आ रहे हैं गिद्ध ।
पृथ्वी पर झपटते हैं ।
निकालेंगे नुकीली चोंच से आँखें,
कि खायेंगे हमारी दृष्टियाँ ही वे !"[1]

इस प्रकार हम देखते हैं कि मुक्तिबोध द्वारा प्रयुक्त प्रतीक अत्यन्त उच्च कोटि के प्रतीक हैं । उनकी विद्वता, चिन्तन-मनन तथा रचना धर्मिता के ही उन्नत मानदण्ड हैं । युगीन सजगता के भी संवाहक हैं । इनके काव्य में सभी प्रकार के प्रतीक दृष्टिगत होते है । केवल इन्होंने परम्परा से ही प्रतीकों को ग्रहण नहीं किया बल्कि प्रतिभा के आधार पर भी सृजन किया है । इसी कारण मौलिकता उनके प्रतीकों का सबसे बड़ा गुण हैं ।

6.3 अलंकार-योजना :

अलंकारों के सन्दर्भ में विचार करने पर नाना प्रकार के विद्वानों के मत-मतान्तर हमारे सम्मुख दृष्टिगोचर होते हैं । आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने अपने विचार व्यक्त करते हुए लिखा है कि - "भावों का उत्कर्ष दिखाने और वस्तुओं के रूप-गुण और क्रिया का अधिक तीव्र अनुभव कराने में कभी-कभी सहायक होने वाली युक्ति अलंकार हैं ।"[2] किन्तु कविता के अन्तर्गत पहले यह स्थिति

1. चाँद का मुँह टेढ़ा है, मुक्तिबोध, पृ.202
2. गोस्वामी तुलसीदास, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृ.147

मान्य नहीं थी । वे कविता का आभूषण और चमत्कार आदि जाने क्या-क्या कहकर अतिशय महत्ता प्राप्त थे । परन्तु बाद के युगों में धारणायें टूटीं, पुरानी व्यवस्था को धक्का लगा । श्री सुमित्रानन्दन पंत ने 'पल्लव' में लिखा है कि - "अलंकार केवल वाणी की सजावट के लिए ही नहीं, वे भाव की अभिव्यक्ति के विशेष द्वार हैं ।"[1]

दिनकर भी अलंकार के सन्दर्भ में अपना मत व्यक्त करते हुए कहते हैं कि - "कविता में अलंकारों के वास्तविक प्रयोग का उद्देश्य अतिरंजन नहीं अपितु वस्तुओं का अधिक सुनिश्चित वर्णन हैं ।"[2] तार-सप्तक के संपादक श्री अज्ञेयजी ने अलंकारों के प्रयोग के सन्दर्भ में स्पष्ट मत व्यक्त करते हुए कहा - "हिन्दी में नवोन्मेष से विस्फूर्जित और उत्सेकित कल्पना का अभाव है, उसके लिये अलंकार विधान में आमूल परिवर्तन की आवश्यकता है । उपमानों में नवीनता लाने के लिए उनका परिमार्जन आवश्यक है । रूपकों की कलई खोलनी होगी । काव्य में प्रयुक्त उत्प्रेक्षाएँ सहज और स्वाभाविक रूप से मतोद्वेग से प्रेरित होनी चाहिए ।"[3]

गजानन माधव मुक्तिबोध परम्परा के अलंकारों की असमर्थता को रेखांकित करते हुए कहते हैं, "नयी काव्य प्रवृत्ति के क्षेत्र के कुछ महान व्यक्ति अपनी रूचि के फलस्वरूप सौन्दर्य का जो प्रतिमान हमारे सामने रखते हैं उसमें जब तक व्यापक संशोधन नहीं होगा तब तक हम अपने ही जीवन अनुभवों का पूर्ण और प्रभावशाली चित्र उपस्थित नहीं कर सकते ।"[4]

मुक्तिबोध की कविताओं में अलंकारों को समूची सुन्दरता के साथ प्रस्तुत किया गया है । कविता कहीं भी अलंकार से बोझिल प्रतीत नहीं होती । मुक्तिबोध की कविताओं में अलंकार, बिम्ब और प्रतीक इतने घुल-मिल गये हैं कि उन्हें सहजता से अलग नहीं किया जा सकता । इतना ही नहीं कवि की

---

1. पल्लव, प्रवेश, सुमित्रानन्दन पंत, पृ.8
2. चक्रवाल, भूमिका, दिनकर, पृ.73
3. तार - सप्तक - अज्ञेय, तृतीय सं., पृ.126
4. नयी कविता का आत्मसंघर्ष तथा अन्य निबन्ध, मुक्तिबोध, पृ.9

अलंकार योजना जीवन के वास्तविक यथार्थ से परिपूर्ण है । उनके काव्य में शब्दालंकार और अर्थालंकारों का मणिकांचन संयोग है । मानवीकरण नामक पाश्चात्य जगत से आये अलंकार का प्रयोग इस कवि के काव्य में अधिक हुआ है । इसके अतिरिक्त अनुप्रास, उत्प्रेक्षा, वीप्सा, रूपक, उपमा, सन्देह, विरोधाभास आदि अलंकारों का भी बहुलता से प्रयोग दिखाई देता है । यदा-कदा अपन्हुति का प्रयोग दृष्टिगत होता है । मुक्तिबोध के काव्य में प्रयुक्त अलंकारों के उदाहरण निम्न हैं -

6.3.1 अनुप्रास अलंकार :

मुक्तिबोध अलंकारों के पीछे कभी दोड़े नहीं, किन्तु अलंकार ही उनके भावों के अनुगामी रहे है । 'अनुप्रास' शब्द का अर्थ है - 'अनु' अर्थात् 'बार-बार' और 'प्रास' अर्थात् रखना । इसमें विशिष्ट व्यंजनों की आवृत्ति शब्दों में क्रम की दृष्टि से होती है । निम्न पंक्तियों में अनुप्रास अलंकार की छटा दृष्टव्य है -

"औ' जीवन-मन के सुन्दर सुन्दर समाधान ।
सन्तोष और सन्तुलन ।
रूधिर, औचित्य, उचित, अभिरूचि के रंग ।
कि रंग-बिरंगे काँच-कंगनों से ।
सब छिन्न-भिन्न होंगे ।"[1]

6.3.2 उत्प्रेक्षा अलंकार :

उत्प्रेक्षा अलंकार में उपमेय की संभावना होती है । वैसे उत्प्रेक्षा अलंकारों के अनेक विभेद भी होते हैं । मुक्तिबोध के काव्य में उत्प्रेक्षा अलंकार के अनेक उदाहरण प्राप्त होते हैं । निम्न पंक्तियों में दृष्टव्य है -

"किन्तु, गहरी बावड़ी ।
की भीतरी दीवार पर ।
तिरछी गिरी रवि-रश्मि ।
के उड़ते हुए परमाणु, जब ।
तल तक पहुँचते हैं कभी ।

1. भूरी-भूरी खाक धूल, मुक्तिबोध, द्वितीय सं., पृ.63

तब ब्रह्मराक्षस समझता है, सूर्य ने ।

झुककर 'नमस्ते' कर दिया ।"[1]

इसी तरह निम्न पंक्तियों में उत्प्रेक्षा दृष्टव्य है -

"बिल्कुल सफेद ।
वह खिली हुई थी धूप ।
झाडियों की छायाओं के धब्बे ।
थे ऊँघ रहे ।
उस पिछवाड़े के जंगल में ।
मानों सफेद-झक कागज,
उस पर तसवीरें ।
दागों की ही ।"[2]

6.3.3 वीप्सा अलंकार :

आदर, घबराहट, आश्चर्य, धृणा आदि में किसी शब्द का दुहराया जाना वीप्सा अलंकार है । किसी भाव को अधिक प्रभावोत्पादक बनाये जाने के लिए शब्द दुहराये जाते हैं । यथा किसी के आने पर आदर दर्शाने के लिए कहते हैं - आईये आईये, घबराहट में कहते हैं भागो भागो ।

मुक्तिबोध ने इस अलंकार का प्रयोग अधिक मात्रा में किया है । दृष्टव्य है -

"पीली-पीली चिन्ता के अंगारों, जैसे पर,
मुझे याद आती भगवान राम की शबरी,
मुझे याद आती लाल-लाल जलती हुई ढिबरी ।
मुझे याद आता है मेरा प्यारा-प्यारा देश ।
लाल-लाल सुनहला आदेश ।
अन्धा हूँ, खुदा के बन्दों का बन्दा हूँ बावला ।
परन्तु कभी-कभी अनन्त सौन्दर्य सन्ध्या में शंका के ।"[3]

1. चाँद का मुँह टेढ़ा है, मुक्तिबोध - दसवाँ सं., पृ.37
2. भूरी-भूरी खाक धूल, मुक्तिबोध, द्वितीय सं., पृ.71
3. चाँद का मुँह टेढ़ा है, मुक्तिबोध - दसवाँ सं., पृ.139

इसी प्रकार निम्न पंक्तियों में वीप्सा दिखाई देता है ।

"वह काले-काले बाल ढँका अत्यन्त प्रदीर्ध मूर्ख जबड़ा ।
दाँतों के बीच-बीच लहराते रक्त-ताल ।
मुख-अन्तराल में जिसके वह माता शूकरी ।
तुरत खा गयी ।
ताजे जनमें पुत्रों को ही ।
चमकदार पथरीली आँखों वाली वह ।
उद्दण्ड चतुर मार्जारी भी
उसकी मूँछों के लम्बे-लम्बे बाल ।"[1]

6.3.4 रूपक अलंकार :

अर्थालंकारों में रूपक का स्थान अत्यंत महत्वपूर्ण है । रूपक में उपमेय और उपमान की एकरूपता होती है । मुक्तिबोध की कविताओं में रूपक अलंकार का भी सुन्दर एवं अनोखा प्रयोग परिलक्षित होता है । कहीं-कहीं उनका प्रयोग मौलिक दिखाई देता है । यथा -

"अम्बर के पलने से उतरा रवि, राजपुत्र ।
ढाँककर साँवले कपडों में ।
रख दिशा-टोकरी में उसको ।
रजनी-रूपी पन्ना दाई ।
अपने से जन्मा पुत्र-चन्द्र फिर सुला गगन के पलने में ।
चुपचाप टोकरी सिर पर रख ।
रवि-राजपुत्र ले खिसक गयी ।
पुर रके बाहर पन्ना दाई ।"[2]

मुक्तिबोध की कविताओं में रूपक के अनेक उदाहरण प्राप्त होते है । यथा -

"नीला पौधा ।
यह आत्मज ।

---

1. भूरी-भूरी खाक धूल, मुक्तिबोध, द्वितीय सं., पृ.59
2. चाँद का मुँह टेढ़ा है, मुक्तिबोध - दसवाँ सं., पृ.73

रक्त-सिंचित हृदय-धरित्रि का ।

आत्मा के कोमल आलवाल में ।

यह जवान हो रहा ।

कि अनुभव-रक्त-ताल में डूबे उसके पदतल ।

जड़े ज्ञान संविदा ।

कि पीती अनुभव ।

वह पौधा बढ़ रहा ।

तुम्हारे उर में अनुसन्धित्सु क्षोभ का बिरवा ।

वह मैं ही हूँ !!!"[1]

6.3.5 उपमा अलंकार :

किसी प्रस्तुत वस्तु की तुलना में किसी प्रसिद्ध अप्रस्तुत वस्तु को रखकर समानता के सहारे वर्णन किया जाता है, वहाँ उपमा दृष्टिगोचर होता है । मुक्तिबोध ने सहज स्वाभाविक ढंग से उपमा अलंकार का प्रयोग किया है । यथा -

"अपावन अशुद्ध घेरे में घिरे हुए ।

नपुंसक पंखों की छटपटाती रफ्तार ।

घिना चिमगादड-दल ।

भटकता है प्यासा-सा ।

बुद्धि की आँखों में ।

स्वार्थों के शीशे-सा !!"[2]

मुक्तिबोध की यह विशेषता है कि वे एक प्रस्तुत (उपमेय) के लिए कई अप्रस्तुतों (उपमानों) का बड़ा सुन्दर प्रयोग कर अपने शिलाप कौशल को प्रकट करते हैं । देखे निम्नांकित पंक्तियों में -

"अहं की वृत्तियों के मानसिक ।

मकड़ी के जालों सा सूक्ष्मतम ।

श्रद्धा के द्वारों पर लगे हुए ।

---

1. भूरी-भूरी खाक धूल, मुक्तिबोध, द्वितीय सं., पृ.62
2. चाँद का मुँह टेढ़ा है, मुक्तिबोध - दसवाँ सं., पृ.57

स्वार्थो के तालों-सा ।

जीने के जीने की ।

अँधेरी व चक्करदार ।

सीढ़ियों पर चोरों के ।

पैरों की बार-बार ।

प्रतिध्वनि-ध्वनियों-सा ।

शब्दों का अर्थ जब ।"[1]

6.3.6 सन्देह अलंकार :

उपमेय में उपमान का संशय सन्देह अलंकार है । दो वस्तुओं की समान भावना में किसी एक पक्ष में निर्णय न कर सकना सन्देह है । मुक्तिबोध ने इस अलंकार का भी सफल प्रयोग किया है । यथा -

"चुपचाप, तेज, देखता रहा -

झरने के पथरीले तट पर ।

रात के अँधेरे में घीरे -

चुपचाप, कौन वह आता है, या आती है ।

उसके पीछे -"[2]

इसी भाँति निम्न पंक्तियों में भी सन्देह अलंकार दृष्टिगोचर होता है -

"कि इतने में ।

चंचल हँसती कोई छाया ।

कोई नव बाल मित्र आया ।

कापी हाथों में, एक चित्र चमकीला है ।

मैंने देखा शायद कि भाग्य की लीला हो ।"[3]

6.3.7 विरोधाभास अलंकार :

विरोधामूलक अलंकारों में विरोधाभास सबसे अधिक प्रसिद्ध है ।

---

1. भूरी-भूरी खाक धूल, मुक्तिबोध, द्वितीय सं., पृ.129
2. चाँद का मुँह टेढ़ा है, मुक्तिबोध - दसवाँ सं., पृ.70
3. भूरी-भूरी खाक धूल, मुक्तिबोध, द्वितीय सं., पृ.52

मुक्तिबोध के काव्य साधना में भी विरोधाभास अलंकार प्रचुर मात्रा में दृष्टिगोचर होता है ।

"जैसे कि हब्शी का गहरा स्याह ।
गोरों की निगाहों से अलग ओझल ।"[1]

"पुराने रोशनी-घर के अँधेरे शून्य-टॉवर से"[2]

6.3.8 अपन्हुति अलंकार :

प्रस्तुत का निषेध कर जहाँ अप्रस्तुत की स्थापना की जाती है वहाँ अपन्हुति अलंकार होता है । इस प्राचीन अलंकार का नये ढंग से प्रयोग मुक्तिबोध के शिल्प वैशिष्ट्य की विशेषता है । मुक्तिबोध ने निम्नांकित पंक्तियों में परस्परित 'न' के स्थान पर 'अथवा' का प्रयोग कर अपन्हुति अलंकार का सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत किया है । यथा -

"वह कोलतार, पथ अथवा ।
भरी हुई खिंची हुई काली जिह्वा ।
बिझली के द्युतिमान दिये या ।
भरे हुए दाँतों का चमकदार नमूना ।"[3]

6.3.9 मानवीकरण अलंकार :

मानवीकरण अलंकार पश्चिम की देन है । इस अलंकार का प्रयोग मुक्तिबोध ने सफलतापूर्वक किया है । इनकी काव्य रचनाओं में मानवीकरण का प्रयोग प्रचुर मात्रा में दिखाई देता है । यथा -

"अपनी छायाएँ सभी तरफ ।
हिल-डोल रहीं ।
ममता मायाएँ सभी तरफ ।
मिल बोल रहीं,
हम कहाँ नहीं, हम जगह-जगह ।

1. चाँद का मुँह टेढ़ा है, मुक्तिबोध - दसवाँ सं., पृ.156
3. भूरी-भूरी खाक धूल, मुक्तिबोध - द्वितीय सं., पृ.166
3. चाँद का मुँह टेढ़ा है, मुक्तिबोध - दसवाँ सं., पृ.264

हम यहाँ-वहाँ,

माना कि हवा में थर्राता गाना भुतहा,

हम सक्रिय हैं ।"[1]

निम्न पंक्तियों में अमूर्त का मानवीकरण किया गया है -

"देख कीर्ति के नितम्ब इठलाते -

लालच ने पुकार की ।

पीड़ा-भरी हँकार की,

लोभ-ईर्ष्या, तब रंगीन ।

उडंछू पंख पसारकर ।

उन्हीं नितम्बों पर जा बैठे ।

उनका रंग उभारकर ।

नितम्ब बढ़ते गये प्रतिष्ठा के महत्व के सार थे ।"[2]

6.3.10 ध्वन्यर्थ व्यंजना अलंकार :

ध्वन्यर्थ व्यंजना का नया अलंकार है । 'शब्दों' के उच्चारण से उत्पन्न ध्वनि से जहाँ अर्थ व्यंजित होता है वहाँ ध्वन्यर्थ-व्यंजना की स्थिति मानी जाती है । मुक्तिबोध की कविताओं में ध्वन्यर्थ-व्यंजना के विपुल उदाहरण मिलते हैं । यथा -

"झुरमुर-झुरमुर वह नीम हँसा,

चिड़िया डोली,

फर-फर आँचल तुमको निहार ।"[3]

यहाँ शब्दों का नियोजन कुछ इस तरह से किया गया है कि हिलती हुई नीम की डालियों की सरसराहट और चिड़ियों के पंखों की फरफर ध्वनि हो रही है । इसी प्रकार निम्न पंक्तियों में एक ओर गजर खड़कता है, दूसरी ओर दिल धड़कता है -

---

1. चाँद का मुँह टेढ़ा है, मुक्तिबोध - दसवाँ सं., पृ.78
2. भूरी-भूरी खाक धूल, मुक्तिबोध - द्वितीय सं., पृ.73
3. चाँद का मुँह टेढ़ा है, मुक्तिबोध - दसवाँ सं., पृ.173

"अकस्मात् ।

चार का गजर कहीं खड़का,

मेरा दिल धड़का ।"[1]

इस प्रकार हमें दिखाई देता है कि मुक्तिबोध के काव्य में अनेक अलंकार दृष्टिगोचर होते हैं । अपनी कविताओं में अलंकारों का प्रयोग जान-बुझकर न करने पर भी अनायास ही अलंकार उनके काव्य में उपस्थित हुए हैं । जो बड़े ही आकर्षक, मनोरम, सरल, सुबोध होते हुए भावानुकूल हैं ।

6.4 भाषाशैली-योजना :

भाषा का मूल सम्बन्ध कवि के अन्तर्जगत से होता है किन्तु साथ ही भाषा युग-बोध की संवाहक भी होती है संस्कृताचार्य पण्डितराज जगन्नाथ ने भी लिखा है - "रमणीयार्थ प्रतिपादकः शब्दः काव्यम्" अर्थात् रमणीय शब्द का प्रतिपादन करनेवाला शब्द काव्य ही रचनाकार की अनुभूति को लिखित रूप में निर्धारित करता है..... "कृतिकार के नवीनतम विकास की दिशाएँ प्रमुख रूप से उसकी भाषा प्रयोग विधि में प्रतिफलित होती हैं । साथ ही भाषा के माध्यम से किसी रचनाकार की प्रमाणिकता की भी परीक्षा अपेक्षा तटस्थ और विश्वसनीय ढंग से की जा सकती है ।"[2] फलतः भाषा का स्वरूप रचनाकार की विचार-अनुभूति की प्रक्रिया द्वारा निर्धारित होता है । साथ-ही-साथ भाषा संस्कृति के निर्माण में भी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है । इस सन्दर्भ में डॉ. रामविलास शर्मा लिखते हैं - "भाषा संस्कृति के निर्माण में सहायक होती है । भाषा हमारी संस्कृति, हमारी विचारधारा, भावधारा और संवेदनाओं से निर्मित है ।"[3]

मुक्तिबोध ने एक स्थान पर लिखा है - "कवि भाषा का निर्माण करता है । जो कवि भाषा का निर्माण करता है, विकास करता है, वह निस्सन्देह महान होता है ।"[4] मुक्तिबोध के इस कथन पर टिप्पणी करते हुए डॉ. जगदीश गुप्त

---

1. चाँद का मुँह टेढ़ा है, मुक्तिबोध - दसवाँ सं., पृ.268
2. भाषा और संवेदना, रामस्वरूप चतुर्वेदी, पृ.1
3. भाषा और समाज, डॉ. रामविलास शर्मा, पृ.469-470
4. नयी कविता का आत्मसंघर्ष तथा अन्य निबन्ध, मुक्तिबोध, पृ.2

लिखते है - "मैं उनकी कविताओं को पढ़कर इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि उन्होंने अपनी अभिव्यक्ति के अनुरूप रूपकों, प्रतीकों, बिम्बों की परिकल्पना करते हुए पर्याप्त सशक्त भाषा गढ़ी है । अतः जितने अंशों में उनकी अभिव्यक्ति सफल हुई है उतने अंशों में वे अपनी ही मान्यता के अनुरूप महान कहलाने के हकदार हैं ।"[1]

गजानन माधव मुक्तिबोध ने अपने काव्य में बहुभंगिमावती भाषा का निर्माण किया है । इनमें छायावाद, प्रगतिवाद, प्रयोगवाद युग की रूपछवियाँ भी हैं तथा काव्यभाषा का वह रूप भी जो नयी कविता में अब तक होता रहा है । डॉ. ललिता अरोड़ा के शब्दों में - "उनकी भाषा कभी संस्कृतनिष्ठ सामासिक-पदावली की अलंकृत विधिका से गुजरती है तो कभी अरबी-फारसी तथा उर्दू के नाजुक लचीले हाथों को थामकर चलती है, तो कभी अंग्रेजी की इलेक्ट्रिक ट्रेन पर बैठकर जल्दी से खटाक्-खटाक् निकल जाती है ।"[2]

मुक्तिबोध की भाषा में विचित्रता और रूक्षता भी मिलती है । इसका कारण उनके जीवन के कटु तथा त्रासद अनुभव हैं तथा दूसरी ओर वे अनुभूति के संकट को भी महसूस कर रहे थे । साथ-ही-साथ अभिव्यक्ति को सक्षम बनाने के लिए संघर्ष को कवि के त्रिविध संघर्ष में एक मानते हैं - "कवि के त्रिविध संघर्ष में एक है - अभिव्यक्ति को सक्षम बनाने के लिए संघर्ष अभिव्यक्ति सम्पदा की प्राप्ति के लिए निरन्तर संघर्ष आवश्यक है । वह प्रयत्न साध्य है और अभ्यासवश है ।"[3]

मुक्तिबोध ने इस अभिव्यक्ति सम्पदा की प्राप्ति के लिए निरन्तर संघर्ष किया है । एक ही कविता को हफ्तों, महीनों, कभी-कभी वर्षों विभिन्न प्रारूपों और संस्कारों में प्रस्तुत करते थे । शमशेर बहादुर सिंह ने ठीक ही लिखा है - "हफ्तों बल्कि महीनों वे अपनी लम्बी कविता के टुकड़ों को धीरे-धीरे चिन्तन और कल्पना की ऊर्जा से पुष्ट करते, जोड़ते और बढ़ाते और उसकी

1. गजानन माधव मुक्तिबोध का रचना संसार, गंगाप्रसाद विमल, पृ.71
2. मुक्तिबोध एक अध्ययन, डॉ. ललिता अरोड़ा, पृ.178
3. नयी कविता का आत्मसंघर्ष तथा अन्य निबन्ध, मुक्तिबोध, पृ.2

अंतर्योजनाओं को दृढ़ करते जाते । उनका शिल्प एक ऊँची इमारत उठाने वाले मेमार का शिल्प था ।"[1]

मानों भाषा का मुकद्दर कवि मुक्तिबोध के हाथ में हैं । जब जहाँ जैसी भावाभिव्यक्ति, जैसा चिन्तन, अन्तर्बोध के दिशा-निर्देश पर पंख-फैलाये उड़ान भरने लगता है । जहाँ शान्ति, नीरवता और रहस्यमय स्थिति है, भाषा क्रमशः शान्त और शीतल हो गई है । जहाँ कहीं डरावनी सन्नाटा फैलाती, भय और आतंक का घेरा डालती स्थितियाँ हैं, वहाँ भाषा भी वैसे ही शब्द संसार का आश्रय लेती है -

"सामने है अँधियाला ताल और ।
स्याह उसी ताल पर ।
सँवलायी चाँदनी ।
समय का घण्टाघर ।
निराकार घण्टाघर ।
गगन में चुपचाप अनाकार खड़ा है !!"[2]

कवि मुक्तिबोध में भाषात्मक दृष्टि से किसी प्रकार का परम्परागत मोह नहीं दिखता, आन्तरिक संघर्ष, मानसिक तनाव, युगीन विषमताएँ, क्रूर-दानवी कृत्य जब जहाँ जैसी आवश्यकता पड़ी है कवि की भाषा शब्द गढ़ने में पीछे नहीं हटी है बल्कि अपनी मौलिकता के साथ दृढ़ता से विचार ताल मिलाते हुए, भावों की लय पर सुरूचिपूर्ण गति के साथ चली है, दोड़ी है । इसीलिए भाषा को भी खुरदरा और रूखा बनना पड़ा है । "उसका तिलस्मी खौफनाक, संसार-सृजन भी भाषा की सामर्थ्य का परिचय देता है । उसे हम भले ही खुरदरी, अनगढ़ और रूखी भाषा कहें लेकिन उसमें अर्थकता है और जिन्दगी की नग्न यथार्थता को व्यक्त करने की प्रबल क्षमता है ।"[3]

---

1. चाँद का मुँह टेढ़ा है, मुक्तिबोध, पृ.16
2. वही, पृ.54-55
3. मुक्तिबोध एक अध्ययन, डॉ. ललिता अरोड़ा, पृ.180

6.4.1 शब्द योजना :

मुक्तिबोध ने अपनी अभिव्यक्ति के लिए उपयुक्त शब्दों की खोज की है । अपनी भावानुभूतियों की अधिकाधिक सजीव और सटीक अभिव्यंजना करने के लिए शब्द-चयन में अपूर्व दक्षता दिखाई है । उनकी भाषा मौलिक होने के साथ-साथ स्वायत भी है । शब्द-प्रयोग में मुक्तिबोध भाषा की सीमा नहीं जानते । अपनी भावनाओं और अनुभूतियों के संवहन में उन्होंने जिन शब्दों को अनुकूल पाया उनका उन्होंने बेधड़क प्रयोग किया, चाहे वे शब्द तत्सम, तद्‌भव, देशज हों या वे शब्द अंग्रेजी, उर्दू, फारसी तथा मराठी के ही क्यों न हों । सृजनात्मक स्तर पर मुक्तिबोध ने हिन्दी कविता को पर्याप्त नये शब्द दिये हैं । जिससे उनकी काव्य-भाषा की एक अलग पहचान बनती है । काव्य रचना करते समय उनके पास शब्द अनायास आने लगते हैं ।

6.4.2 तत्सम शब्द :

गजानन माधव मुक्तिबोध ने वातावरण को भव्य-दिव्य बनाने और अपनी कविताओं को विशेष सन्दर्भों से जोड़ने के लिए तत्सम शब्दों का सफल प्रयोग किया है । कुछ शब्द इस प्रकार हैं - जातवेदस, दिक्‌काल, सम्राट, आत्मचेतस, उद्‌भांत, मंत्रोच्चार, सहंजोत्तसर्गमयी, आवर्त, प्रकोष्ठ, तेजोद्‌भास, स्थितप्रज्ञ, अजानुबाहु, चुम्बकीय शक्ति, विष रासायनिक, मूल उद्‌जन, ज्यामिति रेखा, स्फटिक ताराद्युतिमण्डल नक्षत्रतारक - ज्योतिलोक, अन्वय-व्यतिरेक, प्रमेय, आत्मसंविद, प्रभाउपपत्तिसहित, बिम्बा आदि ।

मुक्तिबोध की कविता में प्रयुक्त होकर ये शब्द उनके मनोनुकूल रहस्यमय और भयावने वातावरण की सृष्टि में पर्याप्त योगदान करते हैं । कई बार ये अपने परम्परागत अर्थ की सीमा का विस्तार कर नये अर्थ प्रदान करते हैं । इसमें कई शब्द वैज्ञानिक तकनीकी संस्कृति के परिचायक हैं । मुक्तिबोध के कवि की यह सबसे बड़ी शक्ति है कि ऐसे शब्दों के प्रयोग के बावजुद उनकी कविताओं में कहीं भीं संवाद टूटता हुआ प्रतीत नहीं होता ।

6.4.3 तद्‌भव और देशज शब्द :

तत्सम शब्दों के साथ-ही-साथ मुक्तिबोध की कविताओं में तद्‌भव और

देशज शब्दों का भी सफलतापूर्वक प्रयोग दिखाई देता है । यह शब्द जन-जीवन से चुने हुए तथा कविता को आम आदमी से जोड़ने वाले शब्द है । जैसे - झोल, बावड़ी, भीत, कण्डा, चिट्ठी, सरगना, ढिबरी, शनिश्चरी, गिरिस्तिन, लौंकती, छरहरी, मुंडेर, कंजी आँख, गंजा सिर, उलाँघना, कनेर, चिन्हना, बाहवेर, बिचकाना, गरजना, गरीबिन, कांवडे, कांधे, बंजर, पीपे, गुहा, अंधियारी, झांई, चिलचिलाती, डठल, चिह्न, ठिठकना, ढीठ, मद्धिम, भूतही, बेकल, जतन, अनसुनी, अलगाव, पल्ला, खपरैल, मसखरी, फंदा, साँझ, बिचकाना, चिपकाना, धूलकचरा, उछड़ना, कानी, भेंगी आदि । इन शब्दों की एक लम्बी सूची बनायी जा सकती है ।

गतिशीलता और क्रियाशीलता का संकेत देनेवाले शब्द भी कवि की काव्य-भाषा को जानदार बनाते हैं - चटपट, छिः, थूः, धड़धड़-धड़ाम, सरसर, हुँआ, पिचपिची, फड़फड़ाती, लुचलुची, तड़ातड़तड़, छपाछप, थपाथप, छटपटाती आदि । इन शब्दों के प्रयोग से कविता में क्रियाशीलता और गतिशीलता आई है ।

6.4.4 अंग्रेजी शब्द :

गजानन माधव मुक्तिबोध ने अर्थ की सघन अभिव्यक्ति के लिए विविध भाषाओं के शब्दों का प्रयोग किया है । अंग्रेजी के शब्दों का प्रयोग उन्होंने अपनी कविताओं में सहजता एवं तत्परता से प्रयुक्त किया है । अंग्रेजी भाषा के कुछ शब्द इस प्रकार हैं - ट्रंकाल, पोस्टर, रायफल, एक्सीडेंट, कोब्रा, फैण्टेसी, ट्रेजड़ी, मैगजीन, कर्फ्यु, पेण्टर, प्रोसेशन, मीटिंग, विटैमिन, रेडियोग्राम, थ्योरम, कर्नल, ब्रिगेडियर, जनरल, मॉर्शल, स्क्रीनिंग, गैलरी, क्रास-एक्जामिन, डार्कमासेज, मॉब, क्वार्टर्ज, पिस्टन, कैवेलरी, मिलिटरी, सेक्स, हायफन, डैस, टैंक, रिवाल्वर, टार्च, शेवरलेट, सिविल लाइन्स, रेल, प्रोपोगण्डा, सेक्रेटरी, बैण्ड, लैम्प, मशीन, ड्राअर, क्रेट, दिंग्जवे, मोर्टार, टेरियर, ब्रेन, ब्रेन-गन, गैस लाईट, फ्यूज, बल्ब, आर्टिलरी, कवर, किक मार्च, मीटिंग, बैल्ट कवर आदि शब्दों का प्रयोग दिखाई देता है । मुक्तिबोध ने इन शब्दों का स्वाभाविक और रचनात्मक प्रयोग किया है और कहीं-कहीं अंग्रेजी के ये शब्द इतने अधिक प्रभावशाली बन पडे हैं कि उनके स्थान पर हिन्दी के अन्य शब्द उतने प्रभावशाली नहीं हो पाते । यथा -

"छिपे हुए प्रिंटिंग प्रेस को खोजो ।
जहाँ कि चुपचाप खयालों के परचे ।
छपते रहते हैं, बाँटे जाते ।
इस संस्था के सेक्रेट्री को खोज निकालो,
शायद, उसका ही नाम हो आस्था,
कहाँ है सरगना इस टुकड़ी का
कहाँ है आत्मा ?
स्क्रीनिंग करो - मिस्टर गुप्ता ।
क्रास एक्जामिन हिम थॉरोली !!"[1]

अंग्रेजी शब्द प्रयोग के कतिपय सफल उदाहरण कुछ निम्नरूप से दृष्टिगोचर होते हैं -

"विचित्र प्रोसेशन ।
गम्भीर क्विक मार्च..... ।
कलावतवाला काला जरीदार ड्रेस पहने चमकदार बैण्ड दल ।"[2]
"कन्धे के कमर तक कारतूसी बैल्ट है तिरछा ।
कमरे में, चमड़े के कवर में पिस्तौल ।
शेषभरी एकाग्र दृष्टि में धार है,
कर्नल, ब्रिगेडियर जनरल मार्शल ।"[3]

प्रभावशाली अभिव्यक्ति के लिए कहीं-कहीं अंग्रेजी के मूल शब्द के साथ उनका हिन्दी अनुवाद भी रख दिया गया है -

"मैं जिन्दा हूँ ।
मैं हूँ ।
आइ एग्ज़िस्ट ।
साबित सही सलामत ।"[4]

---

1. चाँद का मुँह टेढ़ा है, मुक्तिबोध - दसवाँ सं., पृ.284
2. वही, पृ.265
3. वही, पृ.266
4. वही, पृ.217-218

6.4.5 उर्दू फारसी के शब्द :

मुक्तिबोध को जीवन की जटिलता और सच्चाइयों को मूर्त करने के लिए जो शब्द अनुकूल प्रतीत हुए हैं, उनका उन्होंने बेझिझक प्रयोग किया है । इसी कारण उन्होंने अपनी काव्य-भाषा में उर्दू-फारसी के शब्दों को भी स्थान दिया है । सामान्य जनता की भाषा में उर्दू के प्रचलित शब्दों की बहुलता है और मुक्तिबोध ने जनता की बात जनता की ही भाषा में बिना किसी लाग लपेट के कहने का प्रयास किया है । उर्दू-फारसी के कुछ शब्द इस प्रकार हैं - तख्त, जिरह-बख्तर, गलती, बेजुबाँ, बेबस, बाहथियार, बख्तरबन्द, वहम, तजुर्बा, बुजुर्गी, संजीदा, सल्तनत, बेखौफ, खामोशी, खुदगर्ज, खुदमुख्तार, नामंजूर, शहंशाह, आलीजाह, आलमगीर, शाहीमुकाम, तामझाम, बस्तियाँ, बेबुनियाद, खूँख्वार, दर्रे, बेमालूम, बेनाम, मुहैया, लश्कर, अजीब, जिन्दगी, मीनार, दरख्त, खतरनाक, वारदात, फासला, जमाना, आसमानी, महसूस, नाखून, संदूक, मुफलिसी, जादुई, लहुलूहान, समन्दर चहरा, बदनसीबी, तलबा, जिन्दा, नुकीला, मशाल, दफ्तर, तहखाना आदि का प्रयोग किया है । मुक्तिबोध ने अपनी प्रसिद्ध कविता 'भूल-गलती' में दरबारे आम के चित्रांकन में उर्दू, अरबी, फारसी के शब्दों का प्रयोग कर उसकी स्वाभाविकता को बरकरार रखा है -

"भूल-गलती ।
आज बैठी है जिरहबख्तर पहनकर ।
तख्त पर दिल के,
चमकते हैं खड़े हथियार उसके दूर तक,
आँखे चिलकती हैं नुकीले तेज पत्थर-सी,
खड़ी है सिर झुकाये ।
सब कतारें ।
बेजुबाँ, बेबस सलाम में,
अनगिनत खम्भों व मेहराबां थमे ।
दरबारे-आम में ।"[1]

---

1. चाँद का मुँह टेढ़ा है, मुक्तिबोध - दसवाँ सं., पृ.29

इसी तरह उर्दू फारसी शब्द प्रयोग के कुछ उदाहरण निम्न हैं -

"बुरा क्या हुआ !
ठीक है कि हम भी तो दब गये,
हम जो विरोधी थे ।
कुओं तहखानों में कैद-बन्द ।
लेकिन हम इसलिए भरे कि जरूरत से ।
ज्यादा नहीं : बहुत-बहुत कम ।
हम बागी थे !!"[1]
"कतारों में खड़े खुदगर्ज-बा-हथियार ।
बख्तरबन्द समझौते ।
वहमकर, रह गये ; ।
दिल में अलग जबड़ा, अलग दाढ़ी लिये,
दुमुँहेपन के सौ तजुर्बों की बुजुर्गी से भरे ।
दढ़ियल सिपहसालार संजीदा ।
सहमकर रह गये !!"[2]

6.4.6 मराठी के शब्द :

किसी कवि की कविता पर उसकी मातृभाषा का प्रभाव होना स्वाभाविक ही है । मुक्तिबोध की मातृभाषा मराठी थी, अतः उनकी कविताओं पर मराठी का प्रभाव होना स्वाभाविक ही है । जहाँ कहीं भी उसे अपनी भावनाओं और अनुभूतियों की अभिव्यक्ति के लिए ज्यादा सटीक मराठी के शब्द दिखलायी पड़े हैं, उन शब्दों को हिन्दी के व्याकरण के अनुकूल ढालने की चेष्टा की गई है । मराठी के कुछ शब्द इस प्रकार हैं - फंदा (छोटी साल), कंदील (लालटेन), औदुम्बर (गूलर का पेड़), पूर (बाढ़), नक्षीदार (नक्काशीदार), नक्षे (नक्शा), सिवन्ती (गुलदाउदी), तिपहरा (तीसरा प्रहर), हकाल दिया (निकाल दिया, भगा दिया), अंगारी (अंगार युक्त), गजर, सामसूम, थूहर, बास, बिषारी, कुट्ठर, शिकंजी, कनेर, सटरपटर, नपुंसक, भोंगली, लोहांगी बघार, लहरीले, कुहरीले,

1. चाँद का मुँह टेढ़ा है, मुक्तिबोध - दसवाँ सं., पृ.83
2. वही, पृ.30-31

खरी, आंधियाले, उत्काल, घुमैल, रोगिला जैसे अनेक शब्दों का प्रयोग उनकी कविता में हुआ है । इनमें कुछ तद्‍भव तथा कुछ बोलचाल के ठेठ शब्द हैं । इन शब्दों से गुंफित कुछ वाक्य इस प्रकार हैं -

"उसके पीछे ।
पीला-पीला मद्धिम कोई कन्दील ।
छिपाये धोती में (डर किरणों से) ।
चुपचाप कौन वह आता है या आती है ।"[1]
"लटका रहा एक ओर ।
चाँद ।
कन्दील-सा ।"[2]
"बलात्कार किये गये
नक्षीदार कक्षों में ।"[3]

निष्कर्षतः यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि कुछेक खामियों के बावजूद भी मुक्तिबोध की काव्य-भाषा ओजगुण से युक्त चमत्कारिक है । कवि की भाषाशैली का यह गुम्फन उनकी निजी विशेषता है । निकट भविष्य में शायद ही कोई कवि इतनी जीवन्त काव्य शैली प्रस्तुत कर सके । वे एक कुशल शिल्पकार की तरह शब्दों को तराशते थे ।

6.5 छन्द योजना :

'छन्द' शब्द 'छद्' धातु में 'असुन्' प्रत्यय जोड़ने से बना है । छन्द धातु का अर्थ होता है प्रसन्न करना, फुसलाना, आच्छादन करना, बाँधना, आह्लादित करना इत्यादि । इन्हीं अर्थों के आधार पर छन्द शब्द का अर्थ सामान्यतया प्रसन्न करनेवाली वस्तु, इच्छा, आच्छादन, बन्धन आदि लिया जाता है ।

छन्द के सन्दर्भ में गिरजाकुमार माथुर का वक्तव्य पठनीय है - "कविता छन्द से मुक्त तो हो सकती है, किन्तु लय से उसकी मुक्ति संभव नहीं ।"[2]

---

1. चाँद का मुँह टेढ़ा है, मुक्तिबोध - दसवाँ सं., पृ.71-72
2. वही, पृ.198
3. वही, पृ.81

मुक्तिबोध की संपूर्ण रचनाएँ मुक्त-छन्द में लिखी गयी हैं, जिसकी अपनी विशिष्टताएँ हैं । मुक्तिबोध में जिस मुक्त छन्द का विधान किया है वह ऐसा है - "जो निराला के ठेठ मुक्त छन्दों से हाथ मिलाकर आगे जाता है । वही सीधी अभिव्यक्ति, तरल मानवीय व्यंजना, मगर उससे अधिक भी कुछ । निरालापन के साथ मुक्तिबोधपना यानी वही एक नया, गहरा, साक्षीपन का भाव, सबसे ऊपर नहीं, सबके साथ, यद्यपि विशिष्ट, एक विशिष्ट अपनाव ।"[1] वस्तुतः मुक्तिबोध के मुक्त छन्द में अद्‌भूत लय और शक्ति है ।

वर्तमान कविता पर भाष्य करते हुए अज्ञेयजी कहते है - "आज की कविता बोलचाल के निकट तो जाना चाहती है, किन्तु गद्य से वह भिन्न भी रहना चाहती है । अतः गद्य से भेद नाये रखने के लिए उसने लय को अभिन्न अंग के रूप में स्वीकार कर लिया है । इस प्रकार एक तरफ छन्द के बन्धन तोड़ती है तो दूसरी तरफ संगीत यानी गेय तत्व को अधिक अपनाना चाहती है ।"[2]

एक स्थान पर दिनकर ने निराला के सन्दर्भ में लिखा था - "बदनाम तो निरालाजी इसलिए हुए कि उन्होंने छन्दों का बन्धन तोड़कर उसका निरादर किया, लेकिन किसी ने अब तक यह नहीं बताया कि नए भावों की अभिव्यक्ति के लिए छन्दों का अनुसंधान करते हुए कितने पुराने छन्दों का उद्धार किया, कितने नवीन छन्दों की सृष्टि की है ।"[3] निराला की तरह मुक्तिबोध ने भी छन्द के बन्धन तोड़े हैं किन्तु भावों की अभिव्यक्ति के लिए उन्होंने कहीं-कहीं ही सही पुराने छन्दों का उद्धार भी किया है । वैसे मुक्तिबोध की कविता परम्परित रोमान की कविता नहीं है वह आत्मसंघर्ष और आत्मान्वेषन की कविता है, वह जीने की प्रक्रिया से कटकर हटकर नहीं प्रत्युत समरस होकर घटित होती है ।

यह भी सत्य है कि मुक्तिबोध की कलात्मक उपलब्धियाँ विवादास्पद रही हैं । कुछ लोगों ने उन्हें निराला के बराबर स्थान दिया है और कहा है कि - "जब कभी आधुनिक हिन्दी काव्य का वस्तुपरक इतिहास लिखा जायेगा तब

---

1. चाँद का मुँह टेढ़ा है, - एक विलक्षण प्रतिभा, शमशेर, दसवाँ सं., पृ.24
2. आत्मनेपद, अज्ञेय, पृ.29
3. मिट्टी की ओर, दिनकर, पृ.113

निराला यदि उसके प्रथम विद्रोही कवि के रूप में स्मरण किये जायेंगे, तो मुक्तिबोध को भी उसी क्रम में स्वीकार करना होगा, जिन्होंने नये काव्य में उस अग्निशिखा को जीवित रखा, उन्हें चाहे कोई भी मूल्य क्यों न चुकाना पड़ा हो अपने संकलन की आरंभिक कविता में मुक्तिबोध ने बिकने से इन्कार कर दिया है नामंजूर उसको जिन्दगी की शर्म की सी शर्त नामंजूर हठ इनकार का सिर तानखुद-मुख्तार ।"[1] उधर डॉ. सम्पत ठाकुर मुक्तिबोध का पुनर्मूल्यांकन करते हुए कहते हैं - "मुक्तिबोध की अधिकांश कविता अछन्द है । वह बहुत जगह लयहीन भी है - तुकों का तो प्रश्न नहीं है । यद्यपि लय का आग्रह उनकी कविताओं में दिखाई पड़ता है किन्तु साथ ही उनके बीच-बीच में टूट जाने की चिन्ता तो कोई खास नहीं हैं ।"[2]

इस तरह आलोचकों की दृष्टि में मुक्तिबोध की कविता में ईमानदारी हैं, कलात्मक सजगता भी है । उनकी समस्त कविताएँ मात्रिक या वार्णिक लय के आधार पर लिखी गई हैं । डॉ. रामविलास शर्मा यह स्वीकार करते हैं कि मुक्तिबोध का यथार्थ महत्त्व बोलचाल की लय को अपनाने में ही है और ऐसा मात्रिक छन्द को अपनाने से उत्कृष्टता के साथ किया जा सकता है ।

'तार-सप्तक' में संग्रहीत मुक्तिबोध की प्रायः सभी कविताएँ मात्रिक लय में बँधी हुई हैं, 'विहार' कविता में 8 मात्राओं के चरण हैं, यथा -

"रवि का प्रकाश	(8)
शशि का विकास	(8)
पुंसत्वहीन/नर का विलास	(8 + 8)
ये सूर्य-चन्द्र	(8)
नभ-वक्ष लुब्ध	(8)
वे अमित वास/ना के शिकार"[3]	(8 + 8)

1. गजानन माधव मुक्तिबोध, डॉ. लक्ष्मणदत गौतम, पृ.246
2. मुक्तिबोध पुनर्मूल्यांकन, सम्पत ठाकुर, पृ.162
3. तार सप्तक, मुक्तिबोध, तृतिय सं., पृ.23

'मृत्यु और कवि', 'नाश-देवता', 'मैं उनका ही होता' और 'हे महान' शीर्षक रचनाएँ 16 मात्राओं के चरणों में बँधी हैं -

"घनी रात, बादल रिमझिम हैं ।	(16)
दिशा मूक, निस्तब्ध वनान्तर	(16)
व्यापक अन्धकार में सिकुड़ी	(16)
सोयी नर की बस्ती, भयंकर ।"[1]	(16)
"घोर धनुर्धर, बाण तुम्हारा	(16)
सब प्राणों को पार करेगा	(16)
तेरी प्रत्यंचा का कम्पन	(16)
सूनेपन का भार हरेगा ।"[2]	(16)
"मैं उनका हो होता, जिनसे	(16)
मैं रूप-भाव पाये हैं ।	(16)
वे मेरे ही हिये बँधे हैं	(16)
जो मर्यादाएँ लाये हैं ।"[3]	(16)
"हे महान ! तब विस्तृत उर से	(16)
दृढ़ परिरम्भण की क्षमता दो ।"[4]	(16)

'अशक्त' शीर्षक कविता में 19 मात्राओं का चरण है । यथा -

"क्या हमारे भाव शब्दाती हैं ?	(19)
या तुम्हारा रूप भावातीत हैं ?	(19)
हम न गा सकते तुम्हारा गीत हैं ।	(19)
वह हृदय गम्भीर, नीरव सिक्त हैं ।"[5]	(19)

'पूँजीवादी समाज के प्रति' कविता में तीन-तीन सप्तकों अर्थात् 21 मात्राओं के चरण हैं तथा सप्तकों में चतुष्कों के बाद त्रिक रखे गये हैं । यथा -

1. तार सप्तक, मुक्तिबोध, तृतिय सं., पृ.20
2. वही, पृ.26
3. वही, पृ.35
4. वही, पृ.36
5. वही, पृ.16

"इतने/प्राण,	इतने/हाथ
4+3/7	4+3/7
इतनी/बुद्धि	इतना/ज्ञान
4+3/7	4+3/7
संस्कृति/और	अन्तः/शुद्धि"[1]
4+3/7	4+3/7

वैसे मुक्तिबोध को अष्ट मात्रिक या सप्त मात्रिक लय प्रिय रहे हैं । 'चाँद का मुँह टेढ़ा हैं' संग्रह की मात्रिक लय पर आधारित सभी कविताएँ इन्हीं लय के आधार पर लिखी गई हैं । इस संग्रह की लगभग 28 कविताओं में से 14 कविताओं की लय अष्ट मात्रिक हैं तथा कविता संख्या 2, 7, 16, 17, 19, 23 और 26 में अष्टकों की तथा 1, 3, 13, 20, 21 और 25 में सप्तकों की आवृतियाँ हैं ।

निम्न पंक्तियों में प्रत्येक 24 मात्राएँ हैं, अष्टकों की आवृत्ति के साथ ही गीतात्मकता और लयात्मकता भी है । यथा -

"कानाफूसी से व्याप्त बहुत हो जाती हैं,
इन धाराओं में बात बहुत हो जाती हैं ।
आते-जाते, पथ में, दो शब्द फुसफुसाते ।
इनको, घर आते, रात बहुत हो जाती है ।"[2]

कहीं-कहीं मुक्तिबोध ने दो अष्टक, एक अष्टक, दो अष्टक, एक अष्टक का क्रम रखा है । यथा -

"भग्नावशेष - तिमिरान्तराल	(16)
से उठी चीख	(8)
है उदाहरण यह, हमें सीख	(16)
छावों, छावों"[3]	(8)

1. तार सप्तक, मुक्तिबोध, तृतिय सं., पृ.25
2. चाँद का मुँह टेढ़ा है, मुक्तिबोध - दसवाँ सं., पृ.73
2. भूरी-भूरी खाक धूल, मुक्तिबोध - द्वितीय सं., पृ.215

अष्टकों के माध्यम से अधिकांश कविताओं में मुक्तिबोध ने लयात्मकता लाने का प्रयास किया है, लम्बी कविता के लिए अधिकतर अधिक मात्राओं वाले अष्टकों का प्रयोग उचित होता है । निम्न अष्टक हैं, दोषहीन है । यथा -

"कल जो हमने / चर्चा की थी	**8 + 8**
हिय की उष्मा / के उफान से / निकल रहे थे ।	**8 + 8 + 8**
सही-सही बा / तों के उत्तर"[1]	**8 + 8**

'कल जो हमने चर्चा की थी' शीर्षक कविता मुक्तिबोध की ऐसी भाग्यशाली कविताओं में से है जिसमें संपूर्ण कविता में बिना किसी तोड़ या त्रुटि के पर्वो का निर्वाह क्रमानुसार किया गया है । निम्नांकित अष्टकों में टूटन एवं बिखराव हैं -

"आगे आगे / माँ	**8 + 2**
पीछे मैं;	**6**
उसकी दृढ़ पी/ठ जरा-सी झुक	**8 + 8**
चुन लेती डं / ठल, पल-भर रूक"[2]	**8 + 8**

मुक्तिबोध के काव्य में पंचक पर्व और 6 मात्राएँ लेकर भी लयात्मकता का निर्वाह किया गया है । यथा -

"अचानक/आसमा/नीकास/लों में से	**5 + 5 + 5 + 6**
गुजरते/चाँद ने/वह तम-वि/वह देखा	**5 + 5 + 5 + 6**
लिफाफा एक नी/ला दूर/से फेंका ।"[3]	**5 + 5 + 5 + 6**

"एक कविता में अनेक पर्वो का निर्वाह भी कवि ने किया है । भाव बदलते ही लय-योजना भी बदल दी गई है । ऊपर लिखित कविता में ही आगे चलकर कवि की सप्तक मात्रिक लय वाली कविताओं में सप्तक का एक और रूप भी प्राप्त होता है । उसमें एकल के पश्चात् षटकल आता है । विधाता छन्द में ऐसे ही सप्तकों की आवृत्तियाँ हुआ करती हैं । श्री जगन्नाथ प्रसाद भानु के

1. चाँद का मुँह टेढ़ा है, मुक्तिबोध - दसवाँ सं., पृ.123
2. वही, पृ.130
3. वही, पृ.159

अनुसार विधाता छन्द में 14, 14 के क्रम से 28 मात्राएँ होती हैं । प्रथम 8वीं और 15वीं मात्राएँ लघु रहती हैं इसे शुद्धता भी कहते हैं यही तर्ज गजल भी होती है ।"[1]

मुक्तिबोध की कविता 'चकमक की चिनगारियाँ' इस लय पर आधारित है । मुक्तिबोध ने चौपाई छन्द का प्रयोग भी अनेक स्थानों पर किया है । चौपाई सममात्रिक छन्द है । जिसमें 16 मात्राएं होती है । निम्न पंक्तियों में इसी छन्द का प्रयोग किया गया है । यथा -

"इस नगरी में चाँद नहीं है,

सूर्य नहीं है, ज्वाल नहीं है सिर्फ धुए के बादल-दल हैं ।"[2]

इसी तरह अनेक स्थानों पर मुक्तिबोध ने महानुभाव छन्द का भी प्रयोग किया है । "इस छन्द में गण-व्यवस्था 4 + 4 + 4, 6 + 6 होती है, सार का उत्तरांश होने के कारण डॉ. पुत्तूलाल शुक्ल ने इसे सारक छन्द कहा है ।"[3] निम्न पंक्तियों में 6 + 6 मात्राओं का महानुभाव छन्द देखा जा सकता है । यथा -

"घर की दी / वालों की	**6 + 6**
भाभी की / बातों की	**6 + 6**
बच्चों के / बातों की ।"[4]	**6 + 6**

मुक्तिबोध ने छन्द प्रसंग, स्थिति एवं भाव के अनुरूप भी चले हैं । निम्न पंक्तियों में आगे बढ़ने की बात कही गयी है इसीलिए शब्दों का विधान कुछ इस प्रकृति का है जो गत्यात्मकता भर रहा है । छोटे-छोटे शब्द, लघु-लघु शब्द, छोटी गति क्रमबद्ध गति, निर्बाध गति -

"पथ पर रूक मत ।

आ पहुँच, पहुँच, चल भाग उठा..... ।

कन्धों पर रख,

1. छन्द प्रभाकर - जगन्नाथ प्रसाद भानु, पृ.68
2. भूरी-भूरी खाक धूल - मुक्तिबोध - द्वितीय सं., पृ.145
3. आधुनिक हिन्दी काव्य में छन्द योजना, डॉ. पुर्त्तूलाल शुक्ल, पृ.248
4. भूरी-भूरी खाक धूल - मुक्तिबोध - द्वितीय सं., पृ.165

ले जमा और ।
निज पैरों के मजबूत जोर ।
पर तौल भार !
दुर्भेद्य पहाड़ों की सूखी नंगी मजबूरी का अजीब,
विस्तार माप..... ।
फिर से पैरों पर एक बार ।
ले तौल पहाड़ी महाभार !"[1]

ध्वनि योजना के अनुरूप भी मुक्तिबोध के छन्द चले हैं । निम्न उदाहरण इस सन्दर्भ में दृष्टव्य हैं -

"जिन्दगी के..... ।
कमरों में अँधेरे ।
लगाता है चक्कर ।
कोई एक लगातार ।
आवाज पैरों की देती है सुनाई ।
बार-बार..... बार-बार ।
वह नहीं दीखता...... नहीं ही दिखता,
किन्तु वह रहा धूम ।
तिलस्मी खोह में गिरफ्तार कोई एक,
भीत-पार आती हुई पास से,
गहन रहस्यमय अन्धकार ध्वनि-सा ।
अस्तित्व जनाता ।
अनिवार कोई एक ।"[2]

मुक्तिबोध के छन्दों का समग्र मूल्यांकन करने के बाद हम इस निष्कर्ष पर सहज रूप में पहुँचते हैं कि मुक्तिबोध का छन्दों पर असाधारण अधिकार रहा है । यदि कहीं कोई त्रुटि दिखाई भी देती है तो वहह भाव विशेष के कारण, परिस्थिति विशेष के कारण, परिवेश विशेष के कारण । इसमें सन्देह नहीं कि निराला की

---

1. भूरी-भूरी खाक धूल, मुक्तिबोध, पृ.226
2. चाँद का मुँह टेढ़ा है, मुक्तिबोध, पृ.256

ऊंचाइयों तक मुक्तिबोध के छन्द नहीं पहुँचते । जहाँ निराला मुक्त छन्द के प्रथम प्रयोक्ता रहे और उसकी कला की चरमसीमा तक पहुँचाया वही मुक्तिबोध के सन्दर्भ में हम यही कह सकते हैं कि वे मुक्त छन्द के सफल प्रयोक्ता थे और मुक्त छन्दत्व को निराला की-सी ऊँचाईयाँ देने का प्रयत्न अवश्य किया ।

6.6 व्याकरणिक योजना :

अल्प-भाषा कि व्याकरणिक रचना का विश्लेषण रचनाकार की शब्द निर्माण क्षमता को रेखांकित करता है । कहीं-कहीं कवि सप्रयास मानक नियमों से विचलित प्रयोग करता है । व्याकरण से मुक्ति के लिए काव्य-भाषा का आग्रह अनजाने नहीं अपितु अपनी विशिष्टता बनाये रखने के लिये करता है । डॉ. रविनाथ सिंह ने इस सन्दर्भ में अपना मत व्यक्त किया है - "व्याकरणिक निर्बद्धता मूलतः वाक्यविन्यास, पदों और शब्दों के अन्वय क्रम को लेकर होती है किन्तु लिंग, वचन, पुरूष आदि से वह मुक्त नहीं होती ।"[1] वस्तुतः व्याकरणिक शुद्धता का पूर्ण निर्वाह करते हुए भी उसकी संरचना से कविता की भाषा मुक्त होती है । परिणामतः शब्दों का महत्त्व बढ़ जाता है ।

वैसे मुक्तिबोध ने भाषा को अपने कथ्य के अनुकूल ढ़ालने के लिए नये व्याकरणिक आयाम दिये हैं । यह सही है भाषा प्रयोग में प्रयुक्त यह व्याकरणिक स्वतंत्रता कहीं-कहीं भाषा को शिथिल एवं दोषयुक्त बना देती है । लेकिन कुल मिलाकर भाषा के इस क्षेत्र में मुक्तिबोध ने कई ऐसे प्रयोग किये हैं, जिनसे उनके काव्य में सम्प्रेषण क्षमता में वृद्धि हुई हैं । "मुक्तिबोध ने रचनात्मक स्तर पर न केवल भाषा की परम्परागत अर्थ ध्वनियों को तोड़ा है, बल्कि उसके व्याकरणिक रचाव और स्वरूप को भी भंग किया है । उन्होंने एक ऐसी काव्य-भाषा की तलाश की है जो उनकी सारी ज्ञानात्मक धरोहर को व्यक्त करते हुए जनता की 'बुद्धि तथा हृदय की भूख-प्यास का चित्रण करके उसे मुक्तिपथ पर अग्रसर कर सके ।"[2] नये व्याकरणिक प्रयोगों के द्वारा मुक्तिबोध ने अपने काव्य-भाषा में एक नये आयाम का सृजन किया है ।

1. नयी कविता की भाषा, डॉ. रविनाथ सिंह, पृ.175
2. ग. मा. मुक्तिबोध सृजन और शिल्प, रणजीत सिंह, पृ.186

6.6.1 संज्ञाएँ :

संज्ञाओं के प्रयोग में कवि ने विशेष चातुर्य से काम लिया है । "उसकी भाषा-संवेदना के भीतर व्यवहत होने वाली संज्ञायें चाहे वे विशुद्ध नामिक हों या विशेषणात्मक हों केवल जीवित और चालू भाषा की ही नहीं हैं वे भाषा की सारी इकाइयों को अपनी सृजन क्षमता से काव्य-भाषा में रूपान्तरित करते हैं ।"[1] मुक्तिबोध ने बराबर मुक्त और धुली हुई संज्ञाओं का प्रयोग किया है जो अलग से न तो चमत्कृत करती हैं न ही खास तरह के अर्थ चक्र का ही निर्माण करती हैं । वे दूसरे पर्यायवाचियों का भी प्रयोग करते हैं । जैसे कि वे 'भूल-गलती' का एक साथ प्रयोग करते हैं, न ही पर्याय परन्तु ये भाषा को एक अलग तेवर देते हैं । उनके द्वारा प्रयुक्त संज्ञाओं का वैशिष्ट्य यह भी है कि वे काव्य वस्तु के साथ ही बदल जाती हैं । वे काव्यगत संज्ञाओं का ही प्रयोग नहीं करते अपितु काव्येत्तर संज्ञाओं का भी प्रयोग करते हैं जो दन्तकथाओं से लेकर आधुनिक दुनिया के अन्तर्द्वन्द्व तक में निर्मित होती हैं । जैसे - धुग्धू, ब्रह्मराक्षस, भैरों, कन्हेर, शुनःशेष, बाँह-छाती, मुँह आदि संज्ञाओं के समानान्तर मंत्रोच्चार, ज्वार, स्नान, प्रवाह, चाँदनी, तेजस्क्रिय के साथ जनकथा, ऋचा, छन्द्स, मंत्र, मार्क्स, एन्जेल, रसेल, टायन्ची, हीडेगर, गांधी के समान अनेक संज्ञा रूप को उनकी कविताओं में देखा जा सकता है । इस प्रकार उनकी संज्ञाएँ एक विशाल परिवेश को अपने दायरे में समेटती हैं जो कर्फ्यू से लेकर अण्डरवियर, विश्वचेतस् से लेकर मृतदल की शोभा यात्रा तक फैली हुई हैं । वस्तुतः "मुक्तिबोध की भाषा संरचना में संज्ञाओं का फैलाव भाषा की निर्धारित सीमाओं के बाहर तक होता है । वे ऐसी संज्ञाओं का प्रयोग करते हैं जो कभी-कभी हीन होते हुए भी अर्थ का विस्तार करती है ।"[2] इस प्रकार मुक्तिबोध के काव्य में संज्ञायें अपनी महत्त्वपूर्ण प्रयोगशीलता के साथ प्रयुक्त हैं ।

6.6.2 विशेषण :

विशेषण का प्रयोग भी काव्य-भाषा की महत्त्वपूर्ण प्रक्रिया हैं । जब कवि

---

1. ग. मा. मुक्तिबोध विचारक कवि और कथाकार, सुरेन्द्र प्रतापसिंह, पृ.198
2. वही, पृ.199

अपने अभिप्रेत को पूरा व्यक्त कर पाने में असमर्थ होता है तो विशेषण की सहायता लेता है । मुक्तिबोध के विशेषण प्रायः एक प्रकार की भयंकरता के साथ हार, आतंक और रहस्य की भी सृष्टि करते हुए कविता में आज के जीवन के त्रास एवं संकट को उजागर करते हैं । निम्नलिखित उदाहरण दृष्टव्य हैं -

"शहर के उस ओर खण्डहर की तरफ ।
परित्यक्त सूनी बावड़ी ।"[1]
"भीमाकार पुलों के बहुत नीचे, भयभीत ।
मनुष्य-बस्ती के बियावन तटों पर ।
बहते हुए पथरीले नालों की धारा में ।
धराशयी चाँदनी के होठ काले पड़ गये हैं ।"[2]
"बारह का वक्त है ।
भुसभुसे उजाले का फुसफुसाता षड्यन्त्र ।
शहर में चारों ओर, जमाना भी सख्त है !!"[3]
"बरगद की घनघोर शाखाओं की गठियन ।
अजगरी मेहराब ।"[4]
"तिलस्मी चाँद की राज-भरी झाईयाँ !!"[5]
"कटे-उठे पठारों का, दर्रो का ।
घँसनों का बियावन इलाका ।
गुंजन रात, अजनबी हवाओं की तेज मार-धाड़ ।"[6]

कवि को 'सूनी बावड़ी' कहकर संतोष नहीं होता । उसके ठीक बाद 'परित्यक्त' बावड़ी भी लिखना आवश्यक हो गया । 'परित्यक्त' शब्द बावड़ी के परिवेशजन्य वीरानगी से और गहरा है । इस प्रकार किसी भी स्थिति को गहरे

---

1. चाँद का मुँह टेढ़ा है, मुक्तिबोध - दसवाँ सं., पृ.35
2. वही, पृ.53
3. वही, पृ.53
4. वही, पृ.53
5. वही, पृ.54
6. वही, पृ.231

बनाते जाना मुक्तिबोध की काव्यानुभूति का अनिवार्य अंग है । पुल के पहले भीमाकार विशेषण पुल की विराटता का दृश्य उपस्थित करता है । साथ-ही-साथ भीमाकार पुल की विराटता की विशेषताओं को जीवन्त भी बना देता है । बियाबान शब्द का प्रयोग मुक्तिबोध ने बार-बार किया है ।

'फुसफुसाता षडयन्त्र' में फुसफुसाता विशेषण षड्यन्त्र की रचनात्मक विशेषताओं को सामने ला देता है । 'गठियल अजगरी मेहराब' में दोहरे विशेषण का प्रयोग किया गया ह । अजगरी के साथ गठियल शब्द का प्रयोग करते हैं । साथ-ही-साथ कवि ने सार्थक विशेषण परम्परा से प्राप्त होने के कारण नये विशेषण गढ़ दिये हैं । इस प्रक्रिया में वह अंग्रेजी संज्ञा के साथ हिन्दी विशेषण जोड़ देते हैं अथवा हिन्दी संज्ञा के साथ अंग्रेजी विशेषण लगाकर उन्हें अपने भावों के अनुरूप नयी अभिव्यक्ति प्रदान करते हैं । जैसे - इलेक्ट्रान रश्मियाँ, रायफली गोली, हड़ताली पोस्टर, श्याम संवेदन कोब्रा, गैसलाइट नीलाई, बैंडदल, पथरीले चेहरों की खाकी ड्रेस आदि । इस प्रकार मुक्तिबोध ने व्याकरणिक प्रयोगों द्वारा विशेषणों से अपनी काव्य-भाषा को नया आयाम देने का महत्त्वपूर्ण कार्य किया है ।

6.6.3 पदबन्ध :

गजानन माधव मुक्तिबोध ने अपनी बात को प्रभावशाली ढंग से कहने के लिए विशेषणों के साथ-ही-साथ नये-नये पदबन्धों का भी सफल प्रयोग किया हैं । यह उनकी महत्वपूर्ण विशेषता हैं । इस सन्दर्भ में डॉ. सुरेन्द्रप्रताप सिंह का मत है - "ये पदबन्द मुक्तिबोध की स्वयं खोज हैं ।"[1] वस्तुतः हम यह नहीं कह सकते कि इसमें सतकक्यता की मात्रा कितनी है किन्तु यह सत्य है कि मुक्तिबोध ने पदबन्दों को गौरव के स्थान पर विराजमान किया है । बिम्बों, प्रतीकों और मिथकीय सन्दर्भों में वे अपनी छाप रखते हु ऐसे पदबन्द की तलाश करते हैं जहाँ काव्यार्थ एक घने अर्थवृत्त की सृष्टि करता है । अपनी आवश्यकतानुसार संख्याओं को दुहराकर या विशेषण इकाइयों की दुहरी-तिहरी आवृत्ति देकर पदबन्द गढ़ते हैं । जैसे - 'एक-एक आँख', 'एक-एक पुतली',

---

1. ग. मा. मुक्तिबोध विचारक कवि और कथाकार, सुरेन्द्र प्रतापसिंह, पृ.204

'लाल-लाल पुतलियाँ', 'लाल-लाल मशाल', 'लाख-लाख फूलों', 'लाल-लाल श्मशान' आदि आवृत्तियों अर्थों के साथ पूरे सन्दर्भ को उजागर करती हैं ।

मुक्तिबोध की कविता में पदक्रम को उलट-पुलट कर विचलित शब्द-गुम्फों की सहायता से भाषा की शक्ति पैदा करने के भी पर्याप्त उदाहरण मिलते हैं । जैसे - जमीन, गीली, बरगद ऊँचा, चिन्ह्‌ाकार, विकराल आदि शिथिलपद क्रम के पदबन्दों में संज्ञा की जगह विशेषण और विशेषण की जगह संज्ञा को लाकर वे यथार्थ चित्र प्रस्तुत करते हैं । "अपनी बात असरदार ढंग से रखने के लिए, उन्हें नई अर्थवत्ता प्रदान करने के लिए खास प्रकार के नये तथा युनीक विशेषणों पदबन्दों की तलाश करते हैं । फिर उन्हें जोड़ देते हैं ।"[1] इस प्रकार भाषा की शक्तियों से पूर्ण कार्य लेते हुए मुक्तिबोध ने पदबन्द निर्मित किये हैं ।

6.6.4 मुहावरे :

काव्य-भाषा के स्वरूप निर्माण में मुहावरे एवं कहावतों का पर्याप्त योगदान रहता हैं । मुहावरों के माध्यम से कवि अपने कथ्य को अधिक प्रभावपूर्ण एवं सशक्त बनाता है । मुक्तिबोध की काव्य-भाषा भी इस समृद्धता से अछूती नहीं हैं । "उनकी काव्य-भाषा की एक बहुत बड़ी शक्ति है - मुहावरों का प्रयोग इतने सटीक और सहज अर्थ देनेवाले मुहावरों का प्रयोग आधुनिक हिन्दी काव्य में बहुत कम हुआ है । ये मुहावरे अपने आप में एक इकाई से लगते हैं ।"[2]

मुक्तिबोध के काव्य में कहावतें तो बहुत कम मात्रा में प्रयुक्त हुई हैं पर उनके यहाँ मुहावरों का प्राचुर्य हैं । वे उनका प्रयोग आम आदमी की बातचीत के लहजे में करते हैं । कुछ मुहावरों को तो उन्होंने उनके पुराने रूप में ही अपना लिया है । पर कुछ के स्वरूप में पर्याप्त परिवर्तन कर दिया है और कुछ नये भी गढ़ लिये हैं । उदाहरणार्थ -

'जमाना साँप का काटा'[3] 'सच्चाई की आँखे निकालना'[4] 'दिल की बस्ती

1. ग. मा. मुक्तिबोध विचारक कवि और कथाकार, सुरेन्द्र प्रतापसिंह, पृ.205
2. ग. मा. मुक्तिबोध : व्यक्ति एवं काव्य, डॉ. महेश भट्टनागर, पृ.76
3. चाँद का मुँह टेढ़ा है, मुक्तिबोद - दसवाँ सं., पृ.30
4. वही, पृ.30

उजाड़ना'[1], 'मन टटोलना'[2], 'घर लिया जाना'[3], 'अपना गणित करना'[4] 'जमाना सख्त होना'[5], 'मूठ मारना'[6], 'मछलियाँ फाँसना'[7], 'केंचुली उतारना'[8] आदि ।

मुक्तिबोध ने प्रचलित मुहावरों में थोड़ा बहुत हेर-फेर करके उनमें नवीन अर्थवत्ता प्रदान की हैं । उनके द्वारा प्रयुक्त कुछ मुहावरे निम्न हैं - 'पोत डामर' यहाँ 'कालिख पोतने' के भाव को ध्वनित करता है, वही 'बाँहों को उलझा', 'हाथ से हाथ मिलाना' की जगह प्रयुक्त है । 'चेहरे पर प्रकाश डालना' को 'चेहरे पर फैलता टार्च' कहकर मुक्तिबोध ने अपनी प्रयोगशीलता का परिचय दिया है । 'बज उठना' जैसे मुहावरे को 'मृदंगा-ध्वनित हो उठे' कहकर अर्थ सीमा में पर्याप्त विस्तार कर दिया हैं । इस प्रकार के बहुसंख्यक मुहावरे कवि मुक्तिबोध के काव्य में मिलते हैं । कुछ निम्नवत् हैं -

उतारू हो गया, सख्त हो जाना, गाड़ी फँसना, आउट ऑफ डेट होना, फैशन चला गया, दो-दो हाथ करना, चोरी-चोरी आ पहुँचना, ठोकर खाना, मारा-मारा फिरना, दिल धड़का, मन फड़का, धुल फाँकना, खाक हो जाना, झख मारते, सिट्टी गुम होना, गजर खड़कना, देवदासी चोलियाँ उतारना, बन्दर बाँट होना, मुँह चिढ़ा रही, फूल फल गये, तितर-बितर कर सकना आदि ।

इस प्रकार मुक्तिबोध ने मुहावरों का सजग एवं सार्थक प्रयोग किया है । "उनकी कविता में प्रयुक्त मुहावरे उनकी आँख है, जिनसे विविध प्रकार की व्यंजनायें झड़ती हैं ।"[9] इसमें सन्देह नहीं कि इतने सटीक एवं सहज अर्थ प्रदान करनेवाले मुहावरों का प्रयोग नयी कविता के अन्तर्गत अल्प हुआ है ।

---

1. चाँद का मुँह टेढ़ा है, मुक्तिबोद - दसवाँ सं., पृ.30
2. वही, पृ.32
3. वही, पृ.33
4. वही, पृ.41
5. वही, पृ.53
6. वही, पृ.58
7. वही, पृ.59
8. वही, पृ.81
9. मुक्तिबोध की साहित्यिक मान्यताएँ और उनका काव्य, डॉ. ब्रजलालसिंह, पृ.210

6.7 व्याकरणिक दोष :

कवि गजानन माधव मुक्तिबोध 'अभिव्यक्ति के खतरे उठाते हुए' व्याकरणिक दोषों की परवाह नहीं करते बल्कि स्वतंत्र रूप से प्रयोग करते हैं । इस सन्दर्भ में उनकी काव्य-भाषा के विचलित प्रयोगों पर विचार करना आवश्यक है । साथ-ही-साथ हमें दिखाई देता है कि उनके समकालीन कवि शमशेर बहादुर सिंह, भारतभूषण अग्रवाल, प्रभाकर माचवे, अज्ञेय आदि कवियों के काव्य में व्याकरणिक की सीमाओं का संतुलन दृष्टिगोचर होता है, अपितु मानों मुक्तिबोध ने भाषा को खिलोने की तरह तोड़ते मरोड़ते हुए स्वच्छन्द वृत्ति से प्रयोग कर व्याकरण की सीमाओं पर अतिक्रमण किया हुआ दिखाई देता है ।

कवि कभी-कभी शब्दों को जानबूझकर गलत लिखता है और उनसे अलग शक्ति प्राप्त करता है । मुक्तिबोध ने यद्यपि जानबूझकर गलत प्रयोग नहीं किये हैं अर्थ को अधिक गहराई देने के लिए ऐसे प्रयोग उन्होंने किए अवश्य हैं । तथापि यथा -

"तब अकस्मात आये मेरे जन, मित्र,
स्नेह के सम्बन्ध ।"[1]

यहाँ 'सम्बन्ध' शब्द का प्रयोग उन्होंने 'सम्बन्धी' के अर्थ में किया हैं । इसी प्रकार 'मधु' के साथ 'मय' प्रत्यय जोड़कर 'मधुमय' शब्द बनता है, लेकिन 'मधु' के साथ 'शील' प्रत्यय 'मधुशील' शब्द का प्रयोग किया है । 'लकड़ी' के स्थान पर 'लक्कड़ी' शब्द का प्रयोग किया है । यथा -

"लम्बी उदास लक्कड़ी डाल से हाथ क्षीम ।"[2]

मुक्तिबोध ने 'ऐतिहासिक' शब्द के स्थान पर 'इतिहासिक' जैसे नये शब्द का प्रयोग किया है । 'इतिहासिक' यह शब्द अपने आप में त्रुटिपूर्ण है । व्याकरण के नियमों के अनुसार 'इद्' प्रत्यय होने पर शब्द के पहले स्वर दीर्घ होना आवश्यक है । इसीलिए यह शब्द 'ऐतिहासिक' होना चाहिए । इसका अर्थ इतिहास से सम्बन्धित है । यथा -

1. चाँद का मुँह टेढ़ा है, मुक्तिबोध - दसवाँ सं., पृ.180
2. वही, पृ.229

"निज - इतिहासिक - विवरण

प्रस्तुत करते हैं ।"[1]

इन प्रयोगों के अतिरिक्त कुछ और भी व्याकरणच्युत प्रयोग शब्द साधना की दृष्टि से मुक्तिबोध की काव्य यात्रा में मिलते हैं । जिनमें लिंग-दोष सम्बन्धी प्रयोग या कुछ एकवचन बहुवचन के नये प्रयोग आते हैं । यथा -

"गैस-लाइट-पाँतों की बिन्दुएँ छिटकी ।"[2]

यहाँ पर 'बिन्दु' का प्रयोग न तो स्त्रीलिंग है न कर्ता के स्थान पर प्रयुक्त होने के कारण बहुवचन का विकास है । इसी प्रकार 'पक्षिणियाँ', 'शैलियों', 'गिरियों' का प्रयोग चिन्तनीय है । व्याकरण सम्मत प्रयोग की चिन्ता किये बिना ही कवि ने प्रयोग किये हैं । इसी प्रकार एक अन्य उदाहरण दृष्टव्य हैं -

"दबी हुई गम्भीर स्वर स्वप्न तरंगे,

शत-ध्वनि-संगम-संगीत ।

उदास तान धुन ।

समीप आ रहा !!"[3]

यहाँ 'समीप आ रहा' एकवचन पुल्लिग क्रिया है और उसका कर्ता तरंगे, संगीत और तान-धुन मिलकर बहुवचन हो जाता है अगर यह तरंगे, संगीत और तान-धुन तीनों की क्रिया है तो सही प्रयोग होगा 'समीप' आ रहे ।

व्याकरण से सम्बन्धित अन्य दोष भी मुक्तिबोध की काव्य-भाषा में पाये जाते हैं । किन्तु मुक्तिबोध ने भाषा को बोलचाल का मुहावरा देने के लिए भाषा जैसी बोल-चाल में प्रयुक्त होती है ज्यों की त्यों वैसी ही प्रयोग की है । 'कक्का' और 'बब्बा' जैसे प्रयोग आत्मीयता को और सघन कर देते हैं । इस प्रकार कवि ने चमत्कार के प्रदर्शन के लिए जान बूझकर शब्दों में एक खास तेवर निर्माण कर, भाषा के सहज प्रयोग के प्रवाह में कविता का सृजन किया है । इसीलिए मुक्तिबोध के काव्य में व्याकरणिक दोष महत्त्वपूर्ण स्थान नहीं रखते ।

1. चाँद का मुँह टेढ़ा है, मुक्तिबोध - दसवाँ सं., पृ.241
2. वही, पृ.264
3. वही, पृ.264

उपसंहार

मुक्तिबोध आधुनिक हिन्दी साहित्य में विशिष्ट स्थान रखते है । वे एक ऐसे कवि है जिनका अनुभवजगत बहुत व्यापक है । इसी कारण मुक्तिबोध की काव्यभाषा विराट तथा सघन जीवन अनुभवों से युक्त दिखाई देती है । उनकी काव्यभाषा में प्रगति, प्रयोग और नयी कविता के गुणों का समन्वय मिलता है । मुक्तिबोध ने अपने अनुभवों के आधार पर ही अभिव्यक्ति के लिए रूपकों, प्रतीकों एवं बिम्बों से युक्त काव्यभाषा का निर्माण किया है । उनकी काव्यभाषा सक्षम एवं समर्थ है, जो उनके आंतरिक जगत को उद्‌घाटित करती है ।

मुक्तिबोध ने छायावादी काव्य के अनुकरण पर अपनी कविताओं का आरंभ किया था । लेकिन युग चेतना को ध्यान में रखते हुए उन्होंने अपनी काव्यभाषा को अलग प्रकार रसे बनाया है । इस काव्यभाषा की शब्दयोजना, प्रतीक योजना, बिम्ब योजना आदि सभी विशिष्ट है । मुक्तिबोध की काव्यभाषा अपनी विचारधारा रके अनुसार मौलिक एवं विशिष्ट है । अपनी काव्यभाषा के लिए उन्होंने उपयुक्त शब्दों का चयन भी किया है । अंग्रेजी, उर्दू, मराठी आदि अनेक भाषाओं के शब्द उनकी काव्यभाषा में सहज रूप से दिखाई देते है । अपने भावों के अनुरूप ही भाषा को गढ़ा है । मुक्तिबोध की अधिकांश कविताएँ मुक्त छन्द में है । प्रसंग, स्थितियों के आधार पर उनके छन्द बदलते रहते है । ध्वनि योजना, लय, तुक की दृष्टि से मुक्तिबोध की छन्दयोजना प्रभावक बन गई है । सफल गीतकार के समस्त गुण होते हुए भी मुक्तिबोध ने गीतों की रचना बहुत कम की है ।

मुक्तिबोध की काव्यभाषा का व्यापक अध्ययन करने के बाद हम यह विश्वासपूर्ण कह सकते हैं कि मुक्तिबोध नयी कविता के केन्द्रीय कवि रहे है । उनकी काव्यभाषा बिम्बों, प्रतीकों एवं फैण्टेसियों के सघन वातावरण से घिरी हुई है । इसलिए यह सुगम एवं सरल नहीं है । इस कारण यह काव्यभाषा अत्यंत बोझिल भी बनी है । लेकिन इसी काव्यभाषा ने ही हिन्दी में नवसर्जन की शुरूआत की है । इसीलिए यह काव्य भी नवीन एवं मौलिक है । यही मुक्तिबोध के काव्यभाषा की सबसे बड़ी उपलब्धि है ।

संदर्भसूचि

परिशिष्ट :

(1) आधार ग्रंथों की सूचि :

1. गजानन माधव मुक्तिबोध - चाँद का मुँह टेढ़ा है, भारतीय ज्ञानपीठ
2. गजानन माधव मुक्तिबोध - भूरी-भूरी खाक धूल, भारतीय ज्ञानपीठ
3. गजानन माधव मुक्तिबोध - तार सप्तक, भारतीय ज्ञानपीठ

(2) सहायक ग्रंथों की सूचि :

1. गजानन माधव मुक्तिबोध - मुक्तिबोध रचनावली भाग-1-6 सं. नेमिचंद्र जैन
2. मुक्तिबोध : कवि और काव्य - पठाण अय्युब शास्त्रीनगर, कानपुर
3. मुक्तिबोध की कविता - पदमा पाटिल, कोल्हापुर (महाराष्ट्र)
4. समकालीन कविता में मानव मूल्य - हुकमचंद्र राजपाल, नई दिल्ली
5. मुक्तिबोध के काव्य में मार्क्सवादी चेतना -डॉ. परबत सिंह, कानपुर
6. श्याम सुन्दर मिश्र, अस्तित्ववाद और - हिन्दी साहित्य, दिल्ली
   द्वितिय समरोतर
7. साहित्य का आधारदर्शन - जयनाथ नलीन
8. “Manifesto of the communist party - Karl Marx
9. मुक्तिबोध का साहित्य - विवेक और उनकी कविता
10. मुक्तिबोध काव्यबोध का नया परिप्रेक्ष्य - वीरेन्द्र सिंह
11. नयी कविता की नाट्यमुखी भूमिका - जयपुर
12. प्रमोद वर्मा : कालजयी मुक्तिबोध - जबलपुर
    ‘पहल’ सम्पादक

13. गजानन माधव मुक्तिबोध : व्यक्तित्व एवं कृतित्व - डॉ. जनक शर्मा
14. विपात्र : एक सृजनात्मक उपलब्धि - डॉ. चन्द्रभानु सोनवणे
15. गजानन माधव मुक्तिबोध : जीवन और कवि - डॉ. महेश भटनागर
16. लक्षित मुक्तिबोध - मोतीराम वर्मा
17. कवि मुक्तिबोध : एक विश्लेषण - रमेश शर्मा
18. मुक्तिबोध का साहित्य : एक अनुशीलन - डॉ. शशि शर्मा
19. आद्यबिम्ब और मुक्तिबोध की कविता - कृष्ण मुरारी
20. मुक्तिबोध एक साहित्यिक इकाई - डॉ. जगदीश शर्मा
21. गजानन माधव मुक्तिबोध - लक्ष्मण दत्त गौतम
22. मुक्तिबोध की काव्य सृष्टि - सुरेश ऋतुपूर्ण
23. समकालीन हिन्दी कविता - रामविलास शर्मा
24. मार्क्सवाद और साहित्य - महेन्द्र चन्दराय
25. मार्क्स और साहित्य - शशीभूषण
26. भारत संबंधी लेख - कार्ल मार्क्स
27. हिन्दुस्तान की कहानी - जवाहरलाल नहेरू
28. भारत में समाज कल्याण और सुरक्षा - रघुनाथ गुप्त
29. मुक्तिबोध : प्रतिबद्ध कला के प्रतीक - चंचल चौहान
30. मुक्तिबोध का साहित्य - विवेक और उनकी कविता - डॉ. लल्लनराय
31. हिन्दी की मार्क्सवादी कविता - डॉ. सम्पत ठाकुर
32. मुक्तिबोध का गद्य साहित्य - मोतीराम वर्मा

33. समाजवाद लक्ष्य और साधना - आचार्य नरेन्द्रदेव
34. स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कविता में व्यंग्य - डॉ. शेर जंग गर्ग
35. नया हिन्दी काव्य - शिवकुमार मिश्र
36. भारत में समाज कल्याण और सुरक्षा - रघुनाथ गुप्त
37. पूँजीवादी समाज - शिव वर्मा
38. मुक्तिबोध : विचारक, कवि और कथाकार - डॉ. सुरेन्द्र प्रताप
39. मानव जातियों में ऊँच-नीच के गलत विचार - जुआन कोमस
40. स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कथा साहित्य ग्रामजीवन - विवेकीराय
41. समय, समस्या और सिद्धान्त - जैनेन्द्रकुमार
42. मार्क्सवाद और हिन्दी कविता - डॉ. भक्तराम शर्मा
43. मार्क्सवाद - यशपाल
44. मुक्तिबोध का गद्य साहित्य - मोतीराम वर्मा
45. नयी कविता परिवेश - बालकृष्ण राव
46. दिनकर के काव्य में राष्ट्रीय भावना - सुनीत
47. आधुनिकता और राष्ट्रीयता - डॉ. राजमल बोरा
48. नई दुनिया - डॉ. प्रेमशंकर, इन्दौर
49. कविता के नये प्रतिमान - डॉ. नामवरसिंह
50. मुक्तिबोध का अध्ययन - डॉ. ललित अरोडा
51. मुक्तिबोध व्यक्ति एवं पात्र - डॉ. गणेश खरे
52. समकालीन प्रतिनिधि कवि - अन्नत कीर्ति तिवारी

(3) पत्र पत्रिकाएँ :

1. वीणा : नवम्बर-दिसम्बर 1964
2. धर्मयुग : 9 नवम्बर 1964 मुक्तिबोध के साथ हरिशंकर परसाई

3. राष्ट्रवाणी : मुक्तिबोध विशेषांक जनवरी-फरवरी 1965

4. हंस : शक्ति-संस्कृति - प्रेमचंद

5. माध्यम : नवम्बर 1964

6. आजकल : पर मुक्तिबोध ऐसा था स्वर्ण जयंति अंक मई-जून 1994